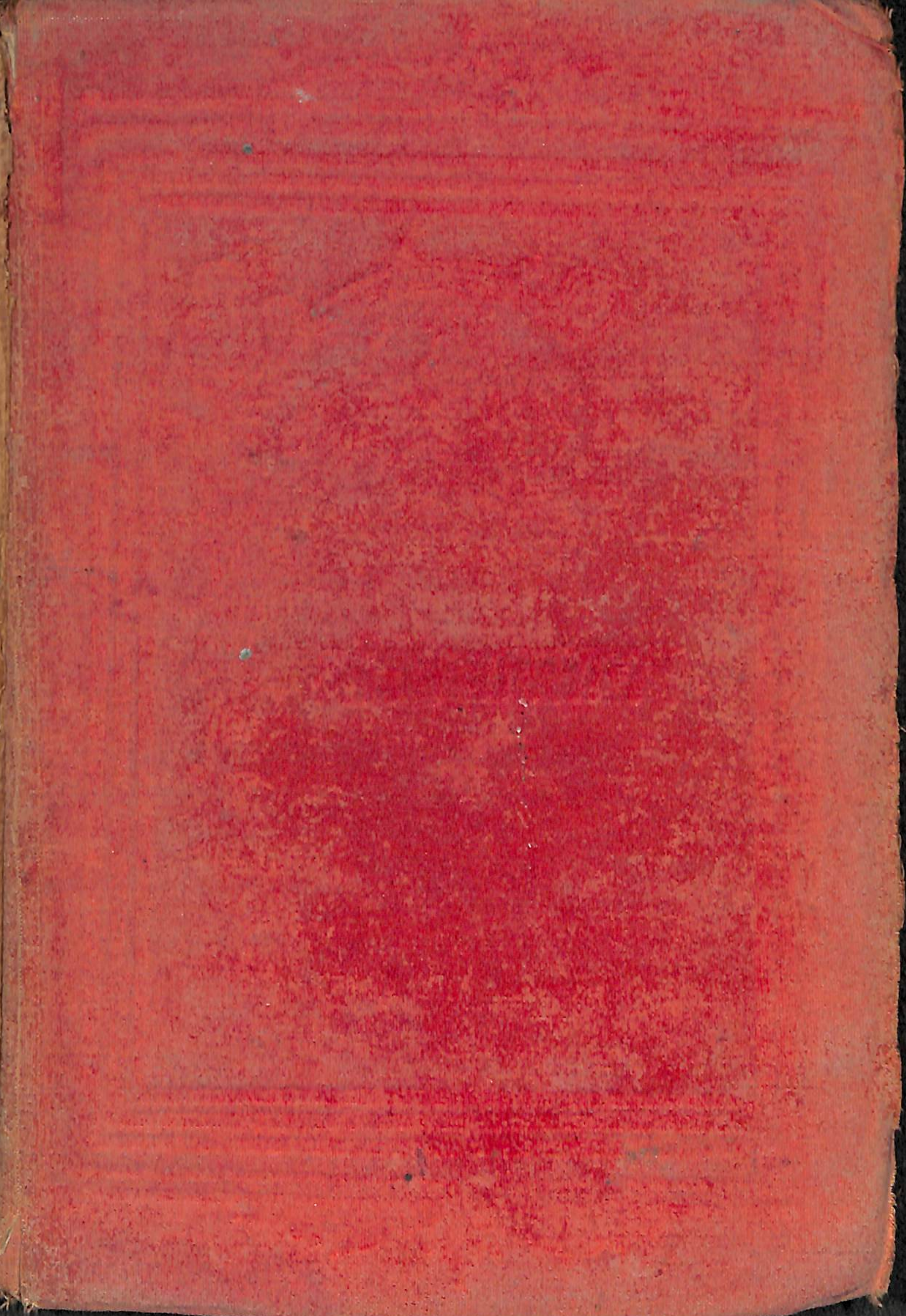




॥ श्रीः ॥

श्री विचार सागर



❋ सटीक ❋

साधुश्रीनिश्चलदासजीकृत ।

स्टाकिष्ट

भोलेश्वर पुस्तक भण्डार

तीसरा भोई वाड़ा

बम्बई

दूसरी बार

मूल्य ५)

Printed and Published by
SHIAMLAL HIRALAL AT S.K.PRESS MUTTRA

* श्रीः *

श्रीविचारसागरकी अनुक्रमणिका ।

सप्तमस्तरङ्गः ७

इति विचारसागर की अनुक्रमणि का समाप्त ।



विचार सागर प्रारम्भः

प्रथमस्तरंगः १



अथ वस्तुनिर्देशरूप मङ्गल-दोहा।

जो सुख नित्य प्रकाश विभु, नाम रूप आधार।
मति न लखै जिहिं मति लखै, सो मैं शुद्ध अपार॥१॥
अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेश।
विधि रवि चन्दा वरुण यम, शक्ति धनेश गनेश॥२॥
जा कृपालु सर्वज्ञ को, हिय धारत मुनि ध्यान।
ताको होत उपाधि तें, मोमैं मिथ्या भान॥३॥
ह्वै जिहिं जाने बिन जगत, मनहु जेवरी साँप।
नशै भुजग जग जिहिं लहे, सोऽहं आपै आप॥४॥
बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम।
सो मेरो है आतमा, काकूं करूँ प्रणाम॥५॥
भरयो वेद सिद्धान्त जल, जामैं अति गम्भोर।
अस विचार सागर कहूँ, पेखि मुदित ह्वै धीर॥६॥
सूत्र भाष्य वार्तिक प्रभृति, ग्रन्थ बहुत सुरवानि।
मैं तथापि भाषा करूँ, लखि मतिमन्द अजानि॥७॥

टीका--यद्यपि सूत्र, भाष्य, वार्तिक से प्रभृति कहिये आदि लेके सुरवानि कहिये संस्कृत ग्रन्थ बहुत हैं, तथापि संस्कृत ग्रन्थों से मंद बुद्धि पुरुषोंको भी बोध होवै नहीं, और भाषा ग्रन्थों से मन्द बुद्धि पुरुषों को भी बोध होवै है, यातें भाषा ग्रन्थ का आरम्भ निष्फल नहीं किन्तु संस्कृत ग्रन्थन के विचारने में जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है, उनके निमित्त ग्रन्थ का आरम्भ सफल है।

❋ दोहा ❋

कविजनकृत भाषा बहुत, ग्रन्थ जगत विख्यात।
बिन विचार सागर लखे, नहिं सन्देह नशात ॥ ८ ॥

यद्यपि भाषाग्रन्थ बहुत हैं, तथापि विचारसागर बिना और भाषाग्रन्थों से आत्मवस्तु में सन्देह दूर नहीं होता। इसमें यह हेतु है कि, कितने तो श्रवण करिके भाषाग्रन्थ रचे हैं, जैसे पञ्चभाषा हैं, तिनकी प्रक्रिया किसी अंश में तो शास्त्र के अनुसार है, और जो श्रवण किया अर्थ यथार्थ ग्रहण नहीं हुआ, उस अंशमें शास्त्र से विरुद्ध है याते श्रोता कृत ग्रन्थसे सन्देहरहित बोध नहीं होता और कोई भाषाग्रन्थ किंचित् शास्त्र पढ़कर रचे हैं जैसे--"आत्मबोध" है उनसे भी सन्देह रहित बोध होवै नहीं क्योंकि तिनमें वेदान्तकी प्रक्रिया सम्पूर्ण नहीं है और विचारसागर ग्रन्थ में सम्पूर्ण प्रक्रिया है, और वेदान्तशास्त्र के अनुसार है काहू स्थान में भी विरुद्ध नहीं है और आत्मज्ञान में

उपयोगी जो पदार्थ हैं तिनका निरूपण विस्तार से किया है और भाषा ग्रन्थों के समान यह ग्रन्थ नहीं है किन्तु सर्व भाषा ग्रन्थों में यह ग्रन्थ उत्तम है ।

अनुबन्ध सामान्य निरूपण-चौपाई ।

नहिं अनुबन्ध पिछानै जौलों । ह्वै न प्रवृत्तसुघरनर तौलौं ॥
जानि जिन्है यह सुनै प्रबन्धा । कहूँ व यातैं ते अनुबंधा ॥ ६ ॥

अधिकारी, सम्बन्ध, विषय, प्रयोजन का नाम अनुबन्ध है । अधिकारी आदि ग्रन्थ के अनुबन्ध जाने बिना सुघर कहिये विवेकी पुरुषों के ग्रन्थ में प्रवृत्ति होता नहीं यासे जिन अनुबन्धोंको जानिके प्रबन्ध कहिए ग्रन्थों को सुनै, तिन अनुबन्धों को व कहिये अब कहूं हूँ ॥ ६ ॥

❀ सोरठा ❀

अधिकारी सम्बन्ध, विषय प्रयोजन मेलि चव ।
कहत सुकवि अनुबन्ध, तिनमें अधिकारी सुनहु ॥ १० ॥

❀ दोहा ❀

मल विछेप जाके नहीं, किन्तु एक अज्ञान ।
ह्वै चवसाधन सहितनर, सो अधिकृत मतिमान ॥ ११ ॥

अन्तः करण में तीन दोष होते हैं-एक तो मल होता है, दूसरा विक्षेप होता है और तीसरा आवरण होता है । निष्काम कर्म से अन्तःकरण का मलदोष दूरि होता है, उपासना से विक्षेप दोष दूरि होता है, ज्ञान से आवरण दोष दूरि होता है, जिस पुरुष ने निष्काम कर्म और उपा-

सनाकरिके मल और विक्षेप दोष दूरि किये हैं और एक अज्ञान कहिये स्वरूप का आवरण जाके चित्त में होवै और चार साधन संयुक्त होवै सो पुरुष अधिकृत कहिये अधिकारी है ॥ १० ॥ ११ ॥

साधनचतुष्टयनामवर्णन-दोहा।

प्रथम विवेक विराग पुनि, शमादि षट्[1] सम्पत्ति।
कही चतुर्थ मुमुक्षुता, ये चव साधन सत्ति ॥१२॥

अथ विवेकलक्षण-दोहा।

अविनाशी आतम अचल, जग तातैं प्रतिकूल।
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधन को मूल ॥१३॥

आत्मा, अविनाशी कहिये नाशरहित है और अचल कहिये क्रिया रहित है और जगत् आत्मा ते प्रतिकूल कहिये विपरीत स्वभाव वाला है, विनाशी है, और चल है, इस ज्ञान का नाम विवेकहै, यह विवेक ही सर्व साधन का मूल है। काहे ते! प्रथम विवेक होवै तो वैराग्य से आदि लेके उत्तर साधन होवै हैं और विवेक नहीं होवै तो उत्तर साधन होवै नहीं, यातें वैराग्य शमादि षट् सम्पत्ति, मुमुक्षुता, इनका विवेक हेतु है ॥ १२ ॥ १३ ॥

वैराग्य लक्षण-दोहा।

ब्रह्मलोक लौं भोग जो, चहै सबन को त्याग।
वेद अर्थ ज्ञाता मुनी, कहत ताहि वैराग ॥१४॥

१ इस जगे षट् शमादि सम्पत्ति यह पाठ उत्तम है।

शमादि षट् नाम-दोहा ।

शम दम श्रद्धा तीसरो, समाधान उपराम ।
छठी तितिक्षा जानिये, भिन्न भिन्न यह नाम ॥१५॥

शम दम लक्षण-दोहा ।

मन विषयनते रोकनों, शम तिहिं कहत सुधीर ।
इन्द्रियगण को रोकनों, दम भाषत बुधवीर ॥ १६॥

श्रद्धा समाधान लक्षण-दोहा ।

सत्य वेद गुरु वाक्य है, श्रद्धा अस विश्वास ।
समाधान ताकूं कहत, मन विक्षेप को नाश ॥१७॥

उपराम लक्षण-चौपाई ।

साधन सहित कर्म सब त्यागे ।
लखि विष सम विषयन ते भागे ॥
दृग नारी लखि है जिय ग्लाना ।
यह लक्षण उप राम बखाना ॥ १८ ॥

तितिक्षालक्षण-दोहा ।

आतप शीत क्षुधा तृषा, इनको सहन स्वभाव ।
ताहि तितिक्षा कहत हैं, कोविद मुनिवर राव ॥१९॥
षट् शमादि सम्पत्ति को, भाषत साधन एक ।
इम नव नहिं साधन भनै, किन्तु चारि सविवेक ॥२०॥

शमादि षट्क जो सम्पत्ति कहिये प्राप्ति सो एक साधन करिके गिनिये हैं, यातें नव साधन नहीं किन्तु सविवेक कहिये विवेकी जन चार साधन कहे हैं ॥ २० ॥

मुमुक्षता लक्षण-दोहा।

ब्रह्मप्राप्ति अरु बन्ध की, हानि मोक्ष को रूप।
ताकी चाह मुमुक्षुता, भाषत मुनिवर भूप ॥ २१ ॥

ब्रह्मकी प्राप्ति और अनर्थकी निवृत्ति, मोक्ष का स्वरूप है। ताकी इच्छा का नाम मुमुक्षुता है। मुमुक्षता का मुमुक्षुत्व पर्यायशब्द है ॥ २१ ॥

❋ दोहा ❋

ये चव साधन ज्ञान के, श्रवणादिक त्रय मेलि।
तत्पद त्वंपद अर्थ को, शोधन अष्टम मेलि ॥ २२ ॥

विवेकादिक चार, श्रवण, मनन, निदिध्या सन ये तीन तत्पद के अर्थ का और त्वंपद के अर्थको शोधन ये आठ ज्ञान के साधन हैं ॥ २२ ॥

❋ दोहा ❋

अन्तरङ्ग ये आठ हैं, यज्ञादिक बहिरङ्ग।
अन्तरङ्ग धार तजे, बहिरङ्गन को सङ्ग ॥ २३ ॥

पूर्व दोहे में कहे विवेकादिक आठ अन्तरङ्ग साधन कहातेहैं और यज्ञादिक कर्म बहिरङ्ग साधनकहातेहैं। उनमें बहिरङ्गोंको जिज्ञासु त्यागे और अंतरङ्गोंको धारे, जिनका श्रवण में अथवा ज्ञान में प्रत्यक्ष फल होवे सो अन्तरङ्ग साधन कहिये है, विवेकादिक चारिका श्रवण में उपयोग है। काहेतें ? विवेकादिक बिना बहिर्मुख को श्रवण बनै नहीं। तैसे श्रवण, मनन, निदिध्यासन का ज्ञानमें उपयोग

है । श्रवणादिक विना ज्ञान होना नहीं तैसे तत्पद का अर्थ और त्वपद का अर्थ जाने बिना भी अभेद ज्ञान होता नहीं, इसी रीति से विवेकादिक चार साधनों का श्रवणमें उपयोग है । और श्रवणादिक चारि साधनों का ज्ञान में उपयोग है । यातें आठ अन्तरङ्ग साधन हैं ।

जिसका ज्ञानमें अथवा श्रवणमें प्रत्यक्षफल नहीं होता किन्तु अन्तःकरण की शुद्धि जिसका फल होवे सो ज्ञान का बहिरङ्गसाधन कहाता है, ऐसे यज्ञादिक कर्म हैं यद्यपि यज्ञादिक कर्म संसार के साधन हैं, तिनते अन्तःकरणकी शुद्धि भी कहना सम्भव नहीं । तथापि सकाम पुरुषको संसार के हेतु हैं और निष्कामको अन्तःकरण की शुद्धि के हेतु हैं इस रीति से निष्काम पुरुष के अन्तःकरणकी शुद्धि द्वारा ज्ञानके हेतुहैं, यातें बहिरङ्ग साधन कहिये हैं और विवेकादिक अन्तरङ्गसाधन कहिये हैं । बहिरङ्गनाम दूरिका है और अन्तरङ्ग नाम समीप का है । यज्ञादिक कर्म और उनके साधन स्त्री धन पुत्रादिकों को त्यागै सो ज्ञान का अधिकारी है, ज्ञान के अधिकारी में यज्ञादिक सम्भवै नहीं, यातें दूरि हैं ।

विवेकादि ज्ञान के अधिकारी में सम्भवै हैं, यातें समीप हैं । उनमें भी इतना भेद है । विवेकादिकन का श्रवण में उपयोग है और श्रवणादिकों का ज्ञान में उपयोग है तातें विवेकादिकों की अपेक्षासे श्रवणादिक अन्तरङ्गहैं, तिनकी

अपेक्षा ते विवेकादिक बहिरंग हैं, यद्यपि विवेकादिक भी ज्ञानके अन्तरंगसाधनही सर्वग्रन्थोंमें कहे हैं बहिरंग नहीं कहे। तथापि विवेकादिकों का ज्ञान के साधन श्रवण में प्रत्यक्ष रूल है। और श्रवणादिकों के सदृश विवेकादिक जिज्ञासु को उपादेय हैं यज्ञादिकों के समान जिज्ञासु को हेय नहीं, याते अन्तरंग कहेहैं। और यज्ञादिकनकी अपेक्षाते भी अन्तरंगहैं, यातें भी अन्तरंग साधनों में कहेहैं।

और विचार से देखिये तो ज्ञान के मुख्य अन्तरंग साधन (तत्त्वमसि) आदि महावाक्यहैं, श्रवणादिक भी नहीं काहेते युक्ति से वेदान्त वाक्यों का तात्पर्य से निश्चय श्रवण कहिये हैं जीवब्रह्म के अभेद की साधक और भेद की बाधक युक्तियां से अद्वितीय ब्रह्म का चिन्तवन मनन कहिये है, अनात्माकार वृत्ति का व्यवधानरहित ब्रह्मकार वृत्ति की स्थिति, निदिध्यासन कहिये है। निदिध्यासनकी परिपाक अवस्था को ही समाधि कहे हैं यातें समाधि का भी निदिध्यासन में अन्तर्भाव है पृथक् साधन नहीं है ये श्रवण मनन निदिध्यासन ज्ञान के साक्षात् साधन नहीं किन्तु बुद्धि के दोष जो असम्भावना और विपरीत भावना ताके नाशक हैं। संशय को असम्भावना कहते हैं विपर्यय को विपरीत भावना कहे हैं।

श्रवण से प्रमाण का सन्देह दूरि होता है, और मनन से प्रमेय का सन्देह दूरि होता है। वेदान्तवाक्य अद्वितीय

ब्रह्मके प्रतिपादक हैं, अथवा अन्य अर्थ के प्रतिपादक हैं ऐसा प्रमाणमें सन्देह होवे सो श्रवण से दूरि होताहै और जीव ब्रह्म का अभेद सत्य है, अथवा भेद सत्य है ? ऐसे प्रमेय में सन्देह होवे सो मनन से दूर होवे है। देहादिक सत्य हैं और जीवब्रह्म का भेद सत्य है, ऐसे ज्ञान को विपरीत भावना कहे हैं उसीको विपर्यय कहे हैं, उसको निदिध्यासन दूरि करै है। इस रीति से श्रवणादिकतीनों असम्भावना और विपरीत भावना के नाशक हैं। असम्भावना और विपरीत भावना ज्ञानके प्रतिबन्धकहै, यातें ज्ञान का प्रतिबन्धक ताके नाश द्वारा श्रवणादिक ज्ञान के हेतु कहिये हैं, साक्षात् हेतु नहीं।

ज्ञानके साक्षात्साधन श्रोतसम्बन्धि वेदान्त वाक्यहैं सो वेदांतवाक्य दो प्रकारके हैं–एक अवान्तर वाक्य है, एक महावाक्य है। परमात्मा के अथवा जीव के स्वरूप का बोधक जो वाक्य सो अवान्तर वाक्य कहिये जीव परमात्मा की एकताबोधक वाक्य महावाक्य कहिये है। अवान्तरवाक्य से परोक्षज्ञान होताहै, महावाक्य से अपरोक्षज्ञान होता है "ब्रह्म है" इस ज्ञानकूँ परोक्षज्ञान कहे हैं "ब्रह्म मैं हूँ" इस ज्ञानकूँ अपरोक्षज्ञान कहे हैं "त्वं ब्रह्म" ऐसा आचार्य ने उच्चारण किया जो वाक्य तिसका श्रोताके कर्णसे सम्बन्ध होतेही "मैं ब्रह्म हूँ"ऐसा अपरोक्षज्ञानश्रोताकूं होवेहै और श्रोताके कर्ण से वाक्य

का सम्बन्धहुए बिना ज्ञान होवे नहीं। याते श्रोतसम्बन्धी वाक्य ही ज्ञानका हेतुहै। श्रोतसम्बन्धी अवान्तर वाक्य परोक्षज्ञान का हेतु है। और श्रोतसम्बन्धी महावाक्य अपरोक्षज्ञान का हेतु है। महावाक्य से सर्वकूँ अपरोक्ष ही ज्ञान होवे। परोक्ष नहीं होता।

और एकदेशी का यह मत है-श्रवण, मनन, निदिध्यासन सहित वाक्य से अपरोक्ष ज्ञान होवे है। केवल वाक्यतें परोक्षज्ञान होवे है, अपरोक्ष नहीं। जो केवल वाक्यते ही अपरोक्षज्ञान होवे तो श्रवण मनन निदिध्यासन व्यर्थ होवेंगे। यद्यपि सिद्धांतमत में केवल वाक्यते अपरोक्षज्ञान होवे है और श्रवणादिकों से असम्भावना, विपरीतभावना का नाश होवे है, यातें श्रवणादिक व्यर्थ नहीं, तथापि जिस वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवे ताके विषे असंभावना विपरीतभावना किसीकोभी होवेनही। याते केवल वाक्यतें अपरोक्ष ज्ञानवादी के सिद्धांत में-तत्त्वमसि, आदिक वाक्योंसे ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होने से पीछे असंभावना, विपरीतभावना संभवेनहीं। यातें श्रवणादिक साधन व्यर्थ होवेंगे। और केवल वाक्यते परोक्ष ज्ञान होवे है, श्रवण मनन निदिध्यासन कियेते अपरोक्षज्ञान होवेहै या मतमें श्रवणादिक व्यर्थ नहीं यह बहुत ग्रन्थकारोंका मतहै, तथापि यहमत समीचीन नहीं। काहेतें ?

शब्दका यह स्वभावहै-जो वस्तुव्यवहित होवे ताको शब्द से परोक्ष ही ज्ञान होवेहै किसी प्रकारते व्यवहित वस्तु का शब्द से अपरोक्षज्ञान होवे नही।जैसे-व्यवहित स्वर्ग का और इन्द्रादिक देवोंका शास्त्ररूपी शब्दतेपरोक्ष ही ज्ञान होवे है और जो वस्तु अव्यवहित होवे ताको शब्द से अपरोक्षज्ञान और परोक्षज्ञान दोनों होतेहैंजहाँ अव्यवहितवस्तुकूँ शब्द अस्तिरूपते बोधन करै तहाँ अव्यवहित का भी परोक्षज्ञान होवे है,जैसे-"दशमपुरुष है" इस रीति से अस्तिरूपते बोधन किया जो अव्यवहित दशम ताका शब्द से परोक्षज्ञान नहीं हुआहैऔर जहाँ अव्यवहितवस्तुकूँ "यह है"इस रीतिसे शब्दबोधन करै तहाँ अव्यवहित का शब्द से अपरोक्षज्ञानही होवेहै परोक्ष नहीं, जैसे-"दशवां, तू है" इस रीतिसे शब्दने बोधन किया जो दशवां, ताका अपरोक्ष ज्ञानही हुआहै तैसे ब्रह्म सर्व का आत्मा होनेते अत्यन्त अव्यवहित है, ताकूं अवान्तरवाक्य अस्तिरूपतें बोधन करै है याते अव्यवहितब्रह्मका भी अवांतरवाक्यतेपरोक्षज्ञान होवेहै। और "दशवाँ तू है"इस वाक्यकी सदृश श्रोताकाआत्मरूप करिके ब्रह्मकूं महावाक्य बोधन करै है, यातें महावाक्यते अव्यवहितब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवे नहीं किन्तु अपरोक्षज्ञान ही होवे है।

कथन

और जो कह्या–"जो वस्तु का अपरोक्ष ज्ञानहोवे ताके विषे असंभावना विपरीतभावना होवे नहीं। यातें श्रवणादिक विफल होवेंगे" सो शङ्का बनै नहीं काहेतें ? जैसे राजाकूं मर्छु का नेत्रसे अपरोक्षज्ञान हुवेते भी विपरीतभावना दूर हुईनहीं, तैसे महावाक्यते ब्रह्म का अपरोक्षज्ञान होवेहै, परन्तु जाकी बुद्धिमें असंभावना विपरीतभावना दोष होवैं ताका दोषरूप कलङ्कितसहित ज्ञानफलका हेतु नहीं, दोषकी निवृत्तिवास्ते श्रवणादिक करै जाकी बुद्धि में दोष नहीं सो न करै। इस रीतिसेज्ञानके साधन महावाक्यहैं श्रवणादिकनहीं परन्तुज्ञानका प्रतिबंधक जो दोषहै ताकेनाशकहैंयातैं श्रवणादिक ज्ञान के हेतु कहिये हैं, श्रवणादिकोंके हेतु विवेकादिक हैं। यातैं विवेकादिक ज्ञान के साधन कहियेहैं विवेकादिक चारिसाधन संयुक्त जो पुरुष है सो अधिकारी है ॥ २३ ॥

सम्बन्ध वर्णन–दोहा

प्रतिपादक प्रतिपाद्यता, ग्रन्थ ब्रह्म सम्बन्ध।
प्राप्य प्रापकता कहत, फल अधिकृतको फन्द॥२४॥

ग्रन्थका और विषय का प्रतिपाद्यप्रतिपादक अभाव सम्बन्ध है, ग्रंथ प्रतिपादक है, और विषय प्रतिपाद्य है. जो प्रतिपादन करने वाला होवे सो प्रतिपादक कहिये है जो प्रतिपादन करनेकूं योग्य होवे सो प्रतिपाद्य कहिये है। अधिकारी का और फल का प्राप्यप्रापकभाव सम्बंध

है, फल प्राप्य है और अधिकारी प्रापक है, जो वस्तु प्राप्त होवै सो प्राप्य कहिये है, जाकूं प्राप्त होवै सो प्रापक कहिये है, अधिकारी का और विचार का कर्तृ कर्तव्य-भाव सम्बन्ध है अधिकारी कर्त्ता है और विचार कर्त्तव्य है, जो करने वाला होवै सो कर्त्ता कहिये है और करने योग्य होवै सो कर्तव्य कहिये है ग्रन्थ का और ज्ञानका जन्यजनकभावसम्बधहै, विचारद्वारा ग्रन्थ ज्ञान का जनक है, और ज्ञान जन्य है जो उत्पत्ति करने वाला होवै सो जनक कहिये है, जाकी उत्पत्ति होवै सो जन्य कहिये है इससे आदि लेके और सम्बन्ध जानि लेने ॥ २४ ॥

विषय वर्णन–दोहा।

जीव ब्रह्म की एकता, कहत विषय जन बुद्धि।
तिनको जे अन्तर लहैं, ते मति मन्द अबुद्धि॥२५॥

जीव ब्रह्मकी एकता इस ग्रन्थ का विषय है जो प्रति-पादन करिये, सो विषय कहिये है, या ग्रन्थ विषे जीवब्रह्म-की एकता प्रतिपादन करियेहै, यातें सो एकता ग्रन्थका विषय है सो एकता सर्व वेदके वचन प्रतिपादन करै हैं, याते जीव ब्रह्म का भेद कहे हैं, ते पुरुष शठ हैं और वेद के विरोधी हैं ॥ २५ ॥

प्रयोजनवर्णन–दोहा।

परमानन्द स्वरूप की, प्राप्ति प्रयोजन जानि।
जगत समूल अनर्थ पुनि, है ताकी अति हानि॥२६॥

प्रपञ्च का कारण जो अज्ञान और प्रपञ्च, जन्ममरणरूपी दुःखका हेतुहै यातें अनर्थ कहिये है, ता अनर्थ की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति मोक्ष कहियेहै सो ग्रन्थ का परम प्रयोजन है और अवांतर प्रयोजन ज्ञानहै, जा विषे पुरुष को अभिलाषा होवै सो परम प्रयोजन कहिये है, और ताकूं पुरुषार्थ भी कहिये है सो अभिलाषा दुःखकी निवृत्तिविषे और सुखकी प्राप्तिविषे सर्व पुरुषन की होवै है, सोई मोक्ष का स्वरूप है यातें परम प्रयोजन मोक्ष है और ज्ञान नहीं है, काहे तें सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्ति का साधन तो ज्ञान है, और सुखकी प्राप्ति वा दुःख की निवृत्तिरूप ज्ञान नहीं, यातें अवांतर प्रयोजन ज्ञान है, जो वस्तु द्वारा परम प्रयोजन की प्राप्ति होवै सो अवांतर प्रयोजन कहिये है, ऐसा ज्ञान है, काहे तें, ग्रन्थ करिके ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप परम प्रयोजन की प्राप्ति होवे है, यातें ज्ञान अवांतर प्रयोजन है ॥ २६ ॥

शंकापूर्वक उत्तर का कवित्त।

जीव को स्वरूप अति आनन्द कहत वेद,
ताकूं सुख प्राप्ति को असम्भव बखानिये।
आगे जो अप्राप्तवस्तु ताकी प्राप्ति सम्भवत,
नित्य प्राप्त वस्तु की तो प्राप्ति किमि मानिये॥
ऐसी शङ्का लेश आनि कीजै न विश्वास हानि,
गुरु के प्रसाद तें कुतर्क भले भानिये।

कर को कङ्कन खोयो ऐसो भ्रम भयो जिहिं,
ज्ञानतें मिलत इमि प्राप्त प्राप्ति जानिये ॥२७॥

पूर्व कह्या था-"'अनर्थकी निवृत्ति, और परमानन्द प्राप्ति ग्रन्थ का प्रयोजन है' सो बनें नहीं काहेतें ! सर्व वेद जीवकूं परमानन्द स्वरूप वर्णन करें हैं और तुम अङ्गीकार भी करो हो और जो वस्तु अप्राप्त होवे ताकी प्राप्ति सम्भवे है। सदा प्राप्तवस्तु की प्राप्ति सर्वथा बनें नहीं यातें सदा परमानन्द स्वरूप आत्मा को परमानन्द की प्राप्ति कहना सर्व प्रकार करिकै असम्भव है, ऐसी शङ्का करै है।

ता शङ्काको सुनियें ग्रन्थ के प्रयोजन में विश्वास दूरि नहीं करना किन्तु आत्मविद्या के उपदेश करने वाले जो गुरुहैं, तिनकी कृपातें शङ्कारूपी जो कुतर्क है सो दृष्टान्त से, दूरि करि देना सो दृष्टान्त कहिये है जैसे--काहू के हाथ में कङ्कन होवे, ताकूँ ऐसा भ्रम होजावे कि-" मेरे हाथ का कङ्कन खोय गया' तब वाकूं किसी के कहे से कङ्कन का ऐसा ज्ञान होजावे जो-"मेरा कङ्कन हाथ में है' तब वह ऐसे कहै है--मेरा 'कंगन मिल गया है।' इस रीति से प्राप्त जो कंगन है, ताकी भी प्राप्ति कहिये हैं। तैसे परमानन्दस्वरूप आत्माविषे अविद्या के बल से ऐसी भ्रान्ति होवे है-'आत्मा परमानन्द स्वरूप नहीं है, किन्तु

परमानन्दस्वरूप ब्रह्म है। ता ब्रह्म का और मेरा वियोग' होय गया है, उपासना करिके ता ब्रह्मकूँ मैं प्राप्त होऊँगा इस रीति की भ्रान्ति बहुत मूर्ख प्राणियों को होइ रही है। यद्यपि बहुत पण्डित भी ऐसे कहै हैं, तथापि वे मूर्ख ही हैं, काहेतैं? जो जीवब्रह्म का वियोग अंगीकार करे हैं वे मूर्ख कहियें हैं तिन पुरुषनकूं उत्तम संस्कार से जो कदाचित् ब्रह्मज्ञानी आचार्य से वेदान्त ग्रन्थके श्रवणकी प्राप्ति होय जावे, तब सुने अर्थकूँ निश्चय करिके कहै हैं-"परमानन्द हमारे को ग्रन्थ और आचार्य की कृपा से प्राप्त भया है।' यह उनका कहने का अभिप्राय है। आत्मा तो परमआनन्दरूप आगे भी था, परन्तु 'मेरी आत्मा परम आनन्द स्वरूप है' इस रीति से भान नहीं होवै था यातैं अप्राप्ति की न्याईं था आचार्य द्वारा ग्रन्थ श्रवण से पर, मानन्द का बुद्धिविषे भान होवै है यातैं परमानन्दकी प्राप्त कहै हैं। इस रीति से प्राप्त की भी प्राप्ति बननेते परमानन्द की प्राप्तिरूप ग्रन्थ का प्रयोजन सम्भवै है जैसे प्राप्त की प्राप्ति ग्रन्थ का प्रयोजनहै तैसे नित्य निवृत्त की निवृत्ति भी प्रयोजन सम्भवैहै। दृष्टान्त जेवरीविषे सर्प नित्यनिवृत्त है और जेवरी के ज्ञान से निवृत्त होवै है, तैसे आत्मा विषे संसार नित्य निवृत्त है ताकी निवृत्ति आत्मा के ज्ञान से होवै है यातैं नित्य निवृत्त की निवृत्ति और नित्य प्राप्त की प्राप्ति ग्रन्थ का प्रयोजन है ॥ २७ ॥

"कारण सहित जगत् की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति ग्रन्थ का प्रयोजन है' यह पूर्व कहा सो सम्भवे नहीं काहेतें ? निवृत्ति नाम ध्वंस का है, और नाश दोनों पर्याय शब्द हैं, सो नाश अभावरूप है यातें मोक्ष विषे भावरूपता और अभावरूपता दोनों प्रतीत होवेहै अनर्थ की निवृत्ति कहने से अभावरूपता प्रतीत होवे है और परमानन्दकी प्राप्ति कहनेसे भावरूपता प्रतीत होवेहै। सो दोनों एक पदार्थ विषे बनै नहीं। काहेतें ? भावरूपता और अभावरूपता दोनों आपसमें विरोधी हैं। जो विरोधी धर्म होवै, सो एक काल में एक वस्तु विषे रहे नहीं यातें ग्रन्थ का प्रयोजन सम्भवै नहीं ऐसी कोई शङ्का करे हैं।

ता शङ्का के उत्तर का दोहा।

अधिष्ठान ते भिन्न नहिं, जगत निवृत्ति बखान।
सर्प निवृत्ती रज्जु जिमि, भये रज्जु को ज्ञान ॥२८॥

कारण सहित जगतकी निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूप है, यातें पृथक् नहीं। जैसे सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठान रज्जुरूप है " सारे कल्पित वस्तु की निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवे है, यातें पृथक् नहीं, ' यह भाष्यकार का सिद्धान्त है, यातें इस स्थानविषे अनर्थकी निवृत्ति ब्रह्मरूप है काहेंते ? जो सर्व अनर्थ का अधिष्ठान ब्रह्म है सो ब्रह्मभावरूप है, यातें अनर्थ की निवृत्ति भावरूप होनेतें ग्रन्थ का प्रयोजन बनै है, यह वार्त्ता सिद्ध भई ॥ २८ ॥

चार अनुबन्ध

दोहा-जो जन प्रथमतरङ्ग यह, पढ़े ताहि तत्काल ।
करहु मुक्त गुरुमूर्ति ह्वै, दादू दीन दयाल ॥२६॥

इति अनुबन्धसामान्यनिरूपण नाम प्रथमस्तरङ्गः ।



द्वितीयस्तरङ्गः २



अनुबन्धविशेषनिरूपण-दोहा ।

याके प्रथमतरङ्ग में, किया अनुबन्ध विचार ।
कहूँ व द्वितीयतरङ्ग में, तिनको ही विस्तार ॥ १ ॥

चार साधनयुक्त अधिकारी कह्या । तिन चार साधनमें मुमुक्षुता गिनी है । मोक्ष की इच्छाका नाम मुमुक्षुता है । कारण सहित जगत्की निवृत्ति और ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है । ताके विषे कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्ष का अंश, ताकूं कोऊ चाहै नहीं यह वार्त्ता ॥१॥

पूर्वपक्षी प्रतिपादन करे है—

अधिकारीखण्डन-दोहा ।

मूलसहित जगध्वंस की, कोउ करत नहिं आश ।
किन्तु विवेकी चहत है, त्रिविध दुःख को नाश ॥२॥

मूल अविद्यासहित जो जगत्का ध्वंस कहिये निवृत्ति ताकी आश कहिये इच्छा, कोऊ पुरुष करै नहीं है किन्तु कहिये कहा करै है ? तीनि प्रकारके जो दुःखहैं, तिनका नाश विवेकी पुरुष चाहै है । याका यह अभिप्राय है-

दुःख तीन प्रकारके हैं। एक तो अध्यात्म दुःख है; दूसरा अधिभूत दुःख है और तीसरा अधिदेव दुःख है, रोग क्षुधादिकोंसे जो दुःख होवै सो अध्यात्मदुःख कहियेहै। चोर व्याघ्र सर्पादिकों से जो दुःख होवै सो अधिभूत दुःख कहिये है। राक्षस प्रेत ग्रहादिक और शीत वात आतपते जो दुःख हो सो अधिदैव दुःख कहिये है। इस रीति से तीन भाँति के जो दुःख हैं तिनके नाशकी सर्व पुरुषोंकूं इच्छाहै। दुःखसे भिन्न जो पदार्थ हैं तिनके नाशकी विवेकी पुरुष इच्छा करे नहीं यातें अज्ञान सहित सकल जगत् की निवृत्ति काहूकूं इच्छा बनै नहीं और जो सिद्धान्ती ऐसे कहै–" यद्यपि सकल पुरुष दुःख निवृत्ति की इच्छा करे हैं, तथापि अज्ञान सहित सर्व जगत् की निवृत्ति बिना दुखों की निवृत्ति होवै नहीं यातें दुःख निवृत्ति के निमित्त अज्ञान सहित जगतकी निवृत्ति कूं भी चाहे है" सो बनै नहीं काहे तें–

जो आयुर्वेद में औषध कहे हैं, तिन तें रोगजन्य दुःख की निवृत्ति होवे है, और भोजन से क्षुधाजन्य दुःख की निवृत्ति होवे है इस रीति से अपने अपने उपायनते सर्व दुःखों की निवृत्ति होवै है यातें अज्ञान सहित जगत की निवृत्ति बिना दुखों की निवृत्ति बनै है, दुःखोंकी निवृत्ति के निमित्त अज्ञान सहित जगत की निवृत्ति की चाहना बनै नहीं "कारण सहित जगत की निवृत्ति और ब्रह्म

की प्राप्ति मोक्ष कहिये है' ताके विषे कारण सहित जगत्‌की निवृत्तिरूप मोक्षके अंशकी भी इच्छा काहू कूँ बनै नहीं यह वार्त्ता प्रथम दोहा विषे कही ॥ २ ॥

ब्रह्म प्राप्तिरूप मोक्ष के द्वितीय अंश की भी इच्छा काहू कूँ बनै नहीं यह वार्ता—

यह पूर्वपक्षी कहै है–दोहा।

किय अनुभव जा वस्तु को, ताकी इच्छा होइ।
ब्रह्म नहीं अनुभूत इम, चहै न ताकूँ कोइ ॥३॥

जा वस्तु का अनुभव कहिये ज्ञान होय ता वस्तु की प्राप्ति की इच्छा होवै है, जो वस्तु का ज्ञान होवै नहीं ताकी प्राप्ति की इच्छा भी होवै नहीं, जैसे अन्य देशके अनन्तर पदार्थ अज्ञात है तिनकी प्राप्तिकी इच्छा काहू पुरुष कूँ होवै नहीं और अधिकारी पुरुषकूँ ब्रह्मका ज्ञान है नहीं और जाकूँ ब्रह्म का ज्ञान है सो अधिकारी नहीं किन्तु मुक्त है ताकूँ ब्रह्म प्राप्ति की इच्छा बनै नहीं. यातैं वेदान्त श्रवणतैं पूर्व अज्ञात जो ब्रह्म, ताकी प्राप्ति की इच्छा बनै नहीं, इस रीति से अज्ञान सहित–जगत् की निवृत्ति और ब्रह्म की प्राप्तिरूप जो मोक्ष ताकी इच्छा काहू कूँ बनै नहीं यातैं मुमुक्षु कोऊ है नहीं ॥ ३ ॥

अन्यरीति से अधिकारी का अभाव–
पूर्वपक्षी प्रतिपादन करै है–दोहा।

चहत विषय सुख सकल जन, नहीं मोक्षको पन्थ।
अधिकारी यातैं नहीं, पढ़ै सुनै जो ग्रन्थ ॥ ४ ॥

सर्वपुरुष विषयसुखकूँ चाहे हैं, और जो कोइ सकल विषयनका त्याग करिके तपविषे आरूढ़ है सो भी परलोकके उत्तम भोगनकी इच्छा करिके नाना क्लेश सहारै यातें इसलोक का अथवा परलोक का विषय सुख सर्व चाहे हैं सो विषय सुख मोक्षविषे है नहीं यातें मोक्ष का पथ कहिये साधन, ताकूँ कोई पुरुष चाहे नहीं इस रीतिसें मोक्षकी इच्छारूप मुमुक्षुता बनै नहीं और सकल पुरुषनकूँ विषय सुखकी इच्छा होवै है यातें वैराग्य, शम, दम, उपरति भी काहूविषे बनै नहीं यातें चतुष्टयसाधन सहित अधिकारी का अभाव होनेतें ग्रन्थ का आरम्भ निष्फल है ॥ ४ ॥

विषयखण्डन पूर्वपक्ष-दोहा।

जीव ब्रह्मकी एकता, कह्यो विषय सो कूर।
क्लेशरहित विभु ब्रह्म इक, जीव क्लेशकोमूर ॥ ५ ॥

पूर्व कह्या जो "जीवब्रह्मकी एकता, या ग्रन्थका विषय है' सो सम्भव नहीं काहेतें ? ब्रह्म तो अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन पञ्चक्लेशों ते रहित है और विभु कहिये व्यापक है, एक है, सजातीय भेद रहित है, काहेते ? ब्रह्म के सजातीय और ब्रह्म है नहीं और जीव विषे सर्वक्लेशहैं और परिच्छिन्न हैं, और जीव नाना हैं काहेते जितने शरीर हैं, उतने जीव हैं सो सर्व शरीर विषे जीव एक होवै तो एक शरीर में सुख अथवा दुःख

होनेते सर्व शरीरविषे सुख और दुःख होना चाहिए।

और जो वेदान्ती कहै हैं—"सुखसे आदि लेके अन्तःकरणके धर्म हैं सो अन्तःकरण नाना हैं, यातें एकके सुखी दुःखी होनेते सर्व सुखी दुःखी नहीं होवे हैं, और साक्षी सुख दुखते रहितहै एक है और सर्व क्लेश ते रहित है और ताकी ब्रह्म के साथ एकता बनै है"—

सो वार्त्ता बनै नहीं, काहेते जो कर्त्ताभोक्ता जीव है तिसते भिन्नसाक्षी बन्ध्यापुत्रके समानहै, और जो साक्षी अङ्गीकार भी करो, सो भी एक बनै नहीं नाना साक्षी मानने होवेंगे काहेते? यह वेदान्त का सिद्धान्तहै-अन्तःकरण और सुख दुःखसे आदि लेके अन्तःकरण के धर्म इन्द्रिय और अन्तःकरणके विषय नहीं, किन्तु साक्षी के विषय हैं. काहेते, इन्द्रिय तो पंचीकृत भूतोंकूं विषय करै है यह इतना भेद है-नेत्र इन्द्रिय तो रूपवान जो वस्तुहै, ताके रूपकूं और रूपके आश्रयकूं दोनवाकूं विषय करै है, जैसे नील पीतादिक घटका रूप और तिस रूपकूं आश्रय घटहै, नेत्र इन्द्रिय विषय करे है, और त्वचा इन्द्रिय भी स्पर्शकूं और ताके आश्रयकूं, दोनुवाकूं विषय करे है और रसना, श्रवण, घ्राण, ये तीनि तौ रस, गन्ध शब्द मात्रको विषय करे हैं तिनके आश्रयकूं विषय करैं नहीं, याते इन तीनों ही से तो अन्तःकरण का ज्ञान बनै नहीं और नेत्र से तथा त्वचा से अन्तः

करण का ज्ञान बनै नहीं, काहेते, पंचीकृत भूत अथवा पंचीकृत भूतन का कार्य जो रूपवान अथवा स्पर्शवान् होवे सो नेत्र और त्वचा का विषय होवै है अन्तःकरण अपंचीकृत भूतन का कार्य है याते नेत्र और त्वचा का भी विषय नहीं इसी कारण ते अपंची कृत भूतन का कार्य नेत्र इन्द्रिय भी नेत्र का विषय नहीं है और बाह्य वस्तु इन्द्रिय का विषय होवे है और अन्तःकरण इन्द्रिय की अपेक्षाते अन्तर है, याते इन्द्रियन का विषय नहीं।

और अन्तःकरण की वृत्ति का भी अन्तःकरण विषय नहीं काहेते ? अन्तःकरण वृत्ति का आश्रय है याते अन्तःकरण अपनी वृत्तिका विषय बनै नहीं जैसे अग्नि दाह का आश्रय है, सो दाह का विषय नहीं होवे है किन्तु अग्नि से भिन्न जो काष्ठ से आदि लेकर वस्तु हैं सो दाह का विषय होवे हैं, तैसे अन्तःकरण से भिन्न जो वस्तु हैं, सो अन्तःकरण जन्य वृत्ति के विषय हैं, और अन्तःकरण नहीं।

तैसे अन्तःकरण के धर्म भी अन्तःकरण की वृत्ति के विषय नहीं। काहेते, अन्तःकरणकूँ विषय करने वास्ते जो अन्तःकरण की वृत्ति होवे तो अन्तःकरण कूँ धर्म जो सुखादिक हैं तिनकूँ भी विषय करे, सो अन्तःकरण के विषय करने वाली वृत्ति तो अन्तःकरण के सन्मुख होवे नहीं याते अन्तःकरण के धर्म भी अन्तःकरण की

वृत्ति के विषय नहीं और यह नियमहै, जो वृत्तिके आश्रय से किंचित् दूरि वस्तु होवे; सो वृत्ति का विषय होवे है जो वस्तु वृत्ति के आश्रय से अत्यन्त समीप होवे, सो वृत्ति का विषय होवे नही जैसे नेत्र की वृत्ति का आश्रय जो नेत्र ताके अत्यन्त समीप अञ्जन, नेत्र की वृत्ति का विषय नहीं, तैसे अन्तःकरण की वृत्ति का आश्रय जो अन्तःकरण ताके अत्यन्त समीप जो सुख से आदि लेके धर्म सो अन्तःकरण की वृत्ति के विषय बनै नहीं, इस रीति से धर्म सहित अन्तःकरण का इन्द्रिय ते अथवा अपनेते भान बनै नहीं किन्तु साक्षी के विषय हैं ।

सो साक्षी एक अङ्गीकार करें तो जैसे एक अन्तःकरण के सुख दुःख का साक्षी से भान होवे है तैसे सर्व के सुख दुःख का भान होना चाहिये याते साक्षी नाना हैं जब नाना साक्षी अङ्गीकार करिये, तब दोष नहीं काहेते जो साक्षी की उपाधि अन्तःकरण है तो साक्षी से अपनी उपाधि के धर्म का भान होवे है, याते सर्व के सुख दुःख का भान होवे नहीं, इस रीति से नाना जो साक्षी, तिन्हकी एक ब्रह्मके साथ एकता बनै नहीं ॥५॥

प्रयोजनखण्डन पूर्वपक्ष-दोहा ।

बन्ध निवृत्ती ज्ञानते, बनै न बिन अध्यास ।
सामग्री ताकी नहीं, तजो ज्ञान की आस ॥ ६ ॥

"अहङ्कार से आदि लेके जो आत्मवस्तु हैं सो बन्ध कहिये हैं' सो बन्ध जो अध्यासरूप होवे तो ज्ञानते निवृत्त होवे, और अध्यासरूप नहीं होवे तो ज्ञानते निवृत्त होवे नहीं काहेते ? ज्ञान का यह स्वभाव है-जा वस्तु का ज्ञान होवे, ताके विषे अध्यास और अज्ञान, तिनकूं दूर करे है, जैसे जेवरी का ज्ञान, जेवरीविषे सर्प अध्यासकूँ और जेवरी के अज्ञानकूँ दूर करें है, भ्रान्ति ज्ञान का विषय जो मिथ्यावस्तु और भ्रान्ति ज्ञान, ताका नाम अध्यास है, जाके विषे जो वस्तु मिथ्या नहीं है, किन्तु सत्यहै ताकी ज्ञान से निवृत्ति होवे नहीं तैसे आत्मा-विषे अहङ्कारसे आदिलैके बन्ध जो अध्यास कहिये मिथ्या होवे तो ज्ञान से निवृत्ति होवे सो आत्मा विषे मिथ्या बंधकी सामग्रीहै नहीं और बंध प्रतीत होवेहै, याते बंध सत्य है ता सत्यबन्ध की ज्ञानसे निवृत्तिकी आशा निष्फल है ॥६॥

अध्याससामग्री निरूपण-दोहा।

सत्य वस्तु के ज्ञान ते, संस्कार इक जान।
त्रिविधदोष अज्ञान पुनि, सामग्री पहिचान ॥ ७ ॥

१-सत्यवस्तुके ज्ञान जन्य संस्कार और तीन प्रकार के दोष २-प्रमेयका दोष ३-प्रमाता का दोष ४-प्रमाण का दोष और ५-अधिष्ठानके विशेषरूप का अज्ञान, इतनी अध्यासकी सामग्री है। या बिना अध्यास होवे नहीं जैसे, सीपोंमें रूपेका और जेवरी में सर्प की अध्यास होवे है,

सो जिस पुरुष ने सत्यरूपा और सर्प देखा है ताकूँ होवे है, और जाकूँ सत्य रूपेका और सर्पका ज्ञान नहीं ताकूँ होवे नहीं याते सत्य वस्तुके ज्ञान के संस्कार अध्यास के हेतु हैं और सीपी में सर्प का, जेवरी में रूपेका अध्यास होवे नहीं, याते प्रमेयविषे सादृश्य दोष अध्यास का हेतु है। इस रीतिसे प्रमाताविषे लोभ भयसे आदि लेके और नेत्रादिक प्रमाणविषे पित्तकामला से आदि लेके जो दोष सो अध्यासके हेतुहैं। और सीपीका "इदम्" रूप करके सामान्य ज्ञान होवे और "यह सीपी है" ऐसा विशेष ज्ञान नहीं होवे, जब अध्यास होवै है "सीपी है" ऐसा विशेषरूपकरिके ज्ञान होवे, जब अध्यास होवै नहीं, और सामान्यरूपकरिके ज्ञान नहीं होवै, तो भी अध्यास होवै नहीं, याते अधिष्ठान का विशेष रूप करिके अज्ञान और सामान्यरूप करिके ज्ञान, अध्यास का हेतु है इतनी अध्यासकी सामग्री है इनमें कोई एक नहीं होवे तो भी अध्यास होवे नहीं जैसे-कुलाल चक्र, दण्ड, मृत्तिका, घटकी सामग्री है कोई एक नहीं होवे तो घट होवे नहीं तैसे अध्यास भी सारी सामग्री से होवे है।

तैसे बन्धके अध्यासमें एक भी कारण है नहीं, बन्ध कहूँ सत्य होवे तो ताके ज्ञानजन्य संस्कार ते आत्मा विषे मिथ्याबन्ध प्रतीत होवे सो सिद्धान्त में आत्मा से भिन्न कोई सत्य वस्तु है नहीं, याते सत्य बन्ध के ज्ञानजन्य

संस्कार का अभाव होनेते आत्माविषे बन्ध का अध्यास बनै नहीं ।

तैसे आत्मा का और बन्ध का सादृश्य भी है नहीं उलटा तमः प्रकाशकी न्याईं विपरीत स्वभाव है, आत्मा प्रत्यक है और बन्ध पराक है प्रत्यक नाम अन्तर का है और पराक नाम बाह्यका है, आत्म विषयी है और बन्ध विषय है, जो प्रकाश करने वाला होवे सो विषयी कहिये है, जाका प्रकाश करिये सो विषय कहिये है, प्रत्यकविषे पराक का, तथा पराकविषे प्रत्यक का अध्यास होवे नहीं जैसे पुत्रादिकनकी अपेक्षाते देह प्रत्यक है । ताके विषे पुत्रादिकनका और पुत्रादिक विषे देह का अध्यास होवे नहीं और विषयमें विषयी का, तथा विषयी में विषय का अध्यास होवे नहीं, जैसे विषय जो घटादिक तिन विषे विषयी दीपकका, और दीपकविषे घटादिकनका अध्यास होवे नहीं, तैसे सादृश्य के अभाव होनते प्रत्यक विषयी जो आत्मा ताविषे पराक विषय रूप बन्ध का अध्यास बनै नहीं प्रत्यक का और पराक का विरोध है, विषय का और विषयी का विरोध है, सादृश्य नहीं, याते बन्धका अध्यास आत्माविषे बनै नहीं ।

तैसे प्रमाता के दोष का और प्रमाण के दोष का भी अभावहै, काहेते, प्रमातासे आदिलेके सर्व प्रपंच अध्यास रूप है, सोई बन्ध है । यह वेदान्तका सिद्धान्त है इस

रीति से बन्ध के अध्यास पूर्व प्रमाता प्रमाण का स्वरूप असिद्ध है और ताका दोष भी असिद्ध है याते बन्ध का अध्यास बनै नहीं।

और अधिष्ठान का विशेषरूप करिके अज्ञान भी बनै नहीं काहेते? जो बन्धका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो स्वयं-प्रकाश ज्ञानरूप है, ता स्वयं प्रकाश ज्ञान रूप ब्रह्म विषे सूर्य विषे तमकी न्याईं अज्ञान बनै नहीं जैसे प्रकाशमान सूर्यसे तमका विरोध है, तैसे चेतन प्रकाश और तमरूप अज्ञानका परस्पर विरोध है और अधिष्ठान का अज्ञान अङ्गीकार करै तौ भी बन्धका अध्यास बनै नहीं काहेते? अत्यन्त अज्ञातविषे तथा अत्यन्त ज्ञातविषे अध्यास होवे नहीं, किन्तु विशेषरूप से अज्ञात और सामान्य रूपसे ज्ञातविषे होवे है और ब्रह्म सामान्य विशेष भाव से रहित है, निर्विशेष है यह सिद्धान्त है याते विशेषरूपसे अज्ञात और सामान्यरूप से ज्ञात ब्रह्म बनै नहीं और अध्यास के लोभ से ब्रह्मविषे सामान्य विशेष भाव अङ्गीकार करोगे तो सिद्धान्त का त्याग होवेगा इस रीति से निर्वि-शेष जो प्रकाशरूप ब्रह्म ताका विशेषरूपसे अज्ञान और सामान्यरूप से ज्ञान का अभाव होनेते ताके विषे अध्यास बनै नहीं, याते ब्रह्म विषे बन्ध अध्यासरूप है यह कहना बनै नहीं, किन्तु बन्ध सत्य है। ता सत्य बंध का ज्ञान से निवृत्ति का असम्भव है याते ज्ञान द्वारा मोक्ष रू-

ग्रन्थका प्रयोजन बने नहीं। और ज्ञान से मोक्ष का प्रतिपादक जो सिद्धान्त सो समीचीन नहीं, किन्तु कर्मसेमोक्ष होवे है। यह वार्त्ता एकभक्ति वादक की रीति से प्रतिपादन करैं हैं ॥७॥

दोहा-

सत्यबन्धकी ज्ञानते, नहीं निवृत्ति संयुक्त।
नित्य कर्म सन्तत करै, भयो चहै जो मुक्त ॥८॥

सत्यबन्धकी ज्ञानते निवृत्ति माननी, संयुक्त कहिये युक्तिसहित नहीं किन्तु अयुक्त है याते जो पुरुष मुक्त हुआ चाहै सो संतत कहिये निरन्तर नित्य कर्म करै याका यह अभिप्राय है—

कर्म दो प्रकारका है-एक विहित है और एक निषिद्ध है पुरुषकी प्रवृत्तिके निमित्तजाका स्वरूप वेदने बोधन किया है सो विहितकर्म कहिये है। और पुरुषकी निवृत्ति जासों बोधन करी है सो निषिद्ध कर्म कहिये। और स्वभावसिद्ध जो क्रिया है सो कर्म नहीं,काहेते जो वेदने प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति के निमित्त बोधन किया है सो कर्म कहिये है, उदासीनक्रिया कर्म नहीं याते दो प्रकार का कर्म है, तीन प्रकार का नहीं।

विहितकर्म चार प्रकारका है:-१ प्रायश्चित्त है और २-काम्य है और ३ नैमित्तक है और ४ नित्यहै। पापनाशके निमित्त विधान किया जो कर्म, सो प्रायश्चित्त कहिये है

जैसे प्रमादसे द्रव्यके ग्रहणजन्य जो यतीकूं पाप ताके नाशके निमित्तद्रव्यका त्याग और तीन उपवास है।२-फलके निमित्त विधान किया जो कर्म सो काम्य कहिये है, जैसे वृष्टिकामकूं कारीरी याग है, और स्वर्ग कामकूं अग्निहोत्र सोमयाग से आदि लेके हैं। ३-जा कर्म के नहीं किये से पाप होवे और किये से पुण्यपापरूप फल होवे नहीं और सदा जाका विधान नहीं, किन्तु किसी निमित्तकूं लेके विधान किया होवे सो कर्म नैमित्तिक कहिये है। जैसे-ग्रहणश्राद्ध है और अवस्थावृद्ध, जातिवृद्ध, आश्रमवृद्ध, विद्यावृद्ध, धर्मवृद्ध ज्ञानवृद्ध पुरुष के आगमनते उत्थानरूप कर्म है विद्या शब्द से शास्त्रज्ञान का ग्रहण है और ज्ञान शब्द से अपरोक्ष विद्या का ग्रहण है। पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तर उत्तमहैं। ४-जाके नहीं कियेसे पापहोवे। कियेसे फल होवे नहीं और सदा जाका विधान होवे। सो नित्यकर्मकहियेहै। जैसे-स्नान सन्ध्यादिक है इसी रीति से चार प्रकार विहित और निषिद्ध मिलि के पाँच प्रकार का कर्म है।

मोक्षकी इच्छावान् काम्य और निषिद्धकर्म करे नहीं काहेते? काम्यकर्मसेउत्तमलोककूं जावे है। और निषिद्ध कर्म से नीचलोककूं जावे है याते दोनों को त्याग करे और नित्य कर्म सदा करै। और नैमित्तिकका जब निमित्त होवे तब नैमित्तिक भी करै काहेते? नित्यनैमि-

त्तिक कर्म नहीं करै तो पाप होवेगा । ता पापसे नीच योनिकूं प्राप्त होवेगा याते पाप के रोकने वास्ते नित्यनैमित्तक कर्म करै। नित्य नैमित्तिक कर्म का और फल नहीं यही फल है, जो तिनके नहीं करने से पाप होवे है सो तिनके करनेमे होवे नहीं याते मुमुक्षु नित्यनैमित्तिक कर्म अवश्य करैं।

और जो कदाचित् प्रमाद से निषिद्ध कर्म हो जावे तो ताका दोष दूर करनेकूं प्रायश्चित करे। जो निषिद्ध-कर्म नहीं किया होवे तो भी जन्मांतर के जो पाप हैं, तिनके दूरि करने वास्ते प्रायश्चित कर्म करे, परन्तु इतना भेद है—प्रायश्चित्त दो प्रकारका है—एक तो असाधारण है और एक साधारण है। १—जो किसी पाप विशेष के दूर करने वास्ते शास्त्र ने विधान किया होवे सो असाधारण प्रायश्चित कहिये है--जैसे २--पूर्व कहा उपवास और सर्व पापके दूरि करने वास्ते शास्त्र ने जो विधान किया है कर्म सो साधारण प्रायश्चित कहिये है, जैसे--गंगास्नान और ईश्वरके नामका उच्चारण है, इनते आदिलेके और भी जानि लेने इस रीतिसे दो प्रकार के प्रायश्चित हैं १--जो ज्ञात पाप होवे तो तिस पाप का नाशक जो असाधारण प्रायश्चित्त शास्त्र ने बोधन किया कू है, तो करे। और २--जो जन्मांतरके अज्ञात पापहैं

तिनके दूर करनेवास्तै साधारण प्रायश्चित्त करै। काहेते? १--असाधारण प्रायश्चित्त का यह स्वभाव है--जा पापका नाश करनेवास्ते शास्त्र ने जो प्रायश्चित्त विधान किया है सो पाप प्रायश्चित्तते दूरहोवे है और नहीं, और २--जन्मांतरके पापका ऐसा ज्ञान है नहीं जो कौनसा पाप है किस प्रायश्चित्तते दूर होवेगा। याते साधारण प्रायश्चित्त करै साधारण प्रायश्चित्त से सर्व पाप दूरि होवहैं, यद्यपि गंगा स्नान से आदि लैके जो साधारण प्रायश्चित्त कहे केवल प्रायश्चित्त रूप नहीं किन्तु-काम्यरूप और २-प्रायश्चित्तरूपहैं। काहेते।? 'गंगास्नानसे उत्तमलोकको प्राप्ति'' शास्त्रमें कही है तैसे ''ईश्वर के नाम उच्चारण से भी उत्तमलोककी प्राप्ति'' कही है। याते काम्यरूप और पाप के नाशक हैं, याते प्रायश्चित्त रूप हैं, जैसे अश्वमेध ब्रह्महत्यादिक पापका नाशक है, और स्वर्गकी प्राप्तिरूप फलका हेतु है। तैसे गंगास्नानादिक हैं, केवल प्रायश्चित्त नहीं याते गंगास्नानादिकोंते उत्तम लोककी प्राप्ति होवे, सो मुमुक्षुकूं वाँछित है नहीं तथापि जाको उत्तम लोककी वांछा है, ताको तो गंगा स्नानादिक कर पाप नाश करिके उत्तम लोककूं प्राप्त करे हैं। जाको लोककी कामना नहीं है, ताके केवल पाप ही के नाशक हैं याते कामना सहित अनुष्ठान किये काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं। लोक कामना से बिना अनुष्ठान

किये केवल प्रायश्चित्तरूपहैं, जैसे वेदान्तमतमें सम्पूर्ण कर्म सकामपुरुषकूँ संसारके हेतु हैं और निष्कामकूँ अन्तःकरणकी शुद्धि करिके मोक्षके हेतुहैं, तैसे एक ही गङ्गा स्नान तथा ईश्वरका नाम उच्चारण सकामकूँ तो काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं और निष्कामकूँ केवल प्रायश्चित्तरूप हैं, याते मुमुक्षु साधारण प्रायश्चित्त करे, इसरीतिसे जन्मान्तरके सम्पूर्ण पापका ज्ञानसे विना ही नाश होवे है तैसे मुमुक्षु के जन्मान्तरके काम्यकर्म भी वन्ध्याके समान हैं, फलके हेतु नहीं, काहेते ? जैसे कर्मके अनुष्ठान कालविषे पुरुषकी इच्छा फलका हेतु वेदान्तमतमें अङ्गीकार करीहै, इच्छासहित अनुष्ठान किये कर्म स्वर्गादिक फलके हेतुहैं, और निष्काम अनुष्ठान किये स्वर्गादि फलके हेतु नहीं, यह वेदान्तका सिद्धान्त है, तैसे कर्मकी सिद्धिसे अनन्तर भी पुरुष की इच्छा फल का हेतु है सो पुरुष की इच्छा जिस काल में पुरुष मुमुक्षु हुआ तब दूर होगई याते जन्मान्तरके काम्यकर्म भी फलके हेतु नहीं । जैसे किसी पुरुषने धनकी प्राप्तिकी इच्छाते धनी पुरुष का आराधन किया होवे, तो धनी के आराधन से अनन्तर भी धनकी इच्छा दूर होय जावे तो धनकी प्राप्ति रूप फल होवे नहीं, तैसे जन्मान्तर के काम्य-कर्म का भी मुमुक्षुकूँ इच्छाके अभावते फल होवे नहीं; इस रीति से केवल कर्म से मोक्ष होवे है ।

वर्त्तमान जन्म विषे काम्य और निसिद्ध किये नहीं, जाते ऊर्ध्वलोक अधोलोककूं जावे, जन्मान्तर के प्रारब्ध जो निषिद्ध और काम्य, तिनका भोगसे नाश होवे है। नित्य और नैमित्तिक के नहीं करने ते जो पाप होवे सो तिनके करने ते मुमुक्षुकूं होवे नहीं, और जन्मांतर के सञ्चित जो निषिद्ध हैं, तिनका साधारण प्रायश्चित्तसे नाश होवे है, जन्मांतर का सञ्चितकाम्य-कर्म मुमुक्षुकूं इच्छा के अभावते फल देवे नहीं, याते मुमुक्षु नित्यनैमित्तिक और साधारण प्रायश्चित्त कर्म करें और वर्त्तमान जन्म का ज्ञात निषिद्ध कर्म होवे तो असाधारण प्रायश्चित करे, अथवा नित्य और नैमित्तकही करे, प्रायश्चित्त नहीं करे काहेते? जो सञ्चित निषिद्ध कर्म और काम्यकर्म, सो मुमुक्षुके नाश होय जावे हैं जैसे ज्ञानवान्‌के संचितकर्म का नाश वेदांतमें अङ्गीकार किया है, तैसे निषिद्धकाम्य का त्याग करके नित्य नैमित्तिक कर्म विषे वर्त्तमान जो मुमुक्षु ताके संचित कर्म का नाश होवे है, अथवा संचित जो काम्य और निषिद्ध सो सारे मिलके एक जन्मका आरंभ करें हैं। याते मुमुक्षुकूं एक जन्म और होवे है। अथवा योगीके कायव्यूहकी न्याईं एकही कालविषे सारे संचित अनंतशरीरों का आरम्भ करे हैं, तिनते मुमुक्षु उत्तर जन्मविषे सर्वका फल भोग लेवे है, अथवा नित्य और नैमित्तिक कर्म के अनुष्ठानते जो क्लेश होवे है, सो

जन्मांतरके संचित निषिद्धकर्म का फलहै । याते जन्मांतर का संचितनिषिद्ध और जन्म का आरम्भ करे नहीं । काम्य जो संचित हैं सो एकजन्म, अथवा एक काल में अनन्त शरीरोंका आरम्भ करे है याते मुमुक्षुकूँ उत्तर जन्म विषे दुःखका लेश भी होवे नहीं केवल सुखका भाग होवे है । काहेते ? जन्मान्तरके संचित जो विहितकर्म हैं तिनते शरीर हुआ है, और संचित जो निषिद्धहै सो नित्यनैमित्तिकके अनुष्ठानके क्लेशते पूर्वजन्मविषे भोग लिये । इस रीतिसे प्रायश्चितसे बिना केवल नित्य और नैमित्तिककर्म के अनुष्ठानते मोक्ष होवे है याते नैमित्तिक कर्म के समय नैमित्तिक अनुष्ठान करे और नित्य कर्म सन्तत अनुष्ठान करे या मतकूँ शास्त्र में एकभाविकवाद कहैं हैं ।

याते भी बन्धकी निवृत्ति ज्ञानद्वारा ग्रन्थ का प्रयोजन नहीं । काहेते ? जो वस्तु और से होवे नहीं सो मुख्य प्रयोजन होवे है । जैसे-रूपका ज्ञान नेत्रबिना और से होवे नहीं । सो रूपज्ञान नेत्र का प्रयोजन है । और बन्ध की निवृत्ति ग्रन्थ से बिना क्रमते होवेहै, याते बन्धकी निवृत्ति ग्रन्थ का प्रयोजन नहीं । इस रीतिसे ग्रन्थ के अधिकारी विषय, प्रयोजन बनै नहीं ।

अधिकारी आदिकोंके अभावसे सम्बन्ध भी बने नहीं । काहेते ? विषयके अभावते ग्रन्थका और विषयका प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावः सम्बन्ध बने नहीं । अधिकारी और

फलके अभाव ते, तिनका प्राप्य प्रापक भाव सम्बन्ध बने नहीं। अधिकारीके अभावतें ताका और विचारका कर्तृ-कर्तव्यभाव सम्बन्ध बने नहीं। ज्ञानकूँ निष्फलता होनेतें ग्रन्थका और ज्ञानका जन्यजनकभाव सम्बन्ध बने नहीं। सफलवस्तु जन्य होवे है। पूर्व कही रीति से ज्ञान सफल है नहीं और ज्ञानके स्वरूप का भी अभाव है याते भी ज्ञानका और ग्रन्थका सम्बन्ध बने नहीं। काहेतें? जीव ब्रह्मके अभेद निश्चय का नाम सिद्धान्त में ज्ञान है सो अभेद निश्चय बने नहीं। काहेतें जीवब्रह्म का अभेद है नहीं। यह वार्ता विषयके निराकरण में पूर्व प्रति पादन करी है यातें अभेद निश्चयरूप ज्ञान बने नहीं। इसरीति से अधिकारी आदिक अनुबन्धन के अभावतें ग्रन्थ का आरम्भ बने नहीं ॥ ८ ॥



अधिकारीमण्डन—उत्तरपक्ष।

पूर्वपक्षी ने प्रथम कह्या जो—"मोक्षकी इच्छा काहूकूँ बने नहीं, काहेतें? मोक्षविषे दो अंश हैं-एक तो कारण सहित जगत की निवृत्ति मोक्ष का अंश है, और दूसरा अंश ब्रह्मकी प्राप्तिरूप है। तिनविषे कारण सहित जगत की निवृत्तिरूप मोक्ष के प्रथम अंश की इच्छा काहूकूँ है नहीं, किन्तु तीन प्रकार के दुःख की निवृत्ति की इच्छा सर्व पुरुषनकूँ है। सो दुःखकी निवृत्ति अपने अपने उपा-

यतें होय जावे है। याते मूल सहित जगत् की निवृत्ति की इच्छावाला मुमुक्षु अधिकारी बने नहीं" ताका-

समाधान प्रथम कहे हैं-दोहा।

मूलसहित जग हानि बिन, है न त्रिविध दुखध्वंस।
याते जन चाहत सकल, प्रथम मोक्ष को अंश ॥६॥

मूल कहिये जगत का कारण जो अज्ञान और जगत् के नाश बिना तीन प्रकार के दुःख का और उपायोंतें ध्वंस कहिये नाश होवे नहीं और मूलअविद्या के नाश ते सर्व दुःख और दुःख के कारण रागादिक और रागादिकों के आश्रय शरीरादिकों का नाश होवे है। याते त्रिविध दुःखके नाशके निमित्त कारण सहित जगत् की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकूँ सकल पुरुष चाहे हैं। तात्पर्य यह है, जो सर्व औषध आदिक उपाय करने-विषे समर्थ हैं, तिनके भी दुःख नियम करि दूरि होवे नहीं। काहू पुरुषके रागादिजन्य दुःख औषधादिक उपायोंते नाश होवे हैं और काहू के दुःख का औषधादिक उपायोंते नाश होवे नहीं, याते औषधादिक उपायों ते रागादिजन्य दुःख की नियम करिके निवृत्ति होवे नहीं और जाके औषधादिक उपायों ते दुःख की निवृत्ति होवे है ताके भी दुःख की उत्पत्ति फिर होवे है, याते औषध आदिक उपायोंतें दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति होवे नहीं। जाकी निवृत्ति हुई है ताकी फेरि उत्पत्ति नहींहोवे

सो अत्यन्त निवृत्ति कहिये है। औषधादिक उपायों ते दुःखकी निवृत्ति नियम करके होवे नहीं और निवृत्ति जो दुःख ताकी फेर भी उत्पत्ति होवे है याते अत्यन्त निवृत्ति भी तिन उपायोंते होवे नहीं और दुःख के सकल साधन का नाश होवे तो सकल दुःख की नियम करके निवृत्ति होवे और दुःख के साधन का नाश हुएते फेरि दुःख होवे नहीं, याते दुःख की निवृत्ति के निमित्त दुःख के साधन की निवृत्ति की इच्छा सर्व कूँ होवे है।

सो दुःखका साधन अज्ञान और ताका कार्य प्रपञ्च है। यह वार्ता छांदोग्यउपनिषदमें भूमाविद्या विषे प्रसिद्ध है। तहाँ यह प्रसङ्ग है-"एक समय सनत्कुमार के पास नारद प्राप्त हुए और नारद ने कहा-हे भगवन्! जो आत्मज्ञानी पुरुषहै, ताकूँ शोक नहीं होवे और मैं शोक सहित हूँ; याते मैं अज्ञानी हूँ मेरे सों उपदेश करो, जासे मेरा अज्ञान दूर होवे" तब सनत्कुमारने नारदकूँ कहा कि—"हे नारद! भूमा शोकरहित है, सुखरूप है, और भूमासे भिन्न सकल तुच्छहै और दुःखका साधन है, भूमा नाम ब्रह्म का है इस रीतिसे कि, ब्रह्मसे भिन्न जो वस्तु सो सकलदुःखके साधन कहे हैं। अज्ञान और ताका कार्य ब्रह्मसे भिन्न है याते दुःख का साधन है, ताकी निवृत्ति हुएसे सर्वदुःखकी नियम करके अत्यन्त निवृत्ति बने है।

याते सकलदुःखकी निवृत्ति के निमित्तअज्ञान सहित प्रपञ्च की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकी चाह बने है ॥६॥

और जो पूर्वपक्षी ने कह्या—" जा वस्तु का अनुभव किया होवे ताकी प्राप्ति की इच्छा होवे है ब्रह्म का अनुभव काहूने किया है नहीं यातें ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीय अंश की इच्छा काहूकू होवे नहीं।"

ताका समाधान कहे हैं-दोहा।

किय अनुभव सुखकां सबहि, ब्रह्म सुन्यो सुखरूप।
ब्रह्मप्राप्ति या हेतु ते, चहत विवेकी भूप ॥ १० ॥

सर्व पुरुष ने सुख का अनुभव किया है याते सुख की इच्छा सर्वकू है और ब्रह्म नित्य सुखरूपहै, ऐसा सच्छास्त्रमें माना है, याते विवेकी भूप कहिये उत्तम विवेकी सुख स्वरूप ब्रह्मकी प्राप्ति चाहे ॥ १० ॥

दोहा।

केवल सुख सब जन चहैं, नहीं विषय की चाह ॥
अधिकारी यातें बनें, है जु विवेकी नाह ॥११॥

पूर्व कह्या जो " सर्वपुरुष विषयजन्य सुख चाहे हैं, सो विषयजन्य सुख मोक्षविषे प्राप्त होवे नहीं किंतु जगत् में प्राप्त होवे है, यातें मोक्ष की इच्छावान् अधिकारी के अभावते ग्रन्थ का आरम्भ निष्फल है" ताकूँ यह पूछे हैं जो कोई मुमुक्षु नहीं है अथवा मुमुक्षु तो है, परन्तु तिनकी ग्रन्थविषे प्रवृत्ति होवै नहीं जो ऐसे कहैं "मुमुक्षु नहीं है

सो बने नहीं है" काहेते? सर्व पुरुष सर्व दुःख का नाश और नित्यसुखकी प्राप्ति चाहे हैं, सो सर्वदुःख का नाश और सुखकी प्राप्तिरूप मोक्ष है, यातें सर्वपुरुष मुमुक्षु हैं।

और कह्या जो "विषयजन्य सुख चाहे हैं" सो नहीं किन्तु सुखमात्र चाहे हैं सो सुख विषय से होवे अथवा विषय बिना होवे, जो विषयजन्य सुखको ही चाहे, ताके सुषुप्तिके सुखकी इच्छा नहीं होनी चाहिये। सुषुप्ति का सुख विषयजन्य है नहीं यातें सुखमात्रकूँ चाहे हैं केवल विषयजन्यकूँ ही नहीं, उलटा आत्म सुख को चाहे है, विषयजन्यकूँ नहीं चाहे है, काहेते? सर्वपुरुषों को न्यून अथवा अधिक विषयसुख प्राप्त भी है, परन्तु ऐसी इच्छा सदा रहे है "हमारेकूँ ऐसा सुख प्राप्त होवे, जा सुख का नाश कभी होवे नहीं" ऐसा सुख आत्म स्वरूप मोक्ष है, यातें सर्वपुरुष मुमुक्षु हैं; "कोउ मुमुक्षु नहीं" ऐसा कहना बने नहीं।

और जो ऐसे कहे "मुमुक्षु तो हैं परन्तु ग्रन्थमें प्रवृत्ति होवे नहीं यातें ग्रन्थ का आरम्भ निष्फल है" ताकूँ यह पूछेहैं ग्रन्थमोक्षका साधन नहीं है? तातें ग्रन्थविषे प्रवृत्ति नहीं होवे अथवा ग्रन्थ से और भी कोई साधन है, जाके विषे प्रवृत्ति होनेसे ग्रन्थविषे प्रवृत्ति होवे नहीं अथवा जिन शमादिकों ते ग्रन्थ में अधिकारी कह्या सो शमादिमान ज्ञानके योग्य कोई अधिकारी नहीं है, यातें ग्रन्थमें प्रवृत्ति

होय नहीं। ऐसे कहे-'ग्रन्थ मोक्षका साधन नहीं' सो वार्ता बने नहीं। काहेतें मोक्ष ज्ञान ते नियम करके होवे है, यह वेदका सिद्धान्त है सो ज्ञान श्रवण से होवे है।

श्रवण दो प्रकारका है-एक तो वेदान्तवाक्य का और श्रोत्रका संयोगरूप है, और दूसरा वेदान्तवाक्यका विचार रूप है। ज्ञानका हेतु प्रथम श्रवणहै, दूसरा नहीं। काहेते? शब्दजन्य ज्ञानविषे इन्द्रिय के साथ शब्द का संयोग ही सर्वत्र हेतु है, याते वेदान्तवाक्यका और श्रोत्रका संयोग-रूप श्रवण ब्रह्मज्ञानका हेतु है। अवान्तरवाक्य का श्रवण अपरोक्ष ज्ञान का हेतु है। और महावाक्य का श्रवण अपरोक्ष ज्ञान का हेतु है, यह वार्ता पूर्व प्रतिपादन करी है। जाको ज्ञान होने ते भी असम्भावना और विपरीत-भावना होवे, सो दूसरा श्रवण और मनन निदिध्यासन करे। वेदान्त वाक्यका विचाररूप श्रवण, तासूँ वेदान्त-वाक्यविषे असम्भावना दूर होवे है। वेदान्तवाक्य ब्रह्मके प्रतिपादक हैं। अथवा और अर्थके प्रतिपादक हैं? ऐसा संशय वेदान्तवाक्यकी असम्भावना है, सो तिनके विचार से दूर होवे है। और मनन से प्रमेय की असम्भावना दूरि होवेहै। जीवब्रह्मकी एकता वेदान्त का प्रमेय कहिये है। सो एकता सत्य है, अथवा जीवब्रह्म का भेद सत्य है? ऐसा जो संशय, सो प्रमेय की असम्भावना कहिये है, सो मन से दूर होवे है। विपरीत भावना निदिध्यासन

ते दूर होवे है। इस रीति से प्रथम श्रवण तो ज्ञानद्वारा मोक्ष का हेतु है, और विचाररूप श्रवण और मनन और निदिध्यासन, ये असम्भावना और विपरीत भावना की निवृत्तिद्वारा मोक्षके हेतु हैं। वेदान्त नाम उपनिषद का है। सो यद्यपि या ग्रन्थ ते भिन्न तथापि तिनके समान अर्थवाले भाषावाक्य या ग्रन्थमें हैं। तिनके श्रवण ते भी ज्ञान होवे है यह वार्ता आगे प्रति पादन करेंगे। इसी रीतिसे ज्ञानद्वारा ग्रन्थ मोक्षका हेतु है और विचार रूप मननरूप यह ग्रन्थ है, याते असम्भावना दोषकी निवृत्ति द्वारा मोक्ष का हेतु है, याते 'ग्रन्थ से मोक्ष होवे नहीं' यह केवल हठमात्र है।

और जो ऐसे कहे—'ग्रन्थ से मोक्ष तो होवे है' परन्तु और साधनसे भी मोक्ष होवे है। याते ग्रन्थका आरम्भ निष्फल है। ताकूँ यह पूछे हैं—सो और साधन कौन है जाते मोक्ष होवे है? जो ऐसे कहे—'उपनिषद सूत्रभाष्य से आदि लेके संस्कृत ग्रन्थ जीव-ब्रह्म की एकता के प्रतिपातक बहुत हैं, तिनसे भी ज्ञानद्वारा मोक्ष होवे है याका भिन्न अधिकारी नहीं। याते यह ग्रन्थ निष्फल है' सो वार्ता यद्यपि सत्य है, तथापि तिनका अर्थ ग्रहण करने विषे जाकी बुद्धि समर्थ नहीं है, जो ऐसा मुमुक्षु ताको तिनसे ज्ञान होवे नहीं, याते मन्दबुद्धि मुमुक्षुकी तिनविषे प्रवृत्ति होवे नहीं, या ग्रन्थ विषे ही प्रवृत्ति होवेगी।

और जो ऐसे कहै 'ग्रन्थ से मोक्ष भी होवे है और संस्कृतग्रन्थसे मन्दबुद्धिकूँ बोध भी होवे नहीं और मुमुक्षु भी है तो भी ग्रन्थविषे प्रवृत्ति होवे नहीं। काहेते? जो विवेक वैराग्य शमादिमान अधिकारी कह्या सो दुर्लभ है। याते आपनेविषे साधन के अभाव देखके ग्रन्थ में प्रवृत्ति होवे नहीं' ताकूँ यह पूछे हैं-बहुत अधिकारी नहीं ? अथवा कोई भी नहीं जो ऐसे कहै-'बहुत अधिकारी नहीं' सो तो हम भी अङ्गीकार करे हैं और जो ऐसे कहै-'कोई भी ज्ञानके योग्य अधिकारी नहीं' सो वार्त्ता बने नहीं काहेते? अन्तःकरण विषे तीन दोष हैं-एक मल है दूसरा विक्षेप है और तीसरा स्वरूपका आवरण है। मलनाम पापका है, विक्षेप नाम चंचलताका है और आवरण नाम अज्ञान का है। शुभकर्मते मलदोष दूर होवे है और उपासनाते विक्षेप दोष दूर होवे है। ज्ञानते आवरण दोष दूर होवे है। जिनके अन्तःकरणविषे मल और विक्षेप दोषहैं, सो अधिकारी भी नहीं परन्तु इस जन्मविषे अथवा पूर्वजन्म विषे शुभकर्म और उपासनाके अनुष्ठानते जिनके मल और विक्षेपदोष नाश होवे हैं। ऐसे ज्ञानयोग्य अधिकारी हैं तिनकी ग्रन्थ में प्रवृत्ति बने है।

और जो ऐसे पूर्व कह्या 'सबकूँ विषयसुखमें अलम्बुद्धि है, नित्यसुखकूँ कोई चाहे नहीं' सो बने नहीं। काहेते ? चार प्रकारके पुरुष हैं-पामर, विषयी, जिज्ञासु, मुक्त।

१–इस लोकके निषिद्ध और विहित भोगनविषे आसक्त जो शास्त्रसंस्कारसहित पुरुष सो पामर कहिये है।

२–शास्त्रके अनुसार विषयनकूं भोगता हुआ परलोकके अथवा इस लोक के भोगन के निमित्त जो कर्म करे सो विषयी कहिये है।

३–ऐसा पुरुष जिज्ञासु कहिये है। जो पुरुषकूं उत्तम संस्कारते सच्छास्त्र का श्रवण होवे, तो उत्तम कूं ऐसा विवेक होवे है। विषयसुख अनित्य है। जितना काल विषयसुख होवे है तब भी कोई दुःख अवश्य रहे है और परिणाममें विनाशी सुख दुःखका हेतुहै और वर्तमान कालमें भी नाशके भयते दुःख का हेतु है, इस रीतिसे विषय सुख दुःखते ग्रसा हुआ है, याते दुःखरूप है और दुःखकी निवृत्ति लौकिक उपायते होवे नहीं, काहेते? जो उपाय करे है, तिनके भी सारे दुःख निवृत्त होवे नहीं और निवृत्त हुए भी फेर होवे हैं और जितनेकाल शरीर हैं तब पर्यन्त दुःख की निवृत्ति सम्भव भी नहीं। काहेते? जो शरीर हैं सो सारे पुण्य और पापसे होवे हैं, मनुष्य शरीर तो मिश्रित कर्म का फल प्रसिद्ध हैं और देवशरीर भी मिश्रित कर्म का ही फल है, जो केवल पुण्यका फल देवशरीर होवे तो अपनेसे अधिक अन्य देवकी विभूति देखके जो देवनकूं ताप होवे है, सो नहीं

होना चाहिये। सर्व देवन में प्रधान जो इन्द्र ताकूँ भी अनेकदैत्यदानवके भयजन्य दुःख शास्त्र में कहे हैं। जो देवशरीर केवल पुण्यका ही फल होवे तो देवनकूँ दुःख नहीं होना चाहिये। याते देव शरीर भी पुण्य पाप दोनों का फल है। और जो श्रुतिमें कहा है-देवता पाप रहित हैं ताका यह अभिप्रायहै-कर्मका अधिकार केवल मनुष्य शरीरमें है, औरमें नहीं, यातें देवशरीरमें किया जो शुभ अथवा अशुभ, तिनका फल देवनकूँ होवे नहीं। और देवशरीर से पूर्वशरीर में किया जो शुभ और अशुभ तिनका फल तो देवशरीरमें भी होवे है, इस रीतिसे देव-शरीर मिश्रित कर्म का फल है।

और तिर्यक पशु पत्नी का शरीर भी मिश्रितकर्म के फल हैं काहेते? जो तिनकूँ प्रसिद्ध दुःखहै सो तो पापका फल है, और मैथुनादिकन को सुख है, सो पुण्य का फल है। उदरसे जो गमन करे सो तिर्यक कहियेहै। पत्तसे गमन करे सो पत्नी कहिये है। चार पाद से गमन करे सो पशु कहिये है। कहूँ पशु पत्नी भी तिर्यकही कहिये हैं। इस रीतिसे सर्व शरीर पुण्य और पापसे रचित हैं। कोई शरीर तो न्यूनपाप और अधिक पुण्यते रचित है जैसे देवशरीर अपने अपने जो पुण्य हैं, तिनहीते सब देवन-विषे पाप न्यून है, याते न्यूनपाप अधिक पुण्यते रचित देवशरीर कहिये है। या अभिप्रायते ही शास्त्र में केवल

पुण्य का फल देवशरीर कहा है, याते विरोध नहीं। जैसे बहुत ब्राह्मणों से ब्राह्मणग्राम कहिये है, तैसे अधिक पुण्य का फल होने ते देवशरीर केवल पुण्य का फल कहिये है। परन्तु केवल पुण्य का फल नहीं।

तिर्यक पशु पक्षीका शरीर अधिक पाप न्यूनपुण्य से रचित है। जो उत्तम मनुष्य हैं, तिनकी देवन के समान रीति है। और नीचनकी सर्पादिकन के समान है। इस रीतिसे सर्वशरीर पुण्यपाप रचित हैं और पाप का फल दुःख है याते शरीर रहै तब पर्यन्त दुःखकी निवृत्ति होवे नहीं। सो शरीर धर्म और अधर्म का फल है, तिनकी निवृत्ति बिना शरीरकी निवृत्ति होवे नहीं, काहेते ? वर्तमान शरीर दूर होने से भी पुण्य पापते और शरीर होवेगा याते पुण्य पाप निवृत्ति बिना शरीर की निवृत्ति होवे नहीं, सो पुण्य पाप रागद्वेषके नाश बिना दूर होवे नहीं, काहेते ? वर्त्तमान पुण्य पाप के भोगसे निवृत्ति हुए से भी रागद्वेषते और पुण्य पाप होवेंगे, याते राग द्वेष की निवृत्ति बिना पुण्य पाप दूर होवे नहीं सो रागद्वेष अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञान से होवे है, जा विषे अनुकूलज्ञान होवे ता विषे राग होवे है, और जा विषे प्रतिकूलज्ञान होवे ता विषे द्वेष होवे है, याते अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूलज्ञान की निवृत्ति बिना रागद्वेष की निवृत्ति

होवे नहीं। सो अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञान भेदज्ञान से होवे है, काहेते ? जो वस्तुको अपने स्वरूपते भिन्न जाने ताके विषे अनकूलज्ञान अथवा प्रतिकूलज्ञान होवे है। अपने स्वरूपमें अनकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञान होवे नहीं। सुखके साधन का नाम अनकूल है और दुःखके साधनका नाम प्रतिकूल है, अपना स्वरूप सुखका अथवा दुःखका साधन नहीं, यद्यपि सुखरूप है तथापि सुखका साधन नहीं, याते स्वरूपसे भिन्न जो वस्तु जानी है ता विषे अनकूल और प्रतिकूलज्ञान होवे है, इस रीति से पदार्थन विषे अपने से जो भेदज्ञान, सो अनकूल ज्ञान और प्रतिकूलज्ञान का हेतु है, ता भेदज्ञानकी निवृत्ति बिना अनकूलज्ञान प्रतिकूलज्ञान की निवृत्ति होवे नहीं, सो भेदज्ञान अविद्या जन्यहै काहेते ? सम्पूर्ण प्रपंच और ताका ज्ञानस्वरूप के अज्ञानकाल में है, यह सम्पूर्ण वेद अरु शास्त्रका ढंढोराहै, इस रीतिसे सम्पूर्ण दुःखका हेतु स्वरूप का अज्ञान है, सो स्वरूप का अज्ञान, स्वरूपज्ञान बिना दूर होवे नहीं, काहेते ? जो वस्तुका अज्ञान होवे सो ताके ज्ञानसे दूर होवे जैसे रज्जुका अज्ञान रज्जु के ज्ञान से दूर होवे है और से नहीं याते स्वस्वरूपज्ञान ही अज्ञान की निवृत्ति का हेतु है और निवृत्ति द्वारा स्वरूपज्ञान से ब्रह्म की प्राप्ति होवे है। सो ब्रह्म नित्य है और आनन्द स्वरूप है, दुःख सम्बंध से रहित है याते स्वरूपज्ञान से

नित्य और दुःखके सम्बन्ध से रहित, जो ब्रह्मस्वरूप आनन्द ताकी प्राप्ति भी होवे है। इस रीतिसे दुःखकी निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्तिका हेतु स्वरूपज्ञान है याते स्वरूप जाननेकूँ योग्य है, ऐसा जाके विवेक होवे सो जिज्ञासु कहिये है।

४-स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरते भिन्न जो अपना स्वरूप ताका ब्रह्मरूप करिके अपरोक्षज्ञान जाकूँ होवे सो मुक्त कहिए है।

इस रीतिसे चार प्रकारके पुरुष हैं। तिनविषे १-पामर और २-विषयीकूँ तो यद्यपि विषयसुखमें ही अलम्बुद्धि है और किसी विषयीकूँ परम सुखकी इच्छा भी होवे, तब भी ताके जो उपाय नहीं हैं तिन में उपाय बुद्धि करिके प्रवृत्त होवे है। काहेते ? उपायका ज्ञान सत्सङ्ग और सच्छास्त्र के श्रवणसे होवे है, सो ताके है नहीं याते पामर और विषयीकी सुख प्राप्तिके निमित्त ग्रन्थमें प्रवृत्ति होवे नहीं, दुःखकी निवृत्ति के निमित्त भी दोनों से अन्य उपायन में प्रवृत्त होवे हैं, ताके निमित्त भी ग्रन्थमें प्रवृत्ति होवे नहीं, याते विषयी और पामर की ग्रन्थमें प्रवृत्ति होवे नहीं। तथापि जिज्ञासु जो पुरुष है, ताकूँ विषयसुख में अलम्बुद्धि होवे नहीं। किन्तु परमसुखकी ताकूँ इच्छाहै और दुःखकी अत्यन्त करिके निवृत्ति की इच्छा है सो परम सुखकी प्राप्ति और दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति, ज्ञानसे बिना

होवे नहीं । ऐसा जाकूँ सत्सङ्गसे विवेक है ताकी ग्रन्थमें प्रवृत्ति बने है और ४ मुक्तकी प्रवृत्ति भी होवे नहीं काहेते? ज्ञानवान् मुक्त कहिये है । सो ज्ञानी कृतकृत्य है ताकूँ कुछ कर्तव्य नहीं यह वार्ता आगे प्रतिपादन करेंगे और लीलाकरके मुक्त प्रवृत्तहोवे तो भी मुक्तकूँ ग्रन्थ में प्रवृत्ति से कोई प्रयोजन सिद्ध होवे नहीं, याते मुक्त के निमित्त भी ग्रन्थ नहीं । इस रीतिसे मोक्ष की इच्छावान् अधिकारी बने है ॥ ११ ॥

दोहा—साक्षी ब्रह्मस्वरूप इक, नहीं भेद को गन्ध ।
राग द्वेष मतिके धरम, तामें मानत अन्ध ॥ १२ ॥

पूर्व कह्या जो "जीव रागादिक क्लेशसहित है और ब्रह्म क्लेशरहित है, याते जीवब्रह्मकी एकता ग्रन्थकाविषय बने नहीं" यह वार्ता यद्यपि सत्य है तथापि राग द्वेषसे रहित जो साक्षी है, ताकी ब्रह्म से एकता बने है और जो पूर्व कह्या "कर्त्ताभोक्ता से भिन्न साक्षी बन्ध्यापुत्रके समान असत् है" सो बने नहीं, काहेते? कर्त्ता भोक्ता जो संसारी ताके विशेषभागका नाम साक्षी है, जो साक्षी का निषेध करे तो संसारी के विशेष भाग का निषेध होनेते कर्त्ताभोक्ता जो संसारी, ताका ही निषेध होवेगा । एकही चेतनके विषे साक्षीभाव की अन्तःकरण उपाधि है और कर्ता भोक्तापने का विशेषण है विशेषण सहित विशिष्ट कहियेहै । उपाधिवाला उपहित कहियेहै जो वस्तु जितने

देशमें आप होवे, उस देशमें स्थित वस्तुकूँ जनावे और आप पृथक रहे, सो उपाधि कहिये है, जैसे नैयायिक मतमें कर्णगोलकवृत्ति आकाश श्रोत्र कहिये है सो कर्ण गोलक श्रोत्रकी उपाधि है। काहेते ? सो कर्ण गोलक जितने देशमें आपहै उतने देशमें स्थित आकाशकूँ श्रोत्र रूप करके जनावे है और आप पृथक रहे है। याते कर्ण गोलक श्रोत्रकी उपाधिहै तैसे अन्तःकरण भी जितने देश में आप है, उतने देशमें स्थित चेतनकूँ साक्षी सज्ञाकरके जनावे, आप पृथक रहे है, याते अन्तःकरण साक्षी की उपाधि है, याते यह अर्थ सिद्ध हुआ—अन्तःकरण विषे वृत्ति जो चेतनमात्र सो साक्षी कहिये है।

अपने सहित वस्तुकूँ जो जनावे सो विशेषण कहिये है जैसे—'कुण्डलवाला पुरुष आया है' या स्थानमें पुरुष का कुण्डल विशेषण है, काहेते ? अपने सहित पुरुष का आगमन कुण्डल जनावे है, याते विशेषण है। "नील-रूपवान घटकूं मैं देखूं हूँ' या स्थान में भी नीलरूप घट-का विशेषण है तैसे अन्तःकरणभी कर्ता-भोक्ता जो जीव चेतन, ताका विशेषण है। काहेते ? अन्तःकरण सहित चेतनकूँ कर्ता भोक्तारूप करके अन्तःकरण जनावे है। याते संसारी का अन्तःकरण विशेषण है। याते यह सिद्ध हुआ-अन्तःकरणविषे वृत्तिचेतन और अन्तःकरण संसारी कहिये है। या अर्थकूं विस्तार से आगे कहैंगे।

रागद्वेषादिक क्लेश संसारीविषे हैं। और साक्षी विषे नहीं संसारीका भी जो विशेषण अन्तःकरण है, ताकेविषे है और विशेष्य जो चैतन्य, ताके विषे नहीं। काहेते संसारविषे विशेष्य जो चैतन्यभाग ताका साक्षी से भेद नहीं। काहेते? एकही चैतन्य अन्तःकरणसहित संसारी है और अन्तःकरण भाग त्यागिके साक्षी कहिये है. याते साक्षीका और संसारीके विशेष्य भागका भेद नहीं, जो विशेष्यभागमें क्लेश अङ्गीकार करे, तब साक्षी में अङ्गीकार करने होवेंगे। और-'साक्षी सर्वक्लेश रहित है' यह वेदका सिद्धान्त है। याते संसारीके विशेष्यभागमें क्लेश नहीं किन्तु विशेषणमात्र अन्तःकरण में है। इस अभिप्रायते दोहेके तृतीयपादमें रागद्वेष, बुद्धिके धर्म कहे, और जीवके नहीं कहे; इस रीति से अन्तःकरण विशिष्ट की ब्रह्म से एकता नहीं भी बने, परन्तु अन्तःकरण उपहित जो साक्षी ताकी ब्रह्मसे एकता बने है।

और जो पूर्व कह्या-"साक्षी नाना है, और ब्रह्मएक है याते नानासाक्षीकी एक ब्रह्मसे एकता बने नहीं। और जो व्यापक एक ब्रह्मते साक्षी का अभेद अङ्गीकार करोगे तो साक्षीका भी सर्वशरीरमें व्यापक एकही होवेगा। याते सर्वशरीर के सुख दुःख का भान होना चाहिये' सो शङ्का बने नहीं काहेते? यद्यपि ईश्वर साक्षी एक है, और जीव साक्षी नाना हैं और परिछिन्न हैं तो भी व्यापक ब्रह्म से

भिन्न नहीं । जैसे घटाकाश नाना हैं और परिच्छिन्न है, तो भी महाकाश से भिन्न नहीं । किन्तु महाकाश रूप ही घटाकाश है, तैसे नाना जो परिच्छिन्न साक्षी सो भी ब्रह्मस्वरूप ही हैं ।

और जो पूर्व कह्या-'सुखदुःख अन्तःकरणकी वृत्ति के विषय नहीं' सो असङ्गत है काहेते ? यद्यपि सुख-दुःख साक्षी भाष्य है, सो साक्षी नाना है, तथापि जब अन्तःकरणका परिणाम सुखरूप वा दुःखरूप होवे, ताही समयअन्तःकरणकी ज्ञानरूप वृत्ति सुखदुःखकूँ विषयकरने वाली होवे है। ता वृत्ति में आरूढ़ साक्षी तिनकूं प्रकाशे है। इस रीतिसे ग्रन्थकारोंने सुखदुःख साक्षीके विषय कहे हैं वृत्ति विना केवल साक्षी के विषय नहीं या स्थान में यह रहस्य है जैसे-आकाश में घटाकाश नाम और जल का आनयनरूप जो कार्य प्रतीत होवे है, सो घटरूप उपाधिकी दृष्टिसे प्रतीत होवे है, घटरूप उपाधि की दृष्टि बिना घटाकाश नाम और जलका आनयन रूप कार्य प्रतीत होवे नहीं, किन्तु आकाशमात्रही प्रतीत होवे, याते घटाकाश महाकाश रूप हैं । तैसे चेतनविषे साक्षी नाम और धर्मसहित अन्तःकरणका प्रकाशरूप कार्य, अन्तःकरणरूप उपाधिकी दृष्टिसे प्रतीत होवे है । और अन्तः-करणरूप उपाधि की दृष्टि बिना साक्षी नाम और धर्म सहित अन्तःकरणका प्रकाशरूप कार्य प्रतीत होवे नहीं ।

किन्तु चैतन्यमात्र ब्रह्म ही प्रतीत होवे, याते साक्षी ब्रह्म-रूप है। या अभिप्रायते दोहेके प्रथमपाद में साक्षी एक कह्या । काहेते ? उपाधिकी दृष्टि बिना साक्षीमें नानापना और परिच्छिन्नभाव प्रतीत होवे नहीं । सो साक्षी जीव पदका लक्ष्य है, यह वार्ता आगे कहेंगे । इस रीति से जीव ब्रह्मकी एकता ग्रन्थका विषय बने हैं ॥ १२ ॥

प्रयोजनमण्डन उत्तरपक्ष ।
(कार्याध्यासनिरूपण-कवित्त)

सजातीयज्ञान संसकारते अध्यास होत,
सत्यज्ञानजन्य संसकार को न नेम है ।
दोषको न हेतु ता अध्यासविषे देखियत,
पटविषे हेतु जैसे तुरी तन्तु वेम है ॥
आतमा द्विजाती शंखपीत सिता कटुभासे,
सीप में विरागी रूप देख बिन प्रेम है ।
नभ नील रूपवान् भासत कटाह तम्बू,
जिनके न कोउ पित्त प्रभृति अदोम है ॥ १३ ॥

पूर्व कह्या जो-"बन्ध सत्य है, ताकी ज्ञानसे निवृत्ति होवे नहीं' और मिथ्यावस्तुकी ज्ञानसे निवृत्ति होवे है। आत्मामें मिथ्याबन्धकी सामग्री है नहीं । सो वार्त्ता बनै नहीं काहेते ? बन्ध मिथ्या, ताकी ज्ञानसे निवृत्ति बने है ।

और पूर्व कह्या जो-" सत्यवस्तु का ज्ञान संस्कार द्वारा सर्प अध्यासका हेतुहै। जैसे सत्यसर्प का ज्ञानसंस्कार द्वारा सर्प अध्यास का हेतु है । तैसे सत्यबन्ध होवे तो

सत्यबन्धका ज्ञान होवे, सो सिद्धान्त में अनात्मवस्तु कोई सत्य है नहीं। याते सत्यवस्तुका ज्ञान जो संस्कार द्वारा अध्यास की सामग्री, ताका अभाव होनेते बन्ध अध्यास नहीं" किन्तु सत्यहै सो शङ्का बने नहीं काहेते? अध्यास विषे संस्कार द्वारा सत्य वस्तु का ज्ञान हेतु नहीं किन्तु वस्तुका ज्ञान हेतु है। सो वस्तु सत्य होवे अथवा मिथ्या होवे, जो सत्यवस्तु का ज्ञान ही अध्यास विषे हेतु होवे तो जो पुरुषने सत्य छुहारे का वृक्ष नहीं देखा होवे और बाजीगर का बनाया मिथ्या छुहारे का वृक्ष बहुत बार देखा होवे, और बाजीगरसे ऐसा सुना होवे, जो-"यह छुहारेका वृक्ष है" और खजूर का वृक्ष कभी देखा सुना होवे नहीं, ताकूं खजूर का वृक्ष देखि के छुहारे का अध्यास होवे है, सो नहीं होना चाहिये। काहेते सत्य छुहारे का ताकू ज्ञान है नहीं और हमारी रीति से तो बाजीगरका देखा जो मिथ्या छुहारा ताका ज्ञानहै, याते अध्यास बने है। याते सजातीय वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार ही अध्यासके हेतु हैं। सो संस्कारका जनक ज्ञान और ताका विषय मिथ्या होवे, अथवा सत्य होवे, संस्कार-द्वारा ज्ञान हेतु है। और "ज्ञानजन्य संस्कारहेतु है" या कहनेमें अर्थका भेद नहीं। एकही अर्थहै काहेते? संस्कार द्वारा ज्ञान हेतु है। याका अर्थ यह है-ज्ञान संस्कार का हेतु है और संस्कार अध्यास का हेतु है, याते संस्कार-

द्वारा ज्ञानकूं हेतुता कहने ते ही ज्ञानजन्य संस्कारकूं ही अध्यासविषे हेतुता सिद्ध होवे है।

और केवल वस्तुके ज्ञानकूँ ही अध्यासविषे हेतु कहैं तो बने नहीं, काहेते ? यह नियम है-"जो हेतु होवे सो कार्य से अव्यवहित पूर्वकाल में होवे है' जैसे घटका हेतु दण्ड है, सो घटसे अव्यवहित पूर्वकाल में होवे है। तैसे जो अध्यासका हेतु ज्ञान अङ्गीकार करे सो भी अध्यास ते अव्यवहित पूर्वकाल में चाहिये, सो बने नहीं। काहे ते ? जो पुरुषकूं सर्प का ज्ञान होवे ताकूँ ज्ञान से महीने पीछे भी रज्जुविषे सर्पका अध्यास होवे है, सो नहीं होना चाहिये। काहेते ? जो रज्जुमें सर्प अध्यासका हेतु सर्प का ज्ञान है, ताका नाश होगया, याते अव्यवहितपूर्वकाल में है नहीं, यद्यपि पूर्वकाल में तो है। तथापि अव्यवहित पूर्वकालमें है नहीं। अन्तरायरहितका नाम अव्यवहित है और अन्तराय सहित का नाम व्यवहित है और जो ऐसे कहैं--कार्यते पूर्वकालमें हेतु चाहिये। व्यवहित पूर्व कालमें होवो, अथवा अव्यवहित पूर्वकाल में होवो और " कार्यते अव्यवहित पूर्वकाल में ही हेतु होवे है' ऐसा नियम अङ्गीकार करेतो "विहितकर्म स्वर्गप्राप्ति का हेतु है और निषिद्धकर्म नरकप्राप्ति का हेतु है' यह शास्त्र की वार्त्ता अप्रमाण हो जावेगी। काहेते ? कायिक, वाचिक, मानसिक क्रियाका नाम कर्म है। सो क्रिया अनुष्ठानकाल

लसे अनन्तर ही नाश होजावे है और स्वर्ग नरक कालान्तरमें होवे है. यातें स्वर्ग नरक प्राप्तिके अव्यवहितपूर्वकालमें विहित कर्म और निषिद्ध कर्म हैं नहीं, जैसे व्यवहितपूर्वकाल के शुभकर्म और अशुभकर्म, स्वर्ग प्राप्ति और नरकप्राप्तिके हेतु हैं। तैसे-"व्यवहित पूर्वकालमें जो सर्प का ज्ञान, सो भी रज्जु में सर्प अध्यास का हेतु है, सो वार्ता बने नहीं काहेते? जैसे नष्ट, ज्ञान और नष्ट कर्मतें अध्यास और स्वर्ग नरककी प्राप्ति अङ्गीकार करी, तैसे मृतकुलाल और नष्टदण्ड से भी घट होना चाहिये काहेते? जैसे रज्जुमें सर्प अध्यासते व्यवहित पूर्वकालमें सर्पका ज्ञान है, स्वर्ग नरककी प्राप्तिते व्यवहित पूर्वकाल में शुभ अशुभ कर्म हैं, तैसे घटतें व्यवहित पूर्वकाल में नष्टदण्ड और मृतकुलाल भी हैं तिनतें भी घट होना चाहिये, सो होवे नहीं यातें व्यवहितपूर्वकालमें जो वस्तु होवे सो हेतु नहीं किन्तु अव्यवहित पूर्वकाल में जो वस्तु होवे सोई हेतु होवे है और शुभ अशुभकर्म भी कालान्तरभावी जो स्वर्गनरक की प्राप्ति ताके हेतु नहीं किन्तु शुभ कर्म तो अपनेतें अव्यवहित उत्तरकाल में धर्म की उत्पत्ति करे हैं अशुभकर्म अधर्मकी उत्पत्ति करे हैं सो धर्म अधर्म अन्तःकरणविषे रहे हैं तिनतें कालान्तरमें स्वर्ग और नरक की प्राप्ति होवे है, तासे अनन्तर धर्म अधर्मका नाश होवे है, इस अभिप्राय से ही शास्त्र में शुभकर्म और अशुभकर्म

अपूर्वद्वारा फलके हेतु कहे हैं, साक्षात् नहीं अपूर्व नाम धर्म अधर्म का है और अदृष्ट भी तिनकूँ कहे हैं और पुण्यपाप भी तिनकूँही कहैं। और कहूँ धर्म अधर्म की जनक जो शुभ अशुभक्रिया है, ताकूँ भी धर्म अधर्म कहे हैं, जैसे कोई शुभ क्रिया करता होवे ताकूँ लोक ऐसा कहे हैं-'यह धर्म करे है' और अशुभक्रिया करने वालेकूँ ऐसा कहे हैं यह-'अधर्म करे है' सो शुभ अशुभ क्रिया का नाम धर्म अधर्म नहीं किन्तु शुभ अशुभ क्रिया धर्म अधर्मकी जनक है। याते क्रियाकूँ धर्म अधर्म कहैं हैं, जैसे आयुका वर्धक जो घृत है। ताकूँ शास्त्रमें आयु कहे हैं, इस रीति से अव्यवहित पूर्वकाल में हेतु होवे है,

और रज्जु में सर्पअध्यासते अव्यवहित पूर्व काल में सर्पका ज्ञान है नहीं, याते सर्पका ज्ञान रज्जुमें सर्पअध्यास का हेतु नहीं, किन्तु सर्पज्ञानजन्य संस्कार ही रज्जु में सर्पअध्यासका हेतु है, तैसे सीपी में रूपा अध्यास के हेतु रूपज्ञानजन्म संस्कार है, इसी रीति से सारे संस्कार ही अध्यासके हेतु हैं और वस्तुका ज्ञान संस्कार का हेतु है। जैसे शुभ अशुभ कर्मजन्य धर्म अधर्म अन्तःकरणमें रहे हैं, तैसे वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारभी अन्तःकरण में रहे हैं जा पुरुषकूँ पूर्वसर्पका ज्ञान नहीं हुआ ताके भी और वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार तो हैं, परन्तु रज्जुमें सर्प का अध्यास होवे नहीं, जा वस्तु का अध्यास होवे, ताके

सजातीय वस्तुके ज्ञानका संस्कार अध्यास का हेतु है। विजातीय के जानके संस्कार हेतु नहीं सर्प के सजातीय सर्प होवे हैं और नहीं, सर्प का जाकूँ पूर्व ज्ञान नहीं अन्यवस्तु का ज्ञान है। ताकूँ सजातीय वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार नहीं, याते रज्जुमें सर्प का अध्यास होवे नहीं, सूक्ष्म अवस्थाका नाम संस्कार है, इस रीतिसे अध्यास ते पूर्व जो सजातीय वस्तु का ज्ञान ताके संस्कार अध्यास के हेतु हैं 'और सत्यवस्तु के ज्ञान के संस्कारही अध्यास के हेतु हैं, मिथ्यावस्तु के ज्ञान के नहीं' यह नियम नहीं। यह वार्त्ता छुहारे के दृष्टान्त से प्रतिपादन करी है, याते मिथ्या वस्तु के ज्ञानजन्य संस्कार भी अध्यास के हेतु है।

—सो बन्धके अध्यासविषे भी बने हैं। काहेते? जो अहङ्कारसे आदि लेके अनात्म और ताका ज्ञान बन्ध कहिये है। 'सो अनात्मवस्तु, रज्जु के सर्पकी न्याईं जब प्रतीत होवे तबही है और प्रतीत नहीं होवे तब नहीं' यह हमारा वेदसम्मत सिद्धान्त है। इस कारणतेही सुषुप्तिविषे सर्वप्रपञ्च का अभाव प्रतिपादन किया है सुषुप्ति में कोई पदार्थ प्रतीत होवे नहीं। याते सर्वप्रपञ्चका सुषुप्तिमें लय होवे है। इसका नाम शास्त्र में दृष्टिसृष्टिवाद कहे है, या अर्थकूँ आगे प्रतिपादन करेंगे, इस रीतिसे अनन्त अहङ्कारादिक और तिन के ज्ञान उत्पन्न होवे हैं और लय

होवे हैं। अहङ्कारादिक और तिनके ज्ञानके साथही उत्पत्ति होवे है। तब अहङ्कारादिकों की उत्पत्ति होवे है। और प्रतीति का लय होवे तब अहङ्कारादिकनका लय होवे है, अहङ्कारादिक और तिनके ज्ञानका नाम अध्यासहै। यह वार्त्ता अनिर्वचनीयख्याति के प्रतिपादन में कहैंगे, यद्यपि अहङ्कार साक्षी भास्य है, यह वार्त्ता विषय प्रतिपादन में कही है, याते अहङ्कार की प्रतीति साक्षी रूप है, ताकी उत्पत्ति और लय बने नहीं तथापि अहङ्कार का भी वृत्ति सेही साक्षी प्रकाश करे है। साक्षात नहीं, ता वृत्तिकी उत्पत्ति लय होवे है। याते अहङ्कार की प्रतीतिकी उत्पत्ति लय कहियेहै। इस रीति से उत्तर २ अहङ्कारादिक और तिनके ज्ञानकी जो उत्पत्ति, ताके हेतु पूर्व २ मिथ्या अहङ्कारादिकों के ज्ञानजन्य संस्कार बने हैं।

और जो ऐसे कहैं—उत्तर उत्तर अहङ्कारादिकों के अध्यास विषे तो यद्यपि पूर्व २ अध्यास के संस्कार हेतु बने हैं तथापि प्रथम उत्पन्न जो अहङ्कार और ताका ज्ञान ताके हेतु संस्कारसे बने नहीं काहेते ? जो ताके पूर्व और अहङ्कार उत्पन्न हुआ होवे तो ताके ज्ञानके संस्कार भी होवे सो प्रथम अहङ्कारसे पूर्व और अहङ्कार हुआ नहीं तैसे-'सर्व वस्तु के प्रथम अध्यास के हेतु संस्कार बने है नहीं' यह शङ्का भी सिद्धान्तके अज्ञानसे होवे है, काहेते ? यह वेदान्त का सिद्धान्त है—एक ब्रह्म, और ईश्वर, जीव

अविद्या और अविद्याका चैतन्यसे सम्बन्ध और अनादि वस्तु का भेद यह षट्‌वस्तु स्वरूप से अनादि हैं जा वस्तु की उत्पत्ति होवे नहीं, सो वस्तु स्वरूप से अनादि कहिये है। इन षट्‌की उत्पत्ति होवे नहीं, याते स्वरूपसे अनादि है और अहङ्कारादिकन की तो श्रुति में उत्पत्ति कही है, याते स्वरूपसे अनादि यद्यपि अहङ्कारादि नहीं तथापि प्रवाहरूपते सर्व वस्तु अनादि हैं, सर्व वस्तु का प्रवाह दूर होवे नहीं। अनादि कालमें ऐसा समय कोई पूर्व हुआ नहीं जा समय कोई घट होवे नहीं, याते घट का प्रवाह अनादि है इस रीति से सर्व वस्तु का प्रवाह अनादि है, प्रलयकालमें भी सुषुप्ति की न्याईं सर्व वस्तु संस्काररूप होयके रहे हैं। याते प्रपञ्च का प्रवाह अनादि होनेते प्रपञ्च अनादि कहिये है, ऐसा जाकूँ ज्ञान नहीं है, ताकूँ यह शङ्का होवे है-'जो प्रथम अध्यास के हेतु संस्कार बने नहीं।' और सिद्धान्त में किसी अहङ्कारादिक वस्तु का अध्यास सब से प्रथम हैं नहीं किन्तु अपने से पूर्व-पूर्व अध्यासते सम्पूर्ण उत्तर है, याते शङ्का बने नहीं। इस रीतिसे सजातीयके पूर्व ज्ञानजन्य संस्कारसे अहङ्कारादिक बन्ध का अध्यास बने है, यह प्रथम पादका अर्थ है।

(प्रमेहदोष का खण्डन)

और जो पूर्व कहया 'तीन प्रकारका दोष अध्यास का हेतु है और बन्ध के अध्यासमें कोई भी दोष बने नहीं'

याते बन्ध सत्य है' सो वो शङ्का बने नहीं, काहेते? जो दोषते विना अध्यास होवे नहीं, तो अध्यास का हेतु दोष होवे, जैसे तुरी तन्तु वेमा पटके हेतु है। तुरी तन्तु वेमा होवे तो पट होवे और नहीं होवे तो पट होवे नहीं। तैसे दोष अध्यासके हेतु नहीं। काहेते? सादृश्यदोष विना आत्मामें जाति का अध्यास होवे है। ब्राह्मणत्व से आदि लेके जो जाति है सो स्थूलशरीर का धर्म है, आत्माका और सूक्ष्म शरीरका धर्म नहीं। काहेते? और शरीरकूँ प्राप्त होवे, तब आत्मा और सूक्ष्म शरीर तो जो पूर्व शरीर में है सोई रहे है और जाति और भी होवे है यह नियम नहीं, 'जो पूर्व शरीरमें जाति है, सोई उत्तर शरीरमें होवे है' आत्मा का अथवा सूक्ष्म शरीर का धर्म जाति होवे तो उत्तर शरीर विषे और जाति नहीं होनी चाहिये। याते आत्माका और सूक्ष्मशरीर का धर्म जाति नहीं, किन्तु, स्थूलशरीरका धर्म है। और 'मैं द्विजाति हूँ' इस रीति से ब्राह्मणत्व, क्षत्रित्व, वैश्यत्व जाति का आत्मा में भान होवे है, आत्मामें जातिका अध्यास है जैसे रज्जु में सर्प परमार्थसे नहीं है और भान होवे है, याते रज्जुमें सर्पका अध्यास है तैसे आत्मामें जाति नहीं है और भान होवे है। याते आत्मामें जातिका अध्यास है और आत्मा के साथ जातिका सादृश्य नहीं है काहेते? आत्मा व्यापक है और जाति परिच्छिन्न है, आत्मा प्रत्यक् है और

परका वार

जाति पराक् है। आत्मा विषयी है और जाति विषय है इस रीतिसे आत्मा में विरोधी जाति का भी अध्यास होवे है, द्विजाति नाम त्रिवर्ण का है। जैसे आत्म विषे सादृश्यते विना जाति का अध्यास होवे है, तैसे सादृश्य विना अहङ्कारादिक बन्धका अध्यास भी आत्मामें बनेहै, सादृश्य दोष अध्यास का हेतु नहीं जो सादृश्य दोष अध्यास का हेतु होवे, तो आत्मा में जाति का अध्यास नहीं होना चाहिये और शंखमें पीतकटुता का अध्यास नहीं होना चाहिये काहते? श्वेत और ताका अध्यास नहीं हुआ चाहिये और शंख में पीतता का अध्यास नहीं हुआ चाहिये और मिश्रीमें पीतका विरोध है, सादृश्य नहीं। तैसे मधुर और कटु का विरोधहै, सादृश्य नहीं, याते अधिष्ठान में मिथ्या वस्तु का सादृश्य दोष अध्यास का हेतु नहीं।

तैसे प्रमाताका; लोभ भयादिक दोष भी अध्यास का हेतु नहीं काहेते? जो लोभरहित वैराग्यवान् पुरुष है ताकूं भी सीपीमें रूपेका अध्यास होवे है, सो नहीं हुआ चाहिये याते प्रमाता का दोष भी अध्यास का हेतु नहीं और प्रमाण का दोष भी अध्यास का हेतु नहीं। काहेते? सर्व पुरुषनकूं रूपरहित जो आकाश है सो नील रूप वाला प्रतीत होवे है और कराहके तथा तम्बूके आकार प्रतीत होवे हैं, याते सर्वकूं आकाशमें नीलरूप का कराह का

तथा तम्बू का अध्यास है और मत्रके नेत्र रूप प्रमाण में दोष कहना बने नहीं याते प्रमाण का दोष अध्यास का हेतु नहीं, आकाशमें नीलादिकोंका जो अध्यासहै ताके विषे एक प्रमाण दोषकाही अभाव नहीं हैं, किन्तु सर्व-दोषों का अभाव है सादृश्य भी नहीं और प्रमाता का दोष भी नहीं, जैसे सर्वदोषके अभावते भी आकाश में नीलादिकन का अध्यास होवे है, तैसे आत्मा विषे भी बन्धका अध्यासदोषविनाही बनेहै याते 'दोष के अभावते बन्धअध्यास रूप नहीं' यह शंका बने नहीं काहेते ? सब दोषका अभाव भी है, तौ भी आकाशमें नीलादिकन का अध्यास सर्व पुरुषन कूँ होवे है याते दोष अध्यास का हेतु नहीं कवित्त के चतुर्थपाद का यह अर्थ है— जिनके कोई पित्तप्रभृति कहिये पित्तसे आदि लेके, अक्षेम कहिये दोष नहीं है तिनको भी आकाश नीलरूपवान्, कटाहाकार और तम्बू के आकार भासे है याते प्रमाण-दोष अध्यास का हेतु नहीं क्षेम नाम कुशलका है ताका विरोधी जो प्रमाण दोष सो अक्षेम कहिये है ज्ञान का साधन जो इन्द्रिय सो प्रमाण कहिये है इस रीति से दोष अध्यास के हेतु नहीं याते बन्ध के अध्यासमें दोष की अपेक्षा नहीं और संक्षेप शारीरकमें बंधके अध्यास समय दोष भी प्रतिपादन किये हैं विस्तार के भयसे हमने नहीं लिखे और अध्यास के जो हेतु जो दोष होवे तो दोष

निरूपण करते सो दोष अध्यासके हेतु नहीं हैं, याते भी दोष का निरूपण नहीं किया ॥ १३ ॥

कारणाध्यासनिरूपण-दोहा।

चित् सामान्य प्रकाश ते, नहीं नशे अज्ञान।
लहै प्रकाश सुषुप्ति में, चेतनते अज्ञान ॥ १४ ॥

पूर्व कह्या जो-'विशेषरूप से अज्ञातवस्तु में अध्यास होवे है और आत्मा स्वयं प्रकाश है, ताके विषे अज्ञान बने नहीं काहेते? तमका और प्रकाशका परस्पर विरोध है। याते जैसे अत्यन्तप्रकाश में स्थित रज्जु में सर्प का अध्यास होवे नहीं तैसे स्वयं प्रकाश आत्मा में बन्ध का अध्यास बने नहीं' सो शंका भी बने नहीं काहे ते? यद्यपि आत्मा प्रकाशरूप है, तथापि आत्मा का स्वरूप प्रकाश अज्ञान का विरोधी नहीं, जो आत्म स्वरूप प्रकाश अज्ञान का विरोधी होवे तौ सुषुप्तिमें प्रकाशरूप आत्माविषे अज्ञान प्रतीत होवे है, सो नहीं हुआ चाहिये घोर निद्रा से जाग्या जो पुरुष है ताकूँ ऐसा ज्ञान होवे है 'मैं सुख से सोया और कुछ भी नहीं जानता हुआ' या ज्ञानका सुख और अज्ञान विषय है। सो सुख और अज्ञान का जो जाग्रत में ज्ञान है, सो प्रत्यक्षरूप नहीं। काहेते? जो ज्ञानका विषय सन्मुख होवे, सो ज्ञान प्रत्यक्ष रूप होवे है और जाग्रत् काल में सुख और अज्ञान है

नहीं, याते जाग्रतमें सुख और अज्ञान का ज्ञान प्रत्यक्ष-रूप नहीं, किन्तु स्मृतिरूप है, सो स्मृति अज्ञातवस्तु की होवे नहीं किन्तु ज्ञात वस्तुकी होवे है याते सुषुप्ति में सुख और अज्ञानका ज्ञान है, सो सुषुप्तिका ज्ञान अन्तःकरण और इन्द्रियजन्यतो है नहीं काहेते? सुषुप्तिमें अन्तःकरण और इन्द्रियका अभाव है, याते सुषुप्ति में आत्मस्वरूप ही ज्ञानहै, ज्ञान और प्रकाशका एकही अर्थ है, इस रीतिसे सुषुप्तिमें आत्मा प्रकाशरूप है, ता प्रकाशरूप आत्मा से स्वरूप सुख और अज्ञान की प्रतीति होवे है, जो आत्म-स्वरूप प्रकाश अज्ञान का विरोधी होवे तो सुषुप्ति में अज्ञानकी प्रतीतिनहीं होनी चाहिये याते आत्मा प्रकाश-रूप तो है, परन्तु आत्मा का स्वरूप प्रकाश, अज्ञानका विरोधी नहीं, उलटा आत्माका स्वरूप प्रकाश, अज्ञान अज्ञान का साधक है इस अभिप्रायते ही वेदान्तशास्त्र में कहा है–' सामान्य चैतन्य अज्ञान का विरोधी नहीं ।' किन्तु विशेष चैतन्य ही अज्ञान का विरोधी है, व्यापक जो चैतन्य है, सो सामान्य चैतन्य कहिये है और वृत्ति में स्थित जो चैतन्य, सो विशेष चैतन्य कहिये है, जैसे काष्ठ में स्थित जो सामान्य अग्नि है, सो अन्धकार का विरोधी नहीं और मथनसे प्रकट किया जो अग्नि है सो बत्तीमें स्थित होयके अन्धकारका विरोधी है तैसे व्यापक चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं भी है परन्तु वेदान्त के

विचारसे अन्तःकरणकी जो ब्रह्माकार वृत्ति हुई है, ताके विषे स्थित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है। इस रीति से केवल चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं किन्तु वृत्तिसहित चैतन्य अज्ञान का विरोधी है, अथवा चैतन्य सहित वृत्ति अज्ञान का विरोधी है।

प्रथम पक्ष में तो अज्ञानके नाश का हेतु चैतन्य है, और वृत्ति सहायक है, दूसरे पक्षमें अज्ञानके नाश का हेतु वृत्ति है और चैतन्य सहायक है, यह अवच्छेद वाद की रीतिहै और आभासवादसे तो सामान्य चैतन्य की न्याईं विशेषचैतन्यभी अज्ञानका विरोधी नहीं किन्तु वृत्तिसहित आभास अथवा आभास सहित वृत्ति अज्ञान का विरोधी है। इस रीति से प्रकाशरूप चैतन्य अज्ञान का विरोधी नहीं याते चैतन्य के आश्रित अज्ञान है, ता अज्ञान से आवृत जो आत्मा ताके विषे बन्ध का अध्यास बने है।

और पूर्व कह्या जो—'सामान्य रूपते ज्ञात और विशेष रूपते अज्ञात वस्तु में अध्यास होवे है और आत्मा में सामान्य विशेष भाव है नहीं। याते निर्विशेष आत्मा ज्ञात और अज्ञात बने नहीं' ताके विषे अध्यास का असम्भव है, सो वार्त्ता भी बने नहीं काहेते? 'आत्मा है' यह सर्वकूँ प्रतीति होवे है। आत्मा नाम अपने स्वरूप का है। 'मैं नहीं हूँ' यह किसीकूँ प्रतीति होवे नहीं किन्तु 'मैं हूँ' यह प्रतीति सर्वकूं होवे है, याते सतरूप

करके आत्मा सर्वकूँ भान होवे है और चैतन्य आनन्द व्यापक नित्यशुद्ध नित्य मुक्तिरूप आत्मा है' यह सर्वकूँ प्रतीति होवे नहीं याते चैतन्य आनन्द व्यापक नित्य-शुद्ध नित्यमुक्त रूपते आत्मा अज्ञातहै और सत्‌रूप करके ज्ञात है, यह वार्त्ता अनुभव सिद्ध है। सो अनुभव-सिद्ध वार्त्तायुक्तिसे दूर होवे नहीं सर्वकूँ प्रतीति जो होवे है आत्माका सत्‌रूप, सो तो सामान्यरूप है । और केवल ज्ञानीकूँ जो प्रतीत होवे चेतन आनन्दादिक, सो विशेषरूप है। जो अधिक काल में अधिक देशमें होवे सो सामान्यरूप कहिये और न्यून देश में न्यून काल में होवे, सो विशेषरूप कहिये है यद्यपि आत्माका स्वरूप ही चेतन आनन्दादिक है याते सतकी न्याईं चेतन आनन्दादिक सर्वत्र व्यापक है। सतकी अपेक्षाते चेतन आनन्दादिकोंकूं, न्यूनदेशमें और चेतन आनन्दादिकन की अपेक्षाते सत्‌रूपकूं अधिकदेशमें कहना बने नहीं। याते सत्‌ रूप आत्मा का सामान्य अंश है और चेतन आनन्दादिक विशेष अंश है, यह कहना भी बने नहीं, तथापि सतकी प्रतीति सर्वकूं अविद्याकाल में भी होवे है और 'चेतन, आनन्दरूप आत्मा है' यह प्रतीति सर्वकूं अविद्या काल में होवे नहीं केवल ज्ञानीकूं ही होवे है। अविद्याकालमें चेतन, आनन्द, मुक्तता, शुद्धता भी है परन्तु प्रतीति होवे नहीं याते अनहुए के समान है ।

इस अभिप्रायते चेतन्य आनन्दादिक न्यून काल वृत्ति कहिये है और सत्रूप अधिक काल वृत्ति कहिये है। इस रीति से सत्स्वरूप का और चेतन आनन्दादिकोंका सामान्यविशेष भाव नहीं भी है, परन्तु अल्पकाल और अधिक काल में प्रतीत होनेते सामान्य विशेष भाव की न्याईं है, या कारणते आत्माका सत्रूप सामान्य अंश कहिये है और चेतन आनन्दादिक विशेष अंश कहियेहै।

और आत्मा निर्विशेष है, या सिद्धान्तकी भी हानि नहीं जो आत्मामें सामान्य विशेषभाव अङ्गीकार करे तो 'निर्विशेष आत्मा है' या सिद्धान्त की हानि होवे सो सामान्य विशेष भाव अङ्गीकार किया नहीं किन्तु अविद्यासे सामान्य विशेष की नाईं प्रतीति होवे है, याते सामान्यविशेष भाव कहे है। इस रीतिसे सत्यरूप करिके ज्ञात और चेतन, आनन्द, नित्यशुद्ध, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप करके अज्ञात, आत्मा विषे बन्धन का अध्यास बने है, अध्यासरूप बन्ध की ज्ञान से निवृत्ति भी बने है, याते ग्रन्थ का प्रयोजन सम्भव है।

और पूर्व कहया जो-"निषिद्ध काम्यकर्म का त्याग करके नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित्त कर्म करे याते निषिद्ध कर्मके अभावते नीचलोककूँ प्राप्त होवे नहीं, और काम्य कर्मके अभावते उत्तमलोककूं प्राप्त होवे नहीं और नित्य-नैमित्तिककर्म के नहीं करनेते जो पाप होवे सो तिनके

करनेते होवे नहीं और इस जन्मविषे अथवा अन्य जन्म विषे पूर्व करे जो पाप हैं, तिनका साधारण और असाधारण प्रायश्चित्तसे नाश होवे है और पूर्व करे जो काम्य कर्म हैं तिनके फलकी इच्छाके अभावते मुमुक्षुकूँ तिनका फल होवे नहीं याते मुमुक्षुकूँ ज्ञान से बिनाही जन्म का अभाव रूप मोक्ष होवे है' सो बने नहीं काहेते ? नित्य-नैमित्तिक कर्मका भी स्वर्गरूप फल है, यह वार्ता भाष्य कारने युक्ति और प्रमाणसे प्रतिपादन करीहै याते नित्य-नैमित्तिक कर्म से उत्तम लोककूं प्राप्त होवेगा, जन्म का अभाव बने नहीं और नित्यनैमित्तिक कर्म का जो फल अङ्गीकार नहीं करे तो नित्यनैमित्ति कर्म का बाधक जो वेद है सो निष्फल होवेगा काहेते ? जो नित्य नैमित्तिक कर्मके नहीं करनेते पाप होवे तो ता पाप की अनुत्पत्ति तिनका फल बने सो नित्य नैमित्तिककर्म के नहीं करनेते पाप होवे नहीं काहेते ? जो नित्यनैमित्तिक कर्म का नहीं करना सो अभावरूप है और पाप भावरूप है, अभावसे भावकी उत्पत्ति होवे नहीं याते नित्यनैमित्तिक कर्म के नहीं करनेते पाप होवे है, यह कहना बने नहीं जो नित्यनैमित्तिककर्म के नहीं करने से पाप की उत्पत्ति अङ्गीकार करे तो " अभावते भाव की उत्पत्ति होवे नहीं' यह दूसरे अध्याय में भगवान् ने कहा है, तासे विरोध होवेगा, याते नित्यनैमित्तिक कर्म के अभावते

भावरूप पाप की उत्पत्ति बने नहीं इस रीति से नित्य-नैमित्तिक कर्म का पाप की अनुत्पत्ति फल नहीं, किन्तु नित्यनैमित्तिक कर्म के बिना भी पापकी अनुत्पत्ति सिद्ध है याते नित्यनैमित्तिक कर्म जो स्वर्गरूप फल अङ्गीकार नहीं करे तो कर्म निष्फल होवेंगे और निष्फल जो नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिनका बोधक वेद भी निष्फल होवेगा याते नित्यनैमित्तिक कर्म से भी स्वर्गफल होवे है।

और पूर्व कह्या—"जन्मान्तर के जो काम्य कर्म हैं तिनका इच्छाके अभावते फल होवे नहीं सो वार्ता भी बने नहीं। काहेते? कर्मरूपी बीज से दो अंकुर उत्पन्न होवे हैं—एक तो वासना और दूसरा अदृष्ट, धर्म अधर्म का नाम अदृष्ट है। शुभ कर्म से तो शुभवासना और धर्मरूप अंकुर होवे है और अशुभ कर्म से अशुभ वासना और अधर्मरूप अंकुर होवे है, शुभवासना से तो आगे शुभ कर्म में प्रवृत्ति होवे है और धर्म से सुखका भोग होवे है, इस रीति से अशुभवासना से अशुभकर्म में प्रवृत्ति होवे है और अधर्म से दुःख का भोग होवे है, इस रीतिसे वासना रूप और अदृष्टरूप अंकुर कर्म रूपी बीज से होवे है, तिनविषे "वासनारूप अंकुर का तो उपाय से नाश होवे है और अदृष्टरूप अंकुर का फल की उत्पत्ति से बिना किसी प्रकार से भी नाश

होवे नहीं' यह शास्त्र का निर्णय है, "अशुभ कर्म से उत्पन्न हुवा जो अशुभवासना रूप अंकुर है ताका तो सत्सङ्ग आदिक उपायनते नाश होवे है और शुभ कर्म से उत्पन्न जो हुई शुभवासना, ताका कुसङ्ग आदिकोंते नाश होवे है। शास्त्रमें जितना पुरुषार्थ कह्या है, तामें प्रवृत्तिकी हेतु जो वासना ताका ही नाश होवे है, याते पुरुषार्थ भी सफल है और भोगका हेतु जो अदृष्ट ताका नाश होवे नहीं' याते 'फल दिये बिना कर्मकी निवृत्ति होवे नहीं' यह वार्ता जो शास्त्र में कही है, तासे भी विरोध नहीं इस रीति से अज्ञानी कूँ फल भोग बिना कर्मकी निवृत्ति बने नहीं और ज्ञानीकूँ तो भोगसे बिना भी कर्मकी निवृत्ति बने है। काहेते ? कर्म और कर्ता तथा फल परमार्थसे तो हैं नहीं किन्तु अविद्या से कल्पितहैं ता अविद्या का ज्ञान विरोधी है याते अविद्या कल्पित जो कर्मादिक हैं तिनका भी ज्ञान से नाश होवे है जैसे स्वप्नविषे निद्रासे जो पदार्थ प्रतीत होवे हैं तिनका जाग्रत् विषे निद्रा की निवृत्ति से अभाव होवे है तैसे अविद्या-रूप निद्रासे प्रतीत जो होवे है कर्मकर्ता, फल तिनका भी ज्ञानदशारूप जाग्रत विषे अविद्या की निवृत्ति से अभाव होवे है और ज्ञान बिना अभाव होवे नहीं और इच्छा के अभावते जो कर्म का फल भोग होवे नहीं तो ईश्वर का संकल्प मिथ्या होवेगा। काहेते ? 'फल भोग

विना अज्ञानी के कर्मकी निवृत्ति होवे नहीं' यह ईश्वर का सङ्कल्प है जो इच्छा के अभावतें करें कर्म का फल होवे नहीं, तो ईश्वर का सङ्कल्प मिथ्या ही होवेगा और 'सत्यसङ्कल्प ईश्वर है' यह वार्ता शास्त्र में प्रसिद्ध है यातें 'इच्छा के अभावतें पूर्व कर काम्यकर्म का फल होवे नहीं' यह वार्ता विरुद्ध है, जो इच्छा के अभावतें ही काम्यकर्मफल नहीं होवे तो अशुभकर्म का फल किसी कूँ भी नहीं होना चाहिये। काहेतें अशुभकर्म का फल दुःख है, ताकी किसीकूं भी इच्छा है नहीं, यातें ज्ञान विना कर्म के फल का अभाव होवे नहीं।

और जो पूर्व कह्या—जैसे कर्म के अनुष्ठान काल में जो इच्छारहित पुरुष है ताकूँ कर्म का फल वेदान्तमतमें अङ्गीकार नहीं कर्या, तैसे कर्मके अनुष्ठानसे अनन्तभी जो पुरुषकी इच्छा दूर होय जावे तो कर्म का फल होवे नहीं' सो वार्ता भी वेदान्तमतकूँ नहीं जानके कही है। काहेते? फलकी इच्छा सहित जो कर्म करे अथवा फलकी इच्छारहित जो कर्म करे है, ताकूँ कर्मका फल भोग तो निश्चय होवे है, परन्तु इच्छारहित कर्मसे अन्तःकरणशुद्ध होवे है और इच्छासहित जो कर्म करे है, ताकूँ केवल भोग तो होवे है, परन्तु अन्तःकरण शुद्ध होवे नहीं, जो इच्छारहित कर्म करनेतें शुद्ध अन्तःकरण होयके श्रवणतें ज्ञान होय जावे, ताकूँ तो कर्म का फल होवे नहीं और

"जाने कर्म तो फलकी इच्छारहित किये हैं। परन्तु श्रवण के अभावते अथवा किसी अन्य निमित्तते ज्ञान होवे नहीं। ताकूँ तो इच्छारहित कर्मके फल का भोग दूर होवे नहीं' यह वेदान्तका सिद्धान्त है, याते ज्ञानके बिना धर्म का फल भोग दूर होवे नहीं।

और पूर्व कह्या जो-"प्रायश्चित्त से सम्पूर्ण अशुभ कर्मों का नाश होवे है' सो वार्ता भी बने नहीं, काहेते? अनन्त कल्पके जो अशुभकर्म हैं तिनका एक जन्मविषे प्रायश्चित बने नहीं और गङ्गास्नान और ईश्वरका नाम उच्चारण से आदि लेके सर्वपाप के नाशक जो साधारण प्रायश्चित कहे हैं सो भी ज्ञान के ही साधन हैं। याते सर्वपाप के नाशक कहे हैं याते ज्ञान से ही सर्व पाप का नाश होवे है।

और पूर्व कह्या जो-'नित्यनैमित्तिककर्म करनेते जो क्लेश होवे है, सो पूर्वसंचित निषिद्धकर्मका फल है याते संचित निषिद्धकर्म का फल और होवे नहीं' सो वार्ता भी बने नहीं काहेते? अनन्त प्रकार के संचित निषिद्ध जो कर्म है तिनका फल भी अनन्तप्रकार का दुःख है, केवल कर्म के अनुष्ठान का क्लेश ही तिनका फल बने नहीं और पूर्व कह्या जो-'सम्पूर्ण संचित काम्यकर्मते एकही शरीर होवे है' सो वार्ता भी बने नहीं काहेते? संचित काम्य कर्म अनन्त हैं तिन का एक जन्म विषे

भोग बने नहीं और एक पुरुषकूँ एक काल में नाना शरीर से जो कह्या सो भी सिद्ध योगी बिना और कूं बने नहीं और 'सिद्धयोगीकूँ भी और तौ सम्पूर्ण सामर्थ्य होवे है, परन्तु ज्ञान बिना मोक्ष तौ होवे नहीं' यह वेद का सिद्धान्त है। इस रीति से काम्य कर्म और निषिद्ध कर्म कूँ त्यागके जो केवल नित्यनैमित्तिक कर्म अज्ञानी करे, ताकूँ नित्यनैमित्तिक कर्म का फल भोगनेके वास्ते और पूर्व जो शुभ अशुभ कर्म करे तिनका फल भोगने वास्ते अनन्त शरीर होवेंगे मोक्ष होवे नहीं याते ज्ञान द्वारा बन्धकी निवृत्ति ग्रन्थ का प्रयोजन बने है, जैसे स्वप्नविषे जो मिथ्या पदार्थ प्रतीत होवे हैं, तिनकी जाग्रत बिना निवृत्ति होवे नहीं; तैसे बन्ध भी मिथ्या प्रतीत होवे है ताकी भी ज्ञानरूप जाग्रत बिना निवृत्ति होवे नहीं।

इस रीतिसे ग्रन्थके अधिकारी विषय प्रयोजन सम्भवे है और अधिकारी आदिकों के सम्भवते सम्बन्ध भी सम्भव है, याते ग्रन्थ का आरम्भ बने है ॥ १४ ॥

दोहा-

दादू दीनदयाल जू, सतगुरु परम प्रकाश।
जामैं मतिकी गति नहीं, सोई निश्चल दास ॥ १५ ॥

इति अनुबन्धविशेषणनिरूपण नाम द्वितीयस्तरङ्गः ।



❀ तृतीयस्तरङ्गः ३ ❀



अथ गुरुशिष्य लक्षण।

गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपण-दोहा।

पेख चारि अनुबन्ध युत, पढ़ै सुनै यह ग्रन्थ।
ज्ञान सहित गुरुसे जु नर, लहै मोक्षकी पन्थ ॥ १ ॥

चारि अनुबन्ध सहित ग्रन्थकूँ जान के ज्ञान सहित गुरुसे जो पुरुष पढ़ै, अथवा एकाग्रचित्त करके सुने, सो पुरुष मोक्षका पन्थ जो ज्ञान है ताकी प्राप्त होय ॥ १ ॥

दोहा।

अनायास मति भूमिमैं, ज्ञान चिमन आवाद।
है इहि कारन कहतहूँ, गुरू शिष्य सम्वाद ॥ २ ॥

गुरु शिष्य के सम्वादसे अर्थनिरूपण करनेमे श्रोताकूँ बोध सुखसे होवे है। इसकारणते गुरुशिष्य के सम्वाद से ग्रन्थ का आरम्भ करिये है ॥ २ ॥

श्रीगुरु लक्षण-चौपाई।

वेद अर्थकूँ भले पिछानै।
आतम ब्रह्मरूप इक जानै ॥
भेद पक्ष की बुद्धि नशावै।
अद्वय अमल ब्रह्म दरशावै ॥
भव मिथ्या मृगतृषा समाना।
अनुभव इमि भाषत नहि आना ॥

सो गुरु दे अद्भुत उपदेशा ।
छेदक शिखा न कुश्चित केशा ॥ ४ ॥

"वेद के अर्थ कूँ भली प्रकार से पिछाने" यह कहने से अधीतवेद आचार्य होवे हैं, यह कहा और जीव ब्रह्मकी एकता निश्चय करके जाने याते आत्म ज्ञान विषे जाकी स्थिति होवे, सो आचार्य होवे हैं, यह कहा जो वेद पढ़ा होवे और ज्ञानविषे जाकी निष्ठा न होवे सो आचार्य नहीं है, ज्ञानविषे जाकी निष्ठा होवे और वेद नहीं पढ़ा सो भी आप तो मुक्त है, परन्तु उपदेश करने योग्य आचार्य नहीं है। काहेते? वाकूँ जिज्ञासु की शङ्का मेटनेका युक्ति नहीं आवे है, जाके चित्त विषे शङ्का उठै नहीं ऐसा जो उत्तम संस्कार वाला जिज्ञासु है, ताके तौ उपदेश करने विषे समर्थ है भी परन्तु सबके उपदेश करने योग्य नहीं, याते आचार्य नहीं किन्तु अधीतवेद होवे और ज्ञानविषे जाकी निष्ठा होवे सो आचार्य कहिये है और शिष्यकी बुद्धि में भान जो होवे पञ्च प्रकार का भेद ताकूँ नाना युक्तिसे दूर करने विषे समर्थ होवे। १-जीव ईशका भेद, २-जीवन का परस्पर भेद, ३-जीव जड़का भेद, ४-ईश जड़ का भेद, ५-जड़जड़ का भेद, यह पञ्चप्रकार के भेद हैं, ताकूँ खण्डन करे। काहेते? भेद भयका हेतु है, याते भेदका निराकरण अवश्य कर्त्तव्य है। भेदका निराकरण करके अद्वय और अमल

कहिये अविद्यादि मल रहित जो ब्रह्म ताकूँ दरशावे कहिये आत्मरूप करके साक्षात्कार करवावे। और सर्व संसारकूँ मिथ्यारूप करके उपदेश करे। सो अद्भुत उपदेश देने वाला आचार्य कहिये है और केवल आप मुण्डन कराइके शिष्यकी शिखा छेदन मात्र करनेवाला, अथवा और कोई सम्प्रदाय के चिह्न मात्र से अङ्कित करने वाला आचार्य नहीं कहिये है॥ ३॥ ४॥

दोहा।

करतमोक्ष भव ग्राहते, दे असि निज उपदेश।
सो दैशिक बुध जन कहत, नहिं कृत गैरिकवेष॥ ५॥

अर्थ स्पष्ट॥ ५॥

दोहा।

दैशिक के लक्षण कहे, श्रुति मुनि वच अनुसार।
सो लक्षण हैं शिष्य के, है जिनते अधिकार॥६॥

शास्त्रके अनुसार दैशिक कहिये गुरु, ताके लक्षण कहे और जिन साधन से ग्रन्थ में अधिकार होवे सो साधन शिष्यके लक्षणहैं याका यह अभिप्राय है:-जो अधिकारी के लक्षण पूर्व कहे सोई लक्षण शिष्य के जानलेने॥६॥

गुरुभक्तिका फल वर्णन-दोहा।

ईश्वरते गुरु में अधिक, धारे भक्ति सुजान।
बिन गुरुभक्ति प्रवीण हूँ, लहै न आतम ज्ञान॥ ७॥

गुरु में ईश्वर से अधिक भक्ति करे। काहेते जो सर्व-

शास्त्र में प्रवीण भी पुरुष होवे, सो भी गुरु के उपदेश विना ज्ञानकूँ प्राप्त होवे नहीं ॥ ७ ॥

जो पूर्व दोहे में बात कही सोई दृष्टान्त से प्रतिपादन करे हैं:-

दोहा।

वेद उदधि विन गुरु लखै, लागै लौन समान।
बादर गुरुमुख द्वार है, अमृत से अधिकान ॥ ८ ॥

वेदरूपी उदधि काहिये जो समुद्र है सो गुरु बिना लोनके समान क्षार है। जैसे क्षारसमुद्र में पैठि के वाके जलकूँ जो पान करे, सो केवल क्षारताकूँ अनुभव करे है और तासूँ क्लेशकूँ प्राप्त होवे है। तैसे गुरुबिना जो वेदके अर्थकूँ विचारे है, सो भेद रूपी क्षारकूँ अनुभव करके जन्ममरणरूपी खेदकूँ प्राप्त होवे है इसी कारण से रामानुज और मध्वसे आदिलेके जो नाना पुरुष हुए हैं, तिन्होंने वेद के अर्थ का विचार भी किया है, परन्तु गुरु द्वारा नहीं किया, याते भेदविषे निश्चय करके जन्ममरण रूपी खेदकूँ ही प्राप्त भये मुक्तिरूप आनन्द उनकूँ प्राप्त नहीं भया। यद्यपि रामानुज आदि जो भये हैं तिन्होंने भी वेद अपने २ गुरुमेंही पढ़िके विचारा है और विचार के व्याख्यान किया है, तथापि जिनके पास उन्हों ने वेद पढ्या सो गुरु नहीं, काहेते ? 'जो जीवब्रह्मकी एकताका उपदेश करे सो गुरु होवे है' यह पूर्व गुरुलक्षण के प्रसङ्ग

में कहि आये और उनके जो पाठक हुए हैं, सो जीव ब्रह्म का भेद उपदेश देने वाला हुए हैं। याते उनके विषे जो गुरुशब्दका प्रयोग करे है सो अर्हन्तके समान करे है जैसे अर्हन्तके शिष्य अर्हन्तकूँ गुरु कहै हैं परन्तु अर्हन्त गुरु पदका विषय नहीं है, तैसे भेदवादी पुरुषोंके जो शिष्य हैं, सो अपने पाठकोंकूँ गुरु कहे हैं, परन्तु सो गुरु नहीं हैं, याते रामानुज से आदि लेके जो भेदवादी हुए हैं, तिन्होंने गुरुद्वारा विचार नहीं किया, इस कारणते भेदमें अभिनिवेशकरके जन्ममरणरूपी क्लेशकूँ ही प्राप्त भये। तैसे और भी जो कोऊ पूर्वलक्षणयुक्त गुरु से बिना आपही वेद के अर्थ का विचार करे, अथवा भेदवादी पुरुष से पढ़िके विचारे सो भी भेदरूपी क्षारकूँ अनुभव करके जन्ममरणरूपी क्लेशकूँ ही अनुभवकरे है। यह दोहे के पूर्वार्द्ध का अर्थ है और बादररूप ब्रह्मवित् गुरुके मुख द्वारा सुनिके विचारे, ताकूँ अमृत से भी अधिक आनन्द का हेतु वेद होवे है। जैसे समुद्र का जल स्वरूप से क्षार है और बादर द्वारा मधुर होवे है, तैसे वेद का अर्थ ब्रह्मज्ञानी गुरु द्वारा आनन्द का हेतु है ॥ ८ ॥

पूर्व दोहे में यह बात कही जो—"गुरु से पढ्या जो वेद का अर्थ है। ताके विचारसे मुक्तिरूपी फल प्राप्त होवे है, तासों गुरु ज्ञानी होवे, अथवा अज्ञानी होवे, ऐसा विशेष नहीं कहा, सो अब कहे हैं, " यद्यपि ज्ञानहीन

गुरु नहीं यह पूर्व कह आये, तथापि पूर्व कही वार्त्ताकूँ दृष्टान्त से प्रतिपादन करे हैं:-

दोहा।

दृतिपुट घट सम अज्ञ जन, मेघ समान सुजान।
पढ़े वेद इहिं हेतुतें, ज्ञानी पै तजि आन ॥९॥

अज्ञ कहिये अज्ञानी जो जन है, सो दृतिपुट कहिये मशक और चरम आदि जो चर्मपात्र, अथवा घट द्वारा ग्रहण किया जो समुद्रका जल, सो विलक्षण स्वाद का हेतु नहीं है, तैसे अज्ञानी पुरुष द्वारा ग्रहण जो किया वेदरूपी समुद्रका अर्थ रूपी जल, सो विलक्षण आनंद का हेतु नहीं, याते अज्ञानी पाठक चर्मपात्र और घट के समान हैं और सुजान कहिये ज्ञानी मेघ के समान हैं यह वार्त्ता पूर्व प्रतिपादन करी है, याते चर्मपात्र और घट के समान जो अज्ञानी पाठक है ताकूँ त्याग के मेघ समान जो ज्ञानी ताहीसूं वेदका अर्थ पढ़े अथवा सुने ॥९॥

'ज्ञानवान् के पास वेद पढ़े' या कहने से यह शङ्का होवे है-जो वेदकी श्रुति हैं। तिनहीं द्वारा जीवब्रह्मका स्वरूप विचारनेते ज्ञान होवे है। अन्य संस्कृत ग्रन्थों से और भाषाग्रन्थोंसे ज्ञान होवे नहीं। याते भाषा ग्रन्थका आरम्भ निष्फल होवेगा।

ताके समाधान का दोहा।

ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वाणी वेद।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद ॥ १० ॥

" ब्रह्मवेत्ता जो पुरुष है सो ब्रह्मरूप है ' यह वार्ता श्रुति विषे प्रसिद्ध है, याते ताकी वाणी वेद रूप है सो भाषारूप होवे अथवा संस्कृत रूप होवे सर्वथा भेद भ्रम का छेद करे है और जो कहे है:-" वेद के वचन बिना ज्ञान होवे नहीं' सो नियम नहीं, जैसे आयुर्वेद में कहे जो रोग और तिनके निदान और औषध, तिन सम्पूर्ण का अन्य संस्कृत ग्रन्थों से और भाषा फारसी ग्रन्थों से ज्ञान होय जावे है तैसे सर्व का आत्मा जो ब्रह्म ताका ज्ञान भी भाषादिक ग्रन्थों से होवे है, इस वास्ते सर्वज्ञ जो ऋषि और मुनि हुए हैं, तिन्होंने स्मृति और पुराण और इतिहास ग्रन्थों में ब्रह्मविद्या के प्रकरण कहे हैं, जो वेद से विना ज्ञान न होवे तो वे सम्पूर्ण प्रकरण निष्फल होय जावेंगे, याते आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादक जो वाक्य है तासूँ ज्ञान होवे है, सो वेद का होवे अथवा अन्य होवे याते भाषा ग्रन्थ से ही ज्ञान होवे है, यह वार्ता सिद्ध हुई ॥ १० ॥

दोहा ।

वाणी जाकी वेद सम, कीजै ताकी सेव ।
ह्वै प्रसन्न जब सेवते, तब जानै निज भेव ॥ ११ ॥

जो ब्रह्मवेत्ता की वाणी कहिये वचन वेद के समान है तो ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी जिज्ञासु सेवा करे, का हेते? सेवाते जब आचार्य प्रसन्न होवे तब निज भेद कहिये अपना

स्वरूप जाने यह कहनेते यह वार्त्ता जनाई:-जो आचार्य की सेवा है, सो तो ईश्वर की सेवा से भी अधिक है, काहेते ? जो ईश्वर की सेवा है सो अदृष्टफल का हेतु है और आचार्य की सेवा है सो अदृष्टफल और दृष्ट फल दोनों का हेतु है। जो वस्तु धर्म अधर्मकी उत्पत्ति द्वारा फल का हेतु होवे सो अदृष्टफल का हेतु कहिये है और जो वस्तु धर्म अधर्म की उत्पत्ति से बिना साक्षात् फल का हेतु होवे सो दृष्टफल का हेतु कहिये है। ईश्वर की जो सेवा है सो धर्म की उत्पत्ति द्वारा अन्तःकरण की शुद्धिरूप फल का हेतु है। याते ईश्वरकी सेवा अदृष्टफल का हेतु है, जो आचार्य की सेवा धर्म की अपेक्षा बिना आचार्य की प्रसन्नता करके उपदेश रूप फल का हेतु है। याते दृष्टफल का हेतु है और धर्मकी उत्पत्ति द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि रूप फल का हेतु है याते अदृष्टफल का भी हेतु है इस रीति से आचार्य की सेवा ईश्वर की सेवा से भी उत्तम है याते जिज्ञासु सर्व प्रकारके ब्रह्मज्ञ आचार्य की सेवा करे ॥ ११ ॥

आचार्य सेवा प्रकार—सोरठा।

है जबही गुरु सङ्ग, करे दण्ड जिमि दण्डवत।
धारै उत्तम अङ्ग, पावन पाद सरोज रज ॥१२॥

जब गुरु प्राप्त होवे, तब दण्ड की न्याई साष्टाङ्ग प्रणाम करे और पावन कहिये पवित्र जो है पादरूपी सरो-

(कमल) तिनकी रज जो धूरी, ताकूँ उत्तम अङ्ग कहिये मस्तक ऊपर धारे ॥ १२ ॥

चौपाई ।

गुरु समीप पुनि करिये वासा ।
जो अति उत्कट है जिज्ञासा ॥
तन मन धन वच अर्पी देवै ।
जो चाहै हिय बन्धन छेवै ॥१३॥

अर्थ स्पष्ट है ॥ १३ ॥

तन अर्पण प्रकार ।

चौपाई ।

तन करि बहु सेवा विस्तारै । आज्ञा गुरुकी कबहुँ न टारै ॥

मन अर्पण प्रकार ।

मनमें प्रेम राम सम राखै । ह्वै प्रसन्न गुरु इमि अभिलाषै १४
दोषदृष्टि स्वपने नहिं आनै । हरि हर ब्रह्म गुरु रवि जानै ।
गुरु मूरतिको हियमें ध्याना । धारै जो चाहै कल्याना ॥१५॥

धन अर्पण प्रकार ।

चौपाई ।

पत्नी पुत्र भूमि पशु दासी ।
दास द्रव्य गृह व्रीहिविनाशी ॥
धनपद इन सबहिन कूं भाखै ।
ह्वै गुरु शरण दूरि तिहिं नाखै॥१६॥

सोरठा।

धन अर्पण को भेद, एक कह्यो सुन दूसरो।
है गृहस्थ गुरुदेव, याज्ञवल्क्य सम देह तिहि ॥१७॥

पत्नी से आदि लेके ब्रीहि कहिये धान्यपर्यन्त सारे धन कहिये हैं तिन सर्वकूं त्याग के त्यागी जो गुरु है, ताके शरण होवे, यह धन अर्पण कहिये है। काहेते? गुरु त्यागी है, सो आप तो अङ्गीकार करे नहीं। परन्तु तिन गुरु की प्राप्ति वास्ते धन का त्याग किया है। याते ऐसा जो त्याग है, सो भी गुरुकूँ ही अर्पण कहिये है।

जो गृहस्थ गुरु होवे तिनकूँ समग्र चढ़ाई देवे, यह दूसरे प्रकार का धन अर्पण कहिये है। यामें कोऊ शङ्का करे है:—जो ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थ नहीं होवे हैं, सो शङ्का बने नहीं। काहेते? याज्ञवल्क्य और उद्दालकसे आदि लेके ब्रह्मविद्या के आचार्य गृहस्थी वेद विषे बहुत सुने जावे हैं। याते गृहस्थ भी आचार्य सम्भवहैं॥१७॥

वाणी अर्पण विषे छन्द।

भाषत गुणगण गुरु के वाणी शुद्ध।
दोष न कबहूँ अर्पण करि इमि बुद्ध ॥ १८ ॥

सोरठा।

जो चाहे कल्याण, तन मन धन वच अरपि इम।
बसै बहुत गुरु स्थान, शिक्षाते जीवन करै ॥१९॥

जो पुरुष अपना कल्याण चाहे, सो पूर्व रीति से तनु

आदि अर्पण करके आप बहुतकाल गुरु जहाँ हों, ता स्थानविषे, वा समीप में वास करे, आप भिक्षाते जीवन कहिये प्राण धारण करे ॥ १९ ॥

चौपाई।

सो भिक्षा धरि दै शिष आगे।
निज भोजनकूँ नहिं पुनि मांगे ॥२०॥

जो भिक्षाका अन्न शिष्य ल्यावे सो आपही भोजन नहीं कर लेवे, किन्तु देशिक जो गुरु हैं, तिनके आगे धरदेवे और भिक्षा गुरुके आगे धरके अपने भोजन कूँ गुरुसे माँगे नहीं और एक दिन में दूसरी बार भिक्षा ग्राम में भी माँगे नहीं किन्तु गुरु जो कृपा करके देवै तो भोजन करे गुरु जो शिष्यकी श्रद्धाकी परीक्षाके निमित्त नहीं देवे, तो दूसरे दिन वृत्ति जो भिक्षा ताकूँ सँभारे॥२०॥

दोहा।

पुनि गुरुके आगे धरै, भिक्षा शिष्य सुजान।
निर्वेद न जियमें करै, सो निज चहै कल्यान ॥ २१ ॥

निर्वेद नाम ग्लानिका है, अन्य अर्थ स्पष्ट है ॥ २१ ॥

चौपाई।

इम व्यवहृत अवसर जब पेखै।
मुख प्रसन्न गुरु सन्मुख लेखै ॥
विनती करै दोउ कर जोरी।
गुरु आज्ञाते प्रश्न बहोरी ॥ २२ ॥

इस रीति का व्यवहार करते जब गुरु का अवकाश देखे और प्रसन्नमुखसे गुरु जब अपने सन्मुख देखे तब हाथ जोरके गुरु की स्तुति करे और विनती करे। हे भगवन्! "मैं पूछना चाहूँ हूँ" तब गुरु आज्ञा करे तो प्रश्न करे।

कदाचित् जन्मान्तर के उत्तम कर्म से गुरु कृपा करके शिष्यकूँ तन अर्पण आदि सेवा से बिना ही उपदेश करदेवे तो भी शुद्ध अधिकारी का कल्याण होय जावे है। काहेते? गुरु सेवा के दो फल हैं—एक तो गुरु की प्रसन्नता और दूसरा अन्तःकरण की शुद्धि, सो दोनों वाके सिद्ध हैं।

दोहा।

तन मन धन वाणी अरपि, जिहिं सेवन चितलाय।
सफलतरु सो आर है, दादू सदा सहाय ॥ २३ ॥

इति गुरुशिष्यलक्षणं गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपणं नाम तृतीयस्तरङ्गः ॥ ३ ॥



चतुर्थस्तरङ्गः ४



उत्तमाधिकारी-उपदेशनिरूपण।

दोहा।

गुरु शिष्यके सम्वाद की, कहूँ व गाथ नवीन।
पेखि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचार प्रवीन ॥ १ ॥

दोहा ।

तीन सहोदर बाल शुभ, चक्रवर्ति सन्तान ।
शुभसन्तति पितु तिहिंन में, स्वर्ग पताल जहान ॥२॥

तीनों बाल नाम ।

तत्त्वदृष्टि इक नाम अहि, दूजो कहत अदृष्ट ।
तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, उत्तम मध्य कनिष्ट ॥ ३ ॥

चौपाई ।

बालपनो सब खेलत खोयो ।
तरुण पाय पुनि मदन बिगोयो ॥
धारि नारि गृह भार प्रकाशी ।
भोग लहे तिहुँ सब सुखराशी ॥ ४ ॥

दोहा ।

स्वर्ग भूमि पाताल के, भोगहिं सर्व समाज ।
शुभसन्तति निज तेजबल, करत राज के काज ॥ ५ ॥
लहि अवसर इक तिहिं पिता, निज हिय रच्यो विचार ।
सुखस्वरूप अज आतमा, तासूँ भिन्न असार ॥ ६ ॥
इहिं कारन तजि राज यह, जानूं आतम रूप ।
स्वर्ग भूमि पाताल के, तिहुँ पुत्रहिं करि भूप ॥ ७ ॥

चौपाई ।

अस विचार शुभ सन्तति कीन्हा ।
मन्त्र पेखि तिहुँ पुत्र प्रवीना ॥
देश इकन्त समीप बुलाये ।
निज विराग के बचन सुनाये ॥८॥

भाष्यो पुनि यह राज सँभारहु।
इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु॥
अरु बसहु काशी भुवि स्वामी।
रहत जहाँ शिव अन्तर्यामी॥ ९॥
जिहिं मरतहिं सुनि शिव उपदेशा।
अनयासहिं तिहिं लोक प्रवेशा॥
गङ्ग अङ्ग मनु कीर्ति प्रकाशै।
उत्तर वाहिनी अधिक उजासै॥ १०॥

दोहा।

करहु राज इम भिन्न तिहुँ, पालहु निज निज देश।
बिन त्रिभाग भ्रातान को, भूमि काज है क्लेश॥११॥

सवैया–राज समाज तजौं सब मैं अब,
जानि हिये दुःख ताहि असारा।
ओर तु लोक दुःखी अपने दुख,
मैं भुगत्यो जग क्लेश अपारा॥
जे भगवान प्रधान अजान,
समान दरिद्रन ते जन सारा।
हेतु विचार हिये जग के भग,
त्यागि लखूं निजरूप सुखारा॥ १२॥
वाक्य अनन्त कहे इम तात,
सुने तिहुँ भ्रात सुबुद्धि निधाना।
बैठि इकन्त विचार अपार,

भने पुनि आपस माँहि सुजाना ॥
दे दुख मूल समाज हमैं यह,
आप भयो चह ब्रह्म समाना ।
सो जन नागर बुद्धिक सागर,
आगर दुःख तजै जु जहाना ॥१३॥

दोहा ।

याते तजि दुःखमूल यह, राज करौ निज काज ।
करि विचार इम गेहते, निकस्यो भ्रात समाज ॥१४॥
तिहुँ खोजत सद्गुरु चले, धारि मोक्ष हिय काम ।
अर्थ सहित किय तातको, शुभसन्तति यह नाम ॥१५॥
खोजत खोजत देश बहु, सुरसरि तीर इकन्त ।
तरु पल्लव शाखा सघन, वन तामें इक सन्त ॥ १६ ॥
बैठ्यो वट विटपहिं तरे, भद्रा मुद्रा धारि ।
जीव ब्रह्म की एकता, उपदेशत गुण टारि ॥ १७ ॥
दोष रहित एकाग्र चित, शिष्य संघ परिवार ।
लखि दैशिक उपदेशहिय, चहुँधा करत विचार ॥१८॥
मनहु शम्भु कैलाश में, उपदेशत सनकादि ।
पेखि ताहि तिहिं लहि शरण, करी दण्डवत आदि॥१९॥
कियो मास षटमास पुनि, शिष्यरीति अनुसार ।
करी अधिक गुरुसेव तिहुँ, मोक्ष काम हियधार ॥२०॥
ह्वै प्रसन्न श्री गुरु तबै, ते पूछे मृदु बानि ।
किहिं कारण तुम तात तिहुँ, बसहु कौन कह आनि॥२१॥

तत्त्वदृष्टि तब लखि हिये, निज अनुजनकी सैन ।
कहै उभय कर जोरि निज, अभिप्राय के बैन ॥ २२ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा।

भो भगवन् ! हम भ्रात तिहुँ, शुभ सन्तति सन्तान ।
लख्यो चहैं बहुभेव हिय, दीन नर्वान अजान ॥२३॥
जो आज्ञा है रावरी, तौ है पूछि प्रवीन ।
आप दयानिधि कल्पतरु, हम अति दुखित अधीन॥२४॥

श्रीगुरुरुवाच-सोरठा।

सुनहु शिष्य मम बात, जो पूछहु तुम सो कहूं ।
लहो हिये कुशलात, संशय कोऊ ना रहै ॥ २५ ॥

दोहा।

गुरु की लखी दयालुता, शिष्य हिये भो चैन ।
कार्य सिद्ध निज मानि हिय, भाषे सविनय बैन ॥२६॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-चौपाई।

भो भगवन् तुम कृपा निधाना ।
हो सर्वज्ञ महेश समाना ॥
हम अजान मति कछु न जानैं ।
जन्मादिक संसृति भय मानैं ॥ २७ ॥
कर्म उपासन कीने भारी ।
और अधिक जगपाशी डारी ॥
आप उपाय कहो गुरु देवा ।
है जाते भव दुख को छेवा ॥ २८ ॥

पुनि चाहत हम परमानन्दा। ताको कहो उपाय मुकुन्दा॥
जबहिं कृपाकरि कहिहो ताता। तब है है हमरे कुशलाता॥

हे भगवन्! आप कृपानिधान हैं और सदा शिव के समान आप सर्वज्ञ हो और हे भगवन्! हम जन्ममरण से आदि लेके जो दुःखरूप संसार है तासे डरे हैं ताकी निवृत्तिका आप उपाय कहो और परमानन्द की प्राप्ति का उपाय कहो और हे गुरो! उपासना और कर्मके अनन्त अनुष्ठान करे भी परन्तु उनसे हमारेकूँ वांछित फल प्राप्त भया नहीं और उलटा संसार उनसे बढ़ता गया याते आप और उपाय बताओ, जो करके हम कृतार्थ होवें॥ २९॥

दोहा—मोक्ष काम गुरु शिष्य लखि, ताको साधन ज्ञान।
देवउक्त भाषण लगे, जीवब्रह्म भिद भान॥३०॥

दुःखकी निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति को मोक्ष कहे हैं ताकी कामना शिष्य के हृदय में देख के ताका साधन जो भेदउक्त ज्ञान है सो कहते भये। यद्यपि ज्ञान का स्वरूप अनेक शास्त्रोंविषे भिन्न-भिन्न वर्णन कियाहै, तथापि जीव ब्रह्मका भिद कहिये भेद ताकूं दूर करने वाला जो ज्ञान है, सोई वेदमें मोक्षका साधन कहा है। याते ताही ज्ञानकूं कहे हैं॥ ३०॥

श्रीगुरुरुवाच-दोहा।

परमानन्द मिलाप तू, जो शिष चहै सुजान।
जन्मादिकदुख नाशपुनि, भ्रान्तिजन्य तिहि मान॥३१॥

परमानन्द स्वरूप तू, नहिं तोमें दुख लेश।
अज अविनाशी ब्रह्म चित्त, जिन आने हिय क्लेश॥३२॥

हे शिष्य! परमानन्द की प्राप्तिविषे और जन्ममरण से आदिलेके जो दुःख रूप संसार है ताकी निवृत्तिविषे जो तेरेकूँ इच्छा भई है, ता इच्छा की भ्रान्तिसे उत्पत्ति हुई है तूँ ऐसे जान। काहेते? तू आप परम आनन्दस्वरूप है, याते ताकी प्राप्ति की इच्छा बने नहीं। जो वस्तु अप्राप्त होवे, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बने है और अपना जो स्वरूप है, सो सदा प्राप्त है। ताकी प्राप्ति विषे जो इच्छा सो भ्रान्ति बिना बने नहीं और जन्मसे आदिलेके जो संसार है, सो जो कदाचित् होवे तो वाकी निवृत्ति विषे इच्छा बने, सो जन्मादिक संसार का लेश भी तेरे विषे नहीं है, याते अनहुए दुःखकी निवृत्तिविषे भी इच्छा भ्रान्ति बिना बने नहीं और हे शिष्य! जन्म और नाश करके रहित जो चेतनरूप ब्रह्म है, सो तू है याते अपने हृदयविषे जन्मादिक खेद मत मान॥ ३१॥ ३२॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा।

विषय सङ्ग क्यों भान ह्वै, जो मैं आनन्द रूप।
अब उत्तर याको कहो, श्रीगुरु मुनिवर भूप॥३३॥

हे भगवन्! जो मेरा आत्मा आनन्द स्वरूप होवे तो विषयके सम्बन्धसे आनन्दका आत्माविषे भान नहीं होना चाहिये, याते आत्मा आनन्दरूप नहीं, किन्तु विषय के

सम्बन्ध से आत्मा विषे आनन्द होवे है ॥ ३३ ॥

श्रीगुरुरुवाच-चौपाई।

आतम विमुख बुद्धिजन जोई। इच्छा ताहि विषय की होई॥
तासूँ चञ्चल बुद्धि बखानो। सुख आभास होई तहँ हानी ३४
जब अभिलषित पदारथ पावै। तब मतिछनक विछेप नशावै
ताते ह्वै आनन्द प्रतिबिम्बा। पुनि छनमें बहु चाहहिं डम्बा॥
ताते ह्वै थिरता की हानी। सो अनन्द प्रतिबिम्ब नशानी॥
विषय संग अनन्दजु होई। बिन सतगुरु यह लखै न कोई॥

हे शिष्य! आत्मा से विमुख है बुद्धि जाकी ऐसा जो पुरुष हो ताकूँ विषय की इच्छा होवे है या स्थान विषे जो भोगका साधन होवे सो विषय कहिये है। याते धन पुत्रादिकोंका भी ग्रहण करि लेना ता विषयकी इच्छा ते बुद्धि चञ्चल रहे है। ता चञ्चल बुद्धि में आत्मा स्वरूप आनन्द का आभास कहिये प्रतिबिम्ब नहीं होवे है और जिस विषय की इच्छा हुई होवे सो विषय याकूँ प्राप्त होइजावे तब या पुरुष की बुद्धि क्षणमात्र स्थित होय के अन्तमुख बुद्धि की वृत्ति होवे है ता अन्तर्मुख वृत्तिविषे आत्मा का स्वरूप जो आनन्द ताका प्रतिबिम्ब होवे है, तिस आत्मस्वरूप आनन्द के प्रतिबिम्बकूँ अनुभव करके पुरुषकूँ भ्रान्ति होवे हैं, जो मेरेकूँ विषय से आनन्दरूप का लाभ हुआ है परन्तु विषय में आनन्द है नहीं।

जो कदाचित् विषय में आनन्द होवे, तो एक विषय से

तृप्त जो पुरुष तासूँ जब दूसरे विषयकी इच्छा होवे, तब भी प्रथम विषय से आनन्द होना चाहिये सो होवे तो नहीं है और हमारी रीति से स्वरूप आनन्द का तो भान बने नहीं काहेते? जो दूसरे विषय की इच्छा करके बुद्धि चंचल है, ताके विषे प्रति बिम्ब बने नहीं। किम्वा:-

जो विषय में ही आनन्द होवे तो जा पुरुष का प्रिय पुत्र अथवा और कोई अत्यन्त प्यारा जो अकस्मात् बहुत काल पीछे मिलि जावे, तब वाकूँ देखते ही प्रथम जो आनन्द होवे, सो आनन्द फेर सदा नहीं होता सो सदा ही होना चाहिये। काहेते? आनन्दका हेतु जो पुरुष है सो वाके समीप है और हमारी रीतिसे तो प्रथम ही आनन्द बनेहै, सदा बने नहीं। काहेते? एक बेर प्यारे कूँ देखके वृत्ति स्थित होवे है, फेर वृत्ति और पदार्थन में लग जावे है, याते चंचल है। याते पदार्थमें आनन्द नहीं किम्वा:-

जो विषय में आनन्द होवे तो समाधिकाल विषे जो योगानन्द का भान होवे है सो न होना चाहिये, काहेते? समाधि में किसी विषय का सम्बन्ध नहीं है। किम्वा:-

जो विषय में आनन्द होवे तो सुषुप्ति में आनन्द का भान नहीं होना चाहिये। काहेते? सुषुप्ति विषे भी किसी विषय का सम्बन्ध है नहीं, याते विषय में आनन्द नहीं किन्तु आत्मस्वरूप आनन्द सारे भान होवे है, इसी वास्ते वेदमें लिखाहै:-"आत्मस्वरूप आनन्दके

लेके सारे आनन्द वाले होवे हैं" ॥ ३४ ॥ ३६ ॥

दोहा–विषय संङ्गते है प्रगट, आतम आनन्दरूप।
शिष्य सुनायो तोहिं मैं, यह सिद्धान्त अनूप॥३७॥

सो०-सो तूं मोहि व भाख, जो यामैं शङ्का रहो।
निजमति मैं मति राख, मैं ताको उत्तर कहूँ॥३८॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-चौपाई।

भो भगवन् तुम दीनदयाला। मेट्यो मम संशय ततकाला॥
यामें कछुक रही आशङ्का। सो भाखों अब है निर्शङ्का॥३९॥
आतमविमुख बुद्धि अज्ञानी। ताकी यह सब रीति बखानी॥
ज्ञानीजनको कहो विचारा। कोउ न तुमसम और उदारा४०

हे भगवन्! आपने पूर्व विषयके सम्बन्धसे आत्मानन्द के भानकी जो रीति कही सो अज्ञानी पुरुषकी कही और ज्ञानी की नहीं कही। काहेते? आत्मा से विमुख है बुद्धि जाकी ताका आपने नाम लिया है, सो आत्मासे विमुख बुद्धि अज्ञानी की होवे है, ज्ञानी की नहीं याते आप अब ज्ञानी का विचार कहो। जो ज्ञानवानकूँ विषयकी इच्छा और ताके सम्बन्ध से पूर्व रीति करके सुखका भान होवे है, अथवा नहीं? यह वार्त्ता आप कहो॥ ३९ ॥ ४० ॥

श्रीगुरुरुवाच-दोहा।

सुनहु शिष्य इक बात मम, सावधान मन कान।
हैं द्वैविध आतम विमुख, अज्ञानीरु सुजान॥४१॥
है विस्मृत व्यवहार में, कबहुक ज्ञानी सन्त।

अज्ञानी विमुखहि रहै, यह तू जान सिधन्त ॥ ४२ ॥

हे शिष्य ! तू चित्त और श्रवणकूँ सावधान करके सुन। पूर्व जो हमने आत्म विमुख कहा है सो आत्म-विमुख अज्ञानी ही नहीं होवे किन्तु ज्ञानवान् की भी बुद्धि जब व्यवहार में आजावे तब वह तत्त्वकूँ भूल जावे है तिसकाल विषे ज्ञानवान् भी आत्म विमुख ही होवे है और ज्ञानी की बुद्धि जो सदा आत्माकार ही रहै तौ भोजनादिक व्यवहार न होवे। याते आत्मवि-मुख बुद्धि दोनों की बने है। अज्ञानीकी तो बुद्धि सदा आत्मविमुख है और ज्ञानी की बुद्धि आत्म विमुख होवे तिस काल में ज्ञानीकूं भी इच्छा और विषयके सम्बन्ध से जो आत्मस्वरूप आनन्द का भान अज्ञानी के समान है। परन्तु इतना भेद है विषय के सम्बन्ध से जो आन-न्दका भान होवे है, ताकूँ ज्ञानी तो जाने है जो यह आनन्द है सो मेरे स्वरूप से न्यारा नहीं है किन्तु ताका ही आभास है। याते ज्ञानीकूँ विषय भोगमें भी समाधि ही है-और अज्ञानी नहीं जाने है। जो मेरा ही स्वरूप आनन्द है और दोनों का स्वरूप आनन्द है विषय से केवल अज्ञानीकूँ भ्रान्ति होवे है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

शिष्य उवाच—चौपाई।

हे प्रभु परमानन्द बखान्यो। मेरो रूप सु मैं पहिचान्यो
नहिं तोमें भवबन्धन लेशा। कह्यो आप पुनियहै उपदेश

यामें शङ्का मुहि यह आवे। जाते तव वच हिय न सुहावे ॥
नहिं मांमैं यह बन्ध पसारो । कहो कौन तो आश्रय न्यारो॥

हे भगवन् ! आपने कहा-" तू परम आनन्द स्वरूप है' सो मैं भली प्रकार से जाना और आपने कहा जो " जन्म मरण से आदि लेके संसाररूप दुःख तेरे विषे है नहीं याते ताकी निवृत्ति बनै नहीं' याके विषे मेरे कूं शङ्का है जो जन्मादिक दुःख मेरे विषे नहीं है, तो जा विषे यह संसार है सो मेरेसे न्यारा कहिये भिन्न आश्रय आप कृपा करके बताओ, जाके विषे संसार दुःख जानिके अपने विषे नहीं मानूं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

श्रीगुरुरुवाच-सोरठा ।

सुनहु शिष्य मम बानि, जाते तव शङ्का मिटै ।
है जगका अति हानि, तो मांमैं नहिं और में ॥ ४५ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा ।

जो भगवन् कहुँ है नहीं, जन्म मरण जगखेद ।
है प्रत्यत्त प्रतीति क्यों ? कहो आप यह भेद ॥ ४६ ॥

हे भगवन् ! जो जन्म मरण से आदि लेके संसार दुःख मेरेविषे तथा और विषे कहूँ भी नहीं है तो प्रत्यत्त प्रतीत क्यों होवे है ? जो वस्तु नहीं होवे सो प्रतीत होवे नहीं, जैसे बन्ध्या को पुत्र और आकाश विषे पुष्प नहीं है, सो प्रतीत होवे नहीं । तैसे संसार भी नहीं होवे तो प्रतीत नहीं होना चाहिये और जन्म से आदिलेके संसार

ख्याती चरा

प्रतीत होवे है याते–"जन्मादिक संसार रूपी दुःख नहीं है' यह कहना बने नहीं।

श्रीगुरुरुवाच–दोहा।

आत्म रूप अज्ञानतें, ह्वै मिथ्या परतीति।
जगत स्वप्न नभ नीलता, रज्जु भुजगकीरीति ॥४७॥

जन्मादिक जगत् परमार्थ से नहीं है तो भी आत्माका ब्रह्मस्वरूप करके अज्ञान से मिथ्या प्रतीत होवे है। जैसे स्वप्नके पदार्थ आकाशमें नीलता और रज्जुमें सर्प परमार्थसे नहीं है और मिथ्या प्रतीत होवे हैं तैसे जन्मादिक जगत् परमार्थ से नहीं है मिथ्या प्रतीति होवे है ॥ ४७ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच–चौपाई।

मिथ्यासर्प रज्जु में जैसे। भाष्यो भव आतम में तैसे ॥
कैसे सर्परज्जु में भासै। यह संशय मनबुद्धि विनाशै ॥४८॥

जैसे रज्जु में सर्प मिथ्या है तैसे आत्मा में भव दुःख मिथ्या कहा, तहाँ दृष्टान्तके ज्ञान विना दृष्टान्त का ज्ञान होवे नहीं याते रज्जुमें सर्प कैसे भासे? यह दृष्टान्त में प्रश्न है ॥ ४८ ॥



प्रश्न अभिप्राय–चौपाई।

असत ख्याति पुनि आतमख्याती।
ख्याति अन्यथा अरु अख्याती ॥
सुने चारि मत भ्रम की ठौरा।
मानो कौन कहो यह व्यौरा ॥४९॥

जहां रज्जु में सर्प और सीपी में रूपा इत्यादिक भ्रम हैं, तहाँ चार मत सुने हैं:-शून्यवादी असत्य ख्याति कहे हैं। क्षणिक विज्ञानवादी आत्मख्याति कहे हैं। न्याय और वैशेषिक मतमें अन्यथा ख्याति कहे हैं, सांख्य और प्रभाकर अख्याति कहे हैं। तहाँ-

शून्यवादी का यह अभिप्राय है:-जेवरी देश में सर्प अत्यन्त असत् है। तैसे अन्य देशमें भी अत्यन्त असत् है। ऐसे अत्यन्त असत् सर्पकी जेवरी देशमें प्रतीति होवे है, याकूँ असत्यख्याति कहे हैं। अत्यन्त असत्य सर्पकी ख्याति कहिये भान और कथन है।

विज्ञानवादी का यह अभिप्राय है:-जेवरी देश में तथा अन्यदेशमें बुद्धिके बाहिर कहूँ सर्प है नहीं सारे पदार्थ बुद्धिसे भिन्न नहीं किन्तु सर्व पदार्थोंके आकारकूं बुद्धि ही धारे है। सो बुद्धि क्षणिक विज्ञानरूप है क्षण-क्षण में नाश और उत्पत्तिकूं प्राप्त होवे जो विज्ञान सोई सर्परूप प्रतीत होवे है। याकूं आत्मख्याति कहे हैं। आत्मा कहिये क्षणिक विज्ञान रूप बुद्धि ताका सर्परूप से ख्याति कहिये भान और कथन है।

नैयायिक का और वैशेषिक का यह अभिप्राय है:-वम्बी आदिक स्थानमें साँचा सर्प है, ताकूँ नेत्रसे देखे है। और नेत्रमें दोष है ताके बलते सन्मुख प्रतीति होवे है यद्यपि साँचा सर्प और नेत्रके मध्य भीति आदिक अन्तराय

हैं, तथापि दोष सहित नेत्रते अन्तराय सहितभी सर्पदीखे है और यामें कोऊ ऐसी शङ्का करे-दोषते सामर्थ्य घटे है, बढ़े नहीं। जैसे जठराग्निमें पाचन सामर्थ्य वात पित्त कफ दोषते घटे है। तैसे नेत्र में भी तिमिरादि दोषते सामर्थ्य घटनी चाहिये और वम्बी आदिक स्थान में स्थित सर्पका दोष सहित नेत्रसे ज्ञान कहा, तहाँ शुद्ध नेत्रसे तो परदेशमें स्थितका प्रत्यक्ष ज्ञान होवे नहीं और दोष सहित से होवे है। याते दोषते नेत्रका सामर्थ्य अधिक होवे है यह मानने में कोई दृष्टान्त नहीं सो शङ्का बने नहीं। काहेते ? किसी पित्त दोषते ऐसा रोग होवे है, जो चतुर्गुण भोजन कियेते भी तृप्ति होवे नहीं। जैसे पित्तदोषते जठराग्नि में पाचन सामर्थ्य वधे है, तैसे नेत्रमें भी तिमिरादि दोषते परदेशमें स्थित सर्पके प्रत्यक्ष करने का सामर्थ्य वधे है, इस रीति से वम्बी आदिक देश में स्थित सर्प का अन्यथा कहिये और प्रकार ते सन्मुख जेवरी देश में जो ख्याति कहिये भान और कथन सो अन्यथाख्याति कहिये और चिन्तामणि-कार (नैयायिक) का यह मत है:-जो दोष सहित नेत्रते वम्बी में स्थित सर्प का ज्ञान होवे तो बीचके और पदार्थनका ज्ञान भी होना चाहिये याते परदेश में स्थित वस्तु का नेत्र से ज्ञान होवे नहीं, किन्तु दोष सहित नेत्रते जेवरी का निज रूपते भान होवे नहीं, सर्परूपते भान होवे है। याते जेवरी का ही अन्यथा कहिये और प्रकार

ते सर्परूपते जो ख्याति कहिये भान और कथन, सो अन्यथा ख्याति कहिये है ।

और अख्याति वादी का अभिप्राय हैः—जो असत् की प्रतीति होवे तौ वन्ध्यापुत्र और शशशृङ्गकी प्रतीति होनी चाहिये । याते असत् ख्याति असङ्गत है, क्षणिक विज्ञान का ही आकार सर्पादिक होवे तो क्षणमात्रसे अधिककाल स्थिर प्रतीति नहीं होनी चाहिये । याते आत्मख्याति असङ्गतहै और अन्यथ्याति की प्रथम रीति तौ चिन्तामणिके मतसे दूषितही है, तैसे चिन्तामणिकी रीतिसे भी अन्यथा ख्याति मत असङ्गत है । काहेते ? ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होवे है । ज्ञेय रज्जु और सर्प का ज्ञान, यह कहना अत्यंत विरुद्ध है । याते यह रीति माननी योग्य है ।

जहाँ रज्जु में सर्पभ्रम है, तहाँ रज्जु से नेत्रका अपनी वृत्ति द्वारा सम्बन्ध होयके रज्जुका इदं रूपते सामान्यज्ञान होवे है और सर्पकी स्मृति होवे है । "यह सर्प है" यामें दो ज्ञान हैं—'यह' अंश तो रज्जु का सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान है और 'सर्प है' ऐसे सर्पका स्मृतिरूप ज्ञान है । इस रीति से यह 'सर्प है' यहाँ दो ज्ञान हैं, परन्तु भय दोष प्रमाता में और तिमिर दोष प्रमाण में ताके बलते पुरुष कूँ ऐसा विवेक नहीं होता जो मेरेकूं दो ज्ञान हुए हैं । यद्यपि 'यह' अंश रज्जु का सामान्य ज्ञान यथार्थ है और पूर्व देखे सर्पका स्मृति ज्ञान भी यथार्थ ही है । तौ भी मेरे कूँ दो

ज्ञान हुए हैं तिनमें रज्जु का सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान है और सर्पका स्मृतिज्ञान है, यह विवेक नहीं होवे है। तिस दो ज्ञानके विवेककूं ही सांख्य प्रभाकर मतमें भ्रम कहे हैं। यही रीति सारे भ्रमस्थल में जाननी। या रीतिसे रज्जु आदिकन में सर्पादिकभ्रम जहाँ होवे तहाँ चार मत सुने हैं तिनमें जो नीका मत होय सो कहो, ताही कूँ मैं मानों। यह शिष्य का प्रश्न है ॥ ४९ ॥

श्रीगुरुरुवाच—दोहा।

ख्याति अनिर्वचनीय लखि, पञ्चम तिनते और।
युक्तिहीन मत चारि ये, मानहु भ्रम की ठौर ॥ ५० ॥

हे शिष्य! तिन चार ख्यातिनते औरही ठौर भ्रमकी अनिर्वचनीय ख्याति पञ्चम लख और असत् ख्याति, आत्मख्याति, अन्यथा ख्याति, अख्याति ये चार मत युक्तिहीन हैं। जैसे उत्तर-उत्तर मत निरूपण में तीन मत असङ्गत कहे तैसे अख्यातिमत भी असङ्गत है। काहेते? 'यह सर्प है' या ज्ञान में प्रथम 'यह' अंश तो रज्जु का सामान्य ज्ञान प्रत्यक्ष है और 'सर्प है' इतना अंश पूर्वदृष्ट सर्पका स्मरण ज्ञान है। यह अख्यातिवादी का मत है। तहाँ पूर्वदृष्ट सर्प का स्मरण ही माने और सन्मुख रज्जुदेश में सर्प का ज्ञान नहीं माने तो सन्मुख रज्जु ते पुरुषकूँ भय होयके उलटा भागे है, सो भय और भागना नहीं होना चाहिये। याते सन्मुख रज्जुदेशमें ही

सर्पकी प्रतीति होवे है, पूर्वदृष्ट सर्पकी स्मृतिनहीं. किम्वाः-रज्जुका विशेषरूपते यथार्थज्ञान हुयंते अनन्तर ऐसा बोध होवे है-"मरेकूँ रज्जुमें हा सर्प की प्रतीति मिथ्या होती भई।' या बोधते रज्जुमें ही सर्पकी प्रतीति होवे है, पूर्वदृष्ट सर्पकी स्मृति नहीं और 'यह सर्प है' इहाँ ज्ञान एक ही प्रतीत होवे है दो नहीं और एक काल में अन्तःकरण ते स्मृतिरूप और प्रत्यक्ष रूप दो ज्ञान होवे भी नहीं। याते अख्यातिमत भी अत्यन्त असङ्गत है, इन चारों मतनका प्रतिपादन और खण्डन, विवरण और स्वाराज्य-सिद्धि आदिक ग्रन्थनमें विस्तार से लिखा है। प्रतिपादन और खण्डनकी युक्ति कठिन है, याते संक्षेपते जिज्ञासुकूँ रीति जनाई है, विस्तारसे हमने लिखा नहीं।

सिद्धान्तमें अनिर्वचनीयख्याति है, याकी यह रीति है अन्तःकरण की वृत्ति नेत्रादि द्वारा निकसि के विषय के समान आकार कूँ प्राप्त होवे है, ताते विषय का आवरण भङ्ग होयके ताकी प्रतीति होवे है, तहाँ प्रकाश भी सहायक होवे है प्रकाश बिना पदार्थकी प्रतीति होवे नहीं। जहाँ रज्जुमें सर्पभ्रम होवे है। तहाँ अन्तःकरण की वृत्ति नेत्रद्वारा निकसी भी और रज्जुसे ताका सम्बन्ध भी होवे परन्तु तिमिरादिकदोष प्रतिबन्धक हैं, याते रज्जुके समानाकार वृत्तिका स्वरूप होवे नहीं याते रज्जु का आवरण नाशै नहीं। इस रीतिसे आवरण भङ्गका निमित्त वृत्तिका

सम्बन्ध हुएतें भी जब रज्जु का आवरण भङ्ग होवे नहीं तब रज्जु चेतन में स्थित अविद्या में क्षोभ होय केसी अविद्या सर्पाकार परिणामकूँ प्राप्त होवे हैं सो अविद्या का कार्य सर्प सत् होवे तो रज्जु के ज्ञान से ताका बाध होवे नहीं और बाध होवे है, यातें सत् नहीं असत् होवे तो वन्ध्यापुत्रकी न्याईं प्रतीत नहीं होवे और प्रतीत होवे है यातें असत् भी नहीं किन्तु सत् असत्से विलक्षण अनिर्वचनीय है शुक्ति आदिकनमें रूपादिक भी यही रीति से अनिर्वचनीय उत्पन्न होवे है। ता अनिर्वचनीय की जो ख्याति कहिये प्रतीति और कथन, सो अनिर्वचनीय ख्याति कहिये है।

भ्रमस्थलमें अन्तःकरण से भिन्न अविद्या का परिणाम सर्पादिक विषय और तिनका ज्ञान एकही समय होवे हैं और लीन होवे हैं, सो साक्षी भास्य है।

जैसे सर्प अविद्याका परिणाम है। तैसे ताका ज्ञानरूप वृत्ति भी अविद्या का ही परिणाम है अन्तःकरण का नहीं काहेते? जैसे रज्जुज्ञानतें सर्प का बाध होवे है तैसे ताके ज्ञान का भी बाध होवे है, अन्तःकरणका ज्ञान होवे तो बाध नहीं होना चाहिये यातें ज्ञान भी सर्प की न्याईं अविद्याका कार्य सत् असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय हैं परन्तु रज्जु उपहित चेतनमें स्थित तमोगुण प्रधान अविद्या अंश का परिणाम सर्प है और साक्षी चेतन में स्थित

अविद्याके सत्वगुणका परिणाम वृत्तिज्ञान है, रज्जु चेतन की अविद्या का जा समय सर्पाकार परिणाम होवे है, ताही समय साक्षी आश्रित अविद्याका ज्ञानाकार परिणाम होवे है। काहेते ? रज्जुचेतन आश्रित अविद्या में क्षोभ का जो निमित्तहै ता निमित्तसे ही साक्षीआश्रित अविद्या अंश में क्षोभ होवे है। याते भ्रमस्थल में सर्पादिक विषय और तिनका ज्ञान एकही समय उत्पन्न होवे है, और रज्जु आदिक अधिष्ठान के ज्ञानते एक ही समय लीन होवे है या रीति से सर्पादिक भ्रमविषे बाह्य अविद्या अंश सर्पादिक विषय का उपादान कारणहै और साक्षी चेतन आश्रित अन्तर अंश अविद्या तिनके ज्ञान रूप वृत्ति का उपादान कारण है।

स्वप्न में तौ साक्षी आश्रित अविद्या का ही तमोगुण अंश विषयरूप परिणामकूं प्राप्त होवे है। ता अविद्या में सत्वगुण अंश ज्ञान रूप परिणाम कूं प्राप्त होवे है याते स्वप्नमें अन्तर अविद्या ही विषय और ज्ञान दोनों का उपादान कारण है। याहीते बाह्य रज्जु सर्पादिक और अन्तर स्वप्न पदार्थ, साक्षी भाष्य कहिये है, अविद्या का वृत्ति द्वारा जाकूं साक्षी भासै कहिए प्रकाशै सो साक्षी-भास्य कहियेहै। रज्जु आदिकनमें अनिर्वचनीय सर्पादिक और तिनका ज्ञान भ्रम कहिये है और अभ्यास कहिये है सो भ्रम अविद्या का परिणाम है और चेतन का विवर्त्त

है उपादान कारणके समान स्वभाव वाला अन्यथा स्वरूप परिणाम कहिये है और अधिष्ठानते विपरीत स्वभाव वाला अन्यथा स्वरूप विवर्त्त कहिये है। उपादान कारण अविद्या, सो अनिर्वचनीय है तैसे रज्जु में सर्प और ताका ज्ञान भी अनिर्वचनीय है याते रज्जु सर्प और ताका ज्ञान अविद्या के समान स्वभाव वाला अन्यथा स्वरूप कहिये अविद्याते और प्रकार का आकार है। सो अविद्या का परिणाम है तैसे रज्जु अवच्छिन्न अधिष्ठान चेतन सतरूप है, सर्प और ताका ज्ञान सतसे विलक्षण है। याते रज्जुसर्प और ताका ज्ञान अधिष्ठान चेतनते विपरीत स्वभाव वाला, अन्यथा स्वरूप कहिये चेतन से और प्रकार का आकार है।

मिथ्या सर्पका अधिष्ठान रज्जु उपहित चेतन है, रज्जु नहीं, काहेतें ? सर्पकी न्याईं रज्जु भी कल्पितहै, कल्पित वस्तु अन्य कल्पित का अधिष्ठान बने नहीं, याते रज्जु उपहित चेतनही अधिष्ठान है, रज्जु नहीं और रज्जुविशिष्टकूं अधिष्ठान कहैं तो भी रज्जु और चेतन दोनों अधिष्ठान होवेंगे तहाँ रज्जु भागमें अधिष्ठानपना बाधित है याते रज्जु उपहित चेतन ही अधिष्ठान है रज्जुविशिष्ट चेतन नहीं तैसे सर्पके ज्ञानका साक्षीचेतन अधिष्ठान है, या रीति से भ्रमस्थान में विषय का और ताके ज्ञान का उपाधिभेदसे अधिष्ठान भिन्न है, एक नहीं और विशेष

रूपते रज्जु की अप्रतीति अविद्या में क्षोभ द्वारा दोनों की उत्पत्ति में निमित्त है तैसे रज्जु का ज्ञान दोनों की निवृत्ति में भी निमित्त कही है।

याके विषे ऐसी शङ्का होवे है-रज्जके ज्ञान ते सर्प की निवृत्ति बने नहीं। काहेते? मिथ्या वस्तु का जो अधिष्ठान होवे ता अधिष्ठान के ज्ञानते मिथ्या को निवृत्ति होवे है, यह अद्वैतवाद का सिद्धान्त है और मिथ्यासर्प का अधिष्ठान रज्जु उपहित चेतन है, रज्जु नहीं, याते रज्जु के ज्ञानते सर्प की निवृत्ति बने नहीं।

या शङ्काका यह समाधान है-रज्जु आदिक जड़पदार्थ का ज्ञान अन्तःकरणकी वृत्तिरूप होवे तहाँ आवरण भङ्गवृत्ति का प्रयोजन है। सो आवरण अज्ञानकी शक्ति है, याते आवरण जड़के आश्रितहै नहीं, किन्तु जड़का अधिष्ठान जो चेतन ताके आश्रित है, याते रज्जु समानाकार अन्तःकरणकी वृत्तिते रज्जु अवच्छिन्न चेतनका ही आवरण भङ्ग होवेहै, वृत्तिमें जो चिदाभासहै ताते रज्जु का प्रकाश होवे है, चेतन स्वयं प्रकाश है, तामें आभास का उपयोग नहीं यह प्रक्रिया सम्पूर्ण आगे प्रति पादन करेंगे। इस रीतिसे चिदाभास सहित अन्तःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान में जो वृत्ति भाग ताका आवरण भङ्गरूप फल चेतनमें होवेहै, और चिदाभास भाग का प्रकाश रूप फल रज्जु में होवे है। याते वृत्तिज्ञान का केवल जड़ रज्जु विषय नहीं। किन्तु

अधिष्ठान चेतन सहित रज्जु साभासवृत्ति का विषय है, इसी कारणते सिद्धान्तग्रन्थ में यह लिखा है-" अन्तःकरण जन्य वृत्तिज्ञान सारे ब्रह्मकूँ विषय करे है' या प्रकार से रज्जु ज्ञान से निवारण होय के सर्प अधिष्ठान रज्जु अवच्छिन्न चेतन का भी निज प्रकाशते भान होवे है। याते रज्जु का ज्ञान ही सर्प के अधिष्ठान का ज्ञान है। ताते सर्प की निवृत्ति सम्भव है।

अन्य शङ्का-यद्यपि या रीतिसे सर्पकी निवृत्ति रज्जु को ज्ञानते सम्भव है तथापि सर्पके ज्ञान की निवृत्ति सम्भव नहीं। काहेते? सर्प का अधिष्ठान रज्जु अवच्छिन्न चेतन है और सर्प के ज्ञान का अधिष्ठान साक्षी चेतनहै पूर्व-उक्तप्रकार ते रज्जु ज्ञान से रज्जु अवच्छिन्न चेतन का ही भान होवे है। साक्षी चेतन का नहीं याते रज्जुका ज्ञान हुएते भी सर्पज्ञान का अधिष्ठान साक्षी चेतन अज्ञात है और अज्ञात अधिष्ठानमें कल्पित की निवृत्ति होवे नहीं किन्तु ज्ञात अधिष्ठान में ही कल्पित की निवृत्ति होवे है याते रज्जुज्ञानतें सर्पज्ञान की निवृत्ति बने नहीं।

ताकां समाधान यह है-विषय के अधीन ज्ञान होवे है। विषय जो सर्प ताकी निवृत्ति होते ही सर्प के ज्ञान की विषयके अभावते आपही निवृत्ति होवे है।

जो ऐसे कहे-कल्पित की निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञान बिना होवे नहीं और सर्प का ज्ञान भी कल्पितहै ताका

अधिष्ठान साक्षी चेतन है, ताके ज्ञान विना कल्पित सर्प के ज्ञानकी निवृत्ति बने नहीं।

ताका समाधान यह है:-निवृत्ति दो प्रकार की होवे है, एक तो अत्यन्तनिवृत्ति होवे है और दूसरो कारण में जो लय, सो भी निवृत्ति कहिये है। कारणसहित कार्यकी निवृत्ति अत्यन्तनिवृत्ति कहिये है, सारे कल्पित वस्तु का कारण अधिष्ठानके आश्रित अज्ञान है, ता अज्ञान सहित कल्पितकार्यकी निवृत्ति तो अधिष्ठान ज्ञानते ही होवे है। परन्तु कारण में लयरूप जो निवृत्ति सो अधिष्ठान ज्ञान बिना भी होवे है। जैसे सुषुप्ति और प्रलय में सर्व पदार्थन का अज्ञान में लय अधिष्ठान ज्ञान से बिना होवे है, तहाँ सर्वपदार्थन के लय में निमित्त, भोग के सन्मुख कर्म का अभाव है! तैसे अधिष्ठान साक्षीके ज्ञान बिना ही सर्पज्ञान का लय होवे है, तहाँ सर्प ज्ञान का विषय जो सर्प ताका अभाव सर्पज्ञानके लयमें निमित्त है, या प्रकार से सर्प की निवृत्ति रज्जु ज्ञानते ही होवे है और सर्पज्ञान का विषय जो सर्प ताके अभावते सर्पज्ञान का लय होवे है।

अथवा सर्प और ताका ज्ञान दोनों की निवृत्ति रज्जु ज्ञानतेही होवे है काहेते? जब रज्जु का प्रत्यक्ष ज्ञान होवे तब अन्तःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसि के रज्जुदेश में प्राप्त होवे और रज्जु के समान वृत्तिका आकार होवे है, याते रज्जु के प्रत्यक्ष समय वृत्ति उपहितचेतन और रज्जु

उपहित चेतन दोनों एक होवे हैं। तिनका भेद रहै नहीं यामें यह हेतु है। चेतन का स्वरूप से तौ भेद कहूँ भी नहीं किन्तु उपाधिके भेद से चेतन का भेद होवे है वृत्ति उपहित चेतन और रज्जुउपहित चेतन का भेदक उपाध, वृत्ति और रज्जु हैं, सो वृत्ति और रज्जु भिन्न भिन्न देश में स्थित होवे जब तौ उपाधि वाले चेतन का भेद होवे है और दोनों उपाधि एक देश में स्थित होवे तब उपहित चेतनका भेद बने नहीं। यह वार्ता वेदान्तपरिभाषादिक ग्रन्थनमें लिखीहै, भिन्न देशमें स्थित उपाधिते ही उपहित चेतन का भेद होवे। एक देश में जब दोनों उपाधि स्थित भी होवे तब दोऊ उपाधि से उपहित भी चेतन एकही होवे है। या प्रकारते रज्जु के प्रत्यक्ष ज्ञान समय रज्जुउपहितचेतन और वृत्तिउपहित चेतन एक है। तहाँ साक्षी चेतनही वृत्तिउपहित चेतनहै। काहेते? अन्तःकरण और ताकी वृत्तिमें स्थित जो तिनका प्रकाशक चेतन मात्र सो साक्षी कहिये है। इस रीतिसे रज्जु ज्ञान समय साक्षी चेतन और रज्जु उपहित चेतन का अभेद होवे और रज्जुउपहितचेतन का रज्जु ज्ञान से भान होवे है और रज्जुउपहित चेतन से अभिन्न साक्षी का भी रज्जुज्ञान से भान होवे है। या प्रकारते रज्जुज्ञान समय अधिष्ठान साक्षी का भान होनेते कल्पित सर्पज्ञान की निवृत्ति सम्भवहै।

अन्तःकरण

किंवा:-कूटस्थदीप में विद्यारण्यस्वामी ने यह प्रक्रिया कही:-"आभाससहित अन्तःकरणकी वृत्ति इन्द्रिय द्वारा निकसिके घटादिक विषयकूँ प्रकाशै है। घटादिक विषय और तैसै आभाससहित वृत्तिरूप तिनका ज्ञान, तथा आभाससहित अन्तःकरणरूपज्ञाता इन तीनोंको साक्षी प्रकाशै है" "यह घट है" इस रीति से आभाससहित वृत्तिसे घटमात्रका प्रकाश होवे है। "मैं घटकूं जानूँ हूँ" या रीतिसे "मैं" शब्द का अर्थ ज्ञाता और ज्ञेय घट और ताका ज्ञान या त्रिपुटीका साक्षीसे प्रकाश होवे है, या प्रकारते सर्वपुटियों का प्रकाशक साक्षी है। साक्षी आप अज्ञात होवे तो त्रिपुटीका ज्ञान साक्षीसे बने नहीं याते सर्वत्रिपुटियों के ज्ञानमें साक्षीका ज्ञान अवश्य होवे है ता साक्षी ज्ञानते सर्पज्ञानकी निवृत्ति सम्भव है या पूर्व रीतिसे सर्प और ताके ज्ञान का अधिष्ठान भिन्न भिन्न कहा। तामें इतने शङ्का समाधान हैं, या पक्ष में शङ्का समानधानरूप विवाद और भी बहुत हैं। याते सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान एकही है। यह पक्ष कहे हैं:-तहाँ बाह्य जो रज़्जुचेतन है, ताकूँ सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान कहें तो बने नहीं। काहेते ? जितने ज्ञान होवे हैं, सो प्रमाता अथवा साक्षीके आश्रित होवे हैं बाहय जो रज्जुचेतन, ताके आश्रित ज्ञान बने नहीं। तैसे सर्प और

सर्पके ज्ञान का अधिष्ठान अन्तःकरण उपहित साक्षीचेतनकूं माने तो शरीरके अन्तर अन्तःकरणदेशमें सर्प की प्रतीति चाहिये, रज्जुदेशमें सर्प की प्रतीति नहीं चाहिये अन्तर उपजे सर्पकी बाहिर प्रतीति मायाके बलते माने तो आत्मख्यातिमतकी सिद्धि होवेगी इस रीतिसे रज्जुउपहित चेतन ज्ञानका अधिष्ठान बने नहीं और अन्तःकरण उपहित चेतन सर्प का अधिष्ठान वने नहीं याते सर्प और ताके ज्ञान का अधिष्ठान एक नहीं बने तथापि रज्जु के समीप प्राप्त जो अन्तःकरण की इदमाकारवृत्ति, तामें स्थित चेतन के आश्रित अविद्या, सर्पाकार और ज्ञानाकार परिणामकूं प्राप्त होवे है। वृत्तिउपहित चेतनमें स्थित अविद्याका तमोगुण अंश सर्पका उपादानकारण है। सर्प और ताके ज्ञानका वृत्तिउपहित चेतन अधिष्ठान है। वृत्ति रज्जुदेशमें बाहिर गई याते वृत्तिउपहित चेतन भी बाहिर है याते सर्पका आश्रय बने है। जितना अन्तःकरणका स्वरूप होवे उतना ही साक्षी का स्वरूप होवे है। शरीरके अन्तर स्थित जो अन्तःकरण सोई वृत्तिस्वरूप परिणामकूं प्राप्त होवे है। याते वृत्तिउपहित चेतनसाक्षी है। याते ज्ञानका आश्रय बने है रज्जुका जब साक्षात्कार होवे तब रज्जुचेतनऔर वृत्तिचेतन दोनों एक होवेहैं। याते रज्जुके ज्ञानसे सर्प और ताके ज्ञानकी निवृत्तिभी बने है।

जहां एक रज्जुमें दशपुरुषनकूं किसीकूँ सर्प, किसीकूं दण्ड, किसीकूँ माला, किसीकूं पृथिवीकी दरार, किसीकूँ जलधारा इस रीति से भिन्न २ प्रतीति होवे अथवा सर्वकूं सर्पही प्रतीत होवे। तहां जा पुरुष कूँ रज्जु का साक्षात्कार होवे है ताकी वृत्ति चेतन में कल्पित अध्यास की निवृत्ति होवे है। जाकूँ रज्जुज्ञान नहीं होवे ताके अध्यासकी निवृत्ति होवे नहीं। याते वृत्तिचेतन ही कल्पित का अधिष्ठान है। रज्जु आदिक विषय उपहित चेतन नहीं। जो रज्जुउपहित चेतनकूँ सर्पदण्डादिकनका अधिष्ठान माने तो दश पुरुषनकूं प्रतीत जो होवे दश पदार्थ सो एक एककूँ सारे प्रतीत होने चाहिये और हमारी रीतिसे तो जाकी वृत्तिचेतनमें जो पदार्थ कल्पित है सो ताहीकूँ प्रतीत होवे, अन्यकूँ नहीं। इस रीति से ग्राह्य सर्पादिक और तिनके ज्ञान का वृत्तिउपहित साक्षी अधिष्ठानहै। स्वप्नके पदार्थ और तिनके ज्ञान का भी अन्तःकरण उपहित साक्षीही अधिष्ठान है। या प्रकारते सत् असत्से विलक्षण जो अनिर्वचनीय अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीय सर्पादिक तिनकी ख्याति कहिये प्रतीति और कथन सो अनिर्वचनीयख्याति कहिये है ॥५०॥

शिष्य उवाच-दोहा।

यह मिथ्या परतीत है, जामें जगत अपार।
सो भगवन् मोकूं कहो, को याको आधार ॥५१॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ५१ ॥

श्रीगुरुरुवाच-दोहा।

तव निजरूप अज्ञानते, है मिथ्या जग भान।
अधिष्ठान आधार तू, रज्जु भुजङ्ग समान ॥ ५२ ॥

हे शिष्य! तेरा जो निजरूप कहिये ब्रह्मरूप करके अज्ञान तिससे मिथ्या जगत् प्रतीत होवे है याते जगत् का आधार और अधिष्ठान तू है। जैसे रज्जुके अज्ञानते मिथ्याभुजङ्ग प्रतीत होवेहै, तहां मिथ्या भुजङ्ग का आधार और अधिष्ठान रज्जु है यद्यपि मिथ्या सर्प का अधिष्ठान मुख्य द्वितीय पक्ष में वृत्तिउपहित चेतन है और प्रथम पक्षमें रज्जुउपहित चेतन है। किसी पक्षमें रज्जुअधिष्ठान नहीं तथापि प्रथमपक्षमें चेतनमें अधिष्ठानपने की उपाधि रज्जु है। याते स्थूलदृष्टिसे रज्जु अधिष्ठान कहिये है। जैसे मिथ्या भुजङ्ग का अधिष्ठान तथा आधार रज्जु है, तैसे मिथ्या जगत् का अधिष्ठान और आधार तू है।

या स्थानमें यह रहस्य है:-जैसे जेवरी के दो स्वरूप हैं एक तो सामान्य रूप है, दूसरा एक विशेष रूप है-१-सामान्य रूप 'इदं' है। २-विशेष रूप 'रज्जु' है। १-'यह सर्प है' या रीतिसे मिथ्या सर्पसे अभिन्न होयके भ्रान्तिकाल में भी प्रतीत होवे जो 'इदरूप' सो सामान्य रूप है और जो स्वरूप की भ्रान्तिकाल में प्रतीत न होवे। किन्तु जाकी प्रतीत हुयेते भ्रान्ति दूर होवे, सो

रज्जु का विशेषरूप है, तैसे आत्मा के भी दो स्वरूप हैं। एक सामान्यरूप, दूसरा विशेषरूप १-सद्रूप सामान्य रूप हैं २-असङ्गता कूटस्थता नित्यमुक्तादिक विशेषरूप हैं। काहेते? 'स्थूलसूक्ष्मसङ्घात है।' यामें स्थूल सूक्ष्म सङ्घातको भ्रान्ति समय भी मिथ्यासङ्घात से अभिन्न होयके सत्रूप प्रतीत होवे है। याते आत्मा का तत्स्वरूप सामान्यरूपहै और स्थूलसूक्ष्मसङ्घातकी भ्रान्तिसमय आत्मा का असङ्ग कूटस्थ नित्यमुक्त स्वरूप प्रतीत होवे नहीं, किन्तु असङ्गदादि स्वरूप आत्मा की प्रतीत हुयेते सङ्घातभ्रान्ति दूर होवे है, याते असङ्गता, कूटस्थता, नित्यमुक्तता, व्यापकतादिक विशेष रूप हैं। १-सर्व भ्रान्तिमें सामान्यरूप आधार कहिये है और २-विशेष रूप अधिष्ठान कहिये है। जैसे १—सर्प का आश्रयजा जेवरी ताका सामान्य 'इदं' स्वरूप सर्प का आधार है और विशेष रज्जु स्वरूप अधिष्ठान है। १-तैसे मिथ्या प्रपञ्च का आश्रय जो आत्मा ताका सामान्य सद्रूप प्रपञ्च का आधार है और २-असङ्गतादि के विशेष रूप अधिष्ठान है। इस रीति से आधार और अधिष्ठान का सर्वज्ञात्म नाम मुनिने किञ्चित् भेद प्रतिपादन कियाहै।५२॥

शिष्य उवाच-दोहा।

भगवन् मिथ्या जगत् को, द्रष्टा कहिये कौन।
अधिष्ठान आधार जो, द्रष्टा होय न तौन॥ ५३॥

अर्थ स्पष्ट-भाव यह है:-जगत का आधार और अधिष्ठान आत्माहै, याते जगत्का द्रष्टा आत्मा से भिन्न कहना चाहिये, जैसे सर्प का आधार और अधिष्ठान जो रज्जु तासे भिन्न पुरुष सर्प का द्रष्टा है ॥ ५२ ॥

श्रीगुरुरुवाच-चौपाई।

मिथ्या वस्तु जगत में जे हैं। अधिष्ठान में कल्पित ते हैं ॥
अधिष्ठान सो द्विविध पिछानहु। इकचेतनदू जो जड़ जानहु ॥
अधिष्ठान जड़वस्तु जहाँ है। द्रष्टा ताते भिन्न तहाँ है ॥
जहाँ होय चेतन आधारा। तहाँ न द्रष्टा होवे न्यारा ॥५५॥

अर्थ स्पष्ट भाव यह है:-१-जहाँ जड़ अधिष्ठान होवे तहाँ अधिष्ठान से भिन्नही द्रष्टा होवे है। २-जहाँ चेतन अधिष्ठान होवे तहाँ अधिष्ठान ही द्रष्टा होवे है। भिन्न नहीं ॥ ५५ ॥

दोहा-चेतन मिथ्या स्वप्न को, अधिष्ठान निर्धार।
सोई द्रष्टा भिन्न नहिं, तैसे जगत विचार ॥ ५६ ॥

जैसे स्वप्न का अधिष्ठान साक्षीचेतन है सोई स्वप्नका द्रष्टा है, तैसे जगत का आत्माही अधिष्ठान है सोई द्रष्टा है, यह शङ्का और समाधान स्थूलदृष्टि से जेवरीकूँ सर्प का अधिष्ठान मानिके कहे हैं और सिद्धान्त मत में तो सर्प का अधिष्ठानही साक्षी चेतन है सोई द्रष्टा है। याते सारे कल्पित का अधिष्ठान ही द्रष्टा है। शङ्का समाधान बने नहीं ॥ ५६ ॥

दोहा-इम मिथ्या संसार दुख, है तो मैं भ्रम मान।
ताकी कहा निवृत्ति तू, चाहै शिष्य सुजान॥५७॥

हे शिष्य ! इस रीति से तेरे विषे संसाररूपी दुःख मिथ्या ही भ्रान्ति से प्रतीत होवे है ता मिथ्या की निवृत्ति की चाह बने नहीं। दृष्टान्तः-जैसे बाजीगर ने किसी पुरुष कूँ मिथ्या शत्रु मन्त्र के बल से दिखाया होवे ताके मारने विषे यह पुरुष उद्योग नहीं करता तैसे मिथ्या संसार की निवृत्ति की चाह बने नहीं॥ ५७॥

शिष्य उवाच-चौपाई।

जग यद्यपि मिथ्या गुरुदेवा। तथापि मैं चाहूँ तिहि छेवा॥
स्वप्नभयानक जाकूं भासै। करि साधन जन जिमि तिहि नासै॥
याते है जाते जग हाना। सो उपाय भाषो भगवाना॥
तुम समान सतगुरु नहिं आना। श्रवण कूँ करे वंचक नाना॥

हे भगवन् आपने कहा जो-"जगत् तेरे विषे मिथ्या रूप करके है और सत्यरूप करके नहीं' सो यद्यपि सत्य है तथापि हे भगवन् ! सो मिथ्या रूप करके वा जा उपाय करके मरणादिक संसार मेरे विषे भान न होवे सो उपाय आप कहो और आपने कहा था जो-'मिथ्या की निवृत्तिवास्ते साधन चाहिये नहीं' सो वार्ता भी सत्य है परन्तु हे भगवन्! जाकूँ मिथ्या पदार्थ भी दुःख का हेतु होवे ताकूँ वह मिथ्या भी साधन से दूर करना योग्य है जैसे किसी पुरुषकूँ प्रति दिन भयानक स्वप्न

आते हों। सो मिथ्या भी हैं परन्तु तिनके भी दूर करने कूँ जप और पाद प्रक्षालनादिक नाना साधन अनुष्ठान करते हैं तैसे यह संसार मिथ्या भी है परन्तु जन्मादिक दुःख का हेतु मेरेकूं प्रतीत होवे है। यातें संसार की निवृत्ति चाहू हूँ। आप कृपा करके उपाय बताओ ॥ ॥ ५८ ॥ ५६ ॥

विस्तार पूर्वक

श्रीगुरुरुवाच–सोरठा।

सो मैं कह्यो बखानि, जो साधन तैं पूछियो।
निज हिय निश्चय आनि, रहे न रञ्चक खेदजग॥ ६०॥

हे शिष्य ! जो तैं जगत्रूपी दुःख की निवृत्ति का साधन पूछ्या सो हम तेरेकूँ प्रथमही कह दिया तिस विषे तूँ दृढ़ निश्चयकर। तातें जगत्रूपी खेद रहे नहीं ॥६०॥

दोहा–निज आतम अज्ञानते, है प्रतीत जग खेद।
दूर नशै सु ताके बोधतैं, यह भाषत मुनि वेद ॥६१॥
जग मोमें नहिं 'ब्रह्ममें', 'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान।
सो ताकूँ शिष मैं कह्यो, नहिं उपायको आन॥६२॥

हे शिष्य ! अपने आतम स्वरूप के अज्ञानते जगत् रूपी खेद प्रतीत होवे है, वो आत्मज्ञानते मिटता है जो वस्तु जाके अज्ञानते प्रतीत होवे, सो ताके ज्ञानते मिटे है, यह नियम है। जैसे रज्जु के अज्ञानते सर्प प्रतीत होवे है, सो रज्जु के बोधते मिटे है, तैसे आतम ज्ञानते जगत मिटे है, सो आत्मज्ञान हम कहि दिया, जगत् तौ मेरे

विषे तीनकालमें है नहीं । काहेते ? मिथ्या है, जो मिथ्या वस्तु होवे है सो अधिष्ठान की हानि नहीं करे है । जैसे मरीचिका का जो जल है, सो पृथिवी कूँ गीली नहीं करे है तैसे 'जगत् प्रतीत भी होवे है' परन्तु मिथ्या है, कुछ मेरी हानि करन विषे समर्थ है नहीं और मैं 'सत् चित् आनन्दरूप ब्रह्मस्वरूप हूं' ऐसा जो निश्चय ताका नाम ज्ञान है सोई मोक्ष का साधन है और कोई नहीं सो ज्ञान हमने प्रथम उपदेश करि दिया ॥ ६२ ॥

अज्ञान

दोहा-कर्म उपासनते नहीं, जगनिदान तम नाश ।
घर अन्धकार जिम गेहमें, नशै न बिन परकाश॥६३॥ X

हे शिष्य ! जगत् का निदान कहिये उपादान कारण तम कहिये अज्ञान है ता अज्ञान के नाशते जगत् का आपही नाश हो जावे है । काहेते ? उपादान के नाश होते पीछे कारज रहे नहीं है, ता अज्ञान का नाश केवल ज्ञान करके है । कर्म और उपासना करके नाश होवे नहीं । काहेते ? अज्ञान का विरोधी ज्ञान है, कर्म उपासना विरोधी नहीं दृष्टान्तः-जैसे गृह के विषे अंधकार है सो काहू क्रिया सूँ दूरि होवे नहीं केवल प्रकाश से दूर होवे है । तैसे अज्ञानरूपी जो अन्धकार है, सो ज्ञानरूपी प्रकाश से दूर होवे है और काहू साधन से नहीं ॥ ६३ ॥

दोहा-भाष्यो शिष उपदेश मैं, जगभञ्जक हिय धारि।
जो यामैं संशय रह्यो, सो तूँ पूछविचारि ॥ ६४ ॥

शिष्य उवाचचौपाई।

भो भगवन् जो कछु तुम भाष्यो। सो सबसत्यजानि हियराख्यो
जगनिदान अज्ञान बखान्यो। ताको भञ्जक ज्ञान पिछान्यो
ज्ञानरूप वर्णन पुनि कीना। जगमिथ्या सो मैं भल चीना
सुखस्वरूप आतमपरकाश्यो। दया तिहारी सों मुहि भास्यो
पुनि भाष्यो तूँ ब्रह्म स्वरूपं। यह लख्यो न भेद अनूपं
या मैं मुहि शङ्का इक आवै। जीवब्रह्म को भेद जनावै ॥३७॥

हे भगवन्! आपने जो कहा सो मैं आपके वचन सत्य जानूँ हूँ। आपने कहा जो-'जगत् का कारण अज्ञान है ता अज्ञान के नाश करके जगत की निवृत्ति ज्ञान करके होवे है सो वार्ता मैं जानी। सो ज्ञान का स्वरूप आपने कहा-जगत् मिथ्या है और जीव आनन्द स्वरूप है। सो ब्रह्मसे भिन्न नहीं। किन्तु ब्रह्मरूप है, ऐसे निश्चय का नाम ज्ञान है, ताके विषे जगत् मिथ्या है और जीव आनन्द स्वरूप है,' यह वार्ता मैं जानी। परन्तु "जीव ब्रह्म दोनों एक हैं,' यह वार्ता नहीं जानी काहेते? जीव ब्रह्म के भेदकूँ जानने वाली शङ्का मेरे हृदय में फुरती है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

शंका की चौपाई।

पुण्य पापका हूँ मैं कर्त्ता। जन्म मरण औ सुख दुख धर्त्ता ॥

और अनेक भाँति जगभासै। यहूँ ज्ञान अज्ञान जु नासै ॥
जो याते विपरीत स्वरूपा। ताकूं ब्रह्म कहत मुनि भूपा ॥
कहो एकता कैसे जानूँ। रूप विरुद्ध हिये पहिचानूँ॥६६॥

हे भगवन् ! मैं पुण्यपाप का कर्त्ता हूँ और तिनका जो फल जन्म मरण और सुख दुःख तिनकूँ धारणकरूँ हूँ और नाना प्रकार का जगत् मेरे विषे प्रतीत होवे है, और जगत् का कारण जो अज्ञान है ताके दूर करने कूं मैं ज्ञान चाहूँ हूं और ब्रह्मविषे न पुण्य है न पाप है, न जन्म है, न मरण है, न सुख है, न दुःख है और कोई क्लेश ब्रह्मविषे नहीं और ज्ञानकी इच्छा नहीं है। याते ब्रह्मका और मेरा स्वरूप परस्पर विरुद्ध है। याते दोनों की एकता बने नहीं। यद्यपि मेरे विषे भी जन्मादिक संसार परमार्थ करके हैं नहीं तथापि मिथ्या जो जन्मादिक हैं सो मेरेकूँ भ्रान्तिसे प्रतीत होवे हैं और ब्रह्म में नहीं याते इतना भेद है एकता बने नहीं॥ ६८॥ ६६॥

शंका की-चौपाई :

सुनहु गुरु दूजो पुनि संशै। जीव ब्रह्म एकत्व प्रनंशै ॥
एक वृक्ष में सम द्वै पच्छी। फल भोगै इक दूजो स्वच्छी ॥
भोगसहित परकाश असङ्गा। वेद वचन यह कहत प्रसङ्गा ॥
कर्म उपासन पुनि बहु भाखै। जीव ब्रह्म याते द्वय राखै ॥

हे गुरो ! मेरे एक और संशय है सो आप सुनो। कैसा वह संशय है:-जासूँ जीवब्रह्मकी एकता का निश्चय

प्रनंशै कहिये दूर हो जावे, सो संशय मैं आपकूँ कहूँ हूं आप सुनिके तिस संशयकूँ दूर करो । वेद विषे मैंने ऐसे देख्या है:-एक बुद्धि रूपी वृक्ष में दो पक्षी हैं सो दोनों समान हैं, तिनविषे एक तो कर्म के फलकूँ भोगता है, एक स्वच्छ कहिये शुद्ध है, भोग रहित है, असङ्ग है ता भोगने वालेकूँ प्रकाशै है। याके विषे एक भोगनेवाला जीव प्रतीत होवे है और दूसरा परमात्मा प्रतीत होवे है। याते उनकी एकता बने नहीं।

वेद के विषे कर्म और उपासना बहुत प्रकार के कहे हैं। सो जीव ब्रह्मकी एकताविषे निष्फल होय जावेंगे। काहेते? जो आप जीवब्रह्म की एकता कहो हो सो ब्रह्म विषे जीवके स्वरूपकूँ अन्तरभाव कहो हो अथवा जीव विषे ब्रह्म के स्वरूपकूँ अन्तरभाव कहो हो? जो कदा-चित् ब्रह्मविषे जीव के स्वरूप कूँ अन्तर भाव कहोगे तो जीवकूँ ब्रह्मरूप होनेते अधिकारी का अभाव होवेगा याते कर्म और उपासना निष्फल होवेंगे जो जीव विषे ब्रह्म के स्वरूप का अन्तर भाव कहोगे तो ब्रह्म, जीव रूप होनेते जाकी उपासना करिये है ता उपास्य का अभाव होवेगा। याते उपासना निष्फल होवेगी और कर्म का फल देने वाला जो परमात्मा ताका अभाव होवेगा याते कर्म निष्फल होवेंगे और मीमांसक जो कहे हैं कर्म ही ईश्वर है तिनसे ही फल होवे है सो वार्ता

समीचीन नहीं। काहेते ? जो कर्म हैं सो जड़ है तिनकूं फल देने का सामर्थ्य बने नहीं, याते कर्म का फल ईश्वर ही देता है, या रीति से परमात्मा और जीव की एकता बने नहीं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

श्रीगुरुरुवाच-चौपाई।

सुनहु शिष्य इक कहूँ विचारा। ह्वै जाते शङ्का निस्तारा॥
घटाकाश इक जल आकाशा। मेघाकाश महाआकाशा ७२॥
च्यारि भेद ये नभके जानहु। पुनि चेतनके तथा पिछानहु॥
इक कूटस्थ जीव पुनि कहिये। ईशब्रह्म हिय जाने रहिये ७३॥
जब इनको तू रूप पिछाने। निज शङ्का तबही सब भाने॥
याते सुन इनको अब भेदा। नशै सुनत जन्मादिक खेदा ७४॥

जो तेरेकूँ शङ्का हुई है तिसका निस्तार कहिये निराकरण जाते होवे सो विचार मैं कहूँ हूँ तू सुन, जैसे एक आकाशमें चार भेद है। १-घटाकाश है, २-जलाकाश है, ३-मेघाकाश है, ४-महाकाश है। तैसे एक चेतन के चार भेद हैं, १-कूटस्थ है, २-जीव है, ३-ईश्वर है, ४-ब्रह्म है, ये चारि भेद आकाश की नाईं चेतन विषे हैं। हे शिष्य ! जब इनके स्वरूपकूँ तू भली प्रकार से पिछानेगा तब अपनी शङ्का का तू आप ही समाधान जान लेवेगा, याते मैं इनका स्वरूप वर्णन करूँ हूँ तू सुन, जाकूँ सुनिके संशय रहित ज्ञान होइके जन्मादिक दुःख को नाश होवेगा ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

घटाकाश वर्णन-दोहा।

जलपूरित घटकूँ जु दे, जितनो नभ अवकाश ;
युक्तिनिपुण पण्डित कहैं, ताकूँ घट आकाश ॥ ७५ ॥

हे शिष्य ! जलते भरे घटकूँ जितना आकाश अवकाश देवे है, तितने आकाशकूँ पण्डितजन घटाकाश कहे हैं ॥ ७५ ॥

जलाकाश वर्णन-दोहा।

जल पूरित घटमें जु पुनि, है, नभको आभास।
घटाकाश युत विज्ञजन, भाषत जल आकाश ॥ ७६ ॥

हे शिष्य ! जलसे भरया जो घट है ताके विषे नक्षत्रादि सहित आकाश प्रतिबिम्ब होवे है सो आकाश का प्रतिबिम्ब और घटाकाश दोनों मिले हुए जलाकाश कहिये है। याके विषे कोई शङ्का करे है। आकाश का प्रतिबिम्ब नहीं होवे है। किन्तु केवल नक्षत्रादिकन का ही प्रतिबिम्ब होवे है। काहेते ? आकाश स्वरूप करके रहित है और रूपवाले पदार्थ का प्रतिबिम्ब होवे है। याते आकाश का प्रतिबिम्ब बने नहीं। ऐसा करे है॥७६॥

ताके समाधान-दोहा।

जो जलमें आकाश को, नहिं प्रतिबिम्ब लखाइ।
थोरे में गम्भीरता, है प्रतीत किहि भाइ ॥ ७७ ॥
याते जलमें व्योम को, लखि आभास सुजान।
रूप रहित जिमि शब्दतें, है प्रतिध्वनि को भान ॥७८॥

जो जलके विषे आकाशका प्रतिबिम्ब नहीं होवे तौ गोड़ेपरिमाण जलविषे मनुष्य परिमाण गम्भीरताकी जो प्रतीति होवे है सो नहीं होनी चाहिये। याते आकाश का प्रतिबिम्ब अङ्गीकार करना योग्य है और जो कहे है।

"रूपरहित पदार्थका प्रतिबिम्ब नहीं होवे है" सो भी नियम नहीं है। काहेते? रूपरहित जो शब्द है, ताकी प्रतिध्वनि होवे है, सो शब्दका प्रतिबिम्ब है। याते रूप रहित जो आकाश है ताका भी प्रतिबिम्ब बने है॥७८॥

मेघाकाश वर्णन—दोहा।

जो मेघहि अवकाश दे, पुनि तामैं आभास।
तिन दोनोंकूँ कहत हैं, बुधजन मेघाकास॥ ७९ ॥

मेघ जो बादल तिनकूँ जो आकाश अवकाश देवे है और मेघके जलमें जो आकाश का प्रतिबिम्ब है तिन दोनों कूँ मेघाकाश कहे हैं॥ ७९ ॥

याके विषे कोई शङ्का करे है जो मेघ तो आकाश विषे है तिनमें जल और आकाश का प्रतिबिम्ब दीखे विना कैसे जाने जावे हैं।

ताका समाधान—दोहा।

वर्षत मेघ अनन्त जल, उदक सहित इहि हेत।
दक नहिं नभ आभास बिन, इमि प्रतिबिम्ब समेत॥८०॥

यद्यपि मेघविषे जल और आकाशका प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष नहीं है, तथापि अनुमान करके जाने जावे हैं मेघ जो

माए अन्ताकरन मा....जी

जलकी वृष्टि करे है याते ऐसा अनुमान होवे है जो मेघ विषे जल है जो मेघविषे जल न होवे तौ जल की वृष्टि मेघसे नहीं होवे और मेघविषे जल है सो आकाश के प्रतिबिम्ब सहित है, काहेते? जो जल होवे है सो आकाश के प्रतिबिम्ब बिना नहीं होवे है याते मेघ विषे जो जल है सो भी आकाशके प्रतिबिम्ब वाला है। इस रीति से मेघ विषे जल और आकाशके प्रतिबिम्ब का अनुमान होवे है उदक और दक ये दोनों जलके नाम हैं ॥ ८० ॥

महाकाश वर्णन-दोहा।

बाहिर भीतर एक रस, व्यापक जो नभ रूप।
महाकाश ताकूँ कहैं, कोविद बुद्धि अनूप ॥ ८१ ॥

बाहिर और भीतर सारे एकरस व्यापक जो नभ कहिये आकाश का स्वरूप है, ताकूं अनूप कहिये अद्भुत बुद्धिवाले पण्डित महाकाश कहे हैं ॥ ८१ ॥

दोहा-चतुर्भान्ति नभके कहे, लक्षण श्रुति अनुसार।
अब चेतनके शिष्य सुन, जासूँ लहै विचार॥८२॥

हे शिष्य! चार प्रकारके आकाशके लक्षण कहे, अब चार भांति के चेतन के लक्षण सुन, जाके सुनेते विचार कहिये विचार का फल ज्ञान प्राप्त होवे ॥ ८२ ॥

कूटस्थ वर्णन-दोहा।

मति वा व्यष्टि अज्ञान को, अधिष्ठान चेतन्य।
घटाकाश सम मानिये, सो कूटस्थ अजन्य ॥ ८३ ॥

बुद्धि अथवा व्यष्टि अज्ञान का जो अधिष्ठान चेतन है सो कूटस्थ कहिये है, १-जा पक्षमें बुद्धिसहित चेतन जीव है ता पक्षमें बुद्धि का अधिष्ठान कूटस्थ है, २-जा पक्ष में व्यष्टि अज्ञान सहित चेतन जीव कहिये है ता पक्ष में व्यष्टि अज्ञान का जो अधिष्ठान है सो कूटस्थ कहिये है, या स्थान विषे यह सिद्धान्त है-जीवपने का जो विशेषण है ताके अधिष्ठान का नाम कूटस्थ कहिये है। सो कूटस्थ अजन्य है। उत्पत्ति से रहित है याका अभिप्राय यह है-ब्रह्म से न्यारा जैसे चिदाभास उत्पन्न होवे है, तैसे यह उत्पन्न नहीं हुआ, किन्तु ब्रह्मरूप ही है जैसे घटाकाश महाकाशसे न्यारा नहीं होय गया, किन्तु महाकाश रूप है, यह जो कूटस्थ है सोई आत्मपद का लक्ष्य अर्थ है और याहीकूँ प्रत्यक कहे हैं और याहीकूँ निजरूप कहैं हैं और यही जीव साक्षी है ॥ ८३ ॥

जीववर्णन-दोहा।

काम कर्मयुत बुद्धि मैं, जो चेतन प्रतिबिम्ब।
जीव कहै विद्वान तिहिं, जल नभ तुल्य सबिम्ब ॥८४॥

नाना काम्य और कर्म सहित जो बुद्धि है तामें जो चेतनका प्रतिबिम्ब है ताकूँ विद्वान् कहिये ज्ञानी जीव कहेहैं। सो केवल प्रतिबिम्बमात्रकूँ जीव नहीं कहेहैं, किन्तु जैसे घटाकाश सहित आकाश के प्रतिबिम्बकूँ जलाकाश कहे हैं, तैसे सबिम्ब कहिते बिम्ब जो कूटस्थ, ता सहित

चिदाभासकूं जीव कहे हैं, याते यह सिद्धान्त हुआ बुद्धि में जो चिदाभास और बुद्धि का अधिष्ठान चेतन दोनों का नाम जीव है ॥ ८४ ॥

दोहा-अधिष्ठान कूटस्थ से, है आभास बहाल।
रक्तपुष्प ऊपर धरचो, स्फटिक होइ जिमिलाल ॥८५॥

पूर्व दोहेविषे बिम्ब जो कूटस्थ तासहित आभास कूँ जीव कह्या, याते यह प्रतीत होवे है-जो बुद्धि में प्रतिबिम्ब है सो कूटस्थ का है और बाहिर के ब्रह्मचेतन का नहीं। काहेते ? जाका प्रतिबिम्ब होवे सो बिम्ब कहिये है, सो कूटस्थकूं बिम्ब कह्या, याते ताका प्रतिबिम्ब है, यह प्रतीत होवे है। सो या दोहे से प्रति पादन करे हैं-जैसे बड़े लाल पुष्प के ऊपर धरया जो सफेद स्फटिक है ताके विषे फूलकी लाली की दमक होवे है सो लाल फूल का प्रतिबिम्ब है तैसे कूटस्थ के आश्रित जो बुद्धि ताके विषे कूटस्थ के प्रकाश की दमक होवे है, जैसे स्फटिक अत्यन्त उज्ज्वल है, तैसे बुद्धि भी अत्यन्त शुद्ध है। काहेते ? बुद्धि सत्त्वगुण का कार्य है, याते कूटस्थ की दमक का नाम प्रतिबिम्ब है।

२-अथवा ब्रह्म चेतन का प्रतिबिम्ब है, जैसे महाकाश का घटके जलमें प्रतिबिम्ब होवे है और भीतरके आकाश का नहीं। काहेते ? जितनी गम्भीरता जलविषे प्रतीत होवे है उतनी गम्भीरता भीतर के आकाश में है नहीं। सो

गम्भीरता आकाश का प्रतिबिम्ब है याते बाहिर के आकाश का प्रतिबिम्ब है। १-यह जो कहैं हैं 'व्यापक चेतनका प्रतिबिम्ब बने नहीं' सो आकाश के दृष्टान्त से शङ्का दूर होवे है। काहेते? जो आकाश भी व्यापक है, और ताका प्रतिबिम्ब होवे है तैसे व्यापक चेतन का भी प्रतिबिम्ब बने है।

और जो कहैं हैं। 'रूपवाले पदार्थका रूपवाले पदार्थ में प्रतिबिम्ब होवे है,' सो भी नियम नहीं है, काहेते? रूपरहित शब्दका रूपरहित आकाश में प्रतिबिम्ब होवे है, यह पूर्व कहि आये। याते चेतनका प्रतिबिम्ब बने है,

इस रीतिसे बुद्धि में आभास और बुद्धि का अधिष्ठान चेतन, दोनों का नाम जीव है यह कह्या। १-सो जीव त्वंपदका वाच्य कहिये है। २-ताके विषे चिदाभास का त्याग करिके केवल जो कूटस्थ है सो त्वंपद का लक्ष्य कहिये है। १-अहंशब्दका वाच्य भी जीव है। २-केवल कूटस्थ अहं शब्द का लक्ष्य है॥ ८५॥

दोहा-बुद्धिमाहिं आभास जो, पुण्य पाप फल भोग।
गमन आगमन सो करे, नहिं चेतन में जोग॥८६॥
मिथ्या नभ घट सङ्ग ज्यों, लहै क्रिया बहु भाँति।
घटाकाश अक्रिय सदा, रहै एकरस शाँति॥८७॥

यद्यपि जीव नाम चिदाभास और कूटस्थ दोनों का है, तथापि जीवपनेके जो धर्म हैं सो सारे आभास विषे हैं

पुण्य और पाप और पुण्य पापके फल सुखदुःख और लोकान्तर विषे गमन और या लोक विषे आगमन इसते आदि लेके सारे आभास सहित बुद्धि करे हैं और कूटस्थ नहीं करे है। कूटस्थ विषे केवल भ्रांति से प्रतीत होवे है। सो भ्रांतिसे प्रतीत भी बुद्धि सहित आभास कूं होवे है। कूटस्थकूं नहीं। काहेते ? १-कूट जो लुहार का अहरन ताकी न्याईं निर्विकार रूप से स्थित होवे सो कूटस्थ कहिये है। २-अथवा कूट कहिये मिथ्या जो बुद्धि और चिदाभास ताके विषे असङ्ग रूप से स्थित होवे सो कूटस्थ कहिये है। याते कूटस्थ विषे भ्रांति आदिक बने नहीं, किन्तु चिदाभास में बने हैं। और अत्यन्त विचार से देखिये तो पुण्य, पाप, सुख, दुःख लोकान्तर में गमन और आगमन केवल बुद्धि में है आभास में भी नहीं। बुद्धि के संयोग से आभास में है जैसे जलसहित जो घट है, सो टेढ़ा होवे है और सीधा होवे है, और जावे आवे है और ताके सबन्ध से व्योम के आभास संपूर्ण क्रिया करे है और स्वतंत्र कछु भी नहीं करे है, तैसे काम्यकर्म रूपी जल से भरया जो बुद्धि रूपी घट है सो पुण्य से आदि लेके संपूर्ण विकार धारे है और ताके संबन्ध से चिदाभास धारे है। और कूटस्थ सर्व विकार से रहित है। जैसे जल पूरित घट के विकार से रहित घटाकाश है। ताकी न्याईं कूटस्थकूँ जान, यातें

जीवपनेके धर्म चिदाभास में है, तथापि कूटस्थ में अज्ञान से प्रतीत होवे है। याते बुद्धि के विषे कूटस्थ सहित जो चिदाभास सो जीव कहिये है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

यह जो जीव का स्वरूप वर्णन किया याके विषे प्राज्ञकी हानि होवे है। काहेते? जो सुषुप्ति के अभिमानी जीव का नाम प्राज्ञ है ता सुषुप्ति विषे बुद्धि का अभाव होवे है याते बुद्धि में आभास भी बने नहीं। याते प्राज्ञ के स्वरूप का प्रतिपादक जो शास्त्र है, ताका विरोध होवेगा इस कारणते जीव का स्वरूप और प्रति पादन करे हैं:—

दोहा-अथवा व्यष्टि अज्ञान में, जो चेतन आभास।
अधिष्ठान कूटस्थयुत, कहै जीवपद तास ॥ ८८ ॥

१-अज्ञान के अंश का नाम व्यष्टि अज्ञान कहिये है, २-संपूर्ण अज्ञान का नाम समष्टि अज्ञान है। ता अज्ञानके अंश विषे जो चेतन का आभास और अज्ञान के अंश का अधिष्ठान जो कूटस्थ है। तिन दोनों को जीवपद कहै हैं, याते प्राज्ञ का अभाव होवे है। काहेते? सुषुप्ति विषे अज्ञान रहे है, जो सुषुप्ति विषे चेतन के प्रतिबिम्ब सहित अज्ञान का अंश है सोई बुद्धिरूप कूँ प्राप्त होवे हैं और चेतन का प्रतिबिम्ब साथ ही होवे है ता चिदाभास सहित बुद्धि में पुण्यादिक संसार होवे है। इस अभिप्रायते बुद्धि ही कहुँ शास्त्रन विषे जीवपने

की उपाधि वर्णन करी है और विचार दृष्टि से जीवपने की उपाधि अज्ञान है ॥ ८८ ॥

ईशवर्णन–दोहा।

चित छाया माया विषे, अधिष्ठान संयुक्त ।
मेघ व्योम सम ईश सो, अन्तर्यामी मुक्त ॥ ८९ ॥

माया के विषे जो चेतन की छाया कहिये आभास और मायाका अधिष्ठान चेतन दोनों कूँ ईश्वर कहै हैं सो ईश्वर मेघाकाशके सम है। १–सो ईश्वर अन्तर्यामी है। काहेते? सर्वके अन्तर प्रेरणा करै है याते अन्तर्यामी है। २–सदा मुक्त है। काहेते? वाकूँ अपने स्वरूप में आवरण नहीं, याते जन्म मरणादिक बन्धकी प्रतीत नहीं। इस हेतुते ईश्वर नित्यमुक्त है। ३–सर्वज्ञ है, सर्व पदार्थ के जाननेवाला है, याकविषे यह हेतु है:–माया विषे शुद्ध सत्त्वगुणहै। तमोगुण और रजोगुण से दबा हुआ सत्त्व-गुण नहीं होवे किन्तु रजोगुण और तमोगुण कूँ आप दबाने वाला होवे, सो शुद्ध सत्त्वगुण कहिये है। सत्त्व-गुणसे ज्ञानकी उत्पत्ति होवे है याते प्रकाश स्वभाव वाला सत्त्वगुण है। ऐसी सत्त्वगुणवाली मायाके विषे जो चेतन का आभास ताकूँ स्वरूप विषे अथवा पदार्थ विषे आवरण सम्भव नहीं याते मुक्त है और सर्वज्ञ है, अधि-ष्ठान जो चेतन है सो तो जीव और ईश्वर दोनों विषे बन्धमोक्ष भेदसे रहित है, आकाश की न्याईं एक रस है

परन्तु आभास अंशविषे बन्धमोक्ष है, अधिष्ठानविषे आभासकूं भ्रान्तिसे प्रतीत होवे है, याते केवल आभास में बन्धमोक्ष है। तिसविषे भी इतना भेद है-१ जो आभासमें आवरण है ताके विषे बन्ध है, २-जो विषे स्वरूपका आवरण नहीं है सो मुक्त हैं, १-ईश्वरमें आवरण नहीं, याते ईश्वर सदामुक्त है, २-जीवविषे आवरण है सो बद्ध है। बद्ध कहिये बंध्या हुआ है। काहेतं जा अविद्याके अंशमें चेतनके आभासको जीव कह्या, ता अविद्याका आवरण करनेका स्वभाव है यद्यपि १-अविद्या २-अज्ञान और ३-माया एकही वस्तुकूं कहै है। यथापि शुद्धसत्त्वगुणकी प्रधानतासे माया कहिये है। २-३ मलिन सत्त्वगुणकी प्रधानता से अज्ञान और अविद्या कहै हैं, रजोगुण और तमोगुण से दवा जो सत्त्वगुण है सो मलिन सत्त्वगुण कहिये है याते तमोगुण और रजोगुण की अधिकता होनेसे अविद्यामें जो जीवका आभास अंश ताकूं अविद्या स्वरूपका आवरण करे है, याते जीव में बन्धन है और ईश्वरमें नहीं। १--अधिष्ठानचेतनसहित जो मायामें आभासरूप ईश्वर है सो तत्पद का वाच्य कहिये है, २-केवल अधिष्ठानचेतनतत्पदका लक्ष्य है जो ईश्वर है सोई जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करे है। यह सम्पूर्ण शास्त्र में कह्या ताका यह अभिप्राय है:-चेतन अंश तो आकाशकी न्याई असङ्ग

है और आभासअंश जगत् की उत्पत्ति आदि करे है, ताहीविषे सर्वज्ञता है। भक्तजनके ऊपर अनुग्रह जो करे है सो भी केवल आभासअंश करे है। जो कछु ऐश्वर्य है, सो केवल आभासमें है चेतन अंश एकरस है, वाकेविषे सत्तास्फूर्ति देने विना और ऐश्वर्य बने नहीं ॥ ८६ ॥

ब्रह्मस्वरूप वर्णन—दोहा।

अन्तर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर।
विभु नभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर ॥९०॥

ब्रह्माण्डके अन्तर कहिये भीतर और बाहिर जो महाकाशकी न्याई भरपूर चेतन है सो ब्रह्म कहिये है, सो ब्रह्म नेरे और दूर नहीं काहेते? जो वस्तु अपनेसे भिन्न होवे और देशरूप उपाधिवाला होवे सो नेरे और दूर कहा जावे है। ब्रह्म भिन्न नहीं किन्तु सबका आत्मा है और देशादिक सर्व उपाधिते रहित है, याते नेरे और दूर नहीं कहा जावे, यद्यपि ब्रह्मशब्दका वाच्य भी सोपाधिक है। काहेते? व्यापक वस्तुका नाम ब्रह्म है, सो व्यापकता दो प्रकार की है:—एक तो आपेक्षिक व्यापकता है। १—जो वस्तु किसी पदार्थ की अपेक्षाके व्यापक होवे और किसी की अपेक्षा न होवे ताके विषे आपेक्षिक व्यापकता कहिये है। जैसे पृथ्वी आदिकी अपेक्षासे माया व्यापक है और चेतन की अपेक्षाते नहीं है याते मायाविषे आपेक्षिक व्यापकता है।

२-जो वस्तु सर्वकी अपेक्षासे व्यापक होवे ताके विषे जो व्यापकता सो निरपेक्षिकव्यापकता कहिये है सो निरपेक्षिकव्यापकता चेतनविषे है । काहेते ? चेतन के समान अथवा चेतनसे अधिक और कोई व्यापक है नहीं, किन्तु चेतन ही सर्वसे व्यापक है याते चेतनविषे निरपेक्षिक व्यापकता है । यह दोनों प्रकारकी व्यापकता सहित जो वस्तु है सो ब्रह्मशब्दका वाच्य है । सो दोनों प्रकारकी व्यापकता मायाविशिष्टचेतनविषे है । काहेते ? १-विशिष्टविषे जो मायाअंश है ताकेविषे तो आपेक्षिकव्यापकता है । २-चेतन अंशविषे निरपेक्षिक व्यापकता बने नहीं । काहेते ? माया चेतनके एकदेशविषे है तो मायाविशिष्ट चेतनसे शुद्ध चेतनकी व्यापकता अधिक है ? याते शुद्धचेतनविषे निरपेक्षिकव्यापकता है ? तथापि मायाविशिष्ट जो चेतन है सो परमार्थ दृष्टि करके शुद्धसे भिन्न नहीं किन्तु शुद्धरूपही है याते मायाविशिष्टमें भी जो चेतनअंश है ताकेविषे निरपेक्षिक ही व्यापकता है । इस रीतिसे १-मायाविशिष्ट ही ब्रह्म शब्दका वाच्य बने हैं । २-शुद्ध चेतन ब्रह्मशब्दका लक्ष्य है याते ईश्वर शब्द और ब्रह्मशब्द दोनोंका समान ही अर्थ प्रतीत होवे है, भिन्न अर्थ नहीं । तथापि १-ब्रह्मशब्दका तो यह स्वभाव है जो बहुत स्थानविषे

लक्ष्य अर्थकूँ बोधन करे है और काहू स्थानविषे वाच्य अर्थकूं कहेहै। ईश्वर शब्दका यह स्वभावहै जो बहुत स्थान में वाच्य अर्थका बोधन करे है, इतना भेद है। यातें लक्ष्य अर्थकूं लेके ब्रह्मशब्दका अर्थ भिन्न निरूपण कियाहै॥ ६०॥

दोहा।

चतुर्भांति चेतन कह्यो, तामें मिथ्या जीव।
पुण्य पाप फल भोगवे, नितकूटस्थ सुशीव॥ ६१॥

हे शिष्य! चारि प्रकारका चेतन कह्या तामें जीवके स्वरूपमें जो मिथ्या आभास अंश है, सो पुण्य पाप करे है और तिनके फलको भोगे है। २-कूटस्थ जो चेतन है सो शीव कहिये शिवरूप है। शिव नाम कल्याणका है। यातें प्रथम जो शङ्का करी थी-"जो बुद्धिरूपी वृक्षमें दो पक्षी हैं, एक परमात्मा और जीव" ताका यह उत्तर कहा परमात्मा और जीवका ग्रहण नहीं करना किन्तु कूटस्थ तो प्रकाशमान है और आभास भोगे हैं॥६१॥

दोहा।

कर्मी छाया देत फल, नहि चेतनमें योग।
सो असङ्ग इकरुप है, जाने भिन्न कुलोग॥ ६२॥

जीवके स्वरूपमें जो चेतनकी छाया कहिये आभास अंश है सो कर्मी कहिये कर्म करे है ता कर्म करने वालेकूं छाया जो ईश्वरका आभास अंश है सो फल देवे है, छाया शब्दका देहली दीपकन्याय करके पूर्व उत्तर

दोनों ओरको संबन्ध हैं। जैसे देहली के ऊपर धरया जो दीपक है, सो दोनों ओरकूँ प्रकाशे है।

'छाया कर्मी' और 'छाया देत फल' याते यह वार्त्ता सिद्ध हुई:-जीवके स्वरूप में जो आभास अंश है सो तो पुण्य पाप करे है और तिनका फल भोगे है और ईश्वरमें जो आभास अंश है सो कर्म का फल देवे है और दोनों विषे जो चेतन अंश है, तिस विषे किसी बातका योग नहीं। जीवमें जो चेतन अंश है ताविषे तो कर्म और फलका योग नहीं और ईश्वरमें जो चेतन अंश है तामें फल देनेका योग नहीं है ता चेतन में जो कहे है सो मूर्ख है, काहेते ? चेतन दोनों विषे असङ्ग है और एकरूप है, चेतनमें भेद नहीं। जीव चेतनकूँ जो ईश्वर चेतन से अथवा ईश्वर चेतनकूँ जो जीवचेतन से भिन्न कहिये न्यारा जाने सो कुलोग कहिये निन्दन करने योग्य लोग हैं या कहनेते दूसरा जो प्रश्न किया था जो-'जीव और परमात्मा की एकता अंगीकार करने से कर्म और उपासना का प्रतिपादक वेद निष्फल होवेगा' ताका उत्तर कह्या। जो जीव और ईश्वरमें चेतन भागहै तिनका तो अभेद है और आभास का भेद है। याते दोनों प्रकार के वचन बने हैं॥ ६२॥

चौपाई।

अहो शिष्य तैं प्रश्नजु कीने। तिनके ये उत्तर मैं दीने॥

कहे जु तैं तरुमें द्वैपच्छी। इक भोगी इक आहि अनिच्छी ॥
ते चेतन आभास लखाये। नभ छाया ज्यों भिन्न बताये ॥
कह्यो भिन्न कर्मी फलदाता। मति माया छाया सो ताता ॥
जीव ईश में चेतन रूपं। भेद गन्धतें रहित अनूपं ॥
याते 'अहं ब्रह्म' यह जानो। 'अहं' शब्दकूटस्थ पिछानो ॥
'ब्रह्म'शब्दकोअर्थसुभाख्यो। महाकाश समलक्ष्यजु राख्यो ॥
'अहंब्रह्म' नहिंजो नौं जानें। तौलौंदीनदुखिनभय मानें६३॥

हे शिष्य ! जो तैंने प्रश्न करे तिनके मैं उत्तर कहे। १-जो तैंने कहा था ' एक वृक्ष में दो पक्षी हैं एक भोगी है और एक इच्छाते रहित है याते जीव ब्रह्म की एकता बने नहीं' याका हमने उत्तर कह्या जो " या स्थानमें जीव ब्रह्म का ग्रहण नहीं कहना किन्तु कूटस्थ और बुद्धिमें जो आभास तिनका ग्रहण करना। सो आप समें घटाकाश और आकाश की छाया की न्याईं भिन्न हैं' और जो तैंने प्रश्न किया था:-' जीव तो कर्म उपासना करने वाला है और परमात्मा फल देने वाला है, तिनकी एकता बने नहीं'। याका भी हमने यह उत्तर कह्या जो-१-कर्म करने वाला जीव नहीं है और फल देनेवाला ईश्वर नहीं है। किन्तु जीवमें जो आभास अंश है सो करे है, २-ईश्वर में जो आभास अंश है सो फल देवे है और जीव ईश्वर में जो चेतन अंश है सो घटाकाश महाकाश की न्याईं भेद का जो गन्ध कहिये लेश तासे

रहित हैं' इस रीति से हे शिष्य ! जीव और ब्रह्म की एकता बने है । याते 'अहं' कहिये 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसे तूँ जान अहंशब्द का अर्थ तो कूटस्थकूँ विज्ञान और ब्रह्म शब्द का जो महाकाश के सम लक्ष्य अर्थ कह्या है सो जान 'अहं' शब्दका और 'ब्रह्म' शब्द का वाच्य अर्थ का अभेद नहीं भी है परन्तु लक्ष्य अर्थ का अभेद है। और हे शिष्य ! १-जब लग तू ' अहं ब्रह्मास्मि ' ऐसे नहीं जानेगा तब लग तू अपनेकूँ दीन मानेगा और दुःखी मानेगा । २-न्यारा जो परमात्मा जाना है सो तेरे कूँ भयका हेतु होवेगा । याते मैं ब्रह्म हूँ' ऐसे जान॥६३॥६६॥

॥तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा ।

कहो गुरू हे कौनकूँ, 'अहं ब्रह्म ' यह ज्ञान ।
नहिं जानूँ मैं आपके, भाषे बिना सुजान ॥६७॥

हे गुरु आप कृपा करिके कहो । ' अहं ब्रह्मास्मि ' ऐसा ज्ञान किसकूं होवे है ? आपके कहे बिना यह वार्त्ता मैं जानूँ नहीं हूं, शिष्यके चित में यह गूढ़ अभिप्राय है:-'मैं ब्रह्म हूँ ' ऐसा ज्ञान कूटस्थ विषे होवे है अथवा आभाससहित बुद्धि में होवे है। १-जो कूटस्थ में कहोगे तो कूटस्थ विकारी होवेगा। २-आभास सहित बुद्धि में कहोगे तो वाकूँ ' मैं ब्रह्म हूँ ।' ऐसा ज्ञान भ्रान्ति रूप होवेगा। काहेते ? आपने ऐसा पूर्व कह्या जो 'कूटस्थ की और ब्रह्मकी एकता है और आभास भिन्न है' याते ब्रह्म

से भिन्न जो आभास ताका ब्रह्मरूप करके जो ज्ञान सो भ्रान्तिही होवेगा। जैसे सर्पते भिन्न जो रज्जु ताका सर्प रूप करिके ज्ञान भ्रान्ति है। इस रीति से आभासहित बुद्धि कूँ 'मैं ब्रह्म हूं' यह ज्ञान यथार्थ नहीं होवेगा। किन्तु भ्रान्तिरूप होवेगा और जो कदाचित् 'अहं ब्रह्मास्मि' इस ज्ञानकूँ भ्रान्तिरूपही अङ्गीकार करोगे तो यह ज्ञानते मिथ्या जगत्की निवृत्ति नहीं होवेगी, किन्तु यथार्थ ज्ञान से मिथ्या की निवृत्ति है। जैसे रज्जु के यथार्थ ज्ञान से मिथ्या सर्प की निवृत्ति होवे है, इस रीति से आभास सहित बुद्धि कूँ 'मैं ब्रह्म हूँ' यह ज्ञान बने नहीं ॥ ६७ ॥

श्रीगुरुरुवाच-सोरठा।

कहूँ अवस्था सात, सुन शिष्य व आभास की।
नहिं चेतन की तात, तिनही में यह ज्ञान है ॥ ६८ ॥

हे शिष्य! अब आभास की सात अवस्था मैं कहूँ हूं सो तू सुनः-(अबकी ठौर बकार पढ़ा है।) तिन सात अवस्था में कोई भी चेतन कूटस्थ ताकी नहीं है और "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान भी तिन सात के भीतर हो है ॥ ६८ ॥

सप्तअवस्था नाम-चौपाई।

एक अज्ञान आवरण जानो।
भ्रान्ति द्विविध पुनि ज्ञान पिछानो ॥

शोकनाश अतिहर्ष अपारा।
सप्त अवस्था इमि निर्धारा ॥ ९९ ॥

अज्ञान और आवरणस्वरूपवर्णन-दोहा।

नहिं जानूँ मैं ब्रह्मकूँ, याकूँ कहत अज्ञान।
ब्रह्म है नहिं भान है, यह आवरण सुजान ॥ १०० ॥

हे शिष्य! १-"मैं ब्रह्म को नहीं जानूँ हूं" यह जो पुरुष कहै या व्यवहार का हेतु अज्ञान है। २-"ब्रह्म है नहीं और भान नहीं होवे है" इस व्यवहार का हेतु आवरण है आवरणसे यह व्यवहार होवे है। काहेते? दो प्रकार की अज्ञान शक्ति होवे है-एक तो असत्वापादक है और एक अभाना पादक है तिन दोनों को आवरण कहे हैं। 'वस्तु नहीं है' ऐसी प्रतीति कराने वाली जो शक्ति, सो असत्वा पादक कहिये है और वस्तु का भान नहीं होवे है ऐसी प्रतीति कराने वाली जो अज्ञान की शक्ति, सो अभानापादक कहिये है। इस रीति से 'ब्रह्म नहीं है' इस व्यवहार की हेतु अज्ञान की असत्वापादक शक्ति है और 'ब्रह्म भान नहीं होवे है' इस व्यवहार की हेतु अज्ञानकी अभानापादक शक्ति है इन दोनों का नाम आवरण है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

भ्रान्तिवर्णन-दोहा।

जन्म मरण गमनागमन, पुण्य पाप सुख खेद।
निजस्वरूप में भान है, भ्रान्ति बखानी वेद ॥ १०१ ॥

जन्म से आदि लेके जो संसार है ताका जो निजस्वरूप कहिये कूटस्थ प्रतीति सो वेद में भ्रान्ति कहिये है और याही कूँ शोक कहे हैं॥ १०१॥

द्विविधज्ञानवर्णन-दोहा।

द्वैविध ज्ञान बखानिये, इक परोक्ष अपरोक्ष।
'अस्तिब्रह्म' परोक्ष है, 'अहं ब्रह्म' अपरोक्ष ॥१०२॥
'नहीं ब्रह्म' या अंश को, करै परोक्ष विनाश।
सकल अविद्या जालकूँ, दूजो नशै प्रकाश ॥ १०३ ॥

१-ब्रह्म 'नहीं है' या आवरण के अंश कूँ 'ब्रह्म है' ऐसा परोक्षज्ञान विनाशे है। काहेते? 'सत्य ज्ञान अनन्त रूप ब्रह्म है' ऐसा जो ज्ञान ताका नाम परोक्ष ज्ञान है सो 'ब्रह्म नहीं है' ऐसी प्रतीति का विरोधी है और का नहीं और 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा जो अपरोक्ष ज्ञान सो सकल अविद्या जालका विरोधी है कारणते 'मैं ब्रह्म हूँ नहीं जानूँ हूं' यह अज्ञान और 'ब्रह्म नहीं है' और 'भान नहीं होवे है' यह आवरण और 'मैं ब्रह्म नहीं हूँ, किन्तु पुण्य पापका कर्ता और सुख दुःखका भोक्ता जीव हूँ,' यह भ्रान्ति, इतना जो अविद्याजाल है ताकूँ अपरोक्ष ज्ञान नाश करे है ॥ १०२॥ १०३॥

भ्रान्तिनाश वर्णन-दोहा।

जन्ममरण मोमैं नहीं, नहीं सुख दुख को लेश।
किन्तु अजन्य कूटस्थ मैं, भ्रान्तिनाश यह वेश ॥१०४॥

मेरे विषे जन्म और मरण नहीं है और २ सुख दुःख का लेश भी नहीं है और ३-कोई भी संसारधर्म मेरे विषे नहीं है किन्तु ४-अजन्य कहिये जन्म से रहित जो कूटस्थ, सो 'मैं हूँ' हे शिष्य ! इस रीतिसे सर्व अनर्थ का जो निषेध यह भ्रान्ति नाश का वेष कहिये स्वरूप है अथवा यह भ्रांतिनाश वेष कहिये उत्तम है या जगत् कूटस्थ में जन्मका निषेध करनेते सर्वका निषेध जानि लेना। काहे ते? जन्म प्रतीत से अनन्तर और अनर्थ प्रतीति होवे। याते जन्मके निषेधते सर्व अनर्थ का निषेध है। यह जो भ्रान्ति नाश है, याहीकूं शोकनाश भी कहे हैं ॥ १०४ ॥

हर्षस्वरूपवर्णन-दोहा।

संशय रहित स्वरूप को, होय जु अद्वय ज्ञान।
तब उपजे हिय मोद तब, सो तू हर्ष पिछान ॥१०५॥

हे शिष्य ! जब तेरेकूं संशय रहित अपने स्वरूप का ऐसा ज्ञान होवेगा, जो "मैं अद्वय ब्रह्म रूप हूँ" तब तेरेकूँ जो मोद होवेगा ताकूँ तूँ हर्ष पिछान ॥१०५॥

दोहा।

कही अवस्था सात मैं, तोकूँ शिष्य सुजान।
सो सगरी अभास की, है तिनहीं मैं ज्ञान ॥१०६॥
"ज्ञान होत है कौनकूँ," यह पूछी मैं बात।
मैं ताको उत्तर कह्यो, चहै सु पूछन तात ॥१०७॥

अर्थ-स्पष्ट है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

जो गूढ़ अभिप्रायते प्रश्न करया था, ताकूँ अब शिष्य प्रगट करे है:—

दोहा—भगवन् है आभासकूँ, 'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान।
तुम भाष्यो सो मैं लख्यो, पुनि शङ्का इक आन॥१०८॥

चौपाई।

है आभास ब्रह्मते न्यारा। अस तुम पूर्व कियो निर्धारा॥
'अहं ब्रह्म' सो कैसे जानै। आप हि भिन्न ब्रह्मते मानै॥
जो जाने तौ मिथ्या ज्ञाना। होइ जेवरी भुजग समाना॥
श्रीगुरु यह सन्देह मिटाऊ। युक्तिसहित निज उक्ति सुनाऊ॥

हे भगवन्! आपने यह पूर्व कह्या जोः—"कूटस्थ और ब्रह्म तौ दोनों एक है और आभास ब्रह्मते न्यारा है" ता ब्रह्मसे भिन्न आभासकूँ 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा ब्रह्मरूप करिके ज्ञान बने नहीं। १—मेरा अधिष्ठान जो कूटस्थ सो ब्रह्म रूप है, ऐसा जो आभास कूँ ज्ञान होवे तौ यथार्थ ज्ञान होवे। २—'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान यथार्थ नहीं बने। काहेते? अहं नाम अपने स्वरूप का है। जाकूँ मैं कहैं हैं। सो आभास का स्वरूप मिथ्या है। याते भिन्न है याते ब्रह्मसे भिन्न आभास का जो स्वरूप वाकूँ ब्रह्मरूप करके ज्ञान होवे तौ मिथ्या ज्ञान होवे। जैसे सर्प से भिन्न जो जेवरी ताका सर्परूप करिके ज्ञान मिथ्या होवे है, मिथ्या नाम भ्रान्ति का है, सो ब्रह्म ज्ञानकूँ भ्रान्ति रूप कहना बने नहीं॥१०८॥११०॥

दोहा ।

'अहं' शब्द के अर्थको, सुन अब शिष्य विवेक ।
अब हियके जासूँ नशै, शङ्क कलङ्क अनेक ॥ १११ ॥

अर्थ-स्पष्ट है ॥ १११ ॥

है यद्यपि आभास मैं, 'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान ।
तथापि सो कूटस्थको, लहै आप अभिमान ॥ ११२ ॥
ताको सदा अभेद है, विभु चेतनतैं तात ।
बाध समैं निज रूपहू, ब्रह्म रूप दरशात ॥ ११३ ॥

हे शिष्य ! यद्यपि 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा ज्ञान बुद्धि सहित आभासकूँ होवे है और कूटस्थकूँ नहीं, तथापि सो आभास कूटस्थ कूँ और अपने स्वरूप कूँ दोनों कूँ अपना आत्मा जाने है। ता आत्मा का मैं शब्द ग्रहण करके ग्रहण होवे है सोई अहं शब्द का अर्थ है।

१-ता अहं शब्द में भान होवे है कूटस्थ, ताका तो ब्रह्मके साथ सदा अभेद है जैसे घटाकाश का और महाकाशका सदा अभेद है इसी कारणते कूटस्थ का ब्रह्मके साथ मुख्यसमानाधिकरण वेदान्त शास्त्रमें कह्या है। जा वस्तु का जा वस्तु के सङ्ग सदा अभेद होवे ता वस्तु का ताके सङ्ग मुख्यसमानाधिकरण कहिये है। जैसे घटाकाश का महाकाशके सङ्ग सदा अभेद है। याते घटाकाश महाकाश है। इस रीतिसे घटाकाश महाकाश के साथ मुख्य समानाधिकरण है। इस रीतिसे कूटस्थका ब्रह्मके

सङ्ग मुख्य समानाधि करण है, काहेते? कूटस्थ का ब्रह्मते सदा अभेद है। याते मैं-शब्दमें भान जो होवे है कूटस्थ ताका तो ब्रह्मके सङ्ग सदा अभेद है। और २-मैं शब्दमें भान जो होवे है आभास, ताका ब्रह्मसे अपने स्वरूप कूँ बाधिके अभेद होवे है, जैसे मुखका जो प्रतिबिम्ब ताका बिम्बस्वरूप मुखके सङ्ग प्रतिबिम्बस्वरूपकूँ बाधिके अभेद होवे है इसी कारणते वेदान्तशास्त्रविषे आभासका ब्रह्मके सङ्ग बाधसमानाधिकरण कह्या है। जो वस्तु का बाध होइके जाके सङ्ग अभेद होइ, ता वस्तु का ताके साथ बाधसमानाधिकरण कहिये है। जैसे-मुख के प्रतिबिम्ब का बाध होयके मुखके साथ अभेद होवे है। याते प्रतिबिम्ब मुख से न्यारा नहीं, ऐसा प्रतिबिम्ब का मुख के साथ बाधसमानाधिकरण है।

किंवा-जैसे स्थाणु में पुरुषभ्रम होयके स्थाणु ज्ञान से अनन्तर-'पुरुष स्थाणु है' इस रीतिसे पुरुषका स्थाणु से बाधसमानाधि करण होवे है, तैसे आभास का बाध होइके ब्रह्म के साथ अभेद होवे है। याते मैं शब्द विषे भान जो होवे आभास, सो ब्रह्म से न्यारा नहीं। ऐसा बाधसमानाधिकरण आभास का ब्रह्मके साथ होवे है। इस रीतिसे हे शिष्य! १-अहं शब्द में भान जो होवे है कूटस्थ ताका तो मुख्य अभेद है। २-आभासका बाध करिके अभेद है॥ ११२॥ ११३॥

शिष्य उवाच-दोहा ।

अहं वृत्ति में भान है, साक्षी अरु आभास ।
सो क्रमते वा क्रमबिना, याको करहु प्रकाश ॥ ११४ ॥

हे भगवन्! आपने जो कह्या जो-'अहंवृत्तिमें साक्षी अरु आभास दोनोंका भान होवे है' याके विषे मैं एक वार्त्ता नहीं जानूं हूँ सो कूटस्थ और आभास का भान अहं वृत्ति विषे क्रमसे होवे है, अथवा क्रमसे विना होवे है याका अर्थ यह है:-१-क्रमसे कहिये भिन्न-भिन्न कालमें होवे है अथवा दोनों का एकही काल में भान होवे है! याका आप मेरेकूँ प्रकाश कहिये। बोध करो ॥ १४ ॥

श्रीगुरुरुवाच--दोहा ।

सावधान है शिष्य सुन, भाषूं उत्तम सार ।
सुनत नशै अज्ञानतम, बोध भानु उजियार ॥ ११५ ॥

हे शिष्य! जो तैंने प्रश्न किया मैं ताका सार भूत उत्तर कहूँ हूँ। तू सावधान होइके सुन। कैसा उत्तर है, याके सुनते ही बोधरूपी सूर्य का प्रकाश होयके अज्ञान रूपी तमकूँ नाशे है ॥ १५ ॥

दोहा-एक समयही भान है, साक्षी अरु आभास ।
दूजो चेतनको विषय, साक्षी स्वयंप्रकाश ॥ ११६ ॥

हे शिष्य! एकही समय साक्षी का और आभास का अहंवृत्ति विषे भान होवे है सारे प्रकरण विषे आभास-शब्दसे अन्तःकरणसहित आभासका ग्रहण करना। याते

१-दूजो कहिये अन्तःकरणसहित जो आभास है, सो तो चेतन जो साक्षी ताका विषय होइके भान होवे है। २-साक्षी स्वयंप्रकाशरूप करके भान होवे है और अन्तःकरण की जो आभास सहित वृत्ति ताका विषय साक्षी नहीं और घटादिक बाहिर के पदार्थन विषे तो ऐसी रीति है:-जब इन्द्रिय का और घटका संयोग होवे तब इन्द्रिय द्वारा अन्तःकरण की वृत्ति निकसि के घट के समान आकारकूँ प्राप्त होवे है। जैसे मूषा में गेरया जो ताम्र, ताका मूषाके आकारके समान आकार होवे है। तैसे अन्तःकरणकी वृत्तिका भी घटके आकार के समान आकार होवे है। सो वृत्ति आभास बिना नहीं होवे है, किन्तु आभास सहित होवे है। काहेते? वृत्ति अन्तःकरण का परिणाम है। अन्तःकरण का जो परिणाम ताकूँ वृत्ति कहे है जैसे-अन्तःकरण सत्त्वगुण का कार्य होनेते स्वच्छ है, याते अन्तःकरण विषे चेतन का आभास होवे है तैसे वृत्ति भी स्वच्छ अन्तःकरण का कार्य है याते वृत्ति विषे चेतन का आभास होवे है और वृत्ति जो उत्पन्न होवे है सो आभाससहित अन्तःकरण से उत्पन्न होवे है। इस कारणते भी वृत्ति आभास सहित ही होवे है और विषय जो घट है सो तमोगुण का कार्य है, याते स्वरूप से जड़ है और ताके विषे अज्ञान और ताका आवरण है। यामें यह शङ्का होवे

है:-अज्ञान और ताका आवरण विचार दृष्टि से चेतन विषे हैं। घटविषे नहीं काहेते? १-चेतन के आश्रित है। २-चेतनीहीकूं विषय करे है, यह वेदान्त का सिद्धान्त है। और १--सात अवस्था के प्रसङ्ग में जो अज्ञान का आश्रय अन्तःकरण सहित आभास कहा, सो अज्ञान का अभिमानी है 'मैं अज्ञानी हूँ' ऐसा अभिमान अन्तःकरण सहित आभासकूं होवे है। इस कारणते अज्ञान का आश्रय कहिये है और मुख्य आश्रय चेतन है। आभास सहित अन्तःकरण नहीं, काहेते ? आभास सहित अन्तःकरण अज्ञान का कार्य है। जो जाका कार्य होवे है, सो ताका आश्रय बने नहीं, याते चेतन ही अज्ञान का अधिष्ठान रूप आश्रय है और चेतन हीं कूं अज्ञान विषय करे है। स्वरूप का जो आवरण करना सोई अज्ञान का विषय करनाहै, सो अज्ञान कृत आवरण जड़ वस्तु विषे बने नहीं काहेते ? जड़वस्तु स्वरूप से ही आवृत है वाके विषे अज्ञान कृत आवरण का कुछ उपयोग नहीं इस रीति से अज्ञान का आश्रय और विषय चैतन्य है, जैसे गृह के मध्य जो अन्धकार है सो गृह के मध्यकूं आवरण करे है याते घटके विषे अज्ञान और ताका आवरण बने नहीं।

ताका यह समाधान है:-जैसे चेतनके स्वरूप से भिन्न सत् असत् विलक्षण अज्ञान चेतन के आश्रित है ता

अज्ञानसे चेतन आवृत होवे है तैसे घटके स्वरूप से भिन्न अज्ञान यद्यपि घटके आश्रित नहीं है तथापि अज्ञान से घटादिक स्वरूप से प्रकाशरहित जड़ स्वरूप रचे हैं। यातै सदाही अन्धके समान आवृत है, सो आवृत स्वभाव घटादिकनका अज्ञानने किया है। काहेते? तमोगुणप्रधान अज्ञान से भूत की उत्पत्ति द्वारा घटादिक उपजे हैं। सो तमोगुण आवरण स्वभाववाला है, याते घटादिक प्रकाश रहित अन्ध ही होवे हैं। इस रीतिसे अन्धता रूप आवरण घटादिकन में अज्ञानकृत स्वभावसिद्ध है और घटादिकन के अधिष्ठान चेतन आश्रित अज्ञान चेतन कूं आच्छादित करके स्वभाव से आवृत घटादिकन कूं भी आवृत करेहै; यद्यपि स्वभावसे आवृतपदार्थके आवरण में प्रयोजन नहीं है तथापि आवरणकर्ता पदार्थ प्रयोजनकी अपेक्षाके बिना ही निवारणकी न्याईं आवरण सहित में भी आवरण करे है. यह लोकमें प्रसिद्ध है, ता अज्ञानसे आवृत घटकूं व्याप्त जो होवे है, अन्तःकरणको आभास सहित घटाकारवृत्ति तामें १--वृत्तिभाग तौ घट के आवरणकूं दूर करे है और २—वृत्ति में जो आभास भाग है, सो घटका प्रकाश करे है, इस रीतिसे बाहिरके पदार्थ विषे वृत्ति और आभास दोनों का उपयोग है।

दृष्टान्त।

जैसे अन्धकारमें कुण्डेकूं मृत्तिका अथवा लोह का पात्र

ढका धरा होवे तहाँ दण्डसे कुंडेकूँ फोड़े वगैर पीछे दीपक बिना उस निवारण पात्रका भी प्रकाश होवे नहीं, किन्तु दीपक से प्रकाश होवे है तैसे अज्ञान से आवृत जो घट ताके आवरणकूं वृत्तिभङ्ग भी करे हैं, तथापि घट का प्रकाश होवे नहीं। काहेते? घट तो स्वरूप से जड़है और वृत्ति भी जड़ है ताका आवरण भङ्ग मात्र प्रयोजन है तासे प्रकाश होवे नहीं। याते घटका प्रकाशक आभास है। नेत्रका विषय जो वस्तु है ताके प्रत्यक्षज्ञान की यह रीति कही और श्रवणादिक का जो विषय है ताके प्रत्यक्ष की भी रीति ऐसी जान लेनी।

१-वृत्ति और घट दोनों एक देश में स्थित होनेते घटका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है। २-अन्तःकरण की वृत्ति तो घटाकार होवे और घट के सङ्ग वृत्ति का सम्बन्ध न होवे, किन्तु अन्तरही वृत्ति होवे सो घट का परोक्ष ज्ञान कहिये। १-'यह घट है' ऐसा अपरोक्ष ज्ञान का आकार है। २-'घट है' अथवा 'सो घट है' ऐसा परोक्ष-ज्ञानका आकार है, यद्यपि स्मृतिज्ञान भी परोक्ष ज्ञान ही है तथापि स्मृतिज्ञान तो संस्कार जन्य है और अनुमिति आदिक परोक्षज्ञान प्रमाण जन्य है इतना भेद है। प्रमाणके प्रसङ्ग से हम प्रमाण निरूपण करे हैं।

१-चार्वाक जो हैं सो एक प्रत्यक्ष प्रमाण अङ्गीकार करे हैं। २-कणाद और सुगतमत के जो अनुसारी हैं

सो दूसरा अनुमान प्रमाणभी अङ्गीकार करे हैं। काहेते ? एक प्रत्यक्षही प्रमाण अङ्गीकार करे तो तृप्तिके अर्थी की भोजनविषे प्रवृत्ति नहीं होवेगी। काहेते ? अभुक्तभोजन विषे तृप्तिकी हेतुताका प्रत्यक्ष प्रमाण जन्य प्रत्यक्ष ज्ञान है नहीं याते भुक्तभोजन में अनुभव जो 'करी' है तृप्ति की हेतुता, सो अभुक्त भोजनमें भी अनुमानसे जानके तृप्तिके अर्थी की भोजन में प्रवृत्ति होनेते अनुमान प्रमाण भी अङ्गीकार करना चाहिये। इसरीतिसे कणाद और सुगतमत के अनुसारी प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण अङ्गीकार करे हैं। सांख्यशास्त्र का कर्त्ता जो कपिल है ताके मतके अनुसार तीसरा शब्दप्रमाण भी अङ्गीकार करे है। काहेते? जो प्रत्यक्ष और अनुमान दोही प्रमाण अंगीकार करे तो देशान्तर विषे जाका पिता मर गया होवे ताकूं कोई यथार्थवक्ता आइके कहै 'तेरा पिता मर गया है' तब श्रोताकूं पिता के मरने का निश्चय नहीं होना चाहिये। काहेते ? देशान्तरविषे स्थित पिता के मरण का ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमानकरके बने नहीं। इसरीतिसे कपिलमत के अनुसारी प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द तीन प्रमाण अंगीकार करे हैं।

न्यायशास्त्रका कर्त्ता जो गौतम है ताके मत के अनुसारी उपमान भी चतुर्थप्रमाण अंगीकार करे हैं। काहेते? प्रत्यक्ष आदिक तीन ही प्रमाण अंगीकार करे तो जो

पुरुषने गवय नहीं देखा है और वनवासी पुरुष से ऐसा श्रवण किया है-'गौके सदृश गवय होवे है' सो पुरुष जो वनमें चला जावे और गवय कूं देख लेवे तब ताकूं वनवासी पुरुषने कहा जो-'गौके सदृश गवय होवे है' यह वाक्य ताके अर्थ का स्मरण होवे है। ता स्मृति से अनन्तर पुरुषकूं ऐसा ज्ञान होवे है। "यह पशु गवय है।' ऐसा ज्ञान नहीं होना चाहिये, याते ऐस विलक्षण ज्ञान का हेतु उपमान प्रमाण भी अङ्गीकार करे हैं।

पूर्वमीमांसा का एकदेशी जो भट्ट का शिष्य प्रभाकर है, सो पञ्चम अर्थापत्तिप्रमाण भी अंगीकार करे है, दिन में भोजन त्यागी पुरुषकूँ स्थूल देखके ऐसा ज्ञान होवे है 'यह पुरुष रात्रिकूँ भोजन करे है।' तहाँ रात्रि भोजन बिना दिनमें भोजन त्यागी के विषे स्थूलता बने नहीं। याते रात्रिभोजन का स्थूलता सम्पाद्य है। रात्रि भोजन सम्पादक है। सम्पादक जो रात्रि भोजन ताको ज्ञान का हेतु स्थूलता का ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण कहिये है।

पूर्वमीमांसक जो भट्ट है सो षष्ठ अनुपलब्धि प्रमाण भी अंगीकार करे है और वेदान्तशास्त्रविषे भी षट् प्रमाण अंगीकार किये हैं। अनुपलब्धि प्रमाणका प्रयोजन यह है गृहादिकन में घटादिकनके अभाव का ज्ञान होवे है। तहाँ जा पदार्थकी प्रतीति नहीं होवे है ताके अभाव का ज्ञान होवे है। अप्रतीतिकूँ अनुपलब्धि कहे हैं। घटकी

जो अनुपलब्धि कहिये अप्रतीति ताते घट का अभाव निश्चल होवे हैं ऐसे पदार्थन के अभावनिश्चयका हेतु जो पदार्थनकी अप्रतीति ताकूँ अनुपलब्धि प्रमाण कहैं हैं।

१-"प्रमाज्ञानका जो करण है, सो प्रमाण कहिये है। २-स्मृतिसे भिन्न जो अबाधित अर्थकूँ विषय करनेवाला ज्ञान है सो प्रमा कहिये है, स्मृतिज्ञान जो है सो प्रमा नहीं है। काहेते? जो प्रमाज्ञान है सो प्रमाता के आश्रित होवे है और स्मृति प्रमाताके आश्रित नहीं, किन्तु साक्षी के आश्रित अंगीकार करी है और भ्रान्ति ज्ञान और संशय भी साक्षी के आश्रित अंगीकार किये हैं, इसी कारणते स्मृति और भ्रान्ति और संशय, ज्ञान, ये तीनों आभाससहित अविद्याकी वृत्ति रूप हैं, अन्तःकरण का वृत्तिरूप नहीं। याते प्रमाता के आश्रित नहीं किन्तु साक्षी के आश्रित हैं। जो अन्तःकरण की वृत्तिरूप ज्ञान होवे सो प्रमाता के आश्रित होवे है और सोई प्रमा कहिये है, स्मृतिज्ञान अन्तःकरण की वृत्ति नहीं, याते प्रमाता के आश्रित नहीं और प्रमाभी नहीं याते प्रमा के लक्षण विषे स्मृतिसे भिन्न कह्या चाहिये। अबाधित अर्थ कूँ विषय करने वाला ज्ञान तो स्मृति ज्ञान भी है, परन्तु स्मृतिज्ञान स्मृति से भिन्न नहीं है। याते अबाधित अर्थ कूँ विषय करने वाला जो स्मृतिसे भिन्न ज्ञानहै, सो प्रमा कहिये है या लक्षण विषे कोई दोष नहीं।

कोई स्मृतिज्ञानकूँ भी प्रमारूप माने हैं। तिनके मत में प्रमाके लक्षण विषे स्मृतिसे भिन्न ऐसा नहीं कहना, किन्तु अबाधित अर्थकूँ विषय करने वाला जो ज्ञानहै, सो प्रमा कहियेहै। भ्रान्ति ज्ञान जो है, सो अबाधित अर्थकूँ विषय नहीं करे है, किन्तु बाधित अर्थकूँ विषय करे है, याते प्रमाका लक्षण भ्रान्तिज्ञानमें नहीं जावे है जिन्होंके मतमें स्मृतिज्ञानविषे भी प्रमा व्यवहार है तिनके मत में स्मृति ज्ञान अन्तःकरणकी वृत्ति है, अविद्याकी वृत्ति नहीं और साक्षी के आश्रित भी नहीं, किन्तु प्रमाताके आश्रित है काहेते? अन्तःकरणकी वृत्तिका आश्रय प्रमाताही बने है, साक्षी बने नहीं, इस रीतिसे स्मृतिज्ञान १–किसीके मतमें तो अन्तःकरण की वृत्ति है, याते प्रमारूप है २–किसी के मत में अविद्या की वृत्ति है, याते प्रमारूप नहीं है, और भ्रान्तिज्ञान और संशयज्ञान, ये दोनों सर्व के मत में अविद्या की वृत्ति हैं और साक्षी के आश्रित हैं यामें कोई विवाद नहीं! विचार करिके देखिये तो स्मृति ज्ञान भी अविद्या की वृत्ति है और साक्षी के आश्रित है, प्रमारूप नहीं। काहेते? जो वेदान्त सम्प्रदाय के वेत्ता हैं, तिन्होंने प्रमाज्ञान षट् प्रकार का कहा है। ता षट् प्रकार में स्मृतिज्ञान है नहीं, याते प्रमा नहीं।

मधुसूदनस्वामी ने स्मृतिज्ञान साक्षी के आश्रित ही कहा है। एक तो प्रत्यक्षप्रमा है, दूसरी अनुमिति प्रमा

है, तीसरी उपमिति प्रमा है, चतुर्थी शाब्दी प्रमा है, पञ्चमी अर्थापत्ति प्रमा है और षष्ठी अभावप्रमा है, ये षट् प्रमा हैं और पूर्व कहे जो प्रत्यक्ष आदिक षट् प्रमाण हैं सो इनके क्रमते करण हैं। प्रत्यक्षप्रमा का जो करण होवे सो प्रत्यक्ष प्रमाण कहिये हैं। १-असाधारण कारण जो होवे सो करण कहिये है। २-जो सर्व कार्य का कारण होवे सो साधारणकारण कहिये है जैसे १-धर्म अधर्मादिक सर्वकार्य के कारण हैं याते साधारणकारण हैं। २-सर्वकार्य का कारण न होवे, किन्तु किसी कार्य का कारण होवे सो असाधारणकारण कहिये है। जैसे दण्ड जो है सो सर्वकार्यका कारण नहीं, किन्तु घट आदिक जो कार्यविशेष हैं तिनका कारण है, याते दण्ड असाधारणकारण कहिये है और घटका कारण भी कहिये है। १-तैसे प्रत्यक्षप्रमाके ईश्वर और ताकी इच्छासे आदिलेके तो साधारण कारण हैं, काहेते ? ईश्वर से आदिलेके सर्वकार्यके कारण हैं। तिन बिना कोई कार्य होवे नहीं। याते ईश्वरादिक साधारण कारण हैं और २-नेत्रसे आदिलेके जो इन्द्रिय हैं सो प्रत्यक्षप्रमाके असाधारणकारण हैं याते नेत्र आदिक जो इन्द्रि हैं सो प्रत्यक्षप्रमाके कारण हैं। इस रीति से नेत्र आदिक जो इन्द्रिय हैं सो प्रत्यक्ष प्रमाण कहिये हैं।

यद्यपि इन्द्रियकूं वेदान्तसिद्धान्तविषे प्रमाज्ञानकी कार-

एता कहना बने नहीं। काहेते? चेतनके च्यारि भेदहैं:-
एक तौ प्रमाताचेतन है, दूसरा प्रमाण चेतन है, तीसरा
प्रमिति चेतन है, ताहीकूं प्रमाचेतन भी कहे हैं और
तीसरा चौथा प्रमेयचेतन है ताहीकूं विषय चेतन भी
कहे हैं। इस रीतिसे प्रमा नाम चेतन का है सो नित्यहै,
इन्द्रिय जन्य नहीं। याते इन्द्रिय ताका कारण नहीं
तथापि चेतन में प्रमाव्यवहार का सम्पादकवृत्ति भी प्रमा
कहिये है। ताके इन्द्रिय करण हैं।

१-देहके मध्य जो अन्तःकरण ता करके अवच्छिन्न
जो चेतन सो प्रमाता कहिये है। २-सोई अन्तःकरण नेत्रा
दिक इन्द्रियद्वारा निकसि के जितने दूर घटादिक विषय
स्थित होवे उतना लम्बा परिमाण अन्तःकरणका होवे है
और आगे विषय जो घटादिक हैं तिनपें मिलके जैसा
घटादिकका आकार होवे तैसाही अन्तःकरणका आकार
होवे है। जैसे कोठेमें भरया जो जल सो छिद्रद्वारा निक
सिके लम्बे नाले का आकार होय के बगीचेके केदार में
जावे है और केदारमें जाइके जैसा केदारका आकार होवे
तिस आकारकूं जल प्राप्त होवे है, तैसे अन्तःकरण भी
इन्द्रियरूपी छिद्रद्वारा निकसिके विषयरूपी केदारकूं जावे
है। तहाँ शरीरसे लेके घटादिक विषय पर्यंत जो अन्तः-
करणका नालेके समान परिणाम ताकूँ वृत्तिज्ञानकहे हैं।
ता करके अवच्छिन्न जो चेतन ताकूँ प्रमाणचेतन कहे हैं

३-वृत्तिज्ञानरूप जो अन्तःकरण का परिणाम ताकूँ प्रमाण कहे हैं। जैसे केदार विषे जल जाइके केदार के समान आकार होवे है, तैसे घटादिक जो विषय हैं तिनमें वृत्ति जाइके घटादिकन के समान आकारकूँ प्राप्त होवे है। ता करके अवच्छिन्न जो चेतन सो प्रमा चेतन कहिये है। ज्ञानके विषय जो घटादिक तिन करके अवच्छिन्न जो चेतन सो विषय चेतन कहिये है और प्रमेय चेतन भी कहिये है, यह वेद अर्थके जानने वाले जो आचार्य हैं तिनकी परिभाषा है।

यामें इतना भेद है—जो अवच्छेदवाद अङ्गीकार करे हैं, तिनके मतमें तो १-अन्तःकरणविशिष्ट जो चेतनहै, सो प्रमाता है और सोई कर्ता भोक्ता है और २-अन्तःकरण उपहित साक्षी है। एकही अन्तःकरण प्रमाताका तो विशेषण है और साक्षी की उपाधि है, स्वरूप विषे जाका प्रवेश होवे ऐसी जो व्यावर्तक वस्तु है सो विशेषण कहिये है और पदार्थसे भिन्नता करके वस्तु के स्वरूप कूँ जो जनावे सो, व्यावर्तक कहिये है, जाकूँ भिन्नता करके जनावे सो व्यावर्त्य कहिये है। जैसे-"नील घट है" या स्थान में घट का विशेषण है। काहेते ? नील [illegible] है और पीत श्वेतादिकन घटके विषे नीलता का [illegible] से भिन्नता करके जनावे है। याते व्यावर्तक है इसवात से नीलता घटका विशेषण है और घट परिच्छेद्य है।

काहेते ? पीतश्वेतादिकनते भिन्नता कहिये जुदा करके जनाइये है। जो भिन्नता करके जनाइये सो परिच्छेद्य कहिये है। व्यावर्त्य कहिये है और विशेष भी कहिये है और 'दण्डी पुरुष है' या स्थान में भी पुरुष का दण्ड विशेषण है। इस रीतिसे प्रमाता का अन्तःकरण विशेषण है। काहेते ? प्रमाता के स्वरूप विषे अन्तःकरण का प्रवेश है और प्रमेय चेतन से भिन्नता करके प्रमाता के स्वरूपकूँ जनावे है, याते व्यावर्तक है, जा वस्तुका स्वरूपविषे प्रवेश न होवे और व्यावर्तक होवे, सो उपाधि कहिये है। १-जैसे-नैयायिकके मतमें कर्णशष्कुली से अवच्छिन्न जो आकाश है, सो श्रोत्र कहिये है, या स्थानमें कर्णशष्कुली श्रोत्र की उपाधि है। काहेते ? श्रोत्रके स्वरूप विषे तो कर्णशष्कुली का प्रवेश है नहीं और बाहिर के आकाशते भिन्ना करके श्रोत्रकूँ जनावे है, याते व्यावर्तक है और २-घटाकाश जो है सो मन परिणाम अन्नकूँ अवकाश देवे है या स्थानमें भी आकाश की घट उपाधि है। काहेते ? मन अन्नकूं अवकाश देने वाला जो आकाश है ताके स्वरूप विषे तो घट का प्रवेश है नहीं घटपार्थिव है ताकेविषे अवकाश देना बने नहीं, याते घट का स्वरूप में प्रवेश बने नहीं और व्यापक आकाशते भिन्नता करके जनावे है याते मन अन्नकूँ अवकाश देनेवाला जो आकाश ताकी घट उपाधि है।

तैसे अन्तःकरण उपहित जो चेतन है। सो साक्षी है या स्थानमें अन्तःकरण साक्षी की उपाधि है। काहेते ? साक्षीके स्वरूपविषे तो अन्तःकरणका प्रवेश है नहीं और प्रमेयचेतनसे साक्षीकूं भिन्नता करके जनावै है। याते एकही अन्तःकरण साक्षी की तो उपाधि है और प्रमाताका विशेषण है। इस रीतिसे १-अन्तःकरण उपहित जो चेतन है सो तौ साक्षी है और २-अन्तःकरण विशिष्टचेतन प्रमाता है १-जो उपाधिवाला होवे सो उपहित कहिये है और २-विशेषणवाला होवे सो विशिष्ट कहिये है। जो अन्तःकरण विशिष्ट प्रमाता है, सोई कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी संसारी जीव है, यह अवच्छेदवादकी रीति है और १-आभासवादमें आभाससहित अन्तःकरण जीवका विशेषण है और २-आभास सहित अन्तःकरण साक्षीकी उपाधि है। याते १-आभास अन्तःकरणविशिष्ट चेतन जीव है और २--सभास अन्तःकरण उपहित चेतन साक्षीहै। यद्यपि दोनोंपक्षमें विशेषण सहित चेतन जीवहै सोई संसारी है, तथापि विशेष्यभाग जो चेतन है ताके विषे तौ जन्ममरणासे आदिलेके संसारका सम्भव है नहीं। याते विशेषणमात्रमें संसारहै सोई विशिष्टचेतनमें प्रतीत होवे है। १--कहूँ तो विशेषणके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवे है और २-कहूँ विशेष्यके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवे है और ३-कहूँ विशेषण विशेष्य दोनोंके

धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवेहै जैसे १-दण्डकरके घटाकाशका नाश होवे है या स्थानमें विशेषण जो घट है ताका दण्डकरके नाश होवे है और विशेष्य जो आकाश है ताका नाश बने नहीं। तो भी विशिष्ट जो घटाकाश है ताका नाश प्रतीत होवे है। २-"कुण्डलीपुरुष सोवे है" या स्थानमें कुण्डल विशेषण है और पुरुष विशेष्य है। विशेषण जो कुण्डल है, ताकेविषे सोवना बने नहीं किन्तु विशेष्य जो पुरुष है ताके विषे सोवना बने है और "कुण्डलविशिष्ट विप्र सोवे है" ऐसा विशिष्ट में व्यवहार होवे है। ३-"शस्त्री पुरुष युद्धमें गया है।" या स्थानमें विशेषण जो शस्त्र और विशेष्य पुरुष दोनों युद्धमें गये हैं याते दोनों के धर्म का विशिष्ट में व्यवहार होवे है। या स्थानमें १-अवच्छेवादमें तो अन्तःकरण विशेषण है २-आभासवादमें साभास अन्तःकरण विशेषण है और दोनों पक्षमें चेतन विशेष्य है ताकेविषे तो जन्मादि संसार बने नहीं। किन्तु विशेषण अन्तःकरण अथवा साभास अन्तःकरण ताका धर्म जो जन्मादिक संसार ताका विशिष्टचेतनमें व्यवहार करिये है। व्यवहार नाम प्रतीत और कहनेका है। इस रीति से आभासवाद और अवच्छेदवादका भेद है।

आभासवादमें तो अन्तःकरण आभास सहित है और अवच्छेदवादमें अन्तःकरण आभाससहितहै दोनो पक्षमें

आभास वाद श्रेष्ठ है। काहेते ? भाष्यकारने आभासवाद अङ्गीकार किया है। २-अवच्छेद वाद में विद्यारण्य-स्वामीने दोष भी कहा है-जो आभासरहित अन्तःकरण अवच्छिन्न चेतनकूँ प्रमाता माने तो घट अवच्छिन्न चेतन भी प्रमाता हुआ चाहिये। काहेते ? जैसे अन्तःकरण भूतन का कार्य है तैसे घट भी भूतन का कार्य है और जैसे अन्तःकरण चेतन का अवच्छेदक कहिये व्यावर्तक है, तैसे घट भी चेतनका अवच्छेदक है याते अन्तःकरणविशिष्टकी न्याईं घटविशिष्ठ भी प्रमाता हुवा चाहिये और अन्तःकरण में आभास अङ्गीकार कियेते यह दोष नहीं। काहेते ? १-अन्तःकरण तौ भूतन के सत्वगुणका कार्य है याते स्वच्छ है और २-घटादिक भूतनके तमोगुणके कार्य हैं याते स्वच्छ नहीं। १-जो स्वच्छपदार्थ होवे सोई आभासके योग्य होवे है मलीन पदार्थ आभासके योग्य नहीं। जैसे काँच और ताका ढकना दोनों पृथ्वी के कार्य हैं, परन्तु काँच तो स्वच्छ है तामें मुखका आभास होवे है। ढकना स्वच्छ नहीं याते तामें आभास होवे नहीं तैसे १-सत्वगुणका कार्य होनेसे अन्तःकरण स्वच्छ है ताही में चेतनका आभास होवे है। २-शरीरादिक और घटादिक तमोगुण के कार्य होनेसे स्वच्छ नहीं तिनमें चेतनका आभास होवे नहीं।

इसरीतिसे अन्तःकरणमें द्विविध प्रकाश है। एक तो

व्यापक चेतनका प्रकाश और दूसरा आभासका प्रकाश है। शरीरादिक और घटादिकनमें एक व्यापक चेतनका प्रकाश तो है दूसरा आभास का प्रकाश नहीं । याते द्विविध प्रकाश सहित अन्तःकरण विशिष्टही चेतन प्रमाता कहिये है। एक प्रकाश सहित जो घटादिक तिन करके संयुक्त चेतन प्रमाता नहीं, जिनके मत में अन्तःकरण में आभास नहीं तिनके मतमें घटादिकनकी न्याईं अन्तःकरण में भी आभास का दूसरा प्रकाश तो है नहीं । व्यापक चेतनका जो एक प्रकाश अन्तःकरण में है सोई व्यापक चेतनका प्रकाश घटादिकनमें है। याते अन्तः-करणविशिष्टकी न्याईं घटविशिष्ट वा शरीर विशिष्ट वा भीतविशिष्ट चेतन भी प्रमाता होना चाहिए इस रीतिसे घट शरीरादिकनते अन्तःकरण में यही विलक्षणता है। १-अन्तःकरण सत्त्वगुणका कार्य है, याते स्वच्छ होनेते चेतन का आभासग्रहण करने के योग्य है। २-पदार्थ स्वच्छ नहीं । याते आभास ग्रहण करने के योग्य नहीं १-आभास ग्रहण के योग्य जो अन्तःकरण ता करके संयुक्तही चेतन प्रमाता कहिये है । २-घटादिक और शरीरादिक आभास ग्रहण के योग्य नहीं याते तिन करके विशिष्टचेतन प्रमाता नहीं, इस रीति से आभास वाद ही उत्तम है, अवच्छेदवाद नहीं ।

जैसे अन्तःकरण आभास सहित है, तैसे अन्तःकरण

की वृति भी आभास सहित ही होवे है, साभास वृत्ति-विशिष्ट चेतन प्रमाण चेतन कहिये है। अन्तःकरण की घटादि विषयाकार जो वृत्ति तामें आरूढ़ चेतनकूं प्रमा और यथार्थज्ञान कहे हैं। ताका साधन जो इन्द्रिय सो प्रमाण कहिये है। काहेते? विषयाकारवृत्ति में आरूढ़ चेतनकूं प्रमा कहे हैं तहाँ चेतन यद्यपि स्वरूप करके नित्य है याते इन्द्रियजन्य ताके अभावते प्रमा चेतन का साधन इन्द्रिय नहीं तथापि निरुपाधिक चेतन में तौ प्रमाव्यवहार है नहीं, किन्तु विषयाकार वृत्ति उपहित चेतन में प्रमाव्यवहार होवे है, याते चेतनविषे प्रमाशब्द की प्रवृत्ति में विषयाकार वृत्ति उपाधि है। सो विषयाकार वृत्ति इन्द्रियजन्य है, इन्द्रिय ताका साधन है, प्रमापनेकी उपाधि जो वृत्ति ताका इन्द्रियजन्य होनेते उपहित जो प्रमा सो भी इन्द्रियजन्य कहिये है। याते इन्द्रिय प्रमा का साधन कहिये है। परन्तु अन्तःकरण का परिणाम सारा प्रमा नहीं कहिये है। किन्तु शरीर के भीतर जो अन्तःकरण ताका विषय घटादिकन ताईं परिणाम ताकूँ प्रमाण कहे हैं। विषयते मिलि के विषय के समान जो अन्तःकरण का परिणाम, उतने कूँ प्रमा कहे हैं शरीर के भीतर जो अन्तःकरण तासे लेके घटादिक विषय ताईं पहुँचा जो अन्तःकरण का परिणाम ताईं प्रवाहरूपकूँ धारे है। याते प्रमाका प्रमाण

रूप अन्तःकरणकी वृत्तिसे अत्यन्त भेद नहीं । १-इस रीतिसे बाहिरके पदार्थन का प्रत्यक्ष ज्ञान जहाँ होवे तहाँ अन्तःकरणकी वृत्ति बाहिर जायके विषय जो घटादिक, तिनके समान आकाररूपकूँ धारे है। २-शरीरके अन्तर जो आत्मा ताका प्रत्यक्ष होवे, तब अन्तःकरणकी वृत्ति बाहिर जावे नहीं। किन्तु शरीरके भीतरही वृत्ति आत्माकार होवे है, १-ता वृत्ति से आत्माके आश्रित आवरण दूर होवे है। २-आत्मा अपने प्रकाशते ता वृत्तिमें प्रकाशे है। इसी कारणते वृत्ति का विषय आत्मा कह्या है और चिदाभासरूप जो वृत्तिमें फल ताका विषय आत्मा नहीं, या प्रकारते साक्षी आत्मा स्वयं प्रकाशरूप भान होवे है यह सिद्ध हुआ ॥ १०६ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा।

इन्द्रिय के सम्बन्ध बिनु, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान।
कैसे है प्रत्यक्ष प्रभु, मोकूँ कहो बखान ॥ १०७ ॥

"ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानते सकल अविद्या जाल का नाश होवे है। परोक्षज्ञानते नहीं" यह पूर्व कहा, ताके विषे शङ्का करे हैं, ब्रह्म का ज्ञान प्रत्यक्ष बने नहीं, काहेते? इन्द्रियजन्य ज्ञानप्रत्यक्ष होवे है। ब्रह्म का ज्ञान इन्द्रियजन्य बने नहीं। काहेते?नेत्र इन्द्रियते रूपवान् का अथवा नीलादिक रूपका ज्ञान होवहै ऐसा ब्रह्म नहीं। याते नेत्रइन्द्रियजन्य ज्ञान ब्रह्मका बने नहीं। रामकृष्णादिकन की जो

मनुष्याकार मूर्त्ति है सो यद्यपि रूप वाली है तथापि सो मूर्त्ति मायारचित है मिथ्या है सो मूर्त्ति ब्रह्म नहीं और पुराणनमें राम कृष्णादिकन कूँ ब्रह्म रूपता कही है सो तिनकी शरीररूप मूर्त्ति ब्रह्मरूप है इस अभिप्रायते नहीं कही किन्तु तिनके शरीरका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है, इस अभिप्रायते कही है। याके विषे ऐसी शङ्का होवे है-सर्व शरीरनका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है याते अधिष्ठान चेतन अभिप्रायते राम कृष्णादिकन कूँ ब्रह्म रूपता कहा होवे तो सर्व शरीरन का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म होनेते मनुष्य पशु पक्षी आदिक सर्वही ब्रह्मरूप हैं तिनके समान ही रामकृष्णादिक होवेंगे याते राम कृष्णादिकन कूँ अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है, इस अभिप्रायते ब्रह्मरूपता नहीं कही, किन्तु तिनकूँ और जीवनते विशेषरूपताकी सिद्धिवास्ते तिनकूँ शरीरही ब्रह्म है, ऐसा मानना योग्य है। सो बने नहीं। काहेते? शरीरका बाध करके तिनके शरीरन कूं ब्रह्मरूपता मानें तो १-सर्वशरीरनका बाध करके सारेही शरीर ब्रह्मरूपहैं। २-बाध किये बिना तो अन्यशरीरनकी न्याई हस्तपादादिक अवयव सहित रूपवान् क्रियावान् शरीर का निरवयव निरूप अक्रिय ब्रह्मतो अभेद बने नहीं। याते राम कृष्णादिकन का शरीर ब्रह्म नहीं। परन्तु इतना भेद है—१-जीवनके शरीर पुण्य पाप के अधीन हैं २-भूतन के कार्य हैं, ३-औ जीवन देहादिक

अनात्मपदार्थन विषे अविद्या बलतें अहं मम अध्यास है, आचार्यके उपदेशतें ता अध्यासकी निवृत्ति होवे है। १-रामकृष्णादिकनके शरीर अपने पुण्य पापतें रचित नहीं, भूतनके कार्य नहीं। किन्तु जैसे-सृष्टिके आदिमें प्राणियोंके कर्म भोगदेनकूँ सन्मुख होवे, तब आप्तकाम ईश्वर में भी प्राणियोंके कर्म के अनुसार "मैं जगत् की उत्पत्ति करूँ" ऐसा सङ्कल्प होवे है। ता सङ्कल्पतें जगत् की उत्पत्तिरूप सृष्टि होवे है। जैसे सृष्टितें अनन्तरभी "मैं जगत्का पालन" ऐसा ईश्वरका सङ्कल्प होवे है ता सङ्कल्पतें जगत्का पालन होवे है। कर्मन के अनुसार सुख दुःख का सम्बन्ध पालन कहिये है। ता पालन सङ्कल्प के मध्य उपासक पुरुषनके उपासनाके बलतें ईश्वरकूँ ऐसा सङ्कल्प होवे है-" रामकृष्णादिक नामसहित मूर्त्ति सबकूँ प्रतीत होवे है" ता ईश्वर सङ्कल्पतें विशेष नामरूप रहित ईश्वर में राम कृष्णादिक नाम, पीताम्बर धरादि श्याम सुन्दर विग्रह रूपकी उत्पत्ति होवे है। सो विग्रह कर्मके अधीन नहीं। यद्यपि रामकृष्णादिके विग्रहतें साधु और दुष्टनकूँ क्रमतें सुख दुःख होवे है जो जाके सुख दुःखके हेतु होवे है सो ताके पुण्य पापतें रचित होवे है। यातें पुण्य पाप अधीन कहिये है, इस रीतिसें १-अवतारन के शरीर साधु पुरुषनकूँ सुखके हेतु होनेतें साधुपुरुषनके पुण्यसमुदायतें रचित हैं। तैसे असुरादिक असाधु पुरुषनकूँ दुःखके हेतु

होनेतें तिनके पापतें रचित हैं। यातें "अवतारन के शरीर पुण्य पाप के अधीन नहीं" यह कहना नहीं सम्भवे, तथापि जैसे जीवने पूर्वशरीर में पुण्य पाप कर्म किये हैं तिनका फल उत्तर शरीर में ता जीव कूँ सुख दुःख होवे है। तहाँ शरीराभिमानी जीवके पूर्वशरीर के अपने पुण्य पापके अधीन उत्तर शरीर कहिये है। तैसे रामकृष्णादिकनके शरीर यद्यपि साधु असाधु पुरुषन के पुण्यपापके अधीन हैं और तिनकूँ सुख दुःख के हेतु हैं, परन्तु राम कृष्णादिकन के पुण्यपापतें रचित अवतार शरीर नहीं और तिन कूँ अपने शरीरतें सुखका तथा दुःख का भोग होवे नहीं, यातें रामकृष्णादिकनके शरीर अपने पुण्य पापके अधीन नहीं। यह सम्भवे है।

तैसे भूतनके परिणाम भी रामकृष्णादिक शरीर नहीं किन्तु चेतन आश्रित माया का परिणाम है जो पञ्चीकृत भूतन के परिणाम होवे तो कृष्ण शरीर विषे रज्जु कृत बन्धनादिकन का अभाव शास्त्र में कहा है सो असङ्गत होवेगा। यद्यपि पञ्चभूतरचित सिद्ध योगी शरीर में भी बन्धनादिक होवे नहीं तथापि योगीशरीरमें प्रथम बन्धनादिकनका सम्भव होवे है। फिर योगाभ्यास रूप पुरुषार्थतें बन्धन दाहादिकनकी योग्यता नाश होवे है, कृष्णादिकन के शरीरमें योगीकी न्याई कुछ पुरुषार्थ से बन्धनादिकन का अभाव नहीं, किन्तु तिनके शरीर सहजही बन्ध-

नादि योग्य नहीं, याते भूतन के परिणाम नहीं और मांडूक्य भाष्यकी टीकामें आनन्दगिरिने रामादिक शरीर भूतनके परिणाम कहे हैं सो स्थूलदृष्टि से और शरीरन के समान वे शरीर प्रतीत होवे हैं। इस अभिप्रायते कहे हैं। काहेते ? भाष्यकारने गीताभाष्य में यह कहा है:-'जीवन के ऊपर अनुग्रह करके शरीरधारी की न्याईं माया के बलते परमात्मा कृष्ण रूप प्रतीत होवे है सो जन्मादिक रहित है ताका वसुदेव द्वारा देवकीते जन्म भी मायाते प्रतीत होवे है' इस रीति से भाष्यकार ने कृष्ण शरीर माया का कार्य कहा है, याते भूतनते अवतार शरीरन की उत्पत्ति नहीं, किन्तु तिनके शरीरन का उपादान कारण साक्षात माया है।

जीवनकूं देहादिकन में आत्मभ्रान्ति है रामकृष्णादिकनकूं नहीं। काहेते ? जीवकी उपाधि अविद्या मलिनसत्वगुणवाली है। रामकृष्णादिकनकी उपाधि माया शुद्ध सत्वगुणवाली है, याते जीवनकूं अविद्याकृतभ्रान्ति और रामकृष्णादिकनकूँ माया कृत सर्वज्ञता होवे है, जीवनकूं अज्ञानकृत आवरण और भ्रान्तिके नाशकनिमित्त आचार्य द्वारा महावाक्यके उपदेश जन्य ज्ञानकी अपेक्षा है। तैसे रामकृष्णादिकनकूं आवरण और भ्रान्ति नहीं, याते उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षानहीं, किन्तु जीवकूं अन्तःकरण की वृत्तिरूपज्ञान की न्याईं ईश्वरकूं माया की वृत्तिरूप

आत्मा का ज्ञान तो उपदेशादि के बिना भी होवे है, परन्तु ता ज्ञानतें कुछ प्रयोजन तिनकूं सिद्ध होवे नहीं। काहेते? जीवनकूँ घटादिकन के ज्ञानते आवरण भङ्ग और विषय जो घटादिक तिनका प्रकाश होवे है और ब्रह्म रूपते आत्माका ज्ञान जो जीवन कूँ होवे है तहाँ ज्ञान का विषय जो आत्मा ताका आवरण भङ्ग तो ज्ञानते होवे है और आत्मा विषय स्वयं प्रकाश है, याते आत्म ज्ञानते विषय का प्रकाश होवे नहीं। तैसे ईश्वरकूँ माया की वृत्तिरूप जो "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान ताका विषय ईश्वर का आत्मा भी आवरण रहित स्वयंप्रकाश है, याते आवरण भङ्ग व विषय का प्रकाश ईश्वर के ज्ञान का प्रयोजन नहीं। जैसे जीवन्मुक्त विद्वानकूँ निवारण आत्माकूँ विषय करने वाला अन्तःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि' ऐसीवृत्ति आवरण भङ्गादिक प्रयोजनरहित होवे है तैसे ईश्वरकूँ भी आवरणभङ्गादिक प्रयोजन बिना मायाकी वृत्तिरूप 'अहं ब्रह्मास्मि' ऐसा ज्ञान उपदेशादिकते बिना होवे है।

इस रीति से रामकृष्णादिकनकूं जीवनते विलक्षणता ईश्वरता है तो भी तिनका शरीर माया रचित है, याते ब्रह्म नहीं, किन्तु मिथ्या है मायाने उत्पन्न किया जो अवतारनका शरीर सो हस्तपादादिक अवयव सहित और रूपसहित किया है याते नेत्र इन्द्रिय का विषय तिनका शरीर होवे है ब्रह्मकूं नेत्र इन्द्रिय विषय करे नहीं। तैसे

त्वचा इन्द्रिय भी स्पर्शकूं और स्पर्शके आश्रयकूं विषय करे है। ब्रह्म स्पर्शका आश्रय नहीं और स्पर्श नहीं याते त्वचा इन्द्रिय का विषय नहीं।

रसना इन्द्रियते रस का ज्ञान, घ्राणते गन्ध का ज्ञान श्रोत्रते शब्दका ज्ञान होवे है। रस गन्ध शब्दते ब्रह्म विलक्षण है, याते रसना घ्राण और श्रोत्रते ब्रह्म का ज्ञान होवे नहीं और कर्मइन्द्रिय ज्ञानके साधन नहीं किन्तु वचनादिक क्रियाके साधन हैं। याते तिनते तौ किसी का ज्ञान होवे नहीं। इस रीतिसे किसी इन्द्रियते ब्रह्म का ज्ञान बने नहीं और इन्द्रियते जो ज्ञान होवे सो ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है प्रत्यक्ष कूँ ही अपरोक्ष कहे हैं। याते ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान बने नहीं। किन्तु शब्द से ब्रह्म का ज्ञान होवे है, जो शब्दसे ज्ञान होवे सो परोक्ष होवे है याते ब्रह्मका ज्ञान भी परोक्ष ही होवे है॥ ११७॥

श्रीगुरुरुवाच--दोहा।

इन्द्रिय बिन प्रत्यक्ष नहिं, शिष यह नियम न जान।
बिन इन्द्रिय प्रत्यक्ष है, जैसे सुख दुःख ज्ञान॥ ११८॥

इन्द्रिय सम्बन्धबिना प्रत्यक्षज्ञान होवे नहीं यह नियम नहीं। काहेते? जैसे सुखका और दुःख का ज्ञान होवे सो किसी इन्द्रियते होवे नहीं सो सुख दुःख का ज्ञान भी प्रत्यक्ष होवे है, याते इन्द्रिय सम्बन्धते जो ज्ञान होवे सोई

प्रत्यक्ष ज्ञान होवे है यह नियम नहीं, किन्तु विषयतें वृत्तिका सम्बन्ध होयके विषयाकारवृत्ति जहाँ होवे तहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है। १-सो विषयतें वृत्ति का सम्बन्ध कहूं इन्द्रिय द्वारा होवे है, २-कहूँ शब्दसे होवे है जैसे-"दशम तू है" इस शब्दसे दशम जो आप तातें अन्तःकरण की वृत्ति का सम्बन्ध होयके दशमाकार वृत्ति होवे है। यातें शब्द जन्य भी दशमका ज्ञान प्रत्यक्ष होवे है। तैसे प्रमाताविषे सुख दुःख होवे तब सुखाकार दुःखाकार अन्तःकरण की वृत्ति होवे तो वृत्ति से सुख दुःख का सम्बन्ध होवे है, यातें सुख दुःखका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है। पूर्व उत्पन्न सुख दुःख नष्ट हुए पीछे जहाँ पुरुष कूं याद आवे तहाँ सुखाकार दुःखाकार अन्तःकरण की वृत्ति तो होवे है। परन्तु वृत्तिके नष्ट हुए सुख दुःख सम्बन्ध नहीं, यातें सो ज्ञान स्मृतिरूपहै प्रत्यक्ष रूप नहीं है। १-यद्यपि अन्तःकरणके धर्म सुखदुःख साक्षीभास्य हैं, तथापि सुखाकार दुःखाकार अन्तःकरणकी वृत्तिद्वारा साक्षी सुखदुःख का प्रकाशकरे है। जो साक्षी भास्यपदार्थ हैं तिनकूं भी साक्षी वृत्तिकी अपेक्षा प्रकाशे हैं, जैसे-शुक्ति रजत साक्षी भाष्य है तहाँ अविद्या की वृत्ति की अपेक्षा करके साक्षी रजत कूँ प्रकाशेहै, १-परन्तु सुखदुःखके प्रकाशमें अन्तःकरण की वृत्ति साक्षी की सहायक है, २-मिथ्या रजतादिकन के प्रकाश में अविद्याकी वृत्ति सहायक है।

इस रीतिसे साक्षीभास्यपदार्थ के ज्ञान में भी वृत्ति की अपेक्षा है। १-सो वृत्ति जहाँ इन्द्रियादिक बाह्य साधनतें होवे ताका विषय साक्षी भास्य नहीं कहिये है। २-सुख दुःखकूँ विषय करनेवाली वृत्तिमें बाह्य इन्द्रियादिक हेतु नहीं, किन्तु जब सुखादिक उत्पन्न होवे, तिसी काल में अन्यसाधनकी अपेक्षा बिना सुखाकार दुःखाकार अन्तःकरण की वृत्ति होवे है। ता वृत्ति में आरूढ़ साक्षी सुख दुःखकूँ प्रकाशेहै, यातें सुख दुःख साक्षीभास्य कहिये है।

बाह्य जो घटादिक है तिनसे अन्तःकरण की वृत्ति का सम्बन्ध नेत्रादिक इन्द्रियद्वारा होवेहै यातें घटादिक साक्षी भास्य नहीं तैसे ब्रह्माकार अन्तःकरण की वृत्ति होवे है। सो अन्तःकरणकी वृत्ति बाहिर नहीं जावे है, किन्तु शरीर के अन्तर ही होवे है ता वृत्तिसे ब्रह्मका सम्बन्धहै, यातें ब्रह्मका ज्ञान भी सुख दुःख के ज्ञानकी न्याईं प्रत्यक्षरूप है! परन्तु १-सुखाकार दुःखाकारवृत्तिमें बाह्यसाधन की अपेक्षा नहीं। यातें सुख दुःख साक्षीभास्य हैं। २-ब्रह्माकार जो अन्तःकरणकी वृत्ति तामें तो गुरुद्वारा वेदवचनका श्रोत्रसे सम्बन्ध बाह्यसाधन चाहिये है, यातें ब्रह्म साक्षीभास्य नहीं इस रीति से जहाँ विषयतें वृत्ति का सम्बन्ध होवे तहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है 'अहं ब्रह्मास्मि' या वृत्ति का विषय जो ब्रह्म तासे सम्बन्ध है। यातें ब्रह्म का ज्ञान प्रत्यक्ष सम्भव है।

१-जहाँ धूमकूँ देखिके अग्नि का ज्ञान होवे है तहाँ धूम का ज्ञान तो प्रत्यक्ष है और अग्नि का ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं। काहेतें ? नेत्र द्वारा अन्तःकरणकी वृत्तिका धूमतें सम्बन्ध है यातें धूम का ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है। २-अनुमानतें अन्तःकरणकी वृत्ति शरीर के अन्तर अग्नि के आकारकूँ ग्रहण करनेवाली तो हुई परन्तु अग्नि के संबंध नहीं यातें अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं। इस रीतिसे जहाँ वृत्तिसे विषय का सम्बन्ध होवे तहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है जहाँ वृत्तिसे विषय का संबंध नहीं होवे विषय बाहिर दूरि होवे अथवा भूत वा भविष्यत् होवे और अनुमानतें अथवा शब्दतें विषयकार वृत्ति अन्तर होवे सो ज्ञान परोक्ष कहिये है। इन्द्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवे है यह नियम नहीं। जैसे सुख दुःख का ज्ञान इंद्रिय जन्य नहीं और प्रत्यक्ष है, तैसे दशम पुरुषका ज्ञान शब्दजन्य है तो भी प्रत्यक्ष होवे है इस रीतिसे गुरुद्वारा श्रवण किया जो-'महावाक्य रूप वेद शब्द' तासे उत्पन्न हुआ ब्रह्मज्ञान भी प्रत्यक्ष ही सम्भवे है ॥ ११८ ॥

दोहा-गुरुको अस उपदेश सुनि, तत्त्वदृष्टि बुधिमंत।
ब्रह्मरूप लखि आतमा, कियो भेद भ्रमअंत ॥ ११९ ॥
"अहं ब्रह्म' या वृत्ति में, निरावरण है भान।
दादू आदूरूप सो, यों मैं लियो पिछान ॥ १२१ ॥

इति श्रीउत्तमाधिकारी उप० नाम चतुर्थस्तरङ्गः ॥ ४ ॥



पंचमस्तरंगः ५ ।



श्रीगुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादन और मध्यमाधिकारीसाधाननिरूपण ।

पूर्व तरङ्ग में यह कह्या:-"गुरुमुख द्वारा श्रवण किये वेदवाक्यते अद्वैत ब्रह्म का साक्षात्कार होवे है।" ताकूँ सुनिके अदृष्टि नाम द्वितीय शिष्य, यह शङ्का करे है:-१-वेद गुरु सत्य होवे तौ अद्वैत की हानि, २-असत्य होवे तो तिनते पुरुषार्थकी प्राप्ति बने नहीं दोनों रीति से वेद गुरुते अद्वैतज्ञान बने नहीं ।

चौपाई ।

वेदरुगुरु जोमिथ्या कहिये । तिनते भवदुखनश्यो न चहिये ॥
जैसेमिथ्या मरुथल कोजल । प्यासनाशकोनहिं तामैं बल १॥
सत्य वेद गुरु कहैं तु द्वैत । भयो गयो सिद्धान्त अद्वैत ॥
यों शङ्करमत पेखि अशुद्धा । तज्यो सकल मध्वादि प्रबुद्धा २॥
यह शङ्का भगवन् मुहिं उपजै । उत्तर देहु दयालु न कुपिजै ॥
गुरु बोले शिषकी सुनिबानी । शङ्करको मत परम प्रमानी ॥
च्यारि यार मध्वादिक जे हैं । वेद विरुद्ध कहत सब ते हैं ॥
यामैं व्यासवचन सुनि लीजै । शङ्कर मतहि प्रमाण करीजै ॥
कलिमें वेदअर्थ बहु करिहैं । श्रीशङ्कर शिव तब अवतरिहैं ॥
जैन बुद्धमत मूल उखारै । गङ्गाते प्रभु मूर्ति निकारै ॥ ५ ॥

* 'भयो" पद का प्रथमपाद से अन्वय है ।

जैसे भानु उदय उजियारो। दूरि करे जग में अँधियारो॥
सबवस्तुहि ज्योंकी त्यों भासैं। संशय और विपर्यय नासैं॥६॥
वेद अर्थ में त्यों अज्ञाना। नहिं है श्री शङ्कर व्याख्याना॥
करिहैं ते उपदेश यथारथ। नाशहि संशय अरु अयथारथ*
और जु वेद अर्थकूं करिहैं। ते शठ वृथा परिश्रम धरिहैं॥
यों पुराणमें व्यास कही है। शङ्कर मतमैं मान यही है॥८॥
मध्वादिकको मत न प्रमानी। यह हम व्यास वचन ते जानी॥
और प्रमाण कहूँ सो सुनिये। वाल्मीकिऋषि मुख्यजु गिनियें॥
तिन मुनि कियो ग्रन्थ वाशिष्ठा। तामैं मत अद्वैत स्पष्टा॥
श्रीशङ्कर अद्वैतहि मान्यो। तिनको मत यह हेतुप्रमान्यो१०
वाल्मीकिऋषि वचनविरुद्ध। भेदवाद लखिसकल अशुद्ध॥

सर्व प्रकरण का भाव यह है:-व्यास भगवानने पुराण में यह कही है:-" जब कलि में वेद के अर्थ कूं नाना भाँति करेंगे, तब कृपालु शिव शङ्कर नाम धार के अवतार लेके बदरीनाथ की मूरति का देव नदी मध्यते उद्धार, स्वस्थान में स्थापन, जैन बुद्धमत खण्डन और वेद का यथार्थ व्याख्यान करेंगे " १-या व्यास वचनते श्रीशङ्करमत प्रमाण है, २-मध्वादिकन का भेदमत अप्रमाण है और उपनिषद, गीता सूत्र ये तीन जो वेदान्तके प्रस्थान हैं, तिनके यद्यपि मध्वादिकन ने किसी

* अयथार्थ-भ्रान्ति।

तरह खैंचिके स्वस्वमत के अनुसार व्याख्यान किये हैं तथापि व्यासवचनते श्रीशङ्करकृत व्याख्यान ही यथार्थ है और आदिकवि सर्वज्ञ वाल्मीकिऋषिने उत्तररामायण वाशिष्ठनाम ग्रन्थ किया है तहाँ अद्वैतमत में प्रधान जो दृष्टिसृष्टिवाद है सो अनेक इतिहासनसे प्रतिपादन किया है। याते वाल्मीकिवचन अनुसार अद्वैतमत प्रमाण है, और वाल्मीकिवचनविरुद्ध भेदमत अप्रमाण है इस रीति से सर्वज्ञऋषि मुनि वचन विरोधते भेदवाद अप्रमाण कहा और युक्तिसे भी भेदवाद विरुद्ध है यह खण्डन आदिक ग्रन्थन में श्रीहर्षादिकन ने प्रतिपादन किया है । युक्ति कठिन है, याते भेदमत खण्डनकी युक्ति नहीं लिखी।

ऋषिमुनिवचनते विरुद्ध भेदमत में जैनमत की न्याईं अप्रमाणता निश्चय हुएते युक्तिसे खण्डन की आस्तिक अधिकारीकूँ अपेक्षा भी नहीं। यह तीन चौपाईसों कहे हैं:-

चौपाई ।

कियो ग्रन्थ श्रीहर्षजु खण्डन । खण्डन भेद एकता मण्डन ॥
लिख्योतहाँ यह बहुविस्तारा। भेदवादनहियुक्तिपहारा॥१३॥
और भेदधिकार जु ग्रन्था । तहाँ भेद खण्डन को पन्था ॥
कठिन दुरूहतर्क हैं ते अति। नहीं पैठहिशिषतिनमैंते मति॥
याते कही न ते तुहि उक्ति । करैजु भेदहि खण्डन युक्ति ॥
अप्रमाणमत भेदलख्योजब। खण्डनमेंयुक्तिनचहियततब ॥

वेद वचन से भी भेदमत विरुद्ध है, यह कहे हैं:-
भेद प्रतीति महा दुखता। यमकठ में यह टेरत ताता॥
याते भेदवाद चित त्यागहु। इक अद्वैतवाद अनुरागहु॥१५॥
"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति यइह नानेव पश्यति" इति श्रुतेः।

जो पुरुष इस परमात्मा विषे नाना की न्याईं देखता है सो मृत्युकूँ पावता है।

"द्वितीयाद्वै भयं भवति" "अन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा। पशुरेव स देवानाम्" इति द्वे श्रुती॥

अर्थ चौपाई।

जो द्वितीयकूँ मति में धारै। भय ताकूँ यह वेद पुकारै॥
ज्ञेय ध्येय मोतें कछु औरा। लखै सुपशु यह वेद ढँढोरा॥१६॥
शिषयातें मध्वादिक बानी। सुनी सुमिरहु अति दुखदानी॥
द्वैत वचन तब हियमें जौलों। है साक्षात अद्वैत न तौलों॥१७
द्वैतवचनको स्मरणजु होवे। है साक्षात् तू ताहि बिगोवे॥
पूर्वस्मृतिसाक्षातविनाशत। सुनइक अस तुहि कथा प्रकाशत॥
राजाको इक भर्छू मन्त्री। राज काज सब ताके तन्त्री*॥
और मुसाहिब मन्त्री जेते। करैं ईरषा तासूँ तेते॥१८॥
करि न सकत भर्छू की हाना। महाराज निजनिज प्रियजाना॥
तब सब मिलि यह रचो उपाया। धारि दौर दङ्गा मचवाया॥
सो सुनि राजहि करी कचहरी। लिये बुलाय मुसाहिब जहरी॥
तिनसूँ कह्यो वेग चढ़ि जावहु। दौरत धारि सुधूम नशावहु॥

* तन्त्री-अधीन।

तब सब मिलि उत्तर यह दीना । सदा एक भर्तृ हितुमचीना ॥
मरणलिये अब हमहि पठावतु । भर्तृ कूँ कहु क्यों न चढ़ावतु ॥
तब बोल्यो भर्तृ कर जोरी । महाराज सुनु विनती मोरी ॥
आज्ञा होय मोहि यह रोरी । मारूँ सकल धारि जो दौरी ॥
तब भर्तृ कूं बोल्यो राजा । तुम चढ़ि जाहु समारहु काजा ॥
ते जातहि भर्तृ सब मारे । बणिक कृषीबल किये सुखारे ॥
भर्तृ विजय सुन्यो तिन जबही । राजापै भाष्यो यह तबही ॥
भर्तृ मर्यो न सुधरो काजा । मिथ्या वचन सुनतही राजा ॥
और प्रधान मुसाहिब कीनो । छत्र रु पीनस पङ्खा दीनो ॥
बन्दोबस्त तिनकीने अपनहु । सुनै न राजा भर्तृ हितुपनहु ॥
सब वृत्तान्तभर्तृ तब सुनिके । रूपतपस्विधर्योयह गुनिके ॥
राजापै मुहि जान न देहैं । गये द्वार लग प्राणहु लेहैं ॥२७॥
अब लग सबहि पदारथ भोगे । देह रु इन्द्रिय रहे अरोगे ॥
तियजोचारिचतुष्पदसोहत । च्यारफूलरुत्त खगमनमोहत ॥

" तिय " आदि " खग " अन्त इन दो पदों के
अर्थों के दोहे । यथा—

च्यारिचतुष्पद ।

करिकर उरु मृगखुर पुरज, केहरिसी कटि मान ।
लोचन चपल तुरङ्ग से, वरणौं परम सुजान ॥२८॥

च्यारिफूल ।

कमल वदन अलसी कुसुम, चिबुक चिह्नमति धाम ।
तिलप्रसूनसी नासिका, पङ्कज तनु अभिराम ॥३०॥

च्यारि फल।

विम्ब अधर दाड़िम दशन, उरज बिल्व से धीर।
कोहरसी एड़ी कहत, कोविद मति गम्भीर ॥३१॥

च्यारि खग।

है मरालसी मन्दगति, कराठ कपोत सुढार।
पिकसी वाणी अतुल मधुर, मोरपुच्छसम बार ॥३२॥

❀ चौपाई ❀

गङ्गपयोनिधि कबहुँनत्यागत। जातेरसिक सुमनअनुरागत॥
विधि तिलोत्तमा अपर बनाई। हन्योसुन्दरजिनसोंनसुहाई॥
मिह्दिदीजावककरपद्रागा। तिनकोमैं कियनिमित्त त्यागा॥
और भोग तिनके उपकरना। भोगैं सबै निकट सोमरना॥३४
अहो मूढ़को समसम जगमैं। भो लम्पट अब लगमैं भगमैं॥
गीलोमलिनमूत्रतेनिशिदिन।स्रवतमांसमयरुधिरजुछतबिन॥
चर्म लपेट्यो मांस मलीना। ऊपरि बार अशुद्ध अलीना॥
इनमैंकौनपदारथसुन्दर। अति अपवित्र ग्लानिको मन्दिर॥
तियकी जङ्घजघन्य सदाही। रम्भाकरि कर उपमित जाही॥
आर्द्रमृतकी मनुगतनारो। रुधिर मांसत्वक अस्थि पसारो॥
लगतजु नीकेस्थूलनितम्बा। तिनके मध्य मलिनमल थम्बा॥
तट ताकेते अतिदुर्गन्धा। है आसक्त तहाँसो अन्धा॥३८॥
अधरजोथूकलारसेभीजत। तजिग्लानी निजमुखमैं दीजत॥
दृष्टमदा* नारीमदिराभजि। शुद्धअशुद्ध विवेकदियो तजि॥

* दृष्टमदा-जिसके देखतेही मद चढ़े।

कहत नारिके अङ्गजु नीके। करत विचार लगत यों फीके॥
कपटकूटको आकरनारी। मैं जानी अबतजन बिचारी४०॥
कलाकन्द दधिपायस पेरा। तन्दुलघृत व्यञ्जन बहु तेरा॥
और विविध भोजनजेकीने। तिन सबके रसनारसलीने४१॥
अबलौं भई न तृप्ति जु याकूँ। याते वृथा पोषिना ताकूँ॥
क्षुधाविनाशहीं बन फलकन्दा। हैक्योंपराधीनयहबन्दा४२॥
गुहा महल बन बाग घनेरा। क्यों राजा को है हूँ चेरा॥
सेजशिलाअरुनिजभुजतकिया। निर्झरजलकर पावनरुकिया॥
बैठि इकन्त होय सुच्छन्दा। लहिये मङ्क्षु परमानन्दा॥
विनाएकान्तनआनन्दकबहूँ। मिलैअब्धिलौपृथ्वीसबहूँ॥४४॥

दोहा।

पृथ्वीपती निरोग युव, दृढ़ स्थूल बलवन्त।
विद्यायुत तिहिं भूप में, मानुष सुखको अन्त॥ ४५॥

जेमानव गन्धर्व कहावत। तानृपते शत गुण सुख पावत॥
होत देवगन्धर्वजु औरा। तिनते तहँ सौगुणसुख व्यौरा४६
सुख गन्धर्व वेदको जो है। ताते शतगुण पितरन को है॥
पुनिअजानदेव मैं तिनते। सौगुण कर्मदेव मैं जिनते॥४७॥
*मुख्यदेव जे हैं पुनि तिनते। कर्मदेवते सौगुण जिनते॥
जो त्रिलोकपतिइन्द्रकहीजै। तामैंपुनि सौगुण गिनिलीजै४८
सब देवनको गुरूबृहस्पति। लहै इन्द्रते शतगुण सुखगति॥

* मुख्यदेव-ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु ये इकतीस हैं।

जाको नाम प्रजापति भाषत। गुरुते सुख सौगुण सो राखत॥
ताहूते सौगुण ब्रह्महिं सुख। लहै न रञ्चक सो कबहूँ दुख॥
इतने या क्रमते सुख पावत। तैत्तिरीय श्रुति यों समुझावत॥

सोरठा।

राजातैं ब्रह्मान्त, कह्यो जु सुख सगरो लहै।
रहत सदा एकान्त, कामदग्ध जाको न हिय॥ ५१॥

युवतीसंग दुःख वर्णन–चौपाई।

है एकान्तदेशमें अससुख। युवतिपुत्र धनसङ्ग सदा दुख॥
युवति कुरूप कुबोलनि जाके। सदा शोकहियमहँ गृह ताके॥
प्रभु पुरीषपराडा यह रराडा। दियमुहि कौन पापको दराडा॥
बोलतवैनव्यालका गनिके। भेड़ भैंसि न्योरी नागिनिके॥५३॥
भूत भावती ऊँटनि कोहै। बोल खरी को सुनि खर मोहै॥
रैनिजु ऊँचे स्वरहिं उचारत। स्यार हजारन सुनत पुकारत॥
निरपराध तिय बिन बैरागा। तजत न बनतपापजियलागा॥
रहतदुखीयोंनिशदिनपियमन।तियकुबोलसुनिलखिकुरूपतन
कामिनी हैजु सरूप सबानी। सो कुरूपते है दुख दानी॥
चमक चाम की पियहिं पियारी। अर्थधर्म नशि भो नरगारी॥

धन बिगार।

मीठे बैन जहरयुत लडुवा। खाय गमाय बुद्धि है भडुवा॥
औरकछू सपनहु नहिं देखै। काक अन्धइक कामिनी लेखै॥
धन कछुमिलैजु बाहिर घरमें। सो सब खरचै कामिनी घरमें॥
भूषण वस्त्र ताहि पहिरावे। गुरुपितु मात न यादिहु आवै॥५८

पायस पान मिठाई मेवा, देय भक्तिते तिय निज देवा ॥
नेहनाथ नाथ्यो नहि छूटें, तियकिशान पिय बैलहिं कूटैं ५९

धर्म विगार ।

ज्यों सूवा पिंजरेमें बन्धुवा, सिगयो बोलत शुद्ध अशुधवा॥
तैसें जो कछु नारि सिखावत, सोगुरुमातपिताहिंसुनावत ॥
जैसे मोर मोरनी आगे, नाचि रिझाय आप अनुरागे ॥
तैसेविविध वेषकरि तियको, मनरिझायरीझतमन पियको ६१
जब दुहूँनकोमनअनुराग्यो, तबहिंमदनमदिरातदलजाग्यो ॥
भये बावरे वसनहु त्यागे, अति उन्मत घूरत पुनि लागे ६२
प्रेतरूप धरि लगन अमङ्गल, भिरि फिरि भिरतमेषमनु दङ्गल॥
ज्योंलोटत मद्यपी मतवारो, गिनतमलीन गलीन नतारो ६३
त्यों नरनारिमदन मद अन्धे, अतिमलीन अङ्गन में बन्धे॥
करतमदनमदभ्रमजेमनकूँ, है अचरजसुनित्यागी जनकूँ ६४॥
नशै मदन मदतेमतिनरकी, लखत न ऊँचनीच परघर की॥
तियहु बावरी मदन बनाई, क्रिया दुखदजिहिंहै सुखदाई ॥
प्रबलकाममदिरा मद जागे, तब द्विजतिय धानकते लागे॥
पिये मदन मदिरा नरनारी, ऐसे करत अनन्त खुवारी ६६॥
कामदोष यों नरहिं बिगोवत, सोईप्रगटसुन्दर तिय जोवत ॥
याते अतिसरूपतियदुखदा, ताकोत्याग कहतमुनिसुखदा ॥
जोसुरूप तियमें अनुरागत, विषसम दुखदपेखि नहिं भागत॥
उभय ताककीकरत सहानी, मुनिजन गन, गुन साखबखानी॥
जो नाना विध भोजन खावै, रस ताको फलबिन्दु उपावै॥

जीवनबिन्दु अधीन सबनको, नशतशोक बिन्दुहुते मनको ॥
है जब जनको मन मलत्रासी, करतशोकअतिधरनउदासी॥
रुधिरनिवासधरतमनजबहूँ, चञ्चल अधिक रजोगुणतबहूँ ॥
जबमनकरत बिन्दुमेंबासा, तबहिं शोक चंचलता नासा ॥
पुनिआपहिं बलवत जनजाने, ह्वैप्रसन्न शुभ कारज ठाने॥
बिन्दु अधिक होवे जा जनमें, सुन्दर कान्तिरूपता तनमें॥
बिन्दुहुको तनुमें उजियारो, नशै बिन्दु तनमन हतियारो ॥
जाको बिन्दु न कबहूँनाशै, बलिनपलिततिहिं तनपरकाशै ॥
योगी करत खेचरी मुद्रा, ताते बिन्दु राखि है भद्रा॥७२॥
अष्ट सिद्धि जे धारत योगी, बिन्दु खसे हारत ते भोगी॥
असअतिउत्तमबिन्दुजु जगमें, तिहितियखीनिलेतनिजभगमें॥
ज्योंकिसान बेलनमें ऊषहिं, पेरत लेत नीचोरि पियूषहीं ॥
बार बार बेलनमें धारहिं, ह्वै असार* दध्या तब जारहिं॥
त्यों तिममींचिभुजनमेंपीकूँ, भरतयोनिघट खींचि अमीकूं॥
पुनिपुनिकरतक्रियानिततौलौं, शेषबिन्दुकोबिन्दुनजौलौं ॥
किया असार नारि नर देहा, खींच फुलेलफूलज्यों खेहा॥
भो अकाम सब ताहि जरावै, सूखेवैन मुरार लगावै॥७७॥
ह्वै जु सरूप जोर धन भारी, ता नर पै नारी बलिहारी ॥
करि सुरूप धनबलको अन्ता, कहत ताहि तू काको कन्ता॥
तिहिं पुनिमिलन चहे जुअनारी, कर धरपै धरतहू देगारी ॥
नाक चढ़ाय आँखिहू मोरै, जाय न पतिसे जहुकधोरै ॥ ७९॥

* हलकी बाँध गण्डेकी बँधा हुई बेलनमें देवे ताका नाम दध्या पंजाबमें प्रसिद्ध है

कोटि वज्र सङ्घात सु करिये।
सबको सार खींचि इक धरिये॥
तियके हिय सम सो न कठोरा।
ऋषि मुनिगण मह देत ढँडोरा॥ ८०॥
करतापुमान हठत तिय ज्यों ज्यों।
चिपटरा शठ मति जन मन त्यों त्यों॥
कबहुँक ताको वांछित करिके।
मरण अन्त छोड़त न पकरिके॥ ८१॥
पढ्यो पुराण वेद स्मृति गीता।
तर्क निपुण पुनि किनहु न जीता॥
करत अधीन ताहि तिय ऐसे।
बाजीगर बन्दर कूँ जैसे॥ ८२॥
सब कछु मन भावत करवावत।
पढ़ पशुहिं भलभाँति नचावत॥
उक्ति युक्ति सब तबही विसरै।
जब पण्डित पढ़ि तियतें ढिसरै॥ ८३॥
जब कबहुँ सुमिरत यह वेदा।
तब तियमें मानत कछु खेदा॥
तिहि त्यागन की इच्छा धारै।
पुनि तिय नैन सैन शर मारै॥ ८४॥
जहर कटाक्ष नैन शर बोरै।
तानि कमान भौंह युग जोरै॥

मारत सारत हिय सब जनको।
विज्ञहु* बचत न धन शठगन को ॥८५॥
भयो न तिय मैं तीव्र विरागा।
यों मतिमन्द करत पुनि रागा॥
करत विविध आज्ञा चाकर।
हुकुम करै बैठी मनुठाकर ॥ ८६ ॥
जे नर नारि नयन शर बींधे।
तिनके हिये होत नहिं सीधे॥
भलो बुरो सुख दुख सब बिसरत।
ते कैसे भवदुखते निसरत ॥ ८७ ॥
नारि बुरी वेश्या अरु पर की।
तीजी नरक निशानी घर की॥
तजत विवेकी तिहुँ मैं नेहा।
करे नेह तिय शठ मुख खेहा ॥ ८८ ॥

दोहा।

अर्थ धर्म अरु मोक्षकूँ, नारि बिगारत ऐन।
सब अनर्थ को मूल लखि, तजैं ताहिं है चैन ॥८९॥
पुत्र सदा दुख देत यों, बिन प्रापति दुख एक।
गर्भ समय दुख जन्म दुख, मरै तु दुःख अनेक ॥९०॥

* विज्ञ-विद्वानहु न बचत शठगण कों धन कहाचीज।

चौपाई ।

गर्भ धरत जौलौं नहिं नारी । दुख दम्पति मन तौलौं भारी ॥
ह्वै जु गर्भ यह चिन्तन नाशै । पुत्री होय कि पुत्र प्रकाशै ॥
गर्भगिरनके हेतु अनन्ता । तिनतेडरत करत अतिचिन्ता ॥
ह्वै जु पूर्त नव मास विहानै । जननी जनकअधिक दुखमानै ॥
नवग्रहमें इक ह्वै नहिंविगरै । असजन कोन जन्मजगमगरै ॥
बिगरेग्रहकोंनिशिदिनचिन्ता । करतमातपित बैठ इकन्ता ॥
शिशु उदास है जब तजिबोवा । तबदोऊमिलिलागतरोवा ॥
यों चिन्ततकछु गये महीने । दाँतपूतके निकसे झीने ॥९४॥
मरतबालबहु निकसतदन्ता । तबयहचिन्तादुखतियकन्ता ॥
जिये दूसरो दुखते बारो । देखि चुराहे धरत उतारो ॥९५॥
म्लेच्छ चमार चूहरे कोरी । तिनते झरवावत द्विज धोरी ॥
सैयद ख्वाजा पीर फकीरा । धोकत जोरत हाथ अधीरा ॥
जाकूं हिन्दु कबहुँ नहिं मानै । पुत्रहेतु तिहिं इष्टपिछानै ॥
भैरों भूत मनावत नाना । धरत शिवानलि भूमि मशाना ॥
थानकको डमरू घर बाजै । करजोरत पूजत नहि लाजै ॥
और यन्त्र तावीज घनेरे । लिखि मढ़वाय पूत गर गेरे ॥
निजकुलमेंइक अच्युतपूजा । किनहु न सपनहु समरयोदूजा ॥
सोकुलनेमपूतहितत्यागो । व्यभिचारन ज्यों जहँतहँ लागो ॥
होतशीतलाकोजबनिकसन । नशतमातुपितुमनकोविकसन ॥
स्नानक्रियानिज रहतमलीना । परमदेवगदहाकूंकीना ॥१००॥
मोरि बाग बहुसहुशिशु मारा । गदहा मातु चरावऊँ तोरा ॥

यों कहि चना गोदमें धारै । बिनती करि गदहाकूं चारै ॥
असअनन्तदुखतेशिशुमारन । युवा होत लौं और हजारन॥
उमर पूतकी है जो थोरी । मरि है करहु उपाय करोरी ॥
मरे मात पित कूटहिं माथा । मानि आपकूं दीन अनाथा॥
हाय२करि निशिदिन रोवैं । करि धिक२निज जन्मबिगोवैं॥
पूत मरणको दुख है जैसो । लखत *सपूत =अपूत न तैसो॥
जो जीवैतो होतहि तरुना । लखत नारिके पोषण भरना ॥
जिन अनेक यत्ननि प्रतिपारो । तिनकूं जल्प्यावनहै भारो॥
रजनि सेजपै सिखवै नारी । तब पितमात देहु मुहिंगारी ॥
है सपूत तौ प्रातहिं उठिके । नवै दूरते माथन गठिके ॥
चहै मात पित आवैं नेरे । पूत न सन्मुख आँखिहुँ हेरे ॥
है कपूत तौ उठतहिं प्राता । वचनगारिसम बकि असुहाता॥
जुदो होय ले सब घरकोधन । देपितमातहिं इकतिनकोतन॥
फेरि सँभारतकबहुँनतिनकूं । पोषतसबदिनतिय निजतनकूं॥
देखि लेत पितमात उसासा । याविधिपुत्र सदा दुखराशा ॥

दोहा ।

करि बिचार यों देखिये, पुत्र सदा दुखरूप ।
सुख चाहत जे पूततैं, ते मूढ़न के भूप ॥१०९॥
ताज तिय पूत रु धन चहै, ताके मुखमें धूर ।
धन जोरन रत्ता करन, खरच नाश दुख मूर ॥११०॥

* सपूत-जाका पूत जीवे है = अपूत-जाके पूत नहीं हुआ ।

चौपाई।

जो चाहै माया बहु जोरी। करे अनर्थ सु लाख करोरी ॥
जातिधर्म कुलधर्म सुत्यागै। जो धन कूं जोरनजन लागै ॥
विनाभागतदपिनधनजुरिहै। जुरै तु रचो करि २ मरि है ॥
खर्चतधनघटिहैयहचिन्ता। नाशै निशिदिनताप अनन्ता ॥
सदाकरत यूं दुखधनमनकूँ। अहै ताहि धिकरतिहिं जनकूँ ॥
युवतिपूतधनलखिदुखदाता। तज्योभर्त्तु ममताको नाता ॥

कुण्डलिया-छन्द।

भर्त्तु वन एकान्त में, गयो कियो चित शान्त।
भयो नयो दीवान तिन, सुनो सकल वृत्तान्त ॥
सुन्यो सकल वृत्तान्त, चित्त यह उपजी ताके।
जो नृप जीवत सुनै, मिलै वा काहू नाके ॥
तौ झूठे हम होहिं, भूप दे सबको दण्डा।
याते अब मिलि कहौ, भर्त्तु भो प्रेत प्रचण्डा ॥११४॥

दोहा।

करि सलाह यह परस्पर, गये कचहरी बीच।
सबहि कही यह भूपते, भर्त्तु प्रेत भो नीच ॥११५॥
राख लगाये देह में, मिलै जाहि बतरात।
तिहिं मारत सो नर बचत, जो तिहि देखि परात* ॥
सुनि भूपहु निश्चय कियो, भर्त्तु मरि भो प्रेत।
साँच झूठ भूप न लखत, है जोप्रमाद अचेत ॥११७॥

* परात-भाग जाये।

कछु दिन बीते भूप तब, मारन गयो सिकार।
पैठ्यो गिरि वन सघन में, जहँ मृगराज हजार॥११८॥
त्रपत तहाँ इक तरुतरे, भल्लू निज दीवान।
पेखिताहि भाज्यो उलटि, मानि प्रेत दुखदान॥११६॥

इन्द्रव छन्द।

भल्लूं मर्योरु परेत भयो यह, वाक्य असत्यहु सत्य पिछान॥
देख लियो निज आँखिन जीवत, तोहु परेत हुमानि भगान॥
वंचकते सुनि द्वैततथा, मति में विसवास करे जु अजाना॥
ब्रह्म अद्वैत लखै परतच्छहु, तोहु न ताहि हिये ठहराना॥

दोहा।

भेद वचन विश्वास करि, सुनत जु कोउ अजान।
सो जन दुख भुगते सदा, है न ब्रह्म को ज्ञान॥१२२॥
याते सुनै जु भेद के, वचन लखै सु असत्य।
तबही ताकूँ ज्ञान है, महावाक्यते सत्य॥११२॥

चौपाई।

शिषतें सुनीजु भेद कहानी, जानि झूठते नरक निशानी।
तिनके कहनहारसब झूठे, पुरुषारथमुखते शठ रूठे।१२४।
तिनको सङ्ग न कबहूँ कीजै। है जो सङ्ग न वचन सुनीजै।
जोकहुँसुनैतुसुनतहित्यागहु, म्लेच्छजैनवच समलखिभागहु।
जो मिथ्या है दैशिक वेदा, कैसे करहीं भवदुख छेदा।
याको अब उत्तर सुनि लीजै, मिथ्या दुख मिथ्याते छीजै।
वेदरुगुरू सत्य जो होवै, तौ मिथ्या भवदुख नहिं खोवै

यामें इक दृष्टान्त सुनाऊँ। जातेतव सन्देह नशाऊं॥१२७॥
सुरपति इन्द्र स्वर्ग में जैसो। प्रबल प्रताप भूप इक ऐसो॥
भीमसमान शूर बहुतेरे। तिनके चहुँधा डेरे गेरे॥१२८॥
योधाले निज २ हथियारन। खरेरहैंतिहिं द्वार हजारन॥
अन्दिरमन्दिर ड्योढ़ीठाढ़े। लियेखड्ग कोशनते* काढ़े॥
ऊँचो महल अटारी जामैं। फूल सेज सोवे नृप तामैं॥
पंछीहू पहुँचन नहिं पावै। तहाँ और कैसे चलि जावै॥
तहाँ भूप देख्यो अस सुपना। पकर्यो पैर गीदरी अपना॥
भूप छुड़ायो चाहत निजपग। तजतनगीदरिपकरि जुपगरग
तब राजा यों खरो पुकारे। है को अस जो गीदरि मारे॥
जोधा जो ठाढ़े निजद्वारा। तिन रञ्चकहु न दियो सहारा॥
तबनृपदण्डलियोनिजकरमें। आपुहिमार्यो स्यारनिशिरमें॥
लगतदण्ड भो ताको अन्ता। तब निसरे पगरगते दन्ता॥
दाँत लगे गाढ़े नृप पगमें। या लँगरात सुचालत मग में॥
तब चाल्यो ले लाठी करमें। पहुँच्यो घावरिया के घरमें॥
ताहि कह्यो फोहा असदीजै। घाव पाँवको तुरत भरीजै॥
घावरियानृपते यह भाख्यो। फोहानहिं तयार धरिराख्यो॥
जो तू दे पैसा इक मोकूँ। तो तयार करि देहूं ताकूँ॥
तब उलट्यो नृप लाठी टेका। नहिं देनेकूँ कौड़िहु एका॥
लाग्यो सांच करन टरि परते। बूझै बात कौन बिन जरते॥

* कोश म्यान।

जो मैं होत धनी बड़भागा। आवत घर घावरिया भागा ॥
मोहिं निकम्मा जानि कँगाला। घरते तुरत रोगज्यों टाला॥
याहींकूं कछु दोष न दीजै। बिनस्वारथको किहिनपतीजै ॥
मात पिता बान्धव सुतनारी। करतप्यार स्वारथतें भारी ॥
जो नहिं स्वारथ सिद्धी पावे। तो इनकूं देख्योहु न भावै॥
जा बिन घरीएकनहिं रहते। दुख अपार बिछुरेसबलहते ॥
जब देखै आयौ घर पौरी। घरके मिलत भाजि भरिकौरी ॥
विधि अधीन कोढ़ी सो होवै। सब अङ्गनि में पानीचोवै ॥
झरझरि परीं आँगुरी जाके। भिनभिनातमुखमाखी ताके ॥
कहत ताहि तें घरके प्यारे। मर पापी अब तो हतियारे ॥
जेहिं देखतआँखियाँनअघाती।तेहिंलखिग्लानिवमनज्योंआनी
जोतियहियलागतपतिप्यारो। कियन चहत पलउरते न्यारो॥
ताकी पवन बचायोलांरै। भिरै जु बसन तु नाक सकोरै ॥
जिहिं पितुमातगोदमें लेते। सकुचत तिहिंकरते कछु देते ॥
मिलतभ्रातजोभरिभुज कोरी। सो बतरात बीचदै डोरी ॥
ऐसेजग स्वारथको सारो। बिन स्वारथ को काको प्यारो ॥
मुहिं स्वारथयोग्यनविधिकीनो। याते इनकोहानहिं दीनो ॥
यों चिन्तत इकमुनितिहिंभेट्यो। तिनदैजरीघावदुख मेट्यो॥
निद्राते जाग्यो नृप जबहीं। घाव दरद मुनिनाशे तबहीं ॥
शिष्यहेतुहिदृष्टान्तप्रकाश्यो। लखिमिथ्यातेंमिथ्यानाश्यो ॥
मिथ्यादुखदेख्योजबराजा। साचसमाजनकियकछु काजा ॥

सर्व प्रकरण का अर्थ स्पष्ट ॥ भाव यह है-संसार रूप

दुःख मिथ्या है, याते तिसके दूरि करने के साधन वेद गुरु मिथ्याही चाहिये हैं। मिथ्याके नाश में सत्यसाधन की अपेक्षा नहीं और सत्यसाधन होवे तो तिनते मिथ्या का नाश होवे नहीं। जैसे राजाके समीप मिथ्या गीदरी स्वप्न में पहुँची किसी सत्ययोद्धा से रुकी नहीं और राजा पुकारयो जब काहूसे भी मरी नहीं और राजा के पास अनेक साँचे शस्त्र धरे हैं तो भी मिथ्या दण्ड से मरी और राजाके मिथ्याघाव भया तब कोई वैद्य जर्राह साँचा पाया नहीं मिथ्या जराह के पास गया, ताने पैसा माँग्या तो अनन्त खजाने साँचे धरेही रहे, एक पैसा भी राजाकूँ मिला नहीं। कोई भी सत्य साधन राजाके दुःख के नाश करनेमें समर्थ हुआ नहीं, किन्तु मिथ्या मुनिने मिथ्याजरी देके मिथ्या दुःखका नाश किया इस रीतिके स्वप्न सर्व कूँ अनुभवसिद्ध हैं जाग्रत् पदार्थ का स्वप्न में काहूकूँ कभी भी उपयोग होवे नहीं तैसे मिथ्या जो संसार दुःख ताका नाश मिथ्यावेद गुरुसे होवे है साँचे वेदगुरु अपेक्षित नहीं।

जैसे मरुस्थल के मिथ्या जलते तृषा का नाश होवे नहीं, तैसे मिथ्यावेदगुरुते संसारदुःखका नाश होवे नहीं, और मिथ्या वेदगुरु मानिके संसार दुःखका तिनते नाश अङ्गीकार करोगे तो मरुभूमिके जलते भी तृषाका नाश हुआ चाहिये। यह शङ्का शिष्यने करी थी।

ताका समाधान–चौपाई।

यद्यपि मिथ्यामरुथल पानी। ताते किनहून प्यास बुझानी॥
तदपि विषमदृष्टान्त सुतेरो। सत्ता भेद दुहुन मैं हेरो॥१४७॥

यद्यपि मिथ्या जो मरु भूमि का पानी ताते किसी ने प्यास नहीं बुझाई और मिथ्यागुरुवेदते दुःख के नाशकी न्याईं मिथ्याजल से प्यास का नाश हुआ चाहिये और प्यास नाश होवे नहीं, तैसे मिथ्यागुरु वेदते संसार का नाश बने नहीं तदपि कहिये तो भी तेरा दृष्टान्त विषम है काहेते? दुहुनमें कहिये मरुस्थल का जल और प्यास इन दोनों मे सत्ता का भेद है ताकूं हेरो कहिये देखो ॥१४७॥

❀ चौपाई ❀

समसत्ता भव दुख गुरुदेवा। यों गुरुवेद करत भव छेदा॥
आपसमैंसमशत्ता जिनकी। लखिसाधकबाधिकतातिनकी॥

भवदुःख और गुरुवेद की समसत्ता कहिये एक सत्ता है, यातेगुरुवेदके भवदुःखका छेद होवे है, जिनकी आपस में समसत्ता होवे तिनकी आपस में साधकता और बाधकता होवे है, १–जैसे मृत्तिका और घट की समसत्ता है, याते मृत्तिका घट का साधक है। २–अग्नि और काष्ठकी समसत्ताहै तहाँ अग्नि काष्ठका बाधकहै, १-साधक कहिये कारण २-बाधक कहिये नाशक। मरुस्थलके जल की प्यासकी समसत्ता नहीं याते मरुस्थल का जल प्यास का बाधक नहीं। या स्थान में यह रहस्य है:–

चेतनमें परमार्थसत्ता है और चेतन से भिन्न जो मिथ्या पदार्थ तिनमें दो प्रकार की सत्ता है-एक तो व्यवहार सत्ता है और दूसरी प्रतिभास सत्ता है।

१-जा पदार्थका ब्रह्मज्ञान बिना बाध होवे नहीं किन्तु ब्रह्मज्ञानसेही बाध होवे ता पदार्थमें व्यवहार सत्ता कहिये है सो व्यवहारसत्ता ईश्वरसृष्टि में है, काहेते ? देहइन्द्रियादिक प्रपञ्च जो ईश्वरसृष्टि ताका ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवे नहीं ब्रह्मज्ञानसेही बाध होवे है। यद्यपि ईश्वरसृष्टिके पदार्थन का ब्रह्मज्ञानसे विना नाश तौ होवे भी है परन्तु ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवे नहीं। अपरोक्ष मिथ्यानिश्चय का नाम बाध है। अपरोक्ष मिथ्या निश्चय ईश्वर सृष्टि के पदार्थनमें ब्रह्मज्ञानसे प्रथम किसीकूँ होवे नहीं ब्रह्मज्ञानसे अन्तरही होवे है। याते मूलअविद्या के कार्य जो जाग्रत् के पदार्थ, ईश्वरसृष्टि तामें व्यवहार सत्ता है। जन्ममरण बन्धमोक्षआदिक व्यवहारके सिद्ध करनेवाली जो सत्ता कहिये होना सो व्यवहारसत्ता कहिये है।

२-ब्रह्मज्ञानसे बिनाही जिनका बाध होवे तिन पदार्थनमें प्रतिभाससत्ता कहिये है। जैसे ब्रह्मज्ञान से बिनाही शुक्ति, जेवरी, मरुस्थल आदिकन के ज्ञानतें रूपा, सर्प, जल आदिकन का बाध होवे है तिनमें प्रतिभास सत्ता, है, प्रतिभास कहिये प्रतीति मात्र जो सत्ता कहिये होना। सो प्रतिभाससत्ता कहिये है। तूल। अविद्याके कार्य रूपा

आदिक पदार्थनका प्रतीतमात्रही होना है, याते तिनकी प्रातिभाससत्ता है।

जाका तीनकालमें बाध होवे नहीं ताकी परमार्थसत्ता कहिये है। चेतनका बाध कभी होवे नहीं, याते परमार्थ सत्ता चेतनकी है। इस रीतिसे वेद गुरु और संसारदुःख इनकी एक व्यवहारसत्ता होनेते आपसमें समसत्ता है। याते मिथ्यावेदगुरुते मिथ्या भवदुःखका नाश बने है और क्षुधा पिपासा प्राणके धर्म हैं, प्राण और ताके धर्मनका ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवे नहीं, याते पिपासा की व्यवहारसत्ता है, मरुस्थलके जलका ब्रह्मज्ञान से बिनाही मरुस्थलके ज्ञानते बाध होनेते मरुस्थल के जलकी प्रातिभाससत्ता है। याते प्यास और मरुस्थलके जलकी समसत्ता नहीं होनेते ता जलते प्यासका नाश होवे नहीं। १-या प्रकारते दार्ष्टान्तविषे बाधक वेद, गुरु और बाध्य संसारदुःख तिनकी सत्ता एक है। २-दृष्टान्तविषे जल और प्यासकी सत्ताका भेद है, याते दृष्टान्त विषम कहिये दार्ष्टान्तके सम नहीं ॥ १४८ ॥

शंका--चौपाई।

ब्रह्मभिन्न मिथ्यासब भाखौ। तिनको भेदहेत कहिराखौ ॥
उपज्यो यहमोकूं सन्देहा। प्रभुताको अब कीजै छेहा १४६

हे प्रभु! ब्रह्म से भिन्न आप सबकूं मिथ्या कहोही तिन मिथ्यापदार्थ मं १-शुक्तिरूपा, रज्जुसर्प मरुस्थल

जल आदिकनका ब्रह्मज्ञानसे विना ही बाध, २-संसार दुःखका ब्रह्मज्ञानसे अनन्तर बाध यह भेद कौन हेतु से राखो हो ॥ १४९ ॥

उत्तर चौपाई।

सकलअविद्याकारजमिथ्या। शिषता मैं रञ्चकहु न तथ्या॥
जा अज्ञानसे उपजत जोई। ताके ज्ञान बाध तिहिं होई॥

हे शिष्य ! यद्यपि ब्रह्म से भिन्न सकल अविद्या का कार्य है याते मिथ्या है तामें रञ्चक भी तथ्या कहिये सत्य नहीं, परन्तु जाके अज्ञान से जो उपजै है ताके ज्ञान से तिसका बाध होवे है। १-शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकन के अज्ञानते रूपा सर्प जल आदि उपजैं हैं तिनका बाध शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकन के ज्ञानते होवे है। २-ब्रह्म के अज्ञान से जो जन्म मरणादिक संसार दुःख उपजैं हैं तिनका बाध ब्रह्मज्ञानते होवे है ॥ १५० ॥

शिष्य उवाच-दोहा।

भगवन ब्रह्म अज्ञानते, जो उपजै संसार।
सो किहिं क्रमते होत है, कहौ मोहिं निरधार ॥१५१॥

अर्थ-स्पष्ट है ॥ १५१ ॥

श्रीगुरुरुवाच-चौपाई।

जैसे स्वप्न होत विन क्रमते। त्यों मिथ्या जग भाषत भ्रमते॥
जो ताको क्रम जान्यो लोरै। सोमरुस्थलजल वसननिचोरै ॥

अर्थ-स्पष्ट है ॥ १५२ ॥

दोहा।

उपनिषदन में बहुत विधि, जग उत्पत्ति प्रकार।
अभिप्राय तिनको यही, चेतन भिन्न असार ॥१५३॥

यद्यपि उपनिषद् में जगत् की उत्पत्ति अनेक प्रकार से कही है, १-छान्दोग्यमें तो सद्रूप परमात्माते अग्नि, जल, पृथ्वी क्रमते उपजैं हैं यह कह्या है और तैत्तिरीय में आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी क्रमते होवे हैं। इस रीति से पाँच भूत की उत्पत्ति कही है। २-कहूँ सर्वकी परमेश्वर उत्पत्ति करे है, इस रीतिसे क्रमसे बिनाही उत्पत्ति कही है। ऐसे जगत्की उत्पत्ति वेदमें अनेक प्रकार से कही है। तहाँ वेद का यह अभिप्राय है:-जगत् मिथ्या है। जो जगत् कछु पदार्थ होता तो ताकी उत्पत्ति अनेक प्रकारसे वेद नहीं कहता। अनेक प्रकारसे जगत की उत्पत्ति कही है याते जगत् की उत्पत्ति प्रतिपादन में वेद का अभिप्राय नहीं। किन्तु अद्वैतब्रह्म लखावनेकूँ जगत् के निषेध करने वास्ते मिथ्या जगत् का किसी रीतिसे आरोप किया है। दृष्टान्त:जैसे विनोद के निमित्त दारुका हस्ती उड़ावने कूँ बनावे हैं ताके कान पूँछ टेढ़े होवे तो सूधे करने वास्ते यत्न नहीं करते। तैसे अद्वैतज्ञानके निमित्त प्रपञ्चके निषेधनकूँ प्रपञ्च का आरोप किया है। याते वेदने प्रपञ्चकी उत्पत्तिक्रम एकरूप कहनेमें यत्न नहीं किया प्रपंचकी उत्पत्ति एकरूपसे वेदने

नहीं कही याते यह जाने हैं-वेद का अभिप्राय प्रपञ्च निषेध में है ताकी उत्पत्ति में अभिप्राय नहीं ।

१-सूत्रकार भाष्यकारने द्वितीय अध्याय में उत्पत्ति कहनेवाले श्रुतिवचनका विरोध दूर करके जो एक रूप से तैत्तिरीय श्रुति के अनुसार उत्पत्तिमें सब उपनिषदन का अभिप्राय कह्या है सो मन्दजिज्ञासु के निमित्त कहया है जो उत्पत्तिवाक्यनते पूर्व कहे अभिप्रायकूँ नहीं जाने ता मन्द जिज्ञासुकूं उपनिषदन में नाना प्रकारसे जगत की उत्पत्ति देखिके आपसमें उपनिषदन का विरोध है। यह भ्रान्ति होय जावेगी ताके दूर करने कूँ सर्व उपनिषदनमें एकरूप से जगत की उत्पत्ति प्रतिपादन का प्रकार कह्या है। जाकूँ ब्रह्मविचार से यथार्थ ज्ञान नहीं होवे ताकूँ लयचिन्तनके निमित्त उत्पत्तिक्रम कहया है। जा क्रमते उत्पत्ति कही है तासे विपरीतक्रमते लयचिन्तन करे ता लयचिन्तन से अद्वैत में बुद्धि स्थित होवे है सो लयचिन्तन का प्रकार पञ्चीकरण में वार्तिकार सुरेश्वराचार्य ने कहया है। २—यह ग्रन्थ उत्तम जिज्ञासु के निमित्त है, याते जगतकी उत्पत्ति और लय का प्रकार नहीं लिखा और सागररूप है याते संक्षेपते दिखावे हैं, शुद्धब्रह्म से जगतकी उत्पत्ति होवे नहीं। काहेते ? शुद्ध ब्रह्म असङ्ग है और अक्रिय है। किन्तु मायाविशिष्ट जो ईश्वर तासे जगत की उत्पत्ति होवे है। याते

मयशान्त वाकी

माया और ईश्वर का स्वरूप प्रति पादन करें हैं ॥ १५३ ॥

पृथ्वी क्षेत्र

कवित्त।

जीव ईश भेद हीन चेतन स्वरूप माहिं,
माया सो अनादि एक शान्त ताहि मानिये।
सत औ असतते विलक्षण स्वरूप ताके,
ताहि को अविद्या और अज्ञानहूँ बखानिये ॥
चेतनसामान्य न विरोधी ताको साधक है,
वृत्तिमें आरूढ़ वा विरोधी वृत्ति जानिये।
मायामें आभास अधिष्ठान अरु माया मिल,
ईश सरवज्ञ जगहेतु पहिचानिये ॥ १५४ ॥

जीव ईश्वर भेदरहित जो शुद्ध चेतन ताके आश्रित माया है सो अनादि कहिये आदिरहित है। आदि नाम उत्पत्ति है। १-जो मायाकी उत्पत्ति अङ्गीकार करे तो माया के कार्य प्रपञ्च से तो पुत्र से पिता की न्याईं मायाकी उत्पत्ति बने नहीं। चेतनसे ही माया की उत्पत्ति माननी होवेगी। २-जीवभाव और ईश्वरभाव तो मायाके कार्य हैं मायाकी सिद्धि हुए बिना जीव ईश्वर का स्वरूप असिद्ध है याते जीवचेतन वा ईश्वरचेतन से माया की उत्पत्ति कहना असम्भव है। ३-शुद्ध चेतन असङ्ग है। अक्रिय है, निर्विकार है, याते माया की उत्पत्ति मानें विकारी होवेगा और शुद्धचेतन से मायाकी उत्पत्ति होवे

तो मोक्षदशाविषे माया फिर उपजेगी याते मोक्षनिमित्त साधन निष्फल होवेंगे, इस रीति से माया १-उत्पत्ति-रहित है याते अनादि है। २-एक है। ३-सान्त कहिये अन्तवाली है ज्ञानते माया का अन्त होवे है। ४-सत् असत् से विलक्षण है। जाका तिनि कालमें बाध होवे नहीं सो सत् कहिये है ऐसा चेतन है। माया का ज्ञानते बाध होवे है, याते सत् से विलक्षण है। जाकी तीन कालमें प्रतीति होवे नहीं सो शशशृङ्ग, वन्ध्यापुत्र आकाश फूल आदिक असत् कहिये हैं। ज्ञानसे पूर्व माया और ताका कार्य प्रतीति होवे है। जाग्रतविषे "मैं अज्ञानी हूँ, ब्रह्मकूँ नहीं जानूँ हूँ" इस रीति से माया प्रतीति होवे है और स्वप्न के विषे जो नाना पदार्थ प्रतीत होवे हैं तिन का उपादान कारण माया है।

सुषुप्तिसे अनन्तर अज्ञानकी इस रीति से स्मृति होवे है:-" मैं सुख से सोया कछु भी न जानता भया " सो स्मृति अज्ञातवस्तु की होवे नहीं, याते सुषुप्ति में अज्ञान का भान होवे है सो अज्ञान और माया एक ही है तिन का भेद नहीं। या प्रकारते तीनों अवस्था विषे मायाकी प्रतीति होवे है याते असतसे विलक्षण है इस रीति से सत् असत् से विलक्षण जो माया ताका कार्य भी सत् असत्से विलक्षण है। सत् असत् से विलक्षण कूँ ही अद्वैतमतमें मिथ्या कहे हैं और अनिर्वचनीय कहे हैं याते

माया और ताके कार्यते द्वैत की सिद्धि होवे नहीं। काहेते ? जैसे चेतन सद्रूप है तैसे माया और कार्य सद्रूप होवे तो द्वैत होवे सो माया और ताका कार्य सत् असत्से विलक्षण होनेते मिथ्या है मिथ्या पदार्थ से द्वैत होवे नहीं जैसे-स्वप्न के पदार्थ मिथ्या हैं तिनते द्वैत होवे नहीं।

१-जीव ईश्वरविभागरहित शुद्धब्रह्मके आश्रित मायाहै, २-शुद्ध ब्रह्मकूँ ही आच्छादन करे है, जैसे गेहके आश्रित अन्धकार गेहकूँ आच्छादन करे है या पक्षको स्वाश्रय स्वविषय पक्ष कहे हैं। १-स्व कहिये शुद्ध ब्रह्म ही आश्रय २-स्व कहिये शुद्ध ब्रह्मही विषय कहिये मायाते आच्छादित है। अर्थ-यह ढका है। संक्षेप शारीरिक विवरण, वेदान्त मुक्तावली, अद्वैतसिद्धि, अद्वैतदीपिका आदिक ग्रन्थ कारों ने स्वाश्रय स्वविषयही अज्ञान अङ्गीकार किया है।

वाचस्पति का यह मत है:-१-अज्ञान जीव के आश्रित है। २-ब्रह्मकूँ विषय करे है, १-"मैं अज्ञानी ब्रह्मकूँ नहीं जानूँ हूँ" या प्रतीति से " मैं " शब्द का अर्थ जीव ' अज्ञानी ' कहने ते अज्ञान का आश्रय भान होवे है २-'ब्रह्मकूँ नहीं जानूँ हूँ' याते अज्ञान का विषय ब्रह्म प्रतीति होवे है इस रीतिसे अज्ञान जीवके आश्रित और ब्रह्मकूं विषय कहिये आच्छादन करे है सो अज्ञान एक नहीं, किन्तु अनन्तहैं। काहेते ? एक जो अज्ञान माने तो

एक अज्ञानकी एक के ज्ञानते निवृत्ति हुयेते औरन कूं अज्ञान और ताका कार्य संसार प्रतीति नहीं हुआ चाहिये, २-जो ऐसे कहे हैं आजतक किसीकूँ ज्ञान हुआ नहीं तौ आगे भी किसीकूँ ज्ञान नहीं होवेगा। यातें श्रवणादिक साधन निष्फल होवेंगे याते अनन्त जीवन के आश्रित अनन्त अज्ञान मानने हैं जीवनके अनन्त अज्ञान कल्पित ईश्वर अनन्त और ब्रह्माण्ड अनन्त हैं, जो जीवकूँ ज्ञान होवे ताका अज्ञान ईश्वर ब्रह्माण्डकी निवृत्ति होवे है। जाकूँ ज्ञान नहीं होवे ताकूँ बँध रहे हैं। यह वाचस्पतिका मत है, सो समीचीन नहीं। काहेते १-'ईश्वर-जीव के अज्ञान से कल्पित है।' यह कहना श्रुति स्मृति पुराणते विरुद्ध है। २-ईश्वर अनन्त और जीव में सृष्टि का भेद यह भी विरुद्ध है। याते नाना अज्ञान मानने असङ्गत हैं और नाना अज्ञान मानिके ईश्वर और सृष्टि एक माने तो बने नहीं। काहेते? जीवईश्वरप्रपञ्च अज्ञानकल्पित है अनन्त अज्ञान मानेते, एक एक अज्ञान कल्पित जीवकी न्याईं ईश्वर और प्रपञ्च भी अनन्तही होवेंगे। याहीते वाचस्पति ने अनन्त ईश्वर और अनन्त सृष्टि कही हैं। याते अज्ञान एक है। यह मत समीचीन है।

सो एक अज्ञान भी जीवके आश्रित नहीं, किन्तु शुद्ध-ब्रह्मके आश्रित है, काहेते? १-जीवभाव अज्ञानका कार्य है। सो अज्ञान स्वतन्त्र कभी भी रहै नहीं, यातें निरा-

श्रय अज्ञान से तो जीवभाव बने नहीं, प्रथम किसी के आश्रित अज्ञान होवे तब अज्ञान का कार्य जीवभाव होवे। २-जीवपनेकी न्याईं ईश्वरता भी अज्ञान का कार्य है। ताके आश्रित भी अज्ञान नहीं, किन्तु शुद्ध ब्रह्म के आश्रित अनादि अज्ञान है। अनादि जो चेतन और अज्ञान तिनका सम्बन्ध भी अनादि चेतन ज्ञानके अनादि सम्बन्धसे जीव भाव ईश्वर भाव भी अनादि है परन्तु जीवभाव और ईश्वरभाव अज्ञान के अधीन हैं। याते अज्ञान का कार्य कहिये है। यद्यपि 'मैं अज्ञानीहूं' इस रीतिसे जीवके आश्रित अज्ञान प्रतीत होवे है तथापि शुद्धब्रह्म के आश्रित जो अज्ञान ताका जीव कूँ "मैं अज्ञानी हूँ' यह अभिमान होवे है, १-जीव अज्ञान का कार्य है याते अज्ञान का अधिष्ठानरूप आश्रय जीव बने नहीं, किन्तु शुद्धब्रह्म ही अज्ञान का अधिष्ठानरूप आश्रय है २-शुद्ध ब्रह्म अधिष्ठान के आश्रित जो अज्ञान सो ता ब्रह्मकूँ ही आच्छादान करे है तिसतें अनन्तर "मैं अज्ञानी हूँ' इस रीति से अज्ञान का अभिमानी रूप आश्रय जीव होवे है। या प्रकारते स्वाश्रय स्वविषय अज्ञान है।

सो अज्ञान यद्यपि एक है और ज्ञानते निवृत्ति होवे है परन्तु जा अन्तःकरणमें अज्ञान होवे ता अन्तःकरण अव-च्छिन्न चेतनमें स्थित जो अज्ञानका अंश ताकी निवृत्ति

ज्ञानसे होवे है सोई मुक्त होवे है। जा अन्तःकरणमें ज्ञान नहीं होवे तहाँ अज्ञानका अंश रहे है और बन्ध रहे है, या रीतिसे एक अज्ञानपक्षमें बन्धमोक्ष व्यवहार बने है। और किसीकूँ वाचस्पतिकी रीतिसे नाना अज्ञानवादही बुद्धि में प्रवेश होवे तो वह भी अद्वैतज्ञानका उपायहै ताके खण्डन में कछु आग्रह नहीं जिस रीतिसे जिज्ञासुकूँ अद्वैतबोध होवे तैसे बुद्धि की स्थिति करे, शुद्धब्रह्म के आश्रित जो माया ताकूँ अविद्या और अज्ञान कहे हैं। १-अचिंत्य शक्ति और युक्तिकूँ नहीं सहारे याते माया कहे हैं। २-विद्याते नाश होवे है, याते अविद्या कहेहैं। ३-स्वरूप का आच्छादन करेहै, याते अज्ञान कहेहैं १-जा चेतनके आश्रित है सो सामान्य चेतनताका विरोधी नहीं किन्तु सामान्य चेतन माया का साधक है, सत्तास्फुरण देवे है। २-वृत्तिमें आरूढ़ कहिये स्थित सो अथवा चेतनसहित वृत्ति ताकी विरोधी जानिये। कवित्त के तीनिपादनते माया का स्वरूप कहा।

"माया में आभास" इत्यादि चतुर्थ पादसे ईश्वरका स्वरूप कहेहैं १-शुद्धसत्त्वगुणसहित माया, २-माया का अधिष्ठान चेतन, ३-मायामें आभास; तीनों मिले ईश्वर कहिये है। सो ईश्वर सर्वज्ञ है। सोई जगतका हेतु कहिये कारण है। कारण दो प्रकारका होवेहै-एक तो उपादान कारण होवेहै, २-निमित्तकारण होवे है। जाका कार्य के

स्वरूपमें प्रवेश होवे और जा बिन कार्यकी स्थिति होवे नहीं सो उपादानकारण कहिये है। जैसे मृत्तिका घटका उपादानकारण है। घटके स्वरूप में ताका प्रवेश है और मृत्तिका बिना घटकी स्थिति नहीं। जाके स्वरूप में प्रवेश नहीं किन्तु कार्यकूं भिन्न स्थित होयके करे और ताके नाशते कार्य बिगरे नहीं सो निमित्त कारण कहिये है। जैसे–घटके कुलाल दण्डचक्र आदिक निमित्त कारण हैं। घटके स्वरूप में तिनका प्रवेश नहीं घट से भिन्न कहिये किनारे स्थित होयके घटकी उत्पत्ति करे है और उत्पत्ति हुये पीछे कुलाल दण्ड चक्र आदिकन के नाशते घट बिगरे नहीं। इस रीतिसे उपादान और निमित्त दो प्रकार का कारण होवे है।

जगत्का उपादान और निमित्त दोनों प्रकारते ईश्वर ही कारण है। एकही मकरी जाले का उपादान कारण और निमित्त कारण है और जो ऐसे कहैं १-मकरी के जड़शरीर जालेका उपादानकारण २-मकरीके शरीर में जो चेतनभाग सो निमित्तकारण है याते एक ईश्वर को निमित्तकारण और उपादानकारण माननेमें कोई दृष्टान्त नहीं तो मकरीके न्याई १-ईश्वर का शरीर जड़ माया जगत्का उपादान कारण २-चेतनभाग निमित्त कारण इस रीतिसे एकही ईश्वर जगत्का उपादान और निमित्त कारणहै तामें मकरीका दृष्टान्त और मुख्य दृष्टान्त स्वप्न

है। १-जा समय जीवन के कर्मफल देने को सन्मुख नहीं होवे तब प्रलय होवे है। २-जीवन के कर्म फल देने को सन्मुख होवे तब सृष्टि होवे है। इस रीति से जोवकर्म के अधीन सृष्टि है याते जीव का स्वरूप कहे हैं ॥ १५४ ॥

दोहा।

मलिन सत्त्व अज्ञान में, जो चेतन आभास।
अधिष्ठानयुत जीव सो, करत कर्मफल आस ॥१५५॥

१-रजोगुण तमोगुणकूं दाबि लेवे सो शुद्धसत्त्वगुण कहिये है। २-रजोगुण तमोगुण से आप दबै सो मलिन सत्त्वगुण कहिये है। १-मलिनसत्त्वगुण सहित अज्ञान के अंशमें जो चेतनका आभास। २--अज्ञान और ३--ताका अधिष्ठान कूटस्थ, तीनों मिले जीव कहिये है। सो जीव कर्म करे है और फलकी आश करे है।

ता जीव के कर्मन के अनुसार ऊँच नीच भोग के निमित्त ईश्वर सृष्टि रचे है याते ईश्वर में विषम दृष्टि और क्रूरता नहीं और जो ऐसे कहैं-सब से प्रथम सृष्टि में पूर्व कर्म नहीं और प्रथम सृष्टिमें ऊँच नीच शरीर और भोग ईश्वर रचे हैं याते ईश्वर विषमदृष्टि है। सो बने नहीं। काहेते? संसार अनादि है। उत्तर २ सृष्टि में पूर्व पूर्व सृष्टि के कर्म हेतु हैं सबसे प्रथम कोई सृष्टि नहीं याते ईश्वर में दोष नहीं ॥ १५५ ॥

कवित्त।

जीवन के पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार ईश,
इच्छा होय जीव भोग जग उपजाइये।
नभ वायु तेज जल भूमि भूत रचे तहाँ,
शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध गुण गाइये॥
सत्त्व अंश पञ्चनको मेलि उपजत सत्त्व,
रजोगुण अंश मिलि त्यों उपाइये।
एक एक भूत सत्त्व अंश ज्ञानइन्द्रि रचै,
कर्मइन्द्रिय रजोगुण अंशते लगाइये॥ १५६॥

१-जब जीवन के कर्म भोग देनेसे उदासीन होवे तब प्रलय होवे है। प्रलय में सर्व पदार्थनके संस्कार माया में रहे हैं याते जीवन के कर्म भी जो बाकी रहे थे सो सूक्ष्म होय के माया में रहे हैं। २--जब कर्म भोग देने कूँ सन्मुख होवें, तब ईश्वर कूँ यह इच्छा होवे है "जीवन के भोगनिमित्त जगत् उपजाइये।"

ऐसी ईश्वरकी इच्छाते माया तमोगुण प्रधान होवे है ता तमोगुण प्रधान मायाते नभ, वायु, तेज जल भूमि ये पञ्चभूत रचे जावे हैं। तिनभूतनमें क्रमते शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध ये पाँच गुण होवें हैं। १-मायाते शब्द-सहित आकाश की उत्पत्ति २-आकाशते वायुकी उत्पत्ति वायु आकाशका कार्य है, याते आकाश का शब्द गुण वायुमें होवे है, अपना गुण स्पर्श होवे है। ३-वायुते

तेजकी उत्पत्ति और तेज में आकाश का शब्द, वायु का स्पर्श होवे है, अपना रूप होवे है। ४-तेजते जल की उत्पत्ति, आकाशका शब्द, वायु का स्पर्श, तेजका रूप जल में होवे है। अपना रस होवे है। ५-जलसे पृथ्वी की उत्पत्ति और आकाश का शब्द, वायुका स्पर्श तेज का रूप, जलका रस, पृथ्वी में होवे है, पृथ्वी का गन्ध होवे है। १-आकाशमें प्रतिध्वनिरूप शब्द है। २-"वायु में सीसीशब्द और उष्णशीत कठिनते विलक्षण स्पर्श है। ३-अग्निरूप तेजमें, भुकभुकशब्द और उष्ण स्पर्श और प्रकाश रूप है, ४-जल में चुल चुल शब्द शीत स्पर्श शुक्लरूप, मधुररस है। क्षार तथा कटु पृथ्वीके सम्बन्धसे जल प्रतीत होवे है जलका रस मधुरही है। सो मधुरता हरीत की आदिक भक्षण करके जलपान कियेते प्रगट होवे है ५-पृथ्वी में कट कट शब्द उष्णशीत से विलक्षण कठिन स्पर्श है। श्वेत, नील, पीत, रक्त, हरित आदि रूप हैं। मधुर, अम्ल, क्षार, कटु, कषाय तिक्त रस हैं, सुगन्ध और दुर्गन्ध दोप्रकारका गन्धहै, इस रीति से १-आकाश में एक, २-वायु में दोय, ३-तेजमें तीन, ४--जलमें चारि, ५-पृथ्वी में पाञ्चगुण हैं। तिनमें एक एक अपना है अधिक कारणके हैं और सर्व का मूल-कारण ईश्वर है। तामें माया और चेतन दो भाग हैं, १-मिथ्यापना माया का भाग है। २-सत्तास्फूर्ति सर्व-

भूतन में चेतन का भाग है। कवित्त के दो दादका यह अर्थ है।

पञ्चभूतनका सत्वगुण अंश मिलके सत्त्व कहिये अन्तःकरण कूँ उपजावे है। अन्तःकरण ज्ञानका हेतु है और ज्ञानकी उत्पत्ति सत्त्वगुणते अङ्गीकार करी है,याते अन्तःकरण भूतन के सत्त्वगुण का कार्य है और पंचभूतन के कार्य पंचज्ञान इन्द्रिय तिन सबका सहायक है। याते पंच भूतन के मिले सत्त्वगुणते अन्तःकरण की उत्पत्ति कही है। १-देहके अन्तर कहिये भीतर है और करण कहिये ज्ञानका साधनहै याते अन्तःकरण कहिये है। २-भूतनके सत्त्वगुण का कार्यहै, याते अन्तःकरणका सत्वभी नामहै।

अन्तःकरण का जो परिणाम ताको वृत्ति कहे हैं सो अन्तःकरणकी वृत्ति चारिहैं। १-पदार्थके भले बुरे स्वरूप कूं निश्चय करने वाली वृत्ति बुद्धि कहिये है। २-सङ्कल्प विकल्प वृत्ति मन कहिये है। ३-चिन्तावृत्ति चित्त कहिये है। "अहं" ऐसी अभिमानवृत्ति अहङ्कार कहिये है। पञ्चभूतनके मिले रजोगुण अंशते प्राणकी उत्पत्ति होवे है, सो प्राण क्रियाभेदते और स्थान भेदते पाँच प्रकार का है। १-जाका हृदयस्थान और क्षुधा, पिपासा, क्रिया सो प्राण कहिये है। २-जाका गुदस्थान मूत्रमल अधोनयन क्रिया सो अपान। ३-जाका नाभिस्थान और भुक्तपीत अन्न जलकूं पाचन योग्य सम करनेकी क्रिया

सो समान । ४–जाका कण्ठस्थान और श्वास क्रिया, सो उदान, ५–जाका सर्वशरीर स्थान रसमेलन क्रिया, सो व्यान और कहूँ नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, पंचप्राण अधिक कहे हैं । तिनकी उद्गार, निमेष, छींक, जम्भाई, मृतशरीरफुलावन ये क्रमतें क्रिया कही हैं । पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पञ्चन के रजोगुण अंशते एकएककी क्रमते उत्पत्ति कही है और अपान, समान, प्राण, उदान, व्यान इनकी भी पृथ्वी आदिक एकएकके रजोगुण अंशते उत्पत्ति कही है । सबके मिले रजोगुण अंशते नहीं परन्तु अद्वैत सिद्धान्तमें यह प्रक्रिया नहीं । काहेते ? विद्यारण्य स्वामी ने तथा पञ्चीकरण में वार्तिककारने सूक्ष्मशरीरमें और पञ्चकोशनमें नाग, कूर्म आदिकन का ग्रहण किया नहीं और तिनमें अपान आदिक पञ्चप्राणकी उत्पत्ति भी भूतनके मिले रजोगुण अंशते कहीहै, याते १–एक एकके रजोगुण अंशतें अपान आदिकनकी उत्पत्ति कथन असङ्गतहै । २–सूक्ष्मशरीर में नाग कूर्म आदिकनका ग्रहण असङ्गतहै, पञ्चप्राण काहो सूक्ष्मशरीर में ग्रहण है । प्राण विक्षेपरूप हैं और विक्षेप स्वभाव रजोगुण का है, याते भूतन के रजोगुण अंशते प्राणकी उत्पत्ति कही है । यह तृतीयपाद का अर्थ है ।

१–एकएक भूत का सत्त्वगुण अंश पंच ज्ञान इन्द्रिय रचे हैं । २–एक एक का रजोगुण अंश एकएक कर्म

इन्द्रिय रचे हैं। १-आकाशके सत्त्वगुणते श्रोत्र, २-वायुके सत्त्वगुण अंशते त्वक्, ३-तेजके सत्त्वगुण अंशते नेत्र. ४-जल के सत्त्वगुण अंशते रसना, ५-पृथ्वी के सत्त्वगुण अंशते घ्राण होवे है। ये पंचेन्द्रिय ज्ञानके साधनहैं। यातें ज्ञानेन्द्रिय कहिये हैं और ज्ञान सत्त्वगुणते होवे है, यातें भूतनके सत्त्वगुणतें उत्पत्ति कही है। श्रोत्रेन्द्रिय आकाश के गुणको ग्रहण करे है। यातें श्रोत्रेन्द्रियकी आकाशतें उत्पत्ति कही तैसे जा भूत के गुणको जो इन्द्रिय ग्रहण करे ता भूतसे ता इन्द्रिय की उत्पत्ति कही है।

१-आकाशके रजोगुण अंशते वाकइन्द्रिय की उत्पत्ति २-वायुके रजोगुण अंशते पाणिकी, ३-तेजके रजोगुण अंशते पादकी, ४-जल के रजोगुण अंशतें उपस्थ की ५-पृथ्वीके रजोगुण अंशते गुदा की उत्पत्ति होवे है। स्त्री की योनि और पुरुष के मेढ़ में जो विषयानन्द का साधन इन्द्रिय सो उपस्थ कहिये है। कर्म नाम क्रियाका है, ये पाँच इन्द्रिय क्रियाके साधन हैं। यातें कर्मेन्द्रिय कहिये हैं क्रिया रजोगुणते होवे है, यातें भूतन के रजोगुण अंशते इनकी उत्पत्ति कही है॥ १५६॥

सवैया छन्द।

भूत अपंचीकृत औ कारज, इतनी सूक्ष्म सृष्टि पिछान।
पंचीकृत भूतनतें उपज्यो, स्थूल पसारो सारो मान॥
कारण सूक्ष्म स्थूल देह अरु, पंचकोश इनही में जान।

करिविवेकलखि आतमन्यारो,मुञ्जइषीकातेज्योभान॥५७॥

अपंचीकृत भूत और तिनका कार्य अन्तःकरण प्राण कर्मइन्द्रिय, ज्ञानइन्द्रिय, इतनी सूक्ष्मदृष्टि कहियेहै, सूक्ष्म दृष्टिका ज्ञान इन्द्रियते होवे नहीं। नेत्र नासिकादिक गोलक तो इन्द्रियनके विषय हैं, परन्तु तिन गोलकन में स्थित जो इन्द्रिय जो सो काहू इन्द्रियन के विषय नहीं सूक्ष्मसृष्टिकी उत्पत्ति से अनन्तर ईश्वर की इच्छाते स्थूल दृष्टिके निमित्त भूतन का पंचीकरण होता भया।

पंचीकरण दो भाँति से कहा है। १-एक एक भूतके दोदो भाग सम होयके एक एक भाग के चारि २ भाग भये, पाँचभूतनका आधा आधा भाग प्रथम ज्यों का त्यों रहा है, आधे २ भागके जो चार चार भाग सो पृथक् रहे। बड़े अर्धभागनमें अपने २ भागकूँ छोड़ि के मिलते अर्धभाग सब भूतनमें अपना और अर्धभाग आने से इतर च्यारि भूतन का मिलिके पंचीकरण कहावे है।

२-दूसरा यह प्रकार है, एक एक भूतके दो दो भाग भये सो सम नहीं, किन्तु एक भाग चार अंश का और पंचम अंशका एक भाग इस रीतिसे न्यून अधिक दो दो भाग भये तिन में सबके अधिक भाग ज्यों के त्यों पृथक् स्थित रहे और पंचमभूतके न्यून जो पंच भाग। तिनके एक एक भाग के पंच पंच भाग करके पृथक् स्थित, अधिक पंचभागनमें एकएक भाग के मिलि पंची करण

होवे है। १-प्रथमपक्ष में भागके चार भाग पृथक् रहे, आधे आधे भागनमें अपने भागकूँ छोड़के मिले। २-दूसरे पक्षमे न्यून भागके पञ्च भाग पृथक् रहें। अधिक पंचभागनमें अपने भागसहितमें मिले। १-प्रथमपक्ष में पंचीकृत भूतन में अपना अंश अर्ध और अर्ध अंश औरन का २-दूसरे पक्षमें पचीकरण किये ते अपने अंश इक्कीस औरन के अंश चार और दूसरे पक्षकी सुगमरीति यह है, एक एक भूत के पचीस पचीस भाग होयँ। इकीस इक्कीस भाग और चार चार भाग पृथक् भये चार चार भागनमें से एक एक भाग इकीस इक्कीस भागनमें मिले अपने इक्कीस भागनकूँ छोड़िके, इस रीतिसे दो प्रकार का पंचीकरण कहा है। एक एक भूतमें पाँच-पाँच भूत मिलाय के करने का नाम पंचीकरण है। जिन भूतनका पंचीकरण किया है तिनकूँ पंचीकृत कहैं हैं।

तिन पंचीकृत भूतनते १-इन्द्रियन का विषय स्थूल ब्रह्माण्ड होता भया। २-ता ब्रह्मांडके अन्तर, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक ये सातभुवन ऊपरके होत भये। ३-अतल, सुतल, पाताल वितल, रसातल, तलातल, महातल ये सात लोक नीचे के होते भये। ४—तिन चतुर्दशलोकन में जीवन के भोगयोग्य अन्नादिक और भोगका स्थान देव मनुष्य पशु आदि स्थूलशरीर होते भये। यह संक्षेपते सृष्टि का

निरूपण किया और मायाके कार्यका विस्तार से निरूपण किये ते कोटि ब्रह्मा की उमरते भी माया कृत पदार्थ निरूपणका अन्त होवे नहीं, यह वाल्मीकि ने अनेक इतिहासनते वाशिष्ठ में निरूपण किया है। यह सवैया के दो पादन का अर्थ है।

तृतीयपाद का अर्थ यह है:-इनही में कहिये माया और ताके कार्यमें तीन शरीर और पंचकोश हैं। १-शुद्ध सत्त्वगुणसहित माया ईश्वरका कारणशरीर है और मलिनसत्त्वगुणसहित अविद्या अंश जीवका कारणशरीर है। २-उत्तर शरीरके आरम्भक पञ्च सूक्ष्मभूत, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, पंचप्राण, पंचकर्म इन्द्रिय, पंचज्ञान इन्द्रिय जीव का सूक्ष्मशरीर है और सर्व जीवन के सूक्ष्म शरीरही मिलिके ईश्वरका सूक्ष्मशरीर है। ३-सम्पूर्ण स्थूल ब्रह्मांड ईश्वरका स्थूलशरीर है और जीवन के व्यष्टिस्थूल शरीर प्रसिद्ध हैं। इन तीनि शरीरनमें ही पंचकोश हैं। १-कारणशरीरकूँ आनन्दमयकोश कहै हैं। विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय, तीनि कोश सूक्ष्मशरीर में हैं पञ्चज्ञानेन्द्रिय और निश्चयरूप अन्तःकरणकी वृत्तिबुद्धि विज्ञानमयकोश कहिये हैं। पंचज्ञानइन्द्रिय और सङ्कल्प विकल्प अन्तःकरणकी वृत्ति मन, मनोमयकोश कहिये है। पंचप्राण और पंचकर्मेन्द्रिय प्राण मयकोश है। ५-स्थूल शरीरको अन्नमयकोश कहेहैं। इस रीतिसे तीनि शरीर-

नमें ही पाँच कोश हैं। १—ईश्वरके शरीर में ईश्वर के कोश हैं। २--जीवके शरीरन में जीवके कोश हैं। कोश नाम म्यानका है। म्यानकी न्याईं पञ्चकोश आत्मा के स्वरूप कूँ आच्छादन करे हैं याते अन्नमयादिक कोश कहिये हैं। अनेक मन्दमति पुरुष पञ्चकोशनमें जो अनात्मपदार्थ है, तिनमें किसी एककूँ आत्मा मानि के मुख्य साक्षी आत्मस्वरूपते विमुखही रहे है। याते अन्नमयादिक आत्मस्वरूपको आच्छादन करे हैं।

तहाँ कितने पामर विरोचन मतके अनुसारी स्थूल शरीररूप अन्नमय कोशको ही आत्मा कहे हैं। और यह युक्ति कहे हैं। १-जामें अहंबुद्धि होवे सो आत्मा है सो अहंबुद्धि स्थूलशरीर में होवे है, मैं मनुष्य हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ। ऐसी प्रतीति सर्वको होवे है और मनुष्यपना, ब्राह्मणपना स्थूल शरीर में है याते स्थूल शरीर ही अहं बुद्धि का विषय होनेते आत्मा है। २-किम्वा जामें मुख्य प्रीति होवे सो आत्मा है स्त्री, पुत्र, धन, पशु आदिक स्थूल शरीरके उपकारक होवे तो तिनमें प्रीति होवे है और स्थूलशरीर के उपकारक नहीं होवे तो प्रीति होवे नहीं जाके निमित्त अन्यपदार्थनमें प्रीति होवे ता स्थूल शरीर में ही मुख्य प्रीति है याते स्थूलशरीर ही आत्मा है ता स्थूलशरीर का वस्त्र, भूषण अञ्जन, मञ्जन, नाना विध

भोजनसे शृङ्गार पोषण ही परम पुरुषार्थ है यह असुर स्वामी विरोचन का सिद्धान्त है।

कोऊ ऐसे कहे हैं-स्थूल शरीर ही आत्मा नहीं किन्तु १-स्थूल शरीर में जाके होनेते जीवन व्यवहार होवे है और जाके नहीं होनेते मरण व्यवहार होवे है तो आत्मा स्थूलशरीर से भिन्न है जीवन मरण इन्द्रिय के अधीन है, जितने काल शरीरमें इन्द्रिय होवे उतने काल जीवन है और कोऊ इन्द्रिय न होवे तब मरण कहिये है और 'मैं देखूं हूं' 'मैं सुनूँ हूँ' 'मैं बोलूँ हूँ' इस रीतिसे अहं-बुद्धि भी इन्द्रियनमें होवे है, याते इन्द्रिय ही आत्मा है।

हिरण्यगर्भ के उपासक प्राण कूँ आत्मा कहे हैं तामें यह युक्ति कहे हैं-जब मरण समय मूर्छा होवे है तब ताके सम्बन्धी पुत्रादिक प्राण शेष होवे तो जीवन जाने हैं और प्राण शेष न होवें तो मरण जाने हैं २-किम्वा शरीरमें नेत्रइन्द्रिय नहीं होवे तो अन्धाशरीर रहेहै, श्रोत्र से बिना बधिर रहे है। वाक बिना मूक रहे है। ऐसे जो इंद्रिय नहीं होवे ताके व्यापारसे बिना भी शरीर स्थित ही रहे और प्राण से बिना तिसीक्षण में श्मशान के समान अमङ्गल भयङ्कर होय के गिरे है। ३—"मैं देखूं हूँ", 'सुनूँ हूँ' या प्रतीति से भी इन्द्रियनते भिन्न ही आत्मा सिद्ध होवे है। काहेते? नेत्र स्वरूप "मैं देखूं हूँ' श्रवण-स्वरूप 'मैं सुनूँ हूँ' जो ऐसी प्रतीति होवे तो इन्द्रिय

रूप आत्मा सिद्ध होवे किन्तु 'मैं नेत्र वाला देखूं हूं, श्रोत्रवाला मैं सुनूँ हूं' ऐसी प्रतीति होवे है। याते इन्द्रियनते भिन्नही आत्मा है ४-सुषुप्ति में सर्व इन्द्रियन का अभाव है तो भी प्राणके होनेते जीवनव्यवहार होवे है, याते जीवन मरण भी इन्द्रियन के अधीन नहीं किन्तु स्थूल शरीर और प्राण के वियोग को मरण कहे हैं। याते जीवन मरण प्राण के ही आधीन हैं, सोई आत्मा है।

कोई ऐसे कहे हैं:—१—प्राण जड़ है, याते घट की न्याईं अनात्मा है। २-बन्ध मोक्ष मनके आधीनहैं विषयमें आसक्त जो मन सो बन्धनका हेतु है, विषय वासना रहित मन मोक्षका हेतु है। ३-मनके सम्बन्धते ही इन्द्रिय ज्ञानके हेतु हैं। मनके सम्बन्ध विना इन्द्रियनते ज्ञान होवे नहीं याते सर्व व्यवहार का हेतु मन है सोई आत्मा है।

क्षणिकविज्ञानवादी बौद्ध यह कहे हैं-मन का व्यापार बुद्धि के अधीन है, काहेते? बुद्धिका ही आकार मन होवे है, याते क्षणिक विज्ञानरूप बुद्धिही आत्मा है मन नहीं, यह तिनका अभिप्राय है:-१-सम्पूर्ण पदार्थ विज्ञानकेही आकार हैं। २-सो विज्ञान प्रकाश रूप है ३-क्षणक्षण में विज्ञान के उत्पत्ति नाश होवे हैं, पूर्व विज्ञानके समान अन्य विज्ञान की उत्पत्ति हुयेते पूर्वविज्ञान का नाश होवे है। तैसे तृतीय विज्ञान की उत्पत्ति और द्वितीय विज्ञान का नाश, चतुर्थ की उत्पत्ति, तृतीय का नाश होवे है। या

रीति से नदीके प्रवाहकी न्याईं विज्ञान की धारा बनी रहै। सो विज्ञानकी धारा दो प्रकारकी है। १-एक तो आलयविज्ञान धारा है और दूसरी प्रवृत्तिविज्ञानधारा है। १-'अहं, अहं' ऐसी विज्ञानधाराकूँ आलयविज्ञानधारा कहे हैं। ताहीकूँ बुद्धि कहे हैं। २—'यह घटहै, यह शरीर है' ऐसी विज्ञानधाराकूं प्रवृत्ति ज्ञान धारा कहै हैं, आलयविज्ञान धारा से प्रवृत्ति विज्ञान धारा की उत्पत्ति होवे है, मनका स्वरूप भी प्रवृत्ति विज्ञान धारा में है याते आलयविज्ञान धारारूप बुद्धि का कार्य है सो बुद्धि ही आत्माहै आलयविज्ञानधाराविषे प्रवृत्तिविज्ञानधाराका बाधचिन्तनतें निर्विशेषच्च एक विज्ञानधाराकी स्थिति ही तिनके मतमें मोक्ष है। इस रीति से विज्ञानवादी बुद्धिकूँ ही क्षणिक रूप और स्वयं प्रकाश रूप कल्पना करके आत्मा कहे हैं और पूर्वमीमांसा का वार्तिक कार भट्ट यह कहै हैं, विद्युत् की न्याईं क्षणिकरूप आत्मा नहीं, किन्तु स्थिरस्वरूप आत्मा है। १-जड़स्वरूप २-चेतन-रूप है, यह ताका अभिप्राय है। १-सुषुप्ति से जागिके पुरुष यह कहै हैं, 'मैं जड़ होयके सोवता भया' याते आत्मा जड़रूप है। २-ज्ञान की स्मृति होवेहै। अज्ञात की स्मृति होवे नहीं। आत्म स्वरूप से भिन्न ज्ञान के सुषुप्तिमें और साधन नहीं। याते स्मृतिका हेतु सुषुप्ति में ज्ञान है सो आत्माका स्वरूप ही है इस रीति से खद्योत

की न्याईं आत्मा प्रकाश और अप्रकाश रूप है। १-ज्ञानरूप है, याते प्रकाशरूप है, २-जड़ है, याते अप्रकाशरूप है। सो प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप आनंदमयकोश है। काहेते? सुषुप्ति में चेतन के आभास सहित जो अज्ञान ताकूँ आनन्दमयकोश कहे हैं। तहाँ आभास तौ प्रकाशरूप और अज्ञान अप्रकाशरूप है। याते भट्ट के मत में आनन्दमय कोश ही आत्मा है।

शून्यवादी बौद्ध यह कहे हैं आत्मा निरंश है, याते एक आत्मा को प्रकाशरूप और अप्रकाश, रूप कहना बने नहीं और खद्योत का तो एक अंश प्रकाशरूप है और दूसरा अंश अप्रकाशरूप है, ताकी न्याईं अंशरहित आत्माविषे उभयरूप कहना असङ्गत है। याते १-उभयरूप की सिद्धि वास्ते आत्मा अंश सहित ही मानना होवेगा। २-अंश वाले पदार्थ घटादिक हैं सो उत्पत्ति और नाश वाले होवे हैं, तैसे आत्मा भी अंशसहित होनेते उत्पत्ति नाशवाला ही मानना होवेगा। १-जो उत्पत्ति नाशवाला पदार्थ हो सो उत्पत्ति से पूर्व और नाशते अनन्तर असत् होवे है, जो आदि अन्त में असत् होवे सो मध्य में भी सत् होवे नहीं, किन्तु मध्य में भी असत्‌ही होवे है, याते आत्मा असत्‌रूप है। २-तैसे आत्मासे भिन्न भी सम्पूर्ण पदार्थ उत्पत्ति नाश वाले हैं याते असत्‌रूप हैं। इस रीति से आत्मा और अनात्मा

समग्र वस्तु असद्रूप होनेते शून्य ही परमतत्व है, यह शून्यवादी माध्यमिकबौद्धका मत है सो भी अज्ञान रूप आनन्दमय कोशको प्रतिपादन करे है। काहेते? अज्ञान तीनिरूपसे प्रतीत होवे है। १-अद्वैत शास्त्र के संस्कार रहित जो मूढ, तिनको तो जगत्रूप परिणाम कूँ प्राप्त अज्ञान सत्य प्रतीत होवे है। २-अद्वैतशास्त्र के अनुसार युक्तिनिपुण पण्डितनकूँ सत् असत्से विलक्षण अनिर्वच-नीयरूप अज्ञान और ताका कार्य जगत् प्रतीत होवे है, ३—ज्ञाननिष्ठा कूँ प्राप्त जो जीवन मुक्त विद्वान् तिनकूँ कार्य सहित अज्ञान तुच्छरूप प्रतीत होवे है। तुच्छ, असत्, शून्य ये तीन शब्द एकही अर्थ कूँ कहे हैं इस रीति से जीवन मुक्तनकूँ तुच्छ रूप जो प्रतीति होवे अज्ञान ताके विषे मोहित शून्य वादी परम पुरुषार्थ कूँ नहीं जाने हैं, किन्तु तुच्छ रूप आनन्दमय कोशकूँ ही आत्मा कहें हैं।

पूर्वमीमांसा का एकदेशी प्रभाकर और नैयायिक यह कहें हैं-आत्मा शून्यरूप नहीं। काहेते? जो शून्य रूप आत्मा मानें ताकूँ यह पूछे हैं १-शून्यरूप का तैंने अनुभव किया है। २-अथवा नहीं? १-जो कहें शून्यका अनुभव किया है तो जाने शून्यका अनुभव किया है सो आत्मा शून्य से विलक्षण सिद्ध होवे हैं। २—जो ऐसे कहें, शून्यरूप का अनुभव नहीं किया तो शून्य

नहीं है, यह सिद्ध हुआ और इस रीति से शून्यते विलक्षण आत्मा हैं। १-ताके विषे मनके संयोगसे ज्ञान होवे है। २-ता ज्ञानगुणते आत्मा चेतन कहिये है। ३-स्वरूप से आत्मा जड़ है। ४-तैसे सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष प्रयत्न, धर्म, अधर्म आदिक गुण आत्माविषे है। तिनके मतमें भी आनन्दमयकोश ही आत्मा है और विज्ञान मय कोश में जो बुद्धि है सो आत्मा का ज्ञान गुण कहे है, काहेते? आनन्दमयकोश में चेतनगूढ़ है। विवेकहीन कूँ प्रतीत होवे नहीं और प्रभाकर तथा नैयायिक आत्माकूँ सुषुप्तिमें ज्ञानहीन मानिके स्वरूप से जड़ कहे हैं याते गूढ़चेतन आनन्दमयकोश में ही तिनकूँ आत्मभ्रान्ति है और आत्मस्वरूप नित्य ज्ञान कूँ तो जीव में माने नहीं किन्तु अनित्यज्ञान माने हैं। सो अनित्य ज्ञान सिद्धान्त में अन्तःकरणकी वृत्ति बुद्धिरूप है। या रीतिसे प्रभाकार नैयायिक मतमें आनन्दमयकोश आत्मा है और बुद्धि ताका गुण है, तिनका मत भी समीचीन नहीं। काहेते? १-ज्ञानसे भिन्न जो जड़ वस्तु घटादिक हैं सो अनित्य हैं तैसे आत्मा भी ज्ञानस्वरूप नहीं होवे तो घटादिकन की न्याईं जड़ होनेते अनित्य होवेगा। २-जो आत्मा अनित्य होवे तो मोक्षके अर्थ साधन निष्फल होवेगा। इस रीतिसे वेदान्तवाक्यनमें विश्वासहीन अनेक बहिर्मुख पञ्चकोशनमें ही किसी पदार्थ कूँ आत्मा माने हैं और

मुख्य आत्मास्वरूप साक्षीकूँ नहीं जाने हैं याते अन्नमयादिक आत्मा के आच्छादक होनेते कोश कहिये हैं।

जैसे जीवके पंचकोश जीवके यथार्थ स्वरूप साक्षीकूँ आच्छादन करे हैं। तैसे ईश्वर के समष्टिपञ्चकोश ईश्वर के यथार्थ स्वरूपकूँ आच्छादन करे हैं, काहेते? ईश्वर का यथार्थ स्वरूप तो तत्पदका लक्ष्य है ताकूँ त्यागि के १-कोई तो मायारूप आनन्द मयकोश विशिष्ट जो अन्तर्यामीतत्पद्का वाच्य ताकूँ ही परमतत्त्व कहे हैं। २-तैसे हिरण्यगर्भ, वैश्वानर, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गणेश, देवी, सूर्यसे आदि लेके असि, कुदाल, पीपल, अर्क, वंश पर्यन्त पदार्थनमें परमात्मा भ्रान्ति करे हैं यद्यपि सब पदार्थनमें लक्ष्यभाग परमात्मासे भिन्न नहीं, तथापि तिस तिस उपाधिसहितकूँ जो परमात्मा माने हैं सो तिनकूँ भ्रान्ति है। या रीतिसे १-पञ्चकोशनते आवृत जो जीव ईश्वरका परमार्थ स्वरूप तासे विमुख होय के देहादिकन में आत्माभ्रान्ति करके पुण्य पाप कर्म करे है। २-अन्तर्यामीसे आदि लेके वंशपर्यन्तकूँ ईश्वर स्वरूप मानिके आराधन करके सुख चाहे हैं। जैसे उपाधिका आराधन करे हैं ताके अनुसार ही तिनकूँ फल होवे है। काहेते? कारण सूक्ष्म स्थूलप्रपञ्च सारा ईश्वर के तीनि शरीरनके अन्तर्भूत है तामें उपासना के अनुसार फलभी सर्वसे ही होवे है परन्तु ब्रह्मज्ञान विना मोक्ष होवे नहीं।

जो मोक्षकी इच्छा होवे तो विवेकते जीव ईश्वरके स्वरूप कूँ पञ्चकोशनते पृथक् करे। दृष्टान्तः—जैसे मुञ्ज और इषीका कहिये तूली मिली होवे है, तिनकूँ तोरिके पृथक् करे हैं, तैसे विवेकते जीव ईश्वरके स्वरूपकूँ पञ्चकोशनतें पृथक् जाने यह सवैया का अर्थ है। सो विवेक का प्रकार दिखावे हैं ॥ १५७ ॥

❀ सवैया ❀

स्थूलदेहको भान न होवे, स्वप्नमांहि लखि आतम ज्ञान।
सूक्ष्मज्ञान सुषुप्ति सबै नहिं,सुखस्वरूप ह्वै आतम भान॥
भासै भये समाधि अवस्था, निरावरण आतम न अज्ञान।
ऐसे तीनिदेहव्यभिचारो, आतम अनुगतन्यारो जान। १५८

१-स्वप्न अवस्थामाहीं स्थूल देहका भान होवे नहीं और आतमाका भान होवे है। २-तैसे सुषुप्ति अवस्था में सूक्ष्मशरीरका ज्ञान होवे नहीं और सुख स्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाशरूपते भान कहिये प्रतीत होवे है। सुखका ज्ञान सुषुप्तिमें नहीं होवे तौ "मैं सुखसे सोता भया" ऐसी स्मृति जागिके नहीं हुई चाहिये, याते सुखका ज्ञान सुषुप्ति में होवे है सो सुख विषयजन्य तो सुषुप्तिमें है नहीं, किन्तु आत्मास्वरूपही है सो आत्मा स्वयं प्रकास है याते सुख-स्वरूप आत्मा स्वयं प्रकाशते सुषुप्ति में भासे है। ३-निदिध्यासनका फल निर्विकल्पसमाधि अवस्था में निवारण कहिये अज्ञानकृत आवरणरहित आत्मा भासेहै

और न अज्ञान कहिये कारणशरीर अज्ञान नहीं भासे है, १-ऐसे तीनि देह व्यभिचारी है, एक अवस्थाकूँ छोड़ि के दूसरी अवस्थामें भासै नही। २-आत्मा अनुगत है। सर्व अवस्थामें भासै है, याते व्यापक है। या विवेकते तीनि शरीरनते आत्माकूँ न्यारो जान। १-स्थूलशरीर तौ अन्नमयकोश है, २-कारणशरीर आनन्दमय कोश है, ३-५ सूक्ष्मशरीरमें प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, तीनि कोश हैं, याते तीनि शरीरनके विवेकते पंचकोशका हीं विवेक होवे है, जैसे जीवका स्वरूप पंचकोशनते पृथक् है। तैसे ईश्वर का स्वरूप भी समष्टि पंचकोशनते पृथक् है और चतुर्थतरङ्गमें चतुर्विध आकाशके दृष्टान्तसे जीव ईश्वरके लक्ष्यस्वरूप का विवेक विस्तार से करि आये हैं और उत्तर तरङ्गमें अस्ति भाँति प्रिय रूपके निरूपणमें तथा महावाक्यनते अर्थनिरूपणमे आत्मा का परमार्थ स्वरूप प्रतिपादन करेंगे। याते इहाँ संक्षेपतेही आत्मविवेक कहा है। इस रीतिसे पञ्चकोशनते आत्माको न्यारा जाननेसे भी कृतकृत्य होवे नहीं किन्तु जीवब्रह्मके अभेद निश्चयवास्ते फेरि भी विचार कर्त्तव्य रहै है, याते कर्त्तव्य का अभाव रूप कृतकृत्यता की सिद्धिवास्ते महावाक्य का अर्थ उपदेश करे हैं॥ १५८॥

❀ सवैया ❀

पञ्चकोशने आतम न्यारा, जानि सु जानहु ब्रह्मस्वरूप।

तातै भिन्न जु दीखै सुनिये, सो मानहु मिथ्या भ्रमकूप ॥
मिथ्या अधिष्ठान न विगारे, स्वप्नभीख न दरिद्री भूप।
सबकछुकर्त्ता तऊ अकर्त्ता, तव अस अद्भुतरूप अनूप१५६

हे शिष्य ! पंचकोशते आत्माकूँ न्यारा जानिके सु कहिये सो आत्मा ब्रह्मस्वरूप है यह जानों। याके विषे ऐसी शङ्का होवे है:-आत्मा पुण्य पाप करे है ताते स्वर्ग नरक और मृत्युलोक में नाना प्रकार के सुखदुःख भोगे है, ताकी ब्रह्मसे एकता बने नहीं।

ताका समाधान:-"तातै भिन्न जु दीखै" इत्यादि तीन पादनते कहे हैं-ता ब्रह्मरूप आत्मा से भिन्न जो दीखै है और सुनिये है शास्त्रसे, स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप सो सम्पूर्ण मिथ्याभ्रमहै, ऐसे मानो और मिथ्यावस्तु अधिष्ठान कूँ विगारे नहीं। जैसे १-स्वप्न की मिथ्या भीख कहिये भिक्षा माँगनेते भूप दारिद्री नहीं होवे है और मरुस्थल के मिथ्या जलते भूमि गीली होवे नहीं मिथ्या सर्पते रज्जु विषसहित होवे नहीं। याते सब कछु कर्त्ता कहिये सम्पूर्ण मिथ्या शुभअशुभ क्रियाका कर्त्ता है। तऊ कहिये तौ भी अकर्ता कहिये परमार्थसे कर्ता नहीं ऐसा तव कहिये तेरा अद्भुत आश्चर्यरूप अनूप कहिये उपमारहित स्वरूपहै। याका भाव यह है:—१-ब्रह्म से अभिन्न तेरे स्वरूप विषे स्थूल सूक्ष्म शरीर और तिनकी शुभ अशुभ क्रिया और ताका फल जन्म, मरण, स्वर्ग, नरक,

सुख, दुःख सम्पूर्ण अविद्या से कल्पित है । २--ताके सामग्री से तेरा ब्रह्मभाव बिगरे नहीं । याते ज्ञानते प्रथम भी आत्मा ब्रह्मस्वरूपही है । ३-ताके विषे तीनिकाल में शरीर और ताके धर्मनका सम्बन्ध नहीं । किन्तु आत्मा सदा ही नित्यमुक्त है ताका ब्रह्म से कभी भी भेद नहीं ॥ १५९ ॥

जो ऐसे कहैं:-आत्मा सदाही नित्य मुक्त ब्रह्मरूप होवे तो श्रवणादिक ज्ञानके साधन निष्फल होवेंगे।

ताका समाधान-इन्दव छन्द।

ताहि खपुष्पसमान प्रपञ्च तु, ईश कहा करता जु कहावै।
साद्यनहीं इमसाक्षिस्वरूप न, दृश्यनहीं दृककाहि जनावै॥
बन्धहु होय तु मोक्षचनैं अरु, होय अज्ञान तुज्ञान नशावै।
जानि यही करतलगतजैसव, निश्चलहोतहि निश्चलपावै १६०

जीवनमुक्त विद्वानकी दृष्टि में अज्ञान और ताका कार्य तुच्छ है सो जीवनमुक्तका निश्चय बतावे हैं-हे शिष्य! १-यह प्रपञ्च खपुष्पसमान कहिये आकाश के फूल की न्याईं होनेतें है नहीं याते ताका कर्ता ईश्वर भी नहीं है। २-साक्षी का विषय अज्ञानादिक साद्य कहिये है सो साद्य नहीं । याते साक्षी भी नहीं । ३-तैसे दृश्य का प्रकाशक दृक् कहिये है और प्रकाश ने योग्य देहादिक दृश्य कहिये हैं सो देहादिक दृश्य है नहीं याते दृक् भी नहीं । तद्यपि, केवल कूटस्थ चैतन्यकूँ साक्षी और दृक्

कहे हैं ताका निषेध बने नहीं। तथापि साद्य की अपेक्षातें साक्षी नाम और दृश्य की अपेक्षातें दृक् नामहै, साद्य और दृश्यका अभाव है, यातें साक्षी और दृक् नामका निषेध करे हैं, स्वरूप का नहीं, ४-बन्ध होवे तो बन्धकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवे बन्ध नहीं यातें मोक्ष भी नहीं, ५-अज्ञान होवे तो ताका ज्ञान से नाश होवे अज्ञान है नहीं, यातें ताका नाशक ज्ञान भी नहीं। यह जानि के कर्तव्य तजै कहिये-" मेरे कूँ यह करने योग्य है " या बुद्धिकूं त्यागै, काहेतें ? १-यह लोक तथा परलोक तो तुच्छ है तिनके निमित्त कछु कर्तव्य नहीं। २-आत्मा में बन्ध नहीं यातें मोक्ष के निमित्त भी कर्तव्य नहीं। या रीति से आत्मा कूँ नित्य मुक्त ब्रह्म रूप जानि के जब निश्चल होवे, सब कर्तव्य त्यागे तब निश्चल कहिये अक्रिय ब्रह्म स्वरूप विदेह मोक्षकूं प्राप्त होवे।

याका अभिप्राय यह है--यद्यपि आत्मा ज्ञान से प्रथम भी नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूपही है, परन्तु ज्ञान से पूर्व आत्माकूँ कर्ता भोक्ता मिथ्या मानिके सुखप्राप्त और दुःख की निवृत्तिवास्ते अनेक साधन करे हैं। तासे क्लेशकूं ही प्राप्त होवे है जब उत्तम आचार्य मिले तो वेदान्त वाक्यन का उपदेश करे है। तिनवेदान्त वाक्यनके श्रवणतें ऐसा ज्ञान होवे है " मैं कर्ता भोक्ता नहीं, किन्तु मैं ब्रह्म-

स्वरूप हूँ, याते मेरेको किंचित् भी कर्त्तव्य नहीं " ऐसा जाननाही श्रवणादिकन का फल है और ब्रह्म की प्राप्ति वेदान्त श्रवण का फल नहीं, काहेते ? ब्रह्म अपना स्वरूप है याते नित्य प्राप्त है ॥ १६० ॥

दोहा।

यही चिह्न अज्ञान को, जो माने कर्त्तव्य ।
सोई ज्ञानी सुघर नर, नहिं जाकूँ भवितव्य ॥१६१॥

जो कर्त्तव्य माने सो अज्ञान का चिह्न है और जाकूँ भवितव्य नहीं कहिये अन्यरूप हुआ नहीं चाहे है सो नर ज्ञानी कहिये है ॥ १६१ ॥

इन्दव-छन्द।

एक अखंडित ब्रह्म असङ्ग, अजन्य अदृश्य अरूप अनामैं। मूल अज्ञान न स्थूल, समष्टि न व्यष्टिपनोनहिं तामैं ॥ ईश न सूत्र विराट न प्राज्ञ, न तैजस विश्व-स्वरूप न जामैं। भोग न योग न बन्ध न मोक्ष, नहीं कछु वामै रु है सबवामैं ॥ १६२ ॥ जाग्रतमें जु प्रपञ्च प्रभासत, सो सब बुद्धिविलास बन्यो है। ज्यों सुपने महिं भोग्य न भोग, तऊ इक चित्रविचित्र जन्यो है ॥ लीन सुषुपति मैं मति होतहि, भेद भगै इकरूप सुन्यो है। बुद्धि रच्यो जु मनोरथ मात्रसु, निश्चल बुद्धि प्रकाश भन्यो है ॥ १६३ ॥

सवैया छन्द।

जाके हिये ज्ञान उजियारो, तम अँधियारो खरो विनाश।
सदा असंग एकरस आतम, ब्रह्मरूप सो स्वयं प्रकाश॥
ना कछु भयो न है नहिं ह्वै है, जगत मनोरथ मात्रविभास।
ताकी प्राप्तिनिवृत्ति न चाहत, ज्यों ज्ञानीके कोउ न आस॥
देखै सुनै न सुनै न देखै, सब रस गहे रुलेन न स्वाद।
सूँघि परशि परशै न सूँघै, बैनन बोलैं करै विवाद॥
ग्रहि न ग्रहै न तजे न त्यागै, चलै नहीं अरु धावन गाद।
भोगै युवति सदा संन्यासी, शिष लखि यह अद्भुतसंवाद॥

॥ १३४ ॥ १३५ ॥ याका अभिप्राय कहै हैं।

सवैया-छन्द।

निज विषयन में इन्द्रिय बर्ते, तिनते मेरो नाहीं सङ्ग।
मैं इन्द्रिय नहिं मम इन्द्रियनहि, मैं साक्षीकूटस्थ असङ्ग॥
त्यागहु विषय कि भोगहु इन्द्रिय, मोकूं लगै न रंचकरङ्ग।
यह निश्चय ज्ञानीको जात, कर्ता दीखै करे न अङ्ग॥१३६॥

हे अंग! अन्य अर्थ स्पष्ट ॥ १३६ ॥

इस रीतिसे आचार्यने शिष्यकूं गोप्यतत्त्व का उपदेश किया तौ भी शिष्यका मुख अत्यन्त प्रसन्न नहीं देखिके यह जान्या शिष्य कृतार्थ नहीं हुवा जो कृतार्थ होता तो याका मुख प्रसन्न होता यातें फिर स्थूलरीतिसे उपदेश करनेकूं लय चिंतन कहैं हैं।

❀ सवैया छन्द ❀

माटीको कारज घट जैसे, माटी ताके बाहिर माहिं ।
जलते फेन तरङ्ग बुदबुदा, उपजत जलते जुदे सु नांहि॥
ऐसे जो जाको है कारज, कारणरूप पिछानहु ताहि ।
कारणईशसकलको 'सोमैं', लयचिंतनजानहुविधि याहि॥

जैसे माटीके कार्यके बाहिर भीतरि माटी है, याते माटी कार्य माटी स्वरूप ही है। फेन आदिक जल के कार्य जल स्वरूप हैं। ऐसे जो जाका कार्य है सो ताका कारण स्वरूपसे भिन्न नहीं, किन्तु कार्य कारण स्वरूप ही है और सकल प्रपञ्चका मूलकारण ईश्वरही है। याते सर्व कार्य प्रपञ्च ईश्वरस्वरूपसे भिन्न नहीं। किन्तु सर्व प्रपञ्च का स्वरूप ईश्वर ही है "सो ईश्वर मैं हूँ" या रीतिसे लय चिंतन जानिके तू कर।

लय चिंतन का संक्षेपते यह क्रम है, १-स्थूल ब्रह्मांड सारा पंचीकृत भूतनका कार्य है, तहाँ जो पृथ्वीका कार्य सो पृथ्वीस्वरूप और जलका कार्य जलस्वरूप या रीतिसे जा भूतन का जो कार्य सो ताकाही स्वरूप है। इसरीति से सारा स्थूल ब्रह्मांड पंचीकृतस्वरूप है २-तैसे पंचीकृत भूत भी अपंची कृत भूतन के कार्य हैं याते अपंची कृत स्वरूप ही पंची कृत भूत हैं भिन्न नहीं ३-अन्तःकरण आदिक सूक्ष्म सृष्टि भी अपंचीकृत भूतन का कार्य होनेते अपंची कृत भूत स्वरूप हैं तामें अन्तःकरण सारे

भूतन के सत्त्वगुण के कार्य हैं। याते सत्त्वगुण स्वरूप हैं और भूतन के रजोगुण अंश के कार्य प्राण रजोगुण स्वरूप है, गुदाइन्द्रिय पृथ्वी रजोगुण अंशका कार्य सो पृथ्वीका रजोगुण स्वरूप घ्राण इन्द्रिय पृथ्वी के सत्त्वगुण का कार्य सो सत्त्वगुणस्वरूप, ऐसे रसना और उपस्थ जल के सत्त्वगुण रजोगुण स्वरूप नेत्र और पाद तेज के सत्त्वगुण रजोगुण स्वरूप त्वक् और पाणि वायु के सत्त्वगुण रजोगुण स्वरूप, श्रोत्र और वाक आकाश के सत्त्वगुण रजोगुण स्वरूप, या रीति से सारी सूक्ष्म सृष्टि अपंचीकृत भूतस्वरूप है।

यह चिन्तनकरके अपंचीकृत भूतनका भी लय चिन्तन करे। १-पृथ्वी जलका कार्य है याते जलस्वरूपहै, २-तेज का कार्य जल, तेजस्वरूप है, ३-तेज वायु का कार्य होनेते वायु स्वरूपहै। ४-आकाश का कार्य वायु आकाश स्वरूपहै। ५-तमोगुणप्रधान प्रकृतिका कार्य आकाश प्रकृतिस्वरूप है। ६-मायाकी अवस्थाविषे ही प्रकृति है याते प्रकृति माया स्वरूप है। एक वस्तुके प्रधान प्रकृति, माया, अविद्या, अज्ञान, शक्ति, ये नाम हैं। सर्वकार्यकूं अपने में लीन करके प्रलय में उदासीन स्वरूपकूं प्रधान कहे हैं और सृष्टिके उपादान योग्य तमोगुण प्रधान स्वरूपकूं प्रकृति कहे हैं। जैसे-देशकालादिक सामग्री

विना दुर्घटदार्थ की इन्द्रजाल से उत्पत्ति होवे है। तहाँ इन्द्रजालकूँ माया कहें हैं। तैसे असङ्ग अद्वितीय ब्रह्ममें इच्छादिक दुर्घट हैं, तिन कूँ जरे है याते माया कहें हैं। स्वरूपकूँ आच्छादन करे है, याते अज्ञान कहें हैं ब्रह्म-विद्याते नाश होवे है, याते अविद्या कहें हैं और स्वतन्त्र कभी भी रहे नहीं, तहाँ किन्तु चेतन के आश्रित ही रहे है, याते शक्तिभी कहेंहैं, इस रीतिसे प्रकृति आदिक प्रधान के ही भेद हैं। याते प्रधान रूप हैं। ७-सो प्रधान ब्रह्म-चेतन की शक्ति है। जैसे पुरुषमें सामर्थ्यरूप शक्ति पुरुष से भिन्न नहीं तैसे चेतन में प्रधानरूप शक्ति ब्रह्म चेतन ते भिन्न नहीं। या प्रकारते सर्व अनात्म पदार्थन का ब्रह्मविषे लयचिन्तन करके 'सो अद्वयब्रह्म मैं हूं' यह चिन्तनकरे।

जाकूँ महावाक्यविचार कियेते भी बुद्धि की मन्दतादिक किसी प्रति बन्धकते अपरोक्ष ज्ञान होवे नहीं ताकूँ यह लयचिन्तन रूप ध्यान कह्या है, ध्यान और ज्ञान का इतना भेद है:-ज्ञान तो प्रमाण और प्रमेय के अधीन है विधि और पुरुष की इच्छाके अधीन नहीं। २-ध्यान, विधिके तथा पुरुष की इच्छा और विश्वास तथा हठ के अधीन है। १-जैसे प्रत्यक्ष ज्ञान में प्रमाण नेत्र और प्रमेय घटादिक तहाँ नेत्रका और घटका सम्बन्ध हुएते पुरुषकी इच्छा बिना भी घटका प्रत्यक्षज्ञान होवे है भाद्र-पद चतुर्थी के दिन चन्द्र दर्शन का निषेध है विधि नहीं

और पुरुषकूँ यह इच्छा होवे है:-' मेरेकूँ आज चन्द्रदर्शन नहीं होवे' तौभी किसी रीति से नेत्र प्रमाण का जो प्रमेय चन्द्रसे सम्बन्ध होय जावे तो चन्द्र का प्रत्यक्षज्ञान अवश्य ही होवे है, इस रीतिसे प्रमाण प्रमेय के अधीन ज्ञान है। विधि और इच्छाके अधीन नहीं। २-शालग्राम विष्णुरूप है यह ध्यान करे ताकूँ उत्तमफल प्राप्त होवे है। तहाँ शास्त्र प्रमाणसे विष्णु कूँ तो चतुर्भुज मूर्ति, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मीसहित जाने है और नेत्र प्रमाणते शालग्राम कूँ शिला जाने है तथापि विधिविश्वास इच्छाते "शालग्राम विष्णु है' यह ध्यान होवे है परन्तु सो ध्यान नाना प्रकार का है, कहूं तो अन्य वस्तु का अन्यरूप से ध्यान, जैसे शालग्रामका विष्णुरूपसे ध्यान याकूं प्रतीक ध्यान कहें हैं और वैकुण्ठ लोक वासी विष्णु का शङ्खचक्रादिक सहित चतुर्भुजमूर्तिरूप से ध्यान है तहाँ अन्यका अन्य रूपसे ध्यान नहीं किन्तु ध्येयरूपके अनुसार यह ध्यानहै, वैकुण्ठवासी विष्णुका स्वरूप प्रत्यक्ष तो है नहीं केवल शास्त्रते जानिये है और शास्त्रते शङ्खचक्रादिक सहित विष्णु का स्वरूप कह्या है याते ध्येयस्वरूपके अनुसार ही यह ध्यान है। विधि विश्वास इच्छा विना ध्यान होवे नहीं, ' यह उपासना करे' ऐसा पुरुषका प्रेरकवचन विधि कहिये है ता वचनमें श्रद्धाकूँ विश्वास कहे है और अन्तःकरण की कामनारूप रजोगुणकी वृत्ति इच्छा कहिये है। ध्यानके

हेतु यह तीन हैं उपासना का ज्ञानके नहीं और ध्यान हठसे होवे है। ज्ञान में हठकी अपेक्षा नहीं। काहेते? निरन्तर ध्येयाकार चित्त की वृत्तिकूँ ध्यान कहें हैं। तहाँ वृत्ति में विक्षेप होवे तो हठसे वृत्तिकी स्थिति करे और ज्ञानरूप अन्तःकरणकी वृत्ति से तत्काल आवरण भङ्ग हुयेते वृत्ति की स्थितिका उपयोग नहीं, याते हठकी अपेक्षा नहीं, वैकुण्ठवासी चतुर्भुज विष्णुके ध्यानकी न्याई 'मैं ब्रह्म हूं' यह ध्यान भी ध्येय के अनुसार है प्रतीत नहीं। परन्तु यह अहंग्रह ध्यान है ध्येयस्वरूपका अपने से अभेद करके चिन्तन, अहंग्रह ध्यान कहिये है। जा पुरुषकूँ अपरोक्षज्ञान नहीं होवे और वेद की आज्ञारूप विधिमें विश्वास करके हठते निरन्तर 'मैं ब्रह्म हूँ' या वृत्ति की स्थितिरूप अहंग्रह ध्यान करे ताकूँ भी ज्ञान प्राप्त होयके मोक्षकी प्राप्ति होवे है॥ १६७॥

दूसरी रीति से अहंग्रह उपासना कहें हैं:—

❀ सवैया-छन्द ❀

ध्यान अहंग्रह प्रणवरूपका, कह्यो सुरेश्वर श्रुति अनुसार।
अक्षरप्रणवब्रह्ममरूपसु, यो अनुलवनिजमतिगतिधार॥
ध्यानसमान आन नहिं याके, पञ्चीकरण प्रकार विचार।
जो यह करत उपासन सो मुनि, तुरित नशै संसार अपार॥ १६८॥

हे शिष्य! प्रणवरूप का कहिये ओंकार स्वरूप का अहंग्रह ध्यान माण्डूक्य प्रश्न आदिक श्रुति के अनुसार

सुरेश्वराचार्यने कह्याहै सो तूँ कर। ताका संक्षेपसे प्रकार यह है-प्रणवअक्षर ब्रह्मस्वरूप है। "सो प्रणवरूप ब्रह्म मैं हूँ" या रीति से अनुलव कहिये क्षणमात्र अन्तराय रहित निजमतिकी गति कहिये वृत्ति, धार कहिये स्थित कर। याके समान आन ध्यान नहीं है, और या ध्यान का प्रकार कहिये विशेष रीति, सुरेश्वर कृत पञ्चीकरण नाम ग्रन्थ से विचार, चतुर्थ पाद स्पष्ट। यद्यपि प्रणव-उपासना बहुत उपनिषदनसे है, तथापि माण्डूक्य उपनि-षद्‌में विशेष है। ताके व्याख्यान में भाष्यकार और आनन्दगिरिमें ताकी रीति स्पष्ट लिखीहै सोई रीति वार्ति-ककारने पञ्चीकरणमें लिखी है तथापि तिन ग्रन्थन के विचारनमें जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है तिनके अर्थ प्रणवउपासनाकी रीति हम लिखें हैं-दो प्रकार से प्रणव का चिन्तन उपनिषदनमें कह्या है। एक तो परब्रह्म रूपते प्रणवका चिन्तन कह्या है और दूसरा अपरब्रह्म रूपते कह्या है। १-निर्गुणब्रह्म कूँ परब्रह्म कहें हैं। २-सगुणब्रह्मको अपरब्रह्म कहें। १-परब्रह्मरूपते प्रणव का चिन्तन करे सो मोक्षकूँ प्राप्त होवे है। २-अपरब्रह्म रूपते प्रणवका चिन्तन करे सो ब्रह्मलोक कूं प्राप्त होवे है। ऐसे निर्गुणसगुण भेदते प्रणवउपासना दो प्रकार की है, तामें निर्गुण उपासनाकी रीति लिखें हैं, सगुण की नहीं काहेते? १-जाकूं ब्रह्मलोककी कामना होवे ताकूँ

निर्गुणउपासनाते भी कामनारूप प्रतिबन्धकते ज्ञानद्वारा तत्काल मोक्ष होवे नहीं। किन्तु ब्रह्मलोककी ही प्राप्ति होवे है तहाँ हिरण्यगर्भके समान भोगनकूँ भोगिके ज्ञान होवे तब मोक्ष होवे। २–जाकूँ ब्रह्मलोक की कामना नहीं होवे ताकूँ इस लोकमें ही ज्ञान होय के मोक्ष होवे है, इस रीतिसे सगुण उपासनाका फल भी निर्गुण उपासनाके अन्तर्भूत है याते निर्गुण प्रकार कहेंहैं, जो कछु कारणकार्यवस्तु है, सो ओंकार स्वरूप है। याते सर्वरूप ओंकार है। १–सर्वपदार्थन में नाम और रूप दो भाग हैं तहाँ रूपभाग अपने अपने नाम भाग से न्यारा नहीं, किन्तु नाम स्वरूपही रूपभाग है। काहेते? पदार्थ का रूप कहिये आकार ताका नाम से निरूपण करके ग्रहण वा त्याग होवे है, नाम जाने बिना केवल आकारते व्यवहार सिद्ध होवे नहीं, याते नाम ही सार है और आकार के नाश हुयेते भी नाम शेष रहे है। जैसे घट का नाश हुयेते मृतिका शेष रहे है। तहाँ घट मृतिका से पृथक् वस्तु नहीं। मृत्तिका स्वरूप है, तैसे आकार का नाश हुयेते मृत्तिका की न्याईं शेष रहे जो नाम तासे आकार पृथक् नहीं, नामस्वरूप ही आकार है। किम्वा जैसे घट शरावादिकन में मृत्तिका अनुगत है और घटशरावादिक परस्पर व्यभिचारी हैं याते घटशरावादिक मिथ्या तिनमें अनुगत मृत्तिका सत्य है।

तैसे घट आकार अनेक हैं, तिन सबका 'घट' यह दो अक्षर नाम एक है सो आकार परस्पर व्यभिचारी और सर्व घट के आकार में नाम एक अनुगतहै याते मिथ्या आकार सत्य नामते पृथक् नहीं इस रीति से सर्वपदार्थनके आकार अपने अपने नाम से भिन्न नहीं, किन्तु नामस्वरूप ही आकार है २-सो सारे नाम ओंकार से भिन्न नहीं किन्तु ओंकार स्वरूपही नाम हैं। काहेते? वाचकशब्दकूँ नाम कहे हैं और लोकवेद के सारे शब्द ओंकार से उत्पन्न हुये हैं, यह श्रुति में प्रसिद्ध है। सम्पूर्ण कार्य कारणरूप होवे हैं, याते ओंकारके कार्य जो वाचक शब्द रूप नाम, सो ओंकार स्वरूप है। इस रीति से रूपभाग जो पदार्थन का आकार सो तो नाम स्वरूप है और सर्व नाम ओंकार स्वरूप है। याते सर्व स्वरूप ओंकार है। ३-जैसे सर्वस्वरूप ओंकार है। तैसे सर्व स्वरूप ब्रह्म है, याते ओंकार ब्रह्मरूप है। किम्वा ओंकार ब्रह्म का वाचक है, ब्रह्म वाच्य है। वाच्य का और वाचक का अभेद होवे है। याते भी ओंकार ब्रह्म रूप है और विचार दृष्टिते तो अक्षर ब्रह्म विषे अध्यस्त है, ब्रह्म तिसका अधिष्ठान है। अध्यस्तका स्वरूप अधिष्ठानते न्यारा होवे नहीं। याते भी ओंकारब्रह्मस्वरूप है। याते ओंकारकूं ब्रह्मरूप करके चिन्तन करे।

४-ब्रह्मरूप ओंकार का आत्मा से भी अभेद चिन्तन

करे। काहेतै ? आत्मा का ब्रह्म से मुख्य अभेद है और ब्रह्मके चारिपाद हैं तैसे आत्माके भी चारिपाद हैं, पाद नाम भागका है ताहीकूं अंश भी कहे हैं, विराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और तत्पदका लक्ष्य ईश्वर साक्षी ये चारि पाद ब्रह्मके हैं। विश्व, तैजस, प्राज्ञ और त्वंपदका लक्ष्य जीवसाक्षी, ये चारिपाद आत्मा के हैं, जीवसाक्षीकूं ही तुरीय कहैं हैं।

समष्टिस्थूल प्रपञ्च सहित चेतन विराट् कहिये है। व्यष्टि स्थूल अभिमानी विश्व कहिये है विराट् की और विश्वकी उपाधि स्थूल है यातें विराट् रूप ही विश्व है। विराट्तै न्यारा नहीं। विराट् रूप विश्वके सात अंग हैं, स्वर्गलोक मूर्धा है। सूर्य नेत्र हैं, वायु, प्राण, आकाश धड़ है, समुद्रादिरूप जल मूत्रस्थान है, पृथ्वी पाद है जा अग्निमें होम करके सो अग्नि मुख है, ये सात अंग विश्वके कहे हैं मांडूक्यमें यद्यपि स्वर्ग लोकादिक विश्व के अंग बने नहीं, तथापि विराट् के अङ्ग हैं ता विराट् से विश्व का अभेद है यातै विश्व के अङ्ग कहे हैं।

तैसे विराट् विश्व के उन्नीस मुख हैंः—पञ्च प्राण पञ्च कर्मइन्द्रिय, पंच ज्ञानइन्द्रिय, चारि अन्तःकरण ये उन्नीस मुखकी न्याईं भोगके साधन हैं यातें मुख कहिये हैं इन उन्नीसतै स्थूल शब्दादिकनकी बाह्य वृत्ति करके जाग्रत अवस्थाविषे भोगे हैं, यातै विराट्रूप विश्व स्थूल का

भोक्ता और बाह्य वृत्ति कहिये है और जाग्रत अवस्था वाला कहिये हैं ।

प्राणादिक उन्नीस जो भोगके साधन हैं तिनविषे ये श्रोत्रादिक इन्द्रिय और अन्तःकरण चार, ये चतुर्दश अपने अपने विषय और अपने अपने देवता की सहाय चाहे हैं, देवता विषय की सहाय बिना केवल इनते भोग होवे नहीं याते पंच प्राण और चतुर्दश त्रिपुटी विराट् रूप विश्वके मुख कहिये हैं तिनके समुदाय के नाम त्रिपुटी है ।

सो त्रिपुटी इस रीतिसे कहा है:-श्रोत्रइन्द्रिय अध्यात्म है और ताका विषय शब्द अधिभूतहै, दिशा का अभिमानी देवता अधिदैव है या प्रकरणमें क्रिया शक्ति वाले और ज्ञान शक्तिवाले इन्द्रिय और अन्तःकरण अध्यात्म कहिये है तिनके विषय अधिभूत कहिये है और तिनके सहायक देवता अधिदैव कहिये है, त्वचा इन्द्रिय अध्यात्म है, ताका विषय स्पर्श अधिभूत है, वायु तत्वका अभिमानी देवता अधिदैव है, नेत्रइन्द्रिय अध्यात्म है, रूप अधिभूत है सूर्य अधिदैव है, रसना इन्द्रिय अध्यात्म है रस अधिभूत है, वरुण अधिदैव है घ्राणइन्द्रिय अध्यात्म है, गन्ध अधिभूत है, अश्विनी कुमार अधिदैव हैं और वार्तिककार सुरेश्वराचार्य ने पृथ्वी का अभिमानी देवता घ्राण अधिदैव कह्या है सो भी बने है । काहेते ? पृथ्वी

घ्राण की उत्पत्ति है याते पृथ्वी अधिदैव कह्या है और सूर्य की स्त्री बड़वाकी नासिकाते अश्विनी कुमार की उत्पत्ति कही है, याते नासिकाका अधिदैव कूँ अश्विनीकुमारही कहे हैं, वाक्इन्द्रिय अध्यात्म है, वक्तव्य अधिभूत है। अग्निदेवता अधिदैव है। हस्तइन्द्रिय अध्यात्म है। पदार्थका ग्रहण अधिभूत है, इन्द्र अधिदैव है, पाद इंद्रिय अध्यात्म, गमन अधिभूत विष्णु अधिदैव है। गुदाइन्द्रिय अध्यात्म, मलका त्याग अधिभूत, यम अधिदैवहै। उपस्थ इन्द्रिय अध्यात्म, ग्राम्यधर्म के सुख की उत्पत्ति अधिभूत है, प्रजापति अधिदैव है, मन अध्यात्म है, मननका विषय अधिभूत है, चन्द्रमा अधिदैवहै, बुद्धि अध्यात्म है, बोद्धव्य अधिभूत है, बृहस्पति अधिदैव है, ज्ञान का विषय बोद्धव्य कहिये है, अहंकार अध्यात्म है, अहंकारका विषय अधिभूत है, रुद्र अधिदैव है, चित्त अध्यात्म है, चिंतनका विषय अधिभूतहै, क्षेत्रज्ञ जो साक्षीसो अधिदैव है, ये चतुर्दशत्रिपुटी और पंचप्राण ये १९ विराट्‌रूप विश्वमुख हैं।

१–जैसे विराट्‌ते विश्वका अभेद है तैसे ओंकार की प्रथम मात्रा जो अकार ताका भी विराट् रूप विश्व ते अभेद है। काहेते ? ब्रह्मके चारपादनमें प्रथम पाद विराट् है और आत्मा के चार पादन में प्रथम विश्व है, तैसे ओंकारकी चारिमात्रारूप पादनमें प्रथम पाद अकार है। याते प्रथमता तीनों में समान धर्म होनेते विश्व विराट

प्रकारका अभेदचिंतन करे जो सात अङ्ग उन्नीस मुख विश्वके कहे सोई सात अंग और उन्नीस मुख तैजसके भी जाननेकूँ योग्य हैं। परन्तु इतना भेद है:-विश्वके जो अंग और मुख हैं सो तौ ईश्वररचित हैं और तैजसके जो इन्द्रिय देवता विषयरूप त्रिपुटी और मूर्धादिक अंग सो मनोमय है, तैजसका भोग सूक्ष्म है। यद्यपि भोग नाम सुख अथवा दुःखके ज्ञानका है ताके विषे स्थूलता और सूक्ष्मता कहना बनै नहीं, तथापि बाह्य जो शब्दादिक विषय हैं तिनके संबंधते जो सुख अथवा दुःखका साक्षात्कार सो स्थूल कहिये है और मानस जो शब्दादिक तिनके संबंधते जो भोग होवे सो सूक्ष्म कहिये है। इसी कारणते विश्व तो स्थूलका भोक्ता श्रुतिविषे कह्या है और तैजस सूक्ष्मका भोक्ता है। काहेतें? तैजस के भोग्य जो शब्दादिक हैं सो तौ मानस हैं, याते सूक्ष्म है और तिनकी अपेक्षा करके विश्वके भोग्य बाह्यशब्दादिक हैं सो स्थूल हैं। और विश्वबहिरप्रज्ञ है, तैजस अंतरप्रज्ञहै, काहेते? जो विश्वकी अन्तःकरणकी वृत्तिरूप प्रज्ञा है सो बाहिर जावे है और तैजसकी नहीं जावे है।

२–जैसे विश्वका और विराट्का अभेद है तैसे तैजस कूँ भी हिरण्यगर्भरूप जानै। काहेते? सूक्ष्म उपाधि तैजसकी है और सूक्ष्मही हिरण्यगर्भकी है। याते दोनों की एकता जानै तैजस हिरण्यगर्भ की एकता जानि के

ओंकारकी द्वितीय मात्रा उकार से तिनका अभेद चिंतन करे। काहेतें ? आत्माके चार पादनमें द्वितीयपाद तैजस है, ब्रह्मके पादन में हिरण्यगर्भ दूसरा पाद है, ओंकार की मात्रामें द्वितीय मात्रा उकारहै, द्वितीयता तीनों में समानधर्म है, यातें तीनोंकी एकता चिन्तन करे।

३-प्राज्ञकूं ईश्वररूप जाने। काहेते ? प्राज्ञकी कारण उपाधिहै और ईश्वरकी भी कारणउपाधिहै ईश्वर और प्राज्ञ पादनमें तृतीय हैं। ओंकारकी तृतीय मात्रा मकार है। तीसरापना तीनोंमें समानधर्म है। यातें तीनोंकी एकता जाने और यह प्राज्ञ प्रज्ञानघन है। काहेतें ? जाग्रत् और स्वप्नके जितने ज्ञान हैं सो सुषुप्ति विषे घन कहिये एक अविद्यारूप होय जावै हैं, यातें प्रज्ञानघन कहिये है और आनन्दभुक् भी यह प्राज्ञ श्रुतिने कहाहै। काहेते ? अविद्यासे आवृत जो आनन्दहै ताकूं यह प्राज्ञ भोगे है। यातें आनन्दभुक् कहिये है।

जैसे तैजस और विश्वका भोग त्रिपुटीसे होवे है। तैसे प्राज्ञके भोगकी भी त्रिपुटी कहिये है:-चेतनके प्रतिबिंब सहित जो अविद्याकी वृत्ति है सो अध्यात्महै, अज्ञानसे आवृत जो स्वरूप आनन्द सो अधिभूत है और ईश्वर अधिदैवहै। इसरीतिसे विश्वतो बहिरप्रज्ञ है और तैजस अन्तरप्रज्ञ है और प्राज्ञ प्रज्ञानघन है।

४—ऐसा जो तीनों का भेद है। सो उपाधि करके है विश्व की स्थूल सूक्ष्म अज्ञान तीनि उपाधि है और तैजस की सूक्ष्म अज्ञान दो उपाधि हैं और प्राज्ञकी एक अज्ञान उपाधि है इस रीति से उपाधि की न्यूनता अधिकता से तीनों का भेद है, परमार्थ करके स्वरूप से भेद नहीं।

विश्व, तैजस, प्राज्ञ इन तीनों विषे अनुगत जो चेतन है सो परमार्थ से तीनों उपाधि के सम्बन्ध से रहित है। तीनों उपाधि का अधिष्ठान तुरीय है सो बहिरप्रज्ञ नहीं और अन्तरप्रज्ञ नहीं और प्रज्ञानघन भी नहीं कर्म इन्द्रिय का और ज्ञान इन्द्रिय का विषय नहीं और बुद्धि का विषय नहीं, किसी शब्द का विषय नहीं ऐसा जो तुरीय है ताकूँ परमात्मा का चतुर्थ पाद ईश्वर साक्षी शुद्ध ब्रह्मरूप जानें।

१—इस रीतिसे दो प्रकार का आत्माका स्वरूप कह्या एक तो परमार्थ रूप है और एक पाद तुरीय परमार्थ रूप है। २—जैसे आत्माके दो स्वरूप हैं तैसे ओंकारके भी दो स्वरूप हैं। अकार, उकार मकार ये तीन मात्रा रूप जो वर्ण हैं सो तो अपरमार्थ रूप है और तीनों मात्रा विषे व्यापक जो अस्ति भाति प्रियरूप अधिष्ठान चेतन है सो परमार्थ रूप है जो ओंकारका परमार्थ रूप है ताको श्रुति विषे अमात्रशब्दकरके कहा है काहेते ? तो परमा-

र्थस्वरूप विषे मात्रा विभाग है नहीं याते अमात्र कहिये है। इस रीतिसे दो स्वरूपवाला जो ओंकार है ताका दो स्वरूपवाले आत्मा से अभेद जाने।

१-व्यष्टि और समष्टि जो स्थूलप्रपञ्च ता सहित विश्व और विराट्का अकारसे अभेद जाने। आत्मा के जो पाद हैं तिनविषे विश्व आदि हैं और ओंकार की मात्रा विषे अकार आदि हैं, याते दोनोंकूं एक जाने, २-सूक्ष्मप्रपञ्च सहित जो हिरण्य गर्भ रूप तैजस है ताकू उकार रूप जाने तैजस भी दूसरा है और उकार भी दूसरा है याते दोनोंकूँ एक जाने। ३-कारण उपाधि सहित जो ईश्वररूप प्राज्ञहै ताकूँ मकार रूप जाने जैसे-ईश्वर रूप प्राज्ञ तीसरा है तैसे मकार भी तीसरा है, यातें ईश्वररूप प्राज्ञ और मकारकूँ एक जाने, ४-तीनोंविषे अनुगत जो परमार्थ रूप तुरीय है ताकूँ ओंकार वर्णकी तीनि मात्राविषे अनुगत जो ओंकारका परमार्थ रूप अमात्र है तासे अभिन्न जाने, जैसे-विश्वादिक विषे तुरीय अनुगत है, तैसे अकारादिक तीन मात्राविषे अमात्र अनुगतहै, याते ओंकार के अमात्ररूप कूँ और तुरीयकूं एक जाने। इस रीति से आत्माके पाद और ओंकारकी जो मात्रा हैं तिनकी एकता जानिके लयचिन्तन करे सो लयचिन्तन कहिये है।

१-विश्वरूप जो अकार है, सो तैजसरूप उकार से न्यारा नहीं; किन्तु उकाररूप है, ऐसा जो चिन्तन करना

सो या स्थानमें लय कहिये है। ऐसाही और मात्राविषे भी जानि लेना। २–जो उकारविषे अकारका लय किया है। तो तैजस स्वरूप उकार का प्राज्ञरूप जो मकार है ताके विषे लय करे। ३-प्राज्ञरूप जो मकार है ताकूं तुरीय-रूप जो ओंकारका परमार्थ रूप अमात्र है, ताके विषे लीन करे। काहेते? स्थूलकी उत्पत्ति और लय सूक्ष्म विषे होवे है। याते १-विश्वरूप जो अकार है, ताका तैजस स्वरूप उकारमें लय बने है, २-सूक्ष्म की उत्पत्ति और लय कारणमें होवे है। याते तैजसरूप जो उकार है ताका कारण प्राज्ञरूप जो मकार है ताकेविषे लय बने है। या स्थानविषे विश्व आदिकन के ग्रहणते समष्टि जो विराट् आदिक हैं तिनका और अपनी अपनी जो त्रिपुटी हैं तिन सर्वका ग्रहण जानना, ३–जो प्राज्ञरूप मकार विषे उकार लय कियाहै तो मकारका तुरीयरूप जो ओंकार का परमार्थस्वरूप अमात्र है ताकेविषे लीन करे। काहेते? ओंकारके परमार्थस्वरूपका तुरीयसे अभेद है। सो तुरीय ब्रह्मरूप है और शुद्धविषे ईश्वर प्राज्ञ दोनों कल्पित हैं, जो जाके विषे कल्पित होवे है सो ताका स्वरूप होवे है, याते ईश्वरसहित प्राज्ञरूप मकार का लय बने है। इस रीति से जो ओंकार के परमार्थ स्वरूप अमात्र विषे सर्वका लय किया है " सो मैं हूँ " ऐसा एकाग्र-चित्त होयके चिन्तन करे, स्थावर, जङ्गमरूप और असङ्ग, अद्वय

असंसारी, नित्यमुक्त, निर्भय, ब्रह्मरूप जो ओंकार का परमार्थस्वरूप " सो मैं हूँ " ऐसा चिन्तन करने से ज्ञान उदय होवे है, याते ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप फलका देने वाला यह ओंकारका निर्गुण उपासना है सो सबसे उत्तम है।

जो पूर्व रीतिसे ओंकार स्वरूप कूँ जाने है सो मुनि है। जो नहीं जाने है सो मुनि नहीं, काहेते ? मुनिनाम मनन करने वाले का है। यह ओंकारका चिन्तन मनन रूप है। जाके ओंकारका चिन्तनरूप मनन नहीं सो मुनि नहीं यह मांडूक्य उपनिषद् की रीति से संक्षेपते ओंकार का चिन्तन कह्या है और भी नृसिंहतापिनी आदिक उपनिषदनमें याका प्रकार है, यह ओंकार का चिन्तन परमहंसों का गोप्यधन है, बहिर्मुख पुरुष का या विषे अधिकार नहीं, अत्यन्त अन्तरमुख का अधिकार है, गृहस्थ का यामें अधिकार नहीं, धन पुत्र स्त्रीसङ्गादिक रहित परमहंस का अधिकार है।

१-पूर्व प्रकारते ओंकारका ब्रह्मरूपते ध्यान कियेते ज्ञानद्वारा मोक्ष होवे है। २-परन्तु जा पुरुषकी इस लोक के भोगन में अथवा ब्रह्मलोक के भोगन में कामना होवे तीव्र वैराग्य नहीं होवे और हठसे कामनाको रोकिके धन पुत्रादिकनको त्यागिके परमहंसगुरुके उपदेशते ओंकार रूप ब्रह्मका ध्यान करे ताकूं भोग की कामना ज्ञान में प्रतिबन्ध है, याते ज्ञान नहीं होवेहै किन्तु ध्यान करतेही

शरीर त्यागते अनन्तर अन्यशरीर की प्राप्ति होवे जो इस लोकके भोगनकी कामना रोकके ध्यानमें लगा होवे तो इसलोकमें अत्यन्त विभूतिवाले पवित्रसत्सङ्गकुलमें जन्म होवे है तहाँ पूर्व कामनाके विषे सारे भोग प्राप्त होवेहैं और पूर्व जन्म के ध्यान के संस्कारनते फेरि विचार में अथवा ध्यानमें प्रवृत्ति होवे है, तातें ज्ञान होयके मोक्ष होवे है।

ब्रह्मलोक के भोगन की कामना रोकि के ओंकाररूप ब्रह्मके ध्यानमें लगा होवे तो शरीर त्यागिके ब्रह्मलोककूं जावे हैं, तहाँ मनुष्य कूं, पितरन कूं देवनकूं दुर्लभ जो स्वतन्त्रता है ताके आनन्दको भोगे है। जितनी हिरण्य गर्भ की विभूति है सो सारी सत्य सङ्कल्पादिक विभूति इसको प्राप्त होवे। जा मार्गते ब्रह्मलोककूं जावे है सो मार्ग का क्रम यह है:–जो पुरुष ब्रह्म की उपासना में तत्पर है ताके मरण समय इन्द्रिय अन्तःकरण यद्यपि सारे मूर्छित हैं, कहीं जाने में समर्थ नहीं और यमके दूत ताके समीप आवे नहीं, जो ताके लिङ्गशरीर कूं ले जावें परन्तु १–अग्नि का अभिमानी देवता ताकूँ मरण समय शरीर से निकासिके अपने लोक को ले जावे है। २–ता अग्निलोकते दिन का अभिमानी देवता ले जावे है ३–तिसते शुक्लपक्ष का अभिमानी देवता अपने लोककूँ ले जावे है। ४–तिसते आगे उत्तरायण जो षट्मास हैं, तिनका अभिमानी देवता ले जावे है।

५-तिसते आगे संवत्सरका अभिमानी देवता ले जावे है, ६-तिसते आगे देवलोक का अभिमानी देवता ले जावे है। ७-तिसते आगे वायु का अभिमानी देवता ले जावे है, ८-तिसते आगे सूर्यदेवता ले जावे है। ६-तिसते आगे चन्द्र देवता ले जावे है, १०-तिसते आगे बिजली का अभिमानी देवता अपने लोक में ले जावे है, ११-तहाँ बिजली के लोकमें तिस उपासक के सामने हिरण्य गर्भ की आज्ञाते दिव्यपुरुष हिरण्यगर्भ लोकवासी हिरण्य गर्भ समानरूप ताके लेनेकूँ आवे है, सो पुरुष बिजलीके लोकते वरुण लोकको ले जावे है, बिजली का अभिमानी देवता साथ आवे है, वरुणलोकते इन्द्रलोककूँ ले जावे है, १२-वरुण देवता भी इन्द्रलोक तक हिरण्यगर्भ लोक वासी पुरुष और उपासक के साथी रहे है। १३-तिसते आगे इन्द्रदेवता प्रजापति के लोक तक दोनों के साथ रहे है। १४-तिसते आगे प्रजापति तिन दोनों के साथ ब्रह्मलोक ले जाने विषे समर्थ नहीं याते ब्रह्मलोक में ता दिव्यपुरुष के साथ सो उपासक प्राप्त होवे है। ब्रह्मलोक का अधिपति हिरण्यगर्भ है। सूक्ष्मसमष्टि का अभिमानी चेतन हिरण्यगर्भ कहिये है, ताहीकूँ कार्यब्रह्म कहे हैं, कार्यब्रह्म के निवास स्थानकूँ ब्रह्मलोक कहें हैं।

यद्यपि पूर्वरीति से ओंकार की उपासना शुद्ध ब्रह्मरूप करके कही है शुद्ध ब्रह्म के उपासक कूँ शुद्ध ब्रह्म की

प्राप्ति चाहिये तथापि शुद्धब्रह्म की प्राप्ति ज्ञानते हीं होवे है और कामनारूप प्रतिबन्धने जाकूँ ज्ञान हुआ नहीं, ताकूँ कार्यब्रह्म की प्राप्तिरूप सायुज्यरूप मोक्ष होवे है। १-ब्रह्मलोक में प्राप्त जो उपासक है ताकूं हिरण्यगर्भ के समान विभूति प्राप्त होवे है। २-सत्य सङ्कल्प होवे है ३—जैसे शरीरकी इच्छा करे तैसाहीं उसका शरीर होवे है। ४-जिन भोगनकी वांछा करे, सो सारे भोग सङ्कल्पते होवे हैं। ५-जो एक समय हजार शरीरनसे जुदे जुदे भोगनकी इच्छा करे तो ताही समय हजार शरीर और उनके भोगनकी जुदी-जुदी सामग्री उपजे है और बहुत क्या कहैं? जो कुछ सङ्कल्प करे सोई सिद्ध होवे है, परन्तु जगत्की उत्पत्ति पालन संहार छोड़ि के और सारी विभूति ईश्वर के समान होवे है याही कूं सायुज्य-मोक्ष कहे हैं। ऐसे हिरण्यगर्भ के समान हुआ। बहुत काल सङ्कल्पसिद्ध दिव्यपदार्थनको भोगि के प्रलयकाल में जब हिरण्यगर्भ के लोक का नाश होवे तब ज्ञान होय के उपासककूं विदेहमोक्ष की प्राप्ति होवे है।

जैसे ओंकाररूप ब्रह्म की उपासना करने वाला ब्रह्म-लोक का प्राप्तिद्वारा मोक्षको प्राप्त होवे है तैसे और भी उपनिषदनमें ब्रह्मकी उपासना कही है तिनते यही फल होवे है, परन्तु अहंग्रह उपासना विना और उपासनाते ब्रह्म लोक की प्राप्ति होवे नहीं यह वार्ता सूत्रकार

ने और भाष्यकार ने चतुर्थ अध्याय में प्रति पादन करी है।

१—जैसे नर्मदेश्वर शिवरूपते और शालग्राम विष्णु-रूपते ध्यान कह्या है सो प्रतीक ध्यान है अहंग्रह नहीं। २-मनका ब्रह्मरूपते आदित्य का ब्रह्मरूपते ध्यान कह्या है सो भी प्रतीकध्यान है अहंग्रह नहीं। तिनते ब्रह्मलोक की प्राप्ति होवे नहीं। सगुण अथवा निर्गुणब्रह्मकूं अपने ते अभेद करके चिन्तन करें ताकूं अहंग्रह ध्यान कहे हैं। ताहीते ब्रह्मलोक की प्राप्ति होवे है।

पूर्व कह्या जो मार्ग है ताकूं उत्तरायण मार्ग कहे हैं और देवमार्ग भी कहे हैं ता देवमार्गते ब्रह्मलोक कूं जो उपासक जावे हैं तिनकूं फेरि संसार नहीं होता, किन्तु ज्ञान होयके विदेह मुक्तिकूं प्राप्त होवे हैं। तहाँ ज्ञान के साधन जो गुरुउपदेशादिक हैं तिनकी भी अपेक्षा नहीं, किन्तु ब्रह्मलोकमें गुरुउपदेशादिक साधन बिना ही ज्ञान होवे है। काहेते? ब्रह्मलोक में तमोगुण रजोगुण का तो लेश भी नहीं केवल सत्त्वगुण प्रधान वह लोक है। १-तमोगुण नहीं याते जड़ता आलस्यादिक नहीं। २-रजोगुण नहीं याते काम क्रोधादिरूप रजोगुण का कार्य विक्षेप नहीं। ३-केवल सत्त्वगुण है याते सत्त्वगुण का कार्य ज्ञानरूप प्रकाश ता लोक में प्रधान है।

ओंकारकी ब्रह्मरूपते जो पूर्व उपासना करी है तब

ओंकारकी मात्रका अर्थ इस रीतिसे चिन्तन किया है। १-स्थूल उपाधिसहित विराट् विश्वचेतन अकारका वाच्य है २-सूक्ष्म उपाधिसहित चेतन हिरण्यगर्भ तैजस उकार का वाच्य है। ३-कारण उपाधिसहित चेतन ईश्वर प्राज्ञ मकारका वाच्य है, ऐसा अर्थ जो पूर्व चिन्तन कियाहै ताकी ब्रह्मलोकमें स्मृति होवे है और सत्त्वगुण प्रभावते ऐसा विवेचन होवे है। १-स्थूलउपाधि करके चेतन में विराट्पना और विश्वपना प्रतीत होवे है, स्थूलसमष्टिकी दृष्टिते विराट्पना है और स्थूलव्यष्टिकी दृष्टिते विश्वपना है और समष्टिव्यष्टिस्थूलकी दृष्टि बिना विराट् भाव और विश्वभाव प्रतीत होवे नहीं, किन्तु चेतन मात्र ही प्रतीत होवे है। २-जैसे सूक्ष्मउपाधि सहित हिरण्यगर्भ तैजस चेतन उकार का वाच्य है तहाँ समष्टिसूक्ष्म उपाधिकी दृष्टिते चेतनमें हिरण्यगर्भता प्रतीत होवे है और व्यष्टिसूक्ष्म-उपाधि की दृष्टिते तैजसता प्रतीत होवे है, सूक्ष्म उपाधिकी दृष्टिबिना हिरण्यगर्भता और तैजसता प्रतीत होवे नहीं। ३-तैसे मकारका वाच्य ईश्वरप्राज्ञ है तहाँ समष्टि अज्ञान उपाधिकी दृष्टिते चेतन में ईश्वरता प्रतीत होवे नहीं और व्यष्टिअज्ञान उपाधि की दृष्टिते चेतन में प्राज्ञता प्रतीत होवे है अज्ञान उपाधि की दृष्टि बिना ईश्वरता और प्राज्ञता प्रतीत होवे नहीं जो वस्तु जाके विषे अन्यकी दृष्टिते प्रतीत होवे सो ताकेविषे पर-

मार्थ से होवे नहीं, जो जाका रूप अन्यकी दृष्टि विना प्रतीत होवे सो ताका परमार्थ रूप होवे है। जैसे एक पुरुष में पिता की दृष्टिते पुत्रता और दादा की दृष्टिते पौत्रतादिकरूप भान होवे है सो परमार्थ से नहीं पुरुष का पिंडही परमार्थ है। तैसे स्थूल सूक्ष्म कारण उपाधि की दृष्टिते जो विराट् विश्वादिक रूपभान होवे है सो मिथ्या है, चेतनमात्रही सत्य है सो चेतन सर्वदेह रहित है। काहेते ? १-विराट् और विश्वका जो भेद है सो उपाधि तो दोनोंकी यद्यपि स्थूल है, तथापि समष्टिव्यष्टि उपाधिते तिनका भेद है, याते स्वरूपते भेद नहीं। तैसे तैजसका हिरण्यगर्भते भेद भी समष्टिव्यष्टि उपाधिते है स्वरूपते नहीं। तैसे ईश्वरते प्राज्ञका भेद भी समष्टिव्य-ष्टिउपाधिके भेदते है स्वरूपते नहीं। १—ऐसे प्राज्ञ का ईश्वरते अभेद है। २-तैजसका हिरण्यगर्भते अभेद है। ३-तथा विश्वका विराट्ते अभेद है या प्रकारते स्थूल उपाधि वाले का सूक्ष्म उपाधिवालेते वा कारण उपाधि वालेते भेद नहीं। काहेते ? स्थूल सूक्ष्म कारण उपाधि की दृष्टि त्यागेते चेतन स्वरूप में किसी प्रकार का भेद प्रतीत होवे नहीं और अनात्मा से भी चेतन का भेद नहीं काहेते ? अनात्मदेहादिक अविद्या काल में प्रतीत होवे हैं, परमार्थ से नहीं तिनका भी चेतन से भेद बने नहीं। ऐसे सर्व भेद रहित, असङ्ग, निर्विकार, नित्य-

मुक्त, ब्रह्मरूप आत्मा ओंकार का लक्ष्य स्वयंप्रकाशरूप तिस उपासककूँ भाक होवे है। ताते हिरण्यगर्भ लोक-वासीकूँ संसार होवे नहीं।

यद्यपि महावाक्य के विवेक विना ज्ञान होवे नहीं। तथापि ओंकार का विवेकही महावाक्य का विवेक है। १—स्थूल उपाधि सहित चेतन अकार का वाच्य है स्थूल उपाधि को त्याग के चेतनमात्र अकार का लक्ष्य। २—तैसे सूक्ष्म उपाधि सहित चेतन उकार का वाच्य है। सूक्ष्म उपाधिको त्यागि के चेतनमात्र उकार का लक्ष्य है। ३—कारण उपाधि सहित चेतन मकार का वाच्य है। कारण उपाधिकूँ त्याग के चेतन मात्र मकार का लक्ष्य है। इस रीति से १-उपाधि सहित विश्वादिक अकारादिमात्रा के वाच्य हैं, २-उपाधि रहित चेतन सर्व मात्रा के लक्ष्य हैं। १-तैसे नामरूप सकल उपाधिसहित चेतन ओंकार वर्ण का वाच्य है। २-नाम रूप सकल उपाधि रहित चेतन ओंकार वर्ण का लक्ष्य है। ऐसे ओंकार का और महावाक्य का अर्थ एक ही है। याते ओंकार के विवेकतें अद्वैतज्ञान होवे है। ऐसे आचार्य के मुखतें श्रवण करके अदृष्टि नाम जो मध्यम शिष्य सो उपासना में प्रवृत्त होय के ज्ञान द्वारा परम पुरुषार्थ मोक्षकूँ प्राप्त हुवा ॥ १६८ ॥

निर्गुण उपासनामें जाका अधिकार नहीं, ताको कर्तव्य कहे हैं—

सवैया-छन्द।

जो यह निर्गुणध्यान न ह्वै तो, सगुणईश करि मनको धाम।
सगुणउपासनहू नहिं ह्वै तो, करि निष्कामकर्म अभिराम॥
जो निष्कामकर्महू नहिं ह्वै, तो करिये शुभकर्म सकाम।
जो सकामकर्महु नहिं होवे, तौ शठ बारबार मरिजाम॥१६९

दोहा।

ओंकारको अर्थ लखि, भयो कृतार्थ अदृष्टि।
पढ़ै जु याहि तरंग तिहि, दादू करहु सुदृष्टि॥१७०॥

इति श्रीगुरुवेदादिव्यवहारिकप्रतिपादनमध्यमाधिकारी साधननिरूपणं नाम पञ्चमस्तरङ्गः समाप्तः॥५॥

षष्ठस्तरंगः ६।



गुरु वेदादिसाधन मिथ्यावर्णन।

कनिष्ठाधिकारीको उपदेशका प्रकार।

दोहा।

चेतन भिन्न अनात्म सब, मिथ्यास्वप्नसमान।
यों सुनि बोल्यो तीसरो, तर्कदृष्टि मतिमान॥१॥

उपदेशका प्रकार

१--चतुर्थ तरङ्गमें उत्तम अधिकारीकूँ उपदेशका प्रकार कह्या। पञ्चमतरङ्गमें मध्यम अधिकारीकूँ कह्या। या तरंगमें कनिष्ठ अधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कहे हैं।

जाकूँ शङ्का बहुत उपजे ताकी यद्यपि बुद्धि तीव्र होवे है तथापि वह कनिष्ठ अधिकारी है। यह तरंग युक्तिप्रधान है, याते सुने अर्थमें जाकूँ कुतर्क उपजे ताकूँ इस तरंग का उपयोग है। कुतर्क दूषितबुद्धि कर्मनिष्ठ अधिकारी होवे है। ताकूं उपदेशका प्रकार या तरंगमें है। पहले तरंगमें प्रणव उपासना और जगत्की उत्पत्तिनिरूपणसे पूर्व यह कह्या:--जो चेतनसे भिन्न अज्ञान और ताका कार्य अनात्म कहिये है सो अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्याइ मिथ्या हैं। इस बातकूं सुनिके दोनों भाइयोंकूँ प्रश्नते उपराम देखिके तर्कदृष्टि प्रश्न करे है॥ १ ॥

दोहा।

पहिली जाने वस्तु की, स्मृति स्वप्न में होय।
जाग्रत में अज्ञात अति, ताहि लखै नहिं कोय ॥२॥

पूर्व जो अत्यन्त अज्ञातपदार्थ है, याका स्वप्नमें अज्ञान होवे नहीं। किन्तु जाग्रतमें जाका अनुभव ज्ञान होवे ताकी स्वप्नमें स्मृति होवे है याते स्मृतिज्ञान के विषय जाग्रत् के पदार्थ सत्य होनेते तिनका स्वप्नमें स्मृतिरूप ज्ञान भी सत्य है, याते स्वप्नके दृष्टान्तसे जाग्रतके पदार्थनकूँ मिथ्या कहना सम्भवे नहीं ॥ २ ॥

अन्य प्रकारते स्वप्नज्ञानके विषय पदार्थनकूं सत्यता प्रतिपादन करें हैं--

❀ दोहा ❀

अथवा स्थूलहिं लिङ्ग तजि, बाहिर देखन जाय ।
गिरि समुद्रवनबाजि गज, सो मिथ्याकिहिं भाय ॥२॥

अथवा कहिये और प्रकारतें स्वप्न का ज्ञान और ताके विषय पदार्थ सत्य हैं मिथ्या नहीं । काहेते ? स्वप्नावस्थाके स्थूलशरीरकूँ त्यागके लिंग शरीर बाहिर निकरके साचे गिरिसमुद्रादिकनकूँ देखे है, याते स्वप्न मिथ्या नहीं ॥ ३ ॥

❀ उत्तर दोहा ❀

यह हस्ती आगे रखा, ऐसा होवे ज्ञान ।
स्वप्नमांहि स्मृतिरूप सो, कैसे होय सुजान ॥४॥

१—पूर्वकाल संबंधीपदार्थ का ज्ञान स्मृति होवे है जैसे पूर्व देखे हस्तीकी " सो हस्ती " ऐसी स्मृति होवे है । २—" यह हस्ती सन्मुख स्थित है" ऐसा ज्ञान स्मृति नहीं किन्तु प्रत्यक्ष कहिये है और स्वप्नमें तो "यह हस्ती आगे स्थित है, यह पर्वत है, यह नदी है " ऐसा ज्ञान होवे है याते जाग्रत में देखे पदार्थन की स्वप्न में स्मृति नहीं, किन्तु हस्तिआदिकनका प्रत्यक्ष ज्ञान होवे है ।

जो ऐसे कहैः—"जाग्रतमें जाने पदार्थनकाही स्वप्नमें ज्ञान होवे है, अज्ञात पदार्थ का ज्ञान नहीं होवे, याते जाग्रत् पदार्थन के ज्ञानके संस्कारनते स्वप्न के ज्ञान की उत्पत्ति होवे है । संस्कारजन्य ज्ञान स्मृति कहिये है । याते

स्वप्न का ज्ञान स्मृतिरूप है।" सो शङ्का बने नहीं काहेते ? प्रत्यक्षज्ञान दो प्रकार का होवे है। १–एक अभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवे है। २–दूसरा प्रत्यभिज्ञा रूप प्रत्यक्ष होवे है। १-केवल इंद्रियसंबंधते जो ज्ञान होवे सो अभिज्ञा प्रत्यक्ष कहिये है। जैसे नेत्रके संबंधते हस्ती का "यह हस्ती है" ऐसा ज्ञान अभिज्ञाप्रत्यक्ष है और पूर्व ज्ञान के संस्कारनते और इन्द्रियसम्बन्धते जो ज्ञान होवे सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है। जैसे–पूर्व देखे हस्ती का "सो हस्ती यह है" ऐसा ज्ञान होवे सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है, तहाँ पूर्व हस्तीके ज्ञानके संस्कार और हस्ती से नेत्र का संबंध प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षका हेतु है। याते 'संस्कारजन्य ज्ञान स्मृतिरूपही होवे है यह नियम नहीं। किन्तु प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष भी संस्कारजन्य होवे है। परन्तु इन्द्रियसंबंध विना केवल संस्कारजन्य ज्ञान होवे सो स्मृतिज्ञान कहिये है' १–स्वप्न में हस्ती आदिकन का ज्ञान केवल संस्कार जन्य नहीं। किन्तु निद्रारूप दोष जन्य है और हस्ती आदिकनकी न्याईं स्वप्नमें कल्पित इन्द्रिय भी हैं, याते इन्द्रियजन्य हैं, यद्यपि स्वप्न के पदार्थ साक्षीभास्य हैं, इन्द्रियजन्य ज्ञान के विषय नहीं, तथापि अविवेकी की दृष्टिते स्वप्नका ज्ञान इन्द्रियजन्य कहिये है। इस रीतिसे स्वप्नका ज्ञान जाग्रतके पदार्थनकी स्मृति नहीं। २-निद्रा से जाग के पुरुष ऐसे कहें हैं:–" मैं स्वप्न में हस्ति

आदिकन कूँ देखता भया' जो हो हस्ति आदिकन की
स्वप्नमें स्मृति होवे तो जागिके ऐसा कह्या चाहिये "मैं
स्वप्न में हस्ती आदिकन कूँ स्मरण करता भया" ऐसे
कोई नहीं कहता, याते जाग्रत्के पदार्थन की स्वप्न में
स्मृति नहीं । ३-"जाग्रत्में जो देखे सुने पदार्थ हैं तिन
काही स्वप्नमें ज्ञान होवे है" यह नियम नहीं, किन्तु जाग्रत्
में अज्ञात पदार्थनका ही स्वप्न में ज्ञान होवे है. कदाचित
स्वप्नमें ऐसे विलक्षणपदार्थ प्रतीत होवे हैं जो सारे जन्म
विषे कभी देखे सुने होवे नहीं, याते तिनका ज्ञान स्मृति
नहीं । ४-"याहि इस जन्मके पदार्थनके ज्ञानके संस्कार
ही स्मृतिके हेतु हैं" यह नियम नहीं किन्तु अन्य जन्म के
ज्ञानके संस्कारन ते भी स्मृति होवे । काहेते ? अनुकूल-
ज्ञानते प्रवृत्ति होवे है । अनुकूल ज्ञान विना प्रवृत्ति होवे
है ताका हेतु बालककूँ भी "स्तनपान मेरे अनुकूल है"
ऐसा ज्ञान होवे है । तहाँ अन्यजन्मविषे जो स्तनपान में
अनुकूलता अनुभव करी है, ताके संस्कारनते बालककूं
प्रथम अनुकूलता की स्मृति होवे है । याते जन्मांतर के
ज्ञानसंस्कारनते भी स्मृति होवे है । तैसे इस जन्म विषे
अज्ञातपदार्थनकी भी अन्य जन्म के ज्ञानके संस्कारनते
स्वप्नविषे स्मृति सम्भवे है । तथापि कोई पदार्थ स्वप्न में
ऐसे प्रतीत होवे हैं, जिनका जाग्रत में किसी जन्म विषे
ज्ञान सम्भवे नहीं । जैसे अपने मस्तकछेदनकूं आप नेत्र-

जैसे स्वप्न में देखे है, तहाँ अपना मस्तक छेदन नेत्र से जाग्रत् में देखे नहीं। याते जाग्रत् पदार्थन के ज्ञान के संस्कारनतें स्वप्न में स्मृति नहीं। ५—ऐसे स्वप्न कूं स्मृतिरूप खण्डन में अनेक युक्ति ग्रन्थकारों ने कही हैं, परन्तु स्वप्नकूं स्मृति मानने में पूर्वोक्त दूषण अति प्रबल है। जो स्मृति ज्ञान का विषय सन्मुख प्रतीत होवे नहीं और स्वप्नके हस्ती आदिक सन्मुख प्रतीत स्वप्नकाल में होवे हैं याते हस्ती आदिकन की स्वप्न में स्मृति नहीं "लिङ्ग शरीर बाहिर निकसि के साचे गिरि समुद्रादि-कनकूँ देखे है ॥ ४ ॥

ताका उत्तर–दोहा।

बाहिर लिङ्ग जु नीकसे, देह अमङ्गल होय।
प्राण सहित सुन्दरलसे, याते लिङ्गहि जोय ॥ ५ ॥

जो स्थूल शरीरते निकसिके लिङ्गशरीरके बाहर साचे गिरिसमुद्रादिकन को देखे तो लिङ्गशरीर के निकसनेते जैसे मरण अवस्थामें शरीर भयङ्कर रूप प्रतीत होवे है तैसे स्वप्नअवस्थाविषे भी लिङ्ग के अभावते स्थूल शरीर अमङ्गल कहिये भयङ्कर हुआ चाहिये, तैसे प्राण रहित मृतकसमान हुआ चाहिये और स्वप्न अवस्थामें ऐसा होवे नहीं किन्तु स्वप्न अवस्थामें स्थूलशरीर प्राणसहित होवे है और जाग्रतकी न्याई सुन्दर कहिये मङ्गलरूप होवे है तैसे स्थूल शरीर के बाहिर लिङ्ग शरीर स्वप्नावस्था में

निकसे नहीं। और जो ऐसे कहैं-स्वप्नअवस्था में प्राण तो जावे नहीं किन्तु अन्तःकरण और इन्द्रिय बाहिर पर्वतादिकन में जायके तिनकूं देखें हैं। बाहिर नहीं जावे यातें स्थूलशरीर मरणअवस्था के समान भयङ्कर होवे नहीं। और प्राणका बाहिर जाने का कछु प्रयोजन भी नहीं। काहेते ? प्राणमें ज्ञान शक्ति नहीं किन्तु क्रियाशक्ति है, यातें बाहिरके पदार्थन के ज्ञान की जिनमें सामर्थ्य है सोई जावे हैं, ज्ञानशक्ति अन्तःकरण और इन्द्रियन में है प्राणकी न्याइं कर्मेन्द्रियनमें भी ज्ञानशक्ति नहीं, क्रियाशक्ति है। यातें प्राण और कर्मेन्द्रिय शरीरमें रहे हैं यातें मरणनिमित्तते दाहादिकनकी रक्षा होवे है और बाहिर अन्तःकरण ज्ञानेन्द्रिय जावे है, सांचे पर्वतादिकन कूँ देखिके प्राण और कर्मेन्द्रियनके समीप आवे है सो भी बने नहीं काहेते ?

१-स्थूलसूक्ष्म समाजमें सर्वका स्वामी प्राण है। प्राण बिना शरीरकूँ देखिके क्षणमात्र भी रहने नहीं देते। बाहर ले जावें हैं दाह करे हैं स्पर्शते स्नान करे हैं यातें स्थूलशरीर का प्राण है। तैसे सूक्ष्म शरीर में भी प्रधान प्राण है। प्राण इन्द्रियादिक परस्पर श्रेष्ठता विवाद करिके प्रजापतिके समीप जायके कहया, हे भगवन् ? हमारे विषे कौन श्रेष्ठ है ? तब प्रजापतिने कहया तुम सारे स्थूल शरीर में प्रवेश करके एक एक निकसते जावो जिसके निकसते

शरीर अमङ्गलरूप होइ के गिरि पड़े सो तुम्हारे में श्रेष्ठ है प्रजापति के वचनतें नेत्रादिक इन्द्रियनतें एक एक के अभावतें अन्धादिरूप शरीरकी स्थिति देखी और प्राण के निकसने का उद्योग करते ही शरीर गिरने लगा तब सर्वते यह निश्चय किया हमारा सर्वका स्वामी प्राण है। इस कारणतें जितने शरीर में प्राण रहैं उतने रहे हैं शरीरतें प्राणके निकसते ही सारे निकस जावे हैं। यातें सूक्ष्मसमाज का राजा की न्याई प्राण ही प्रधान है, ताके निकसे बिना अन्तःकरण ज्ञान इन्द्रिय कोई बाहिर निकसे नहीं।

२–किंवा अन्तःकरण और ज्ञानेन्द्रिय भूतनके सत्व गुणनके कार्य हैं तिनमें ज्ञानशक्ति है क्रिया शक्ति नहीं। प्राणमें क्रियाशक्ति है ताके बलतें मरण समय लिङ्ग शरीर इस स्थूलकूँ त्यागके लोकांतर कूँ जावे है और प्राण केही बलते इन्द्रियद्वारा अन्तःकरणकी वृत्ति बाहिर घटादिकनके समीप जावे है और प्राणके सहारे बिना अन्तःकरणादिकनका बाहिर गमन सम्भवे नहीं इसी कारणतें योग शास्त्रमें कहा है: "प्राण निरोधबिना मनका निरोध होवे नहीं। प्राणके संचारतें मनका संचार होवे है, प्राणनिरोधसे मनका निरोध होवे है," यातें मनका निरोधरूप जो राजयोग ताकी जिसकूँ इच्छा होवे सो प्राणनिरोधरूप हठयोगका अनुष्ठान करे याके भी प्राणके अधीन अन्तः-

कारणका गमन है ताके निकसे बिना अन्तःकरण ज्ञान-इन्द्रिय बाहिर निकसे नहीं ।

३-स्वप्न अवस्था में स्थूल शरीर प्राण समेत प्रतीत होवे है । यातें "बाहिर जायके साँचे पदार्थनकूं स्वप्न में देखे है" यह सम्भव नहीं ।

४-किंवा कोई पुरुष अपने सम्बन्धी से स्वप्न में मिलि के जो व्यवहार करे तो जागि के वह सम्बन्धी मिले तब ऐसे नहीं कहता कि, रात्रि को हम मिले थे। और अमुक व्यवहार किया था और पूर्वपक्ष की रीति से तो बाहिर निकसिके तो सम्बन्धी से मिलि के व्यवहार साँचा किया है तो मिलने का और व्यवहार का ज्ञान सम्बन्धी कूं चाहिये और मिले जब सम्बन्धी ने कह्या चाहिये और सिद्धान्त में तो सम्बन्धी और ताका मिलाप सब अन्तर ही कल्पित है ।

५-किंवा जो बाहिर जायके साँचे पदार्थनकूं देखे तो
रात्रि में सोया पुरुष हरिद्वार में मध्याह्न के सूर्यते नपेमहल
गङ्गाते पूर्व और नीलपर्वत गङ्गाते पश्चिम देखे है। तहाँ
रात्रि में मध्याह्न का सूर्य नहीं गँगाते पूर्वदिशा हरिद्वारपुरी
नहीं, गँगाते पश्चिम नीलपर्वत नहीं । याते भी साचे
पदार्थनका देखना स्वप्नमें असम्भव है और जाग्रत्की स्मृति
अथवा ईश्वरकृत पर्वतादिकनका बाहिर निकसिके स्वप्न में
ज्ञान होवे है, इन दोनों पक्षनका निराकरण किया है ॥५॥

सिद्धान्त कहे हैं—दोहा।

यातें अन्तर ऊपजै, त्रिपुटी सकल समाज।
वेद कहत या अर्थ कूं, सब प्रमाण शिरताज॥ ६॥

जाग्रत् के पदार्थन की स्मृति और बाहिरी लिंग का निकसना तो सम्भवे नहीं। तथापि जाग्रतकी न्याई ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय त्रिपुटी स्वप्न में प्रतीत होवे है। यातें कण्ठ की नाडीके अन्तर ही सब कुछ उत्पन्न होवे है। सब प्रमाण का शिरताज कहिये प्रधान जो वेद है ताने यह कह्या है:-उपनिषद् में यह प्रसंग है:-"जाग्रत्के पदार्थ स्वप्न में नहीं प्रतीत होवे, किन्तु रथ और घोड़े तथा मार्ग, तैसे रथमें बैठनेवाले स्वप्नमें नवीन उत्पन्न होवे हैं" यातें पर्वत समुद्र नदी वन ग्राम पुरी सूर्य चन्द्र जो कुछ स्वप्न में दीखे है सो नवीन उपजे है। जो स्वप्न में पर्वतादिक नहीं होवे तो तिनका प्रत्यक्षज्ञान स्वप्न में होवे है सो नहीं हुवा चाहिये; काहेतें? विषयसे इन्द्रियका संबंध वा अन्तःकरणकी वृत्तिका सम्बन्ध प्रत्यक्षज्ञानका हेतु है। यातें पर्वतादिक विषय और तिनके ज्ञानके साधन इन्द्रिय तथा अन्तःकरण सारे उत्पन्न होवे हैं।

यद्यपि स्वप्न के पदार्थ शुक्तिरजतादिकनकी-न्याई साक्षीभास्य हैं, अन्तःकरण इन्द्रिय का स्वप्न के ज्ञानमें उपयोग नहीं। यातें ज्ञेय जो पर्वतादिक हैं तिनकी ही

उत्पत्ति स्वप्न में माननी योग्य है । ज्ञाता ज्ञान और इन्द्रियनकी उत्पत्ति स्वप्नमें माननी योग्य नहीं । १-तथापि जैसे स्वप्नमें पर्वतादिक प्रतीत होवे है तैसे इन्द्रिय अन्तः-करण प्राण सहित स्थूल शरीर भी स्वप्न में प्रतीत होवे है याते तिनकी भी उत्पत्ति माननी चाहिये । २-किम्वा स्वप्न के पदार्थन विषे नेत्रादिकन की विषयता भान होवे है सो व्यावहारिक नेत्रादिकन की विषयता तौ स्वप्न के प्रातिभासित पदार्थन विषे बने नहीं । काहेते? समानसत्ता वाले पदार्थ ही आपस में साधक बाधक होवे हैं, यह पञ्चमतरङ्गमें प्रतिपादन करा है । याते व्याव-हारिक नेत्रादिक शरीर में हैं भी तिनते स्वप्न के पदार्थन की विषम सत्ता होनेते तिनके ज्ञान की विषयता स्वप्न के पर्वतादिकनकूँ बने नहीं । ३-किम्वा व्यावहारिक जो इन्द्रिय हैं सो अपने अपने गोलकोंकूँ त्यागके कार्य करने में समर्थ होवे नहीं और स्वप्न अवस्था में हस्तपद वाकके गोलक तौ निश्चल दूसरे कूँ दीखे हैं और हस्तमें द्रव्य ग्रहण करके पुकारता साधन करे है याते स्वप्न में इन्द्रियनकी उत्पत्ति अवश्य माननी चाहिये । ४-तैसे सुख दुःख और तिनका ज्ञान तथा सुख दुःखज्ञानका आश्रय माता स्वप्न में प्रतीत होवे है और बिनाहुये पदार्थ की प्रतीत होवे नहीं याते सारा त्रिपुटी समाज स्वप्न में उत्पन्न होवे है ।

अनिर्वचनीयख्याति की यह रीति हैः-जितने भ्रमज्ञान हैं तिनके विषय सारे अनिर्वचनीय उत्पन्न होवे हैं। विषय विना कोई ज्ञान होवे नहीं यह सिद्धान्त है और शास्त्रनके मतमें तो अन्य पदार्थन का अन्यरूपते भान होवे सो भ्रम कहिये है। सिद्धान्त में तो जैसे-पदार्थ तैसाही ज्ञान होवे है। याते भ्रमस्थल में भी विषय की उत्पत्ति अवश्य होवे है। विषयविना ज्ञान होवे नहीं, इस रीतिसे स्वप्न में त्रिपुटी की प्रतीति होनेते सारा समाज उत्पन्न होवे है। स्वप्न के उत्पत्ति की शङ्का करके अन्तः करण वा अविद्या के परिणाम और चेतन के विवर्त स्वप्न की सिद्धि है।

याके विषे ऐसी शङ्का होवे हैः-स्वप्न में जो पदार्थ प्रतीत होवे हैं तिनकी उत्पत्ति अङ्गीकार होवे तो जैसे स्वप्न दृष्टान्त से जाग्रत्के पदार्थ मिथ्या सिद्धान्त में कहे हैं, तैसे जाग्रत के पदार्थन की न्याईं उत्पत्ति वाले होनेते स्वप्न के पदार्थ भी सत्य हुये चाहिये और स्वप्न के मांहि पदार्थन की उत्पत्ति नहीं माने तब यह दोष नहीं। काहेते? जाग्रत के पदार्थ तो उत्पन्न हुए प्रतीत होवे हैं और स्वप्न में पदार्थ बिना हुये प्रतीत होवे हैं याते स्वप्न में बिना हुए पदार्थन का ज्ञान भ्रमरूप होवे है, तिनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं ॥ ६॥

ता शंका का समाधान दोहा।

साधनसामग्री बिना, उपजै झूठ सु होय।
बिन सामग्री ऊपजै, यों तिहि मिथ्या जोय ॥७॥

१-जिस वस्तु की उत्पत्ति में जितना देश कालादि सामग्री, साधन कहिये कारण है उतनी सामग्री बिना उपजे सो मिथ्या कहिये है और स्वप्न के हस्ती आदिकनकी उत्पत्ति के योग्य देशकाल है नहीं बहुत काल में और बहुत देश में उपजने योग्य हस्ती आदिक क्षण-मात्र काल में सूक्ष्मकण्ठदेश में उपजै है याते मिथ्या हैं २-यद्यपि स्वप्न अवस्था में कालदेश भी अधिक प्रतीत होवे हैं तथापि अन्यपदार्थ न की न्याईं स्वप्न में अधिक काल और अधिक देश भी अनिर्वचनीय प्रति भासिक उत्पन्न होवे है। काहेते ? विषयविना प्रत्यक्षज्ञान होवे नहीं और स्वप्नमें अधिक.देशकाल का ज्ञान होवे है, व्यावहारिकदेशकाल न्यून है याते प्रतिभासिक उत्पन्न होवे हैं, परन्तु स्वप्न अवस्था में उपजे जो प्रतिभासिक देशकाल सो स्वप्न अवस्था के हस्ती आदिकन के कारण नहीं। काहेते ? कारण होवे सो पहले उपजै है और कार्य पीछे उपजै है। स्वप्न के देशकाल और हस्ती आदिक एकही समय में होवे हैं, याते तिनका कार्यकारण भाव बने नहीं और व्यावहारिक देशकाल न्यून हैं, हस्ती आदिकनके योग्य नहीं याते देशकालरूप सामग्री बिना

उपजै हैं। याते स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं। ३-और भी मातासे आदिलेके हस्ती आदिकन की सामग्री स्वप्न में नहीं है। यद्यपि स्वप्न में प्राणी पदार्थन के माता, पिता भी प्रतीत होवे हैं तथापि स्वप्न के माता, पिता पुत्र की उत्पत्तिके कारण नहीं। काहेते? माता, पिता और पुत्र, एकक्षण में साथ उपजै हैं याते तिनका कार्यकारणभाव नहीं। जा निद्रासहित अविद्यासे स्वप्नके पदार्थ उपजै हैं सोई अविद्या तिन पदार्थनविषे मातापना पितापना और पुत्रपना उपजावे हैं। इस रीति से स्वप्न के पदार्थन की उत्पत्तिमें और कोई सामग्री नहीं किन्तु अविद्याही निद्रा-रूप दोषसहित कारण है औ दोषसहित अविद्या से जन्य होवे सो शुक्तिरजत की न्याईं मिथ्या होवे है। याते स्वप्नके पदार्थ सत्य नहीं मिथ्या हैं। तिनका उपादान कारण अन्तःकरण है अथवा साक्षात् अविद्याही तिनका उपादानकारण है। १-पहले पक्षमें साक्षी चेतन स्वप्नका अधिष्ठान है २-दूसरे पक्षमें ब्रह्म चेतन स्वप्न का अधि-ष्ठान है। इस रीतिसे अन्तःकरण का अथवा अविद्याका परिणाम और चेतनका विवर्त स्वप्न है।

थाके विषै ऐसी शङ्का होवे है:-दूसरे पक्षमें ब्रह्म चेतन स्वप्नका अधिष्ठान कह्या और अविद्या उपादान कारण कही तहाँ अधिष्ठानज्ञान से कल्पित की निवृत्ति होवे है और स्वप्न का अधिष्ठान ब्रह्म है, याते ब्रह्मज्ञान बिना

अज्ञानीकूं जागरणमें स्वप्नकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये।

अन्य शंका-जैसे स्वप्न का अधिष्ठान ब्रह्म और उपादानकारण अविद्या है, तैसे वेदान्तसिद्धान्तमें जाग्रत के व्यावहारिक पदार्थनका भी अधिष्ठान ब्रह्म है और उपादानकारण अविद्या है, याते १-जाग्रत के पदार्थनकूँ व्यावहारिक कहैं हैं। २-स्वप्नकूँ प्रातिभासिक कहैं हैं, ऐसा भेद नहीं हुआ चाहिये। काहेते?दोनोंका अधिष्ठान ब्रह्म है और उपादानकारण अविद्या है। याते १-जाग्रत स्वप्न दोनों व्यावहारिक हुयेते चाहिये। २-अथवा दोनूँ प्रातिभासिक हुये चाहिए।

दो दोनों शँका बने नहीं। काहेते? प्रथम शँका का यह समाधान है-निवृत्ति दो प्रकारकी होवे है, यह पूर्वख्याति निरूपणमें कहा है। १-कारणसहित कार्य का विनाशरूप अत्यन्तनिवृत्ति तो स्वप्न की जाग्रत् में ब्रह्मज्ञानविना बने नहीं २-परन्तु दण्डके प्रहरते जैसे घटका मृत्तिका में लय होवे है, तैसे स्वप्न का हेतु जो निद्रा दोष ताके नाशते वा स्वप्न की विरोधी जाग्रतकी उत्पत्तिते अविद्यामें लयरूप निवृत्ति स्वप्नकी ब्रह्मज्ञान बिना संभवे है।

और जो शंका करी—"जाग्रत् स्वप्न दोनों समान हुये चाहिये" सो बने नहीं। काहेते ? १-जाग्रत्के देहादिक पदार्थ की उत्पत्तिमें तो अन्य दोष रहित केवल अनादि अविद्याही उपादानकारण है। २-स्वप्न पदा-

र्थनमें तो सादिनिद्रादोष भी अविद्या का सहायक है। १-याते अन्यदोषरहित केवल अविद्याजन्यव्यावहारिक कहिये है। २-सादिदोषसहित अविद्याजन्य प्रातिभासिक कहिये हैं। १-स्वप्नके पदार्थ निद्रादोषसहित अविद्या-जन्य होनेते प्रातिभासिक हैं। २-जाग्रत्के पदार्थ अन्य दोषरहित अविद्याजन्य होनेते व्यावहारिक कहिये हैं। इस रीतिसे स्वप्नके पदार्थनमें जाग्रत्पदार्थनते विलक्ष-णता है, परन्तु यह संपूर्ण तीन प्रकारकी सत्ता मानिके स्थूलदृष्टिसे कहीहै। विचारदृष्टिसे तो १-तीनिप्रकारकी सत्ता बने नहीं। २-जाग्रत् स्वप्नकी परस्पर विलक्षणता भी बने नहीं।

यद्यपि वेदान्तपरिभाषादिकग्रन्थनमें पूर्व प्रकारते व्यावहारिक और प्रातिभासिकपदार्थनका भेद कह्या है। याते तीनि सत्ता मानी है। तैसे विद्यारण्यस्वामीने भी तीनि सत्ता मानी हैं। काहेते? यह प्रसंग तिन्होंने लिखा है। दो प्रकारके देहादिक पदार्थ हैं। १-एक तो ईश्वररचित हैं सो बाह्य हैं और दूसरे जीव के संकल्प रचित हैं सो मनोमय कहिये हैं, और अन्तर हैं तिन दोनोंमें २-जीवसंकल्पते रचित अन्तर मनोमय साक्षी-भास्य हैं। और ईश्वररचित बाह्य हैं सो प्रमाता प्रमा-णके विषय हैं। १-अन्तर मनोमय देहादिकही जीवकूं सुखदुःखके हेतु हैं और बाह्य जो ईश्वर रचित हैं

सो सुखदुःखके हेतु नहीं । ४-याते मनोमयपदार्थनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अपेक्षित है और बाह्य प्रपंच सुख दुःखका हेतु नहीं याते ताकी निवृत्ति अपेक्षित नहीं । जैसे दो पुरुषनके दो पुत्र विदेशमें गये होवें तिनमें एकका पुत्र मरिजावे, एकका जीवता होवे सो जीवता पुत्र बड़ी विभूतिकूं प्राप्त होयके किसी पुरुष द्वारा अपने पिताकूं अपनी विभूतिप्राप्तिका और द्वितीय के मरणका समाचार भेजे, तहां समाचार सुनावनेवाला दुष्ट होवे, याते जीवते पुत्रके पिताकूं कहै तेरा पुत्र मरिगया और मरे पुत्रके पिताकूं कहै तेरा पुत्र शरीरते नीरोग है बड़ी विभूतिकूं प्राप्त हुआ है थोड़े कालमें हस्ति आरूढ बड़े समाजते आवेगा । ता वंचक वचनकूं सुनिके १-जीवते पुत्रका पिता रोवे है। बड़े दुःखको अनुभव करे है और मरे पुत्रका पिता बड़े हर्षकूं प्राप्त होवे है । इस रीतिसे देशान्तरविषे १-ईश्वररचित पुत्र जीवे है तो भी मनोमयपुत्र मरि गया याते दुःख होवे है। ईश्वर रचित जीवतेका सुख होवे नहीं । २-तैसे दूसरेका ईश्वररचित पुत्र मरिगया है ताका दुःख होवे नहीं । मनोमय जीवेहै ताका सुख होवे है। याते १-जीवसृष्टिही सुखदुःख की हेतुहै ।२-ईश्वरसृष्टि सुखदुःखकी हेतु नहीं ।इस रीतिसे विद्यारण्यस्वामीने जीवसृष्टि दो प्रकारकी कहीहै । तहां १-जीवसृष्टि प्रातिभासिक है। २-ईश्वर सृष्टि व्याव-

हारिक है,ऐसे और ग्रन्थकारोंने भी सत्ता तीनि प्रकारकी कही है। १-चेतनकी परमार्थसत्ता है और चेतनसें भिन्न जड़पदार्थनकी दो प्रकारकी सत्ता है। एक व्यावहारिक-सत्ता और दूसरी प्रातिभासिकसत्ता है। २-सृष्टि के आदिकालमें ईश्वर संकल्पते उपजे जो केवल अविद्याके कार्यपंचभूत और तिनके कार्यकी व्यावहारिक सत्ताहै। ३-दोषसहित अविद्याके कार्य स्वप्न शुक्तिरजतादिकन की प्रातिभासिकसत्ताहै। इस रीति से १-जाग्रत्पदार्थन की व्यावहारिकसत्ता। २-स्वप्न की प्रतिभासिक सत्ता कही है। तथापि अनात्मपदार्थनकी सबकी प्रातिभासिकही सत्ता हैं, याते दो प्रकारकीही सत्ता है १-चेतनकी परमार्थ सत्ता है। २-चेतन से भिन्न सकल अनात्माकी प्रतिभासिक ही सत्ता है, जाग्रत् स्वप्न के पदार्थन की किंचित् मात्र भी विलक्षणता सिद्ध होवे नहीं। या उत्तमसिद्धान्तकूं प्रतिपादन करे हैं ॥ ७ ॥

चौपाई ॥

बिन सामग्री उपजत यातैं। स्वप्नसृष्टि सब मिथ्या तातैं॥
देशकालको लेश न जामैं। सर्व जगत् उपजतहै तामैं॥
स्वप्न समान झूठ जगजानहु।लेश सत्यताकूं मत मानहु॥
जाग्रतमाहिं स्वप्न नहिजैसे। स्वप्न माहिं जाग्रतनहितैसे॥

देशकालसामग्री बिना स्वप्नके हस्तीपर्वतादिक उपजें हैं याते मिथ्या कहिये हैं तैसे आकाशादिक प्रपंच की

सृष्टि ब्रह्मते होवे है तो ब्रह्मविषे देशकाल का लेश भी नहीं है। स्वप्नविषे हस्तीपर्वतादिकन के योग्य तो देशकाल नहीं है तथापि अल्प देशकाल है, वैसे आकाशादिकन की सृष्टि में अल्पदेशकाल भी नहीं है काहेतें ? देशकालरहित परमात्मा से आकाशादिकनकी सृष्टि कही है। इस कारणते १-तैत्तिरीय श्रुति में आकाशादिकन की क्रमते सृष्टि कही है, देशकाल की सृष्टि नहीं कही। २-सूत्रकार भाष्यकार ने भी देशकाल की सृष्टि नहीं कही। सृष्टि नाम उत्पत्ति का है। तहाँ तैत्तिरीय-श्रुतिका और सूत्रकार भाष्यकार का यही अभिप्राय है:-आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति देशकालसामग्री विना होवे है, याते आकाशादिक स्वप्नकी न्याईं मिथ्या है।

यद्यपि मधुसूदन स्वामी ने देशकाल साक्षात् अविद्या के कार्य कहे हैं, याते मायाविशिष्ट परमात्मा से पहली मायाके परिणाम देशकाल होवे हैं। तिसतें अनन्तर आकाशादिकनकी उत्पत्ति होवे है। याते योग्यदेशकालते आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति सम्भवे है।

तथापि मधुसूदनस्वामी का यह अभिप्राय नहीं:-जो देशकाल प्रथम होवे है और आकाशादिक उत्तर होवें हैं काहेतें ? १-अतीतकाल में होवे सो प्रथम और पूर्व कहिये है। २-भविष्यकालमें होवे सो उत्तर कहिये है, जाकू पाछे कहें हैं। आकाशादिकन की उत्पत्तिते प्रथम

देश काल उपजे हैं, या कहनेतें आकाशादिकन की उत्पत्तिकालतें पूर्वकाल उपहित परमात्मा देश काल का अधिष्ठान है, यह सिद्ध होवेगा। यातें देशकालकी उत्पत्ति में पूर्वकाल की अपेक्षा होवेगा और कालकी उत्पत्ति बिना पूर्वकाल असिद्ध है, यातें आकाशादिकनतें पूर्व कालमें देशकालादिक होवे हैं, यह कहना बने नहीं। किन्तु मधुसूदन स्वामी का यह अभिप्राय है-१-जैसे भूत भौतिक प्रपंच प्रतीत होवे है तैसे देशकाल भी प्रतीत होवे हैं और आत्मासे भिन्न कोई नित्य हैं नहीं यातें देशकाल नित्य नहीं और बिना हुयेकी प्रतीति होवे नहीं। यातें आकाशादिकन की न्याईं देशकाल की भी उत्पत्ति होवे है। सो देशकाल माया के परिणाम हैं और चेतनके विवर्त हैं, जो विवर्त होवे सो किसी का कारण होवे नहीं। यातें आकाशादिक प्रपंच की उत्पत्ति में देशकालकूँ कारणता बने नहीं। २-किम्वा कारण प्रथम होवे है, कार्य उत्तर होवे है आकाशादिक प्रपंचतें देशकाल प्रथम होवे है यह कहना बने नहीं। यह वार्ता नजदीक कहि आये हैं। यातें भी देशकाल कूँ आकाशादिक प्रपंच की कारणता बने नहीं, किन्तु स्वप्न के पिता पुत्रकी न्याईं देशकाल सहित आकाशादिक प्रपंच मायाविशिष्ट परमात्मातें उत्पन्न होवे है, और कोई पदार्थ किसी देशमें किसी कालमें उपजे है

अन्यदेशमें अन्यकालमें नहीं उपजे हैं। इस रीतिसे सारे पदार्थ प्रलयकालमें नहीं उपजे हैं। सृष्टिकाल में उपजे हैं, याते देशकालकूँ कारणता प्रतीति भी होवे है तौ भी जा मायाते देशकाल सहित प्रपञ्च की उत्पत्ति होवे है ता मायाते ही देशकाल में कारणता, अन्यप्रपञ्चमें कार्यता प्रतीत होवे है और आकाशादि प्रपञ्चके देशकाल कारण नहीं याके विषे ऐसी शङ्का होवे है-विना हुये पदार्थन की तौ प्रतीति होवे नहीं और सिद्धान्त में अङ्गीकार नहीं जो विना हुये की प्रतीति माने तौ १-असत्ख्याति का अङ्गीकार होवेगा और विना हुये वन्ध्यापुत्र शश-शृङ्गादिकन की प्रतीति हुई चाहिये। याते विना हुये की प्रतीति होवे नहीं। याते देशकाल में कारणता नहीं होवे तौ देशकालमें सर्व पदार्थन की कारणता माया के बलतें भी प्रतीति नहीं हुई चाहिये और कारणता देशकाल में प्रतीत होवे है, याते देशकाल सर्व प्रपञ्च के कारण है और जो सिद्धान्ती ऐसे कहैं-सर्व प्रपञ्च का कारण ब्रह्म है। ब्रह्म की कारणता देशकाल में प्रतीत होवे है और देशकाल में कारणता नहीं सो भी बने नहीं। काहैते? १-जैसे देशकाल का अधिष्ठान ब्रह्म है, तैसे सर्व प्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है, देशकालमें ही ब्रह्मकी कारणता प्रतीत होवे, अन्यमें नहीं या कहने से कोई हेतु नहीं। याते अधिष्ठानब्रह्म की कारणता देशकाल में प्रतीत होवे तो ब्रह्म

सर्व प्रपञ्चका अधिष्ठान है, याते सर्वप्रपञ्च में कारणता प्रतीत हुई चाहिये। किसीमें कारणता, किसीमें कार्यता, ऐसा भेद नहीं चाहिये। २-किंवा देशकाल में कारणता नहीं है और ब्रह्म में कारणता है सो ब्रह्म की कारणता देशकाल में प्रतीत होवे या कहनेते अन्यथाख्याति का अङ्गीकार होवेगा। काहेते? अन्यवस्तुकी अन्यरूपते प्रतीत कूँ अन्यथाख्याति कहें हैं। देश काल कारण नहीं, याते कारणते अन्यकारण है, तिनकी अन्य रूपते कहिये कारणरूपते प्रतीति मानने में अन्यथाख्याति का अङ्गीकार होवेगा और सिद्धान्तमें अन्यथा ख्याति अङ्गीकार नहीं। जो या स्थानमें अन्यथाख्याति मानें तो शुक्ति में अनिर्वचनीय रूप्य की उत्पत्ति सिद्धान्त में मानी है सो निष्फल होवेगी। काहेते? अन्यथाख्यातिमें दो मत हैं:- एक तो अन्यदेशमें स्थित पदार्थकी अन्य देशमें प्रतीत अन्यथाख्याति, जैसे कान्ताकरमें स्थित रजतकी सन्मुख शुक्तिदेश में प्रतीति अन्यथाख्याति अथवा अन्य पदार्थ की अन्यरूपते प्रतीति अन्यथाख्याति। जैसे शुक्तिकी ही रजतरूपते प्रतीति अन्यथाख्याति। ऐसे सारे भ्रमस्थलमें अन्यथाख्याति से निर्वाह सम्भवे है। अनिर्वचनीयरजतादिकनकी उत्पत्तिकथन असङ्गत होवेगा और जो सिद्धांती ऐसे कहैं:-विषय के समानकार ज्ञान होवे हैं। अन्य वस्तु का अन्यरूपते ज्ञान सम्भवे नहीं। याते रजता-

कारज्ञान का विषय भी अनिर्वचनीयरजत उत्पन्न होवे है। या अद्वैत सिद्धान्तमें कारणते अन्य जो देश,काल, तिनविषे ब्रह्मकी कारणताका ज्ञान सम्भवे नहीं, याते देश कालमें कारणता जो प्रतीत होवे है ताका बिना हुये का अथवा ब्रह्ममें स्थितका भान सम्भवे नहीं, किन्तु देश काल में ही कारणता है ताका भान होवे है, इस रीति से "आकाशादिक प्रपंच के कारण देश काल नहीं" यह कथन असङ्गत है, सो शङ्का बने नहीं। काहेते? ब्रह्म की कारणता देशकाल में प्रतीत होवे है जैसे-जपापुष्प सम्बन्धी स्फटिक में पुष्प की रक्तता प्रतीत होवे है, अधिष्ठान की सत्यता स्वप्न काल में मिथ्या हस्तीपर्वतादिकन में प्रतीत होवे है। तहाँ स्फटिक में अनिर्वचनीय रक्तता की उत्पत्ति का अङ्गीकार नहीं, किन्तु पुष्पकी रक्तता स्फटिक में प्रतीत होवे है। याते श्वेतस्फटिक की रक्त रूपते प्रतीति होनेते रक्तताके ज्ञान में अन्यथा ख्याति ही मानी है, तैसे स्वप्न में मिथ्या-पदार्थन विषे सत्यता प्रतीत होवे। तहाँ अनिर्वचनीय सत्यता तिन पदार्थन विषे उत्पन्न होवे है, यह कथन तो "सत्य मिथ्या है" इस (व्याघातदोष वाले) वचनकी न्याईं सम्भवे नहीं और बिना हुयेकी प्रतीति होवे नहीं। किन्तु स्वप्नके अधिष्ठान चेतनकी सत्यता मिथ्या पदार्थ-नमें प्रतीत होवे है। याते मिथ्या पदार्थन की सत्यरूपते

प्रतीति होनेते सत्यताके ज्ञानमें अन्यथा ख्यातिही मानी है। तैसे अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देशकाल में अन्यथा-ख्याति से प्रतीत होवे है।

जो ऐसे कहैं:-इतने स्थान में अन्यथाख्याति मानें तो सारे भ्रममें अन्यथाख्याति ही माननी चाहिये। सो शङ्का बने नहीं। काहेते? शुक्तिरजतादिकनमें अन्यथा ख्याति मानने में यह दोष कह्या है:-विषयते विलक्षण ज्ञान बने नहीं और जहाँ स्फटिकमें रक्तता का ज्ञान होवे तहाँ रक्तपुष्पका स्फटिकते सम्बन्ध है। याते स्फटिकसम्बन्धी पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवे है। काहेते? अन्तःकरण की वृत्ति जब रक्त पुष्पाकार होवे ताही वृत्ति का विषय रक्तपुष्प सम्बन्धी स्फटिक है, याते पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवे है और तैसे शुक्तिका तो रजत-रूपते ज्ञान सम्भवे नहीं। काहेते? शुक्तिदेशमें अनिर्वचनीय तथा व्यावहारिकरजत तो अन्यमतमें है नहीं, किन्तु शुक्ति है तो शुक्तिके सम्बन्ध से शुक्ति के समानाकार ही अन्तःकरणकी वृत्ति होवेगी, रजताकार अन्तःकरणकी वृत्ति होवे नहीं। याते अविद्याका परिणाम चेतनका विवर्त अनिर्वचनीयरजत और ताका ज्ञान दोनों उत्पन्न होवे हैं और स्फटिकमें रक्तता प्रतीत होवे तहाँ वृत्तिका संबंध स्फटिक और रक्तपुष्प दोनों से होवे है। रक्तपुष्पके संबंधते रक्ताकार वृत्ति होवे है। ता वृत्ति का स्फटिकते भी

सम्बन्ध है और स्फटिकमें रक्तताकी छायाहै। याते पुष्पका धर्म रक्तता, स्फटिकमें ताही वृत्तिका विषय है। इस रीति में १-जहाँ दो पदार्थनका सम्बन्ध है तहाँ एकके धर्मकी दूसरेमें प्रतीति सम्भवे है तहाँ अन्यथाख्याति ही सम्भवे है। २-जहाँ दोनों पदार्थनका सम्बन्ध नहीं तहाँ अन्यथा ख्याति नहीं, किन्तु अनिर्वचनीय ख्याति है, जैसे पुष्प-सम्बन्धी स्फटिक में पुष्प की रक्तता प्रतीत होवे है तैसे स्वप्न के हस्तिपर्वतादिकन का भी अधिष्ठान चेतनतें सम्बन्ध है याते चेतनकी धर्मसत्यता भी चेतन सम्बन्धी हस्तीपर्वतादिकनमें प्रतीति होवे है सो अन्यथा ख्याति है तैसे अधिष्ठान चेतनका धर्मकारणता अधिष्ठान चेतन सम्बन्धी देशकाल में प्रतीत होवे है।

जो पूर्व शङ्का करी "अधिष्ठान चेतन का सम्बन्ध सर्व प्रपंचते है जो सम्बन्धीका धर्म अन्यथाख्याति से अन्यमें प्रतीत होवे तो चेतनकी कारणता सर्वप्रपंचमें प्रतीत हुई चाहिये" सो शङ्का बने नहीं। काहेते ? जैसे स्वप्न में दो शरीर उत्पन्न होवे हैं, एक शरीर पितारूप प्रतीत होवे है और दूसरा शरीर पुत्र रूप प्रतीत होवे तहाँ दोनों शरीरनका स्वप्न के अधिष्ठानचेतनते सम्बन्ध भी है तथापि पिताशरीरमें अधिष्ठानचेतनकी कारणता प्रतीत होवे है और पुत्रशरीर में कारणता प्रतीत होवे नहीं, किन्तु पिता जन्य पुत्र है, इस रीति से पुत्र शरीर में

कार्यता प्रतीत होवे है इस रीतिसे यद्यपि अधिष्ठानचेतन से सम्बन्ध तो सब का है, तथापि देशकालमें चेतन धर्म कारणताकी प्रतीति होवे है औरनमें कार्यता की प्रतीति होवे है। २-अथवा न्यारा अधिष्ठान चेतन असङ्ग है सो किसीका परमार्थते कारण नहीं। मायामें आभास यद्यपि कारण है तथापि आभास का स्वरूप मिथ्या होवे है। जो आप ही मिथ्या होवे सो दूसरेका कारण बने नहीं। याते परमात्मा विषे प्रपञ्च की कारणता होवे तो ताकी देशकालमें भ्रमते प्रतीत सम्भवे। सो परमात्माविषे कारणता है नहीं। परमात्मा कारणतादिक धर्म रहित असङ्ग है। ताकी कारणता देशकालमें प्रतीत होवे है, यह कहना सम्भवे नहीं, किन्तु मायाकृत अनिर्वचनीय देशकाल अनिर्वचनीय कारणता वाले होवे हैं और परमार्थ देशकाल कारण नहीं। जैसे पुत्रहीन पुरुष स्वप्न में पुत्र पौत्र दोनोंकूं देखे तहाँ पुत्र पौत्रशरीरकी अनिर्वचनीय होवे है और पुत्रशरीर में पौत्रशरीर की अनिर्वचनीयकारणता होवे है। तहाँ परमार्थसे पुत्रशरीर और पौत्रशरीर का परस्पर कार्यकारणभाव नहीं होवे है। तैसे अनिर्वचनीयकारण देशकाल प्रतीत होवे है। परमार्थसे देश काल और आकाशादिकप्रपंचका कार्यकारणभाव है नहीं। इस रीतिसे देश काल सामग्री बिना जाग्रत् प्रपंच की उत्पत्ति होवे है। याते स्वप्न की न्याई जाग्रत् भी मिथ्या है।

जैसे-स्वप्नके स्त्री पुत्रादिक स्वप्न में ही सुख दुःख के हेतु हैं, जाग्रत में तिनका अभाव है, तैसे जाग्रत् के पदार्थन का स्वप्नमें अभाव होवे है दोनों सम हैं और जाग्रत्के पदार्थ ज्ञानके साथही होवे हैं याते दूसरी जाग्रनमें रहैं नहीं ।

जो ऐसे कहैं-जाग्रत से स्वप्न होयके फिर जाग्रत होवे तहाँ पहली जाग्रतके जो पदार्थ हैं, सोई स्वप्न व्यवहित दूसरे जाग्रत में रहैं हैं और प्रथम स्वप्न के पदार्थ दूसरे स्वप्न में नहीं रहे हैं याते स्वप्न के पदार्थनते जाग्रत् के पदार्थ विलक्षण हैं ।

सो शङ्का भी सिद्धान्तके अज्ञानी मूढ़नकी दृष्टिते होवे है, काहेते ? ऐसी मूर्खनकी दृष्टि है, संसार प्रवाह अनादि है तामें जीवनकूँ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति होवे है । १-जाग्रत कालमें स्वप्न सुषुप्ति नष्ट होवे हैं । २-स्वप्नकालमें जाग्रत् सुषुप्ति नष्ट होवे है । ३-तैसे सुषुप्तिकालमें जाग्रत स्वप्न नष्ट होवे है, परन्तु स्वप्न सुषुप्ति होवे तब जाग्रत् काल के स्त्री पुत्र पशु धनादिक दूर होवे नहीं, किन्तु बने रहैं तिनका ज्ञानही दूर होवे है । फिर जाग्रत् होवे तब प्रथम जाग्रत के विद्यमान पदार्थन का ज्ञान होवे है । यह अज्ञानी मूर्खन की दृष्टि है ।

सिद्धान्त यह है:-१-सारे पदार्थ चेतन का विवर्त हैं, २-अविद्याका परिणाम है। याते शुक्ति रजत की न्याईं जिस कालमें जो पदार्थ प्रतीत होवे तिसकालमें अधिष्ठान

चेतन आश्रित अविद्या का द्विविध परिणाम होवे है। १—अविद्याके तमोगुण अंश का घटादि विषयरूप परिणाम होवे है। २—अविद्याके सत्त्वगुण का ज्ञानरूप परिणाम होवे है। यद्यपि चेतन कूँ ज्ञान कहे हैं, याते सत्त्वगुणका परिणाम ज्ञान है। यह कहना बने नहीं, तथापि सारे व्यापकचेतन ज्ञान नहीं, किन्तु साभासवृत्ति में आरूढ़ चेतनकू ज्ञान कहें हैं। याते चेतन में ज्ञान व्यवहार की सम्पादकवृत्तिहै इसरीतिसे चेतन में ज्ञानपने की सम्पादक वृत्ति है। इस रीतिसे चेतनमें ज्ञानपने की उपाधि वृत्ति है ताके विषेभी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवे है जैसे लोक में कहे हैं "घटका ज्ञान उत्पन्न हुआ पटका ज्ञान नष्ट हुआ," तहाँ वृत्तिमें आरूढ़ चेतन का तो उत्पत्ति नाश सम्भवे नहीं, वृत्तिके उत्पत्ति नाश होवे हैं और ज्ञान के उत्पत्ति नाश कहे हैं। याते वृत्ति में भी ज्ञानशब्द का प्रयोग होवे है सो वृत्तिरूप ज्ञान सत्त्वगुण का परिणामहै यह कहना सम्भवहै। १—तावृत्तिरूप परिणाम में चेतन का आभास होवे है। २—घटादिक विषय रूप परिणाम में चेतन का आभास होवे नहीं, काहेते? विषय और वृत्ति यद्यपि दोनों अविद्या के परिणाम हैं तथापि १—घटादिक विषय तो अविद्याके तमोगुणका परिणाम है याते मलिन हैं तिनमें आभास होवे नहीं। २—वृत्ति, सत्त्वगुण का परिणाम स्वच्छ है तामें आभास होवे है इस रीतिसे १—वृत्ति को

चेतन के आभासग्रहण की योग्यता होनेते वृत्ति अवच्छिन्न चेतनका ज्ञान कहें हैं और साक्षी कहें हैं। २-घटादिक विषयकूँ आभास ग्रहणकी योग्यता नहीं। इस कारण ते विषय अवच्छिन्न चेतन ज्ञान नहीं और साक्षी भी नहीं। इस रीतिसे जाग्रत् पदार्थ और तिनका ज्ञान दोनों साथ ही उत्पन्न होवे हैं और साथही नष्ट होवे हैं। यह वेद का गूढ़ सिद्धान्त है। याते जाग्रत् के पदार्थ दूसरी जाग्रत् में रहे हैं, यह कहना सम्भवे नहीं।

यद्यपि स्वप्नते जागे पुरुषकूँ ऐसी प्रत्यभिज्ञा होवे है, "जो पूर्वपदार्थ थे सोई यह पदार्थ हैं।" याते जाग्रत के पदार्थन का ज्ञान के समकाल उत्पत्ति नाश नहीं होवे हैं, किन्तु ज्ञानसे प्रथम विद्यमान होवे है और ज्ञान नाशते अनन्तर भी रहे है।

तथापि जैसे स्वप्न के पदार्थ तिस क्षण में उत्पन्न होवे हैं और ऐसे प्रतीत होवे हैं:-" मेरे जन्म से भी प्रथम उपजे थे पर्वतसमुद्रादिक हैं" तहाँ तत्काल उपजे पदार्थन में बहुकाल स्थिरता की भ्रान्ति होवे है याते जा अविद्या ने मिथ्या पर्वत समुद्रादिक उपजाये हैं तिसी अविद्यासे बहुकालस्थिरता और स्थिरता की प्रतीत अनिर्वचनीय उपजै है। तैसे जाग्रत् के पदार्थन विषभी अनेक दिन स्थिरताहै नहीं, किन्तु अविद्या बल से मिथ्या स्थिरता भी तिन पदार्थनके साथ उपजिके प्रतीत होवेहै।

जो ऐसे कहैं :—१—स्वप्नके पदार्थ साक्षात् अविद्या के परिणाम हैं। २—जाग्रत् के पदार्थ साक्षात् अविद्या के परिणाम नहीं। किन्तु घटकी उत्पत्ति दण्ड चक्र कुलाल से होवे है तैसे सर्वपदार्थन की उत्पत्ति अपने अपने कारणते होवे है, साक्षात् अविद्यासे नहीं। जो साक्षात् अविद्याके परिणाम होवे तो आकाशादिक क्रमते पञ्चभूतनकी उत्पत्ति और पञ्चीकरण तिनसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति श्रुति में कही है सो असङ्गत होवेगी याते ईश्वर सृष्टी जाग्रत के पदार्थ अपने अपने उपादानके परिणामहैं। अविद्याके साक्षात परिणाम नहीं। १—स्वप्न के तो सारे पदार्थ अविद्या के परिणाम हैं तिनका एक अविद्या उपादान होनेते तिन पदार्थनकी और तिनके ज्ञानकी एक अविद्या से एक कालमें उत्पत्ति सम्भवे है। २—जाग्रतके पदार्थ भिन्न भिन्न कारणसे उत्पन्न होवे हैं। कार्यते पहले कारण होवे है और कारणमें कार्य का लय होवे है। याते घटकी उत्पत्तिसे प्रथम और घटनाशसे आगे मृत्पिण्ड रहे हैं, इस रीतिसे कोई पदार्थ अल्प काल स्थिर और कोई अधिककालस्थिर कार्यकारण हैं तैसे स्वप्न के नहीं।

सो शङ्का बने नहीं। काहेते ? जाग्रत के पदार्थनकी न्याई स्वप्नके पदार्थनविषे भी कार्य कारण भाव प्रतीत होवे है। जैसे किसीकूं ऐसा स्वप्न होवे:—मेरी गऊ के बच्छा हुआहै अथवा मेरी स्त्राके पुत्र हुआ है। तहाँ गऊ

और स्त्री विषे कारणता की प्रतीत और बहुकाल स्था-
पिताकी प्रतीत होवे है, वत्स और पुत्र विषे कार्यता
और अल्पकालस्थिरता प्रतीत होवे है और सारे सम-
काल हैं, कोई किसी का कारण नहीं, किन्तु गऊ वत्स
स्त्री आदिकन का अविद्याही उपादान है। तैसे जाग्रत्
विषे भी कोई अधिककाल स्थायी कारण स्वरूपते कोई
न्यूनकाल स्थायी कार्यरूपते स्वप्नकी न्याईं प्रतीत होवे
है कोई किसी का परस्पर कार्य कारण नहीं, किन्तु
साक्षात् अविद्या के कार्य हैं।

श्रुतिविषे जो क्रमते सृष्टि कही है तहाँ सृष्टिप्रतिपादन
में श्रुतिका अभिप्राय नहीं, किन्तु अद्वैतबोधन में अभि-
प्राय है। सारे पदार्थ परमात्मासे उपजे हैं, याते ताके
विवर्त हैं, जो जाका विवर्त होवे सो ताका ही स्वरूप
होवे है, याते सारा नामरूप ब्रह्मते पृथक् नहीं, ब्रह्म ही
है, इस अर्थबोधन करनेकूँ सृष्टि कही है सृष्टि का और
प्रयोजन नहीं। तहाँ क्रमका जो कथन है, सो स्थूलदृष्टि
कूँ विपरीत क्रमते लय चिन्तन के निमित्त है ताका भी
अद्वैत बोध ही प्रयोजन है याते क्रमकथन में भी अभि-
प्राय नहीं सृष्टिमें क्रम नहीं है किन्तु सारे पदार्थ एक
अविद्या से उपजे हैं। तिसका परस्पर कार्यकारण भाव
और पूर्व उत्तरभाव, अविद्याकृत स्वप्न की न्याईं मिथ्या
प्रतीत होवे है और श्रुति ने तिनकी आपस में कार्यका-

रणता और पूर्व उत्तरता कही है, सो लय चिन्तन के निमित्त कही है ध्यानमें यह नियम नहीं, जैसा स्वरूप होवे तैसा ही ध्यान होवे है, याते जाग्रत् के पदार्थन का आपस में कार्य कारण भाव नहीं ।

किन्तु सारे पदार्थ साक्षात् अविद्या के कार्य हैं, शुक्तिरजत की न्याईं वा स्वप्नकी न्याई अविद्याकी वृत्ति उपहित साक्षीते तिनका प्रकाश होवे है, याते सारे पदार्थ साक्षीभास्य हैं और ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार अविद्या का परिणाम एकही काल में उपजै है । साथ ही नष्ट होवे है याते जब पदार्थकी प्रतीत होवे, तब ही प्रतीत का विषय पदार्थ होवे है, अन्य काल में नहीं होवे है याहीकूँ दृष्टि सृष्टिवाद कहें हैं ।

या पक्ष में पदार्थ की अज्ञातसत्ता नहीं, ज्ञातसत्ता है, अद्वैतवादमें यह सिद्धान्तपक्ष है, या पक्ष में दो सत्ता हैं तीन नहीं, काहेते ? अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्याईं प्रातिभासिक हैं प्रतीतकाल से भिन्नकाल में अनात्मा की सत्ता नहीं, याते तीसरी व्यावहारिक सत्ता नहीं यापक्ष में सारे अनात्मपदार्थ साक्षीभास्य हैं । प्रमाता प्रमाणका विषय कोई भी नहीं, काहेते ? अन्तःकरण और इन्द्रिय तथा घटादिक, सारी त्रिपुटी और ज्ञान, स्वप्नकी न्याईं एक काल में उपजे हैं, तिनका विषय विषयी भाव बनै नहीं जो घटादिक विषय और नेत्रादिक इन्द्रिय तैसे

अन्तःकरण ये ज्ञानतें प्रथम होवे तो नेत्रादि द्वारा अन्तःकरण की वृत्ति रूप ज्ञान प्रमाण जन्य होवे। अन्तःकरण, इन्द्रिय, विषय तीनों ज्ञान के पूर्वकाल में है नहीं, किन्तु ज्ञानसम काल ही स्वप्न की न्याईं त्रिपुटी उपजे है। यातें त्रिपुटी जन्य ज्ञान कोई भी नहीं तथापि ज्ञान विषे स्वप्न की न्याईं त्रिपुटीजन्यता प्रतीत होवे है, यातें जाग्रत के पदार्थ साक्षी भास्य हैं; प्रमाण जन्य ज्ञान के विषय नहीं। यातें भी स्वप्न के समान मिथ्या हैं।°१–किम्वा जाग्रत में कितने पदार्थन कूँ मिथ्यारूप करके जाने हैं। २—औरनकूँ सत्यरूप करके ऐसे जाने हैं, अनादिकाल के पदार्थ हैं तिन में कोई नष्ट होवे हैं और तिसके समान उत्पन्न होवे है, ऐसे प्रपञ्चधारा को उच्छेद कभी होवे नहीं, जाकूँ ज्ञान होवे है ताकूँ प्रपञ्च की प्रतीत होवे नहीं औरन कूँ प्रपञ्चकी प्रतीत होवे है ता ज्ञान के साधन वेदगुरु हैं, तिनतें परमसत्य की प्राप्ति होवे है, ऐसी प्रतीत जाग्रत में होवे है। १–तहाँ किसी पदार्थ में मिथ्यापना। २–किसी में नाश। ३–किसीमें उत्पत्ति। ४–वेदगुरुतें परम पुरुषार्थ की प्राप्ति ये सारे अविद्याकृत स्वप्न की न्याईं मिथ्या हैं। वाशिष्ठ में ऐसे अनन्त इतिहास कहे हैं। और १–क्षणमात्र के स्वप्न में बहुकाल प्रतीत होवे है और जाग्रतकी न्याईं स्थायी पदार्थ प्रतीत होवे हैं और तिनतें

बहुतकाल भोग होवे है याते जाग्रत्पदार्थकी स्वप्नते किञ्चित विलक्षणता नहीं किन्तु आत्म भिन्न सर्व मिथ्याहै ८-१०॥

शिष्य उवाच-दोहा।

लाख हजारन कल्प को, यह उपज्यो संसार।
याते ज्ञानी मुक्ति है, बन्धे अज्ञ हजार॥ ११॥
झूठो स्वप्न समान जो, क्षण घटिका है याम।
बद्ध कौनको मुक्त है, श्रवणादिक किह काम॥१२॥

ईश्वर सृष्टि अनन्त कल्पते अनादि है तामें ज्ञानी मुक्त होवे हैं अज्ञानी कूँ बन्ध रहे हैं जो स्वप्न समान होवे तो स्वप्न एक क्षण घड़ी तथा पहर होवे है तैसे संसार भी क्षण अथवा घड़ी वा पहरकाल वा किञ्चित अधिक काल होवेगा। १-स्वप्न की न्याइं स्वल्प काल स्थायी संसार होवे तो अनादिकाल का बन्धन नहीं होवेगा, २-बन्धनिवृत्तिरूप मोक्ष के निमित्त श्रवणादिक साधन निष्फल होवेंगे।

गुरुः-यद्यपि पूर्वोक्त सिद्धान्त में १-बन्ध मोक्ष वेद गुरु अङ्गीकार नहीं। २ किन्तु चेतन नित्यमुक्त है, ३-अविद्याके परिणाम चेतन में नाना विवर्त होवे हैं ताते आत्मरूप की किञ्चित् मात्र भी हानि नहीं। ४—आत्मा सदा असङ्ग एकरस है ५-आजतक कोई मुक्त हुआ नहीं, आगे होवे नहीं किन्तु चेतन नित्यमुक्त है, ६-अविद्या और ताके परिणाम का चेतनसे किसी काल में सम्बन्ध नहीं

याते बन्ध और वेद गुरुश्रवणादिक और समाधि तथा मोक्ष इनकी प्रतीति भी स्वप्नकी न्याईं अविद्या जन्य है याते मिथ्या है । ७-इन विषे बहुतकाल स्थायिता भी अविद्या जन्य है, तथापि या सिद्धान्तकूँ नहीं जानि के स्थूल दृष्टि का प्रश्न है ॥ ११ ॥ १२ ॥

गुरुवाक्य-दोहा ।

अगृधदेव कूँ स्वप्न में, भ्रम उपज्यो जिहि रीति ।
शिष तोकूँ यह ऊपजी, बन्ध मोक्ष परतीति ॥ १३ ॥

हे शिष्य ! जैसे निद्रा दोषते स्वप्नमें अध्यापक अध्य-
यन, वेदशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र और अध्ययनकर्त्ता
कर्म और तिनका फल प्रतीति होवे है और तिन सर्व
पदार्थनमें सत्यताकी भ्राँति होवे है, तथापि स्वप्न के सारे
पदार्थ मिथ्या हैं । तैसे जाग्रतके सारे पदार्थ मिथ्याहैं तिन
विषे सत्यता प्रतीति भ्रम है। दोहेमें बन्ध मोक्ष ग्रहणते सर्व
अनात्मा का ग्रहण है जैसे तेरे कूँ हम गुरु प्रतीत होवे हैं,
वेद अर्थ का बन्ध विघातक उपदेश करे है सो तेरे कूँ
मिथ्याप्रतीति है, जैसे अगृधदेवकूँ स्वप्न में मिथ्या प्रतीत
के विषय गुरु वेदादिक अनिर्वचनीय उपजे हैं तैसे तेरी
प्रतीति के विषे मेरे से आदि लेके सारे अनिर्वचनीय
मिथ्या हैं। सो अगृधदेवको ऐसा स्वप्न हुवा है, एक अगृध
नामदेवता अनादि कालका निद्रा में सोवता हुआ स्वप्नकूँ
देखता भया, ता स्वप्न में तिस पुरुषकूँ ऐसी प्रतीति हुई

१–जो मैं चण्डाल हूँ। २–महा दुखी हूँ। ३–अस्थि मज्जा रुधिर त्वचा मांस मेदवीर्य रूप सप्त धातु से मेरा मुख भरया है। ४–महाघोर भयङ्कर सर्प हस्ती आदिक से युक्त जो वन ताके विषे मैं भ्रमण करूँ हूं। सो देवता भ्रमण करता हुआ ता वन में अनन्त स्थान देखता हुआ। १–कहूँ नाना भयङ्कर प्राणी सन्मुख भक्षण करनेकूँ धावन करे हैं। २–कहूँ राध रुधिरसे भरे कुण्ड हैं तिनमें पड़े प्राणी हाहाकार शब्द करे हैं। ३–कहूँ लोहेके तप्त स्तम्भ हैं, तिनसे बन्धे पुरुष रोवे हैं। ४-कहूं तप्तवालुयुक्तमार्ग होयके नग्नपाद पुरुष जावे हैं और तिन पुरुषनकूँ राजभट लोहमय दण्डोंसे ताडनाकरे हैं। इस रीतिसे १–नाना जो भयङ्कर स्थान हैं तिन कूँ सो देवता देखता हुआ। २-कदाचित् आप भी अपराध करके स्वप्नमें तिन दुःखकूं प्राप्त होता भया। कहूँ दिव्य स्थान देखता हुआ, १-तिन स्थान में उत्तम देव विराजे हैं। २-तिन देवनके दिव्य भोग हैं। ३-अमृतके दर्शन मात्रसे तिनकूं तृप्ति रहे है। ४–क्षुधा तृषा की बाधा तिन देवनकूं होवे नहीं, ५–मल मूत्र रहित जिनका प्रकाशमान शरीर है, ६–उत्तम विमान में स्थित होय के कोई देव रमण करे है, सो विमान ता देव की इच्छा के अनुसार गमन करे है, ७–कहूँ रम्भा उर्वशी से आदि लेके अप्सरा नृत्य करे हैं तिनके सम्पूर्ण अङ्ग दोष रहित हैं और सम्पूर्ण

श्री गुणयुक्त है। ८-उत्तम सुगन्ध तिनके शरीरसे कामनी प्रकाशक आवे हैं और कहूं तिनसे देव रमण करे हैं, ९-कदाचित् आप भी देवभाव कूं प्राप्त होय के तिनसे बहुत काल रमण करे हैं। १०-कदाचित् तिन अप्स-रानसे दिव्य स्थानमें रमण करता हुआ अकस्मात् रुधिर मलपूरित जो कुण्ड हैं तिन विषे मज्जन करे है।

एक स्थानमें सर्वका अधिपति पुरुष स्थित है ताके आज्ञाकारी अनुचर ताके आगे स्थित हैं। १-कितने पुरुषनकूं सो अधिपति और ताके अनुचर सौम्य रूप प्रतीत होवे है। ता वनमें स्थित पुरुषनकूं कर्म के अनु-सार फल देवे हैं, इस रीतिसे अगृध नाम देवता स्वप्न-काल में नाना जो स्थान हैं तिनकूं देखता हुआ, १-कहूं अन्यस्थान में ब्राह्मण वेद की ध्वनि करे हैं, २-कहूं यज्ञ-शालामें उत्तमकर्म करे हैं। ३-कहूं कहूं उत्तम नदी बहै हैं, तिनमें पुण्यके निमित्त लोक स्नान करे हैं, ४-कहूं ज्ञान-वान् आचार्य शिष्यनकूं ब्रह्मविद्या का उपदेश करे हैं। ता ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होयके ता बन से निकसि जावे हैं। इस रीति से स्वप्नविषे अगृध नाम देवता क्षणमात्र में नाना आश्चर्यरूप पदार्थ ता बन में देखता हुआ। ताकूं ऐसी प्रतीति स्वप्न में हुई जो १-मैं अनन्तकाल का या वनमें स्थित हूँ, २-या वनका कभी उच्छेद होवे नहीं। ३-कदा-

चित् बागवान् चारिमुखन से नानाबीज निकासि के बन को उत्पत्ति करे है और जलसेचन से पालन करें हैं और कदाचित् घोरहास्य करके मुख से अग्नि निकासि के बनका दाह करे है। ४-बनकी उत्पत्ति के सङ्गही मेरी उत्पत्ति होवे है और बनके दाहसङ्गही मेरा दाह होवे है। ५-सर्व बनका दाह करके सो बागवान् एकही रहे है। ६-ताके शरीर में बनके बीज रहे हैं, यह प्रतीति स्वप्न वेदके श्रवणसे ता अगृधदेवताकूं स्वप्नही विषे हुई॥१३॥

अगृधदेवका गुरु से मिलाप।

तब बारम्बार अपना जन्म मरण सुनिके ता अगृधदेवने विचार किया। १-जो किसी प्रकारसे बनके बाहर निकस जाऊँ। बनके बाहर नहीं भी निकसूँ तो भी चाण्डालभाव मेरा दूर होय जावे और देवभाव सदा बन्या रहे। २-सो और तो कोई उपाय बनते निकलने का है नहीं। ब्रह्मविद्या के उपदेश करने वाला आचार्य अपने शिष्यन कूं बनके बाहर निकासे हैं। यह विचार के आचार्यकूं स्वप्नकालमें ही सो अगृधदेवता प्राप्त हुआ सो विधिपूर्वक प्राप्त हुआ जो शिष्य ताकूं आचार्य देव वाणीरूप मिथ्या ग्रन्थ उपदेश करता हुआ।

मिथ्या आचार्य का मिथ्या शिष्यकूँ मिथ्या संस्कृत ग्रंथ से उपदेश ग्रन्थ के मङ्गलाचरण।

संस्कृत ग्रन्थ जो मिथ्या आचार्य ने मिथ्या शिष्यकूँ

उपदेश किया ता ग्रन्थकूँ भाषा करके लिखे हैं। संस्कृत ग्रन्थके भाषा करनेमें मङ्गल करे हैं। काहेते? १-मङ्गल करनेते जो ग्रन्थकी समाप्तिके प्रतिबन्धक विघ्न हैं तिनका नाश होवे है। विघ्न नाम पाप का है पापते शुभ कार्य की समाप्ति होवे नहीं ता पाप का मङ्गलते नाश होवे है २-जो पापरहित होवे सो भी ग्रन्थ के आरम्भ में मङ्गल अवश्य करे। काहेते? जो ग्रन्थ आरम्भ में मङ्गल नहीं किया होवे तो ग्रन्थकर्ताविषे पुरुषन कूं नास्तिक भ्रान्ति होयके ग्रन्थ में प्रवृत्ति होवे नहीं।

सो मङ्गल तीन प्रकार का है-एक वस्तुनिर्देश रूप है और दूसरा नमस्कार रूप है और तीसरा आशीर्वाद-रूप है। सगुण अथवा निर्गुण जो परमात्मा सो वस्तु कहिये है ताके कीर्तन का नाम वस्तुनिर्देश कहिये है। अपना अथवा शिष्यनका जो वांछित वस्तु ताके प्रार्थन का नाम आशीर्वादरूप मङ्गल कहिये है। सो अपने वांछित का प्रार्थन चतुर्थ दोहेमें स्पष्ट है। शिष्य के इष्ट का प्रार्थन पञ्चम दोहे में स्पष्ट है।

गणेश और देवीकू ईश्वरता पुराण में प्रसिद्ध है, याते अनीश्वर का चिन्तन नहीं और पुराणमें गणेश का जो जन्म है सो जीवनकी न्याईं कर्मका फल नहीं किन्तु, रामकृष्णादिकनकी न्याईं भक्त जनके अनुग्रह वास्ते पर-मात्मा का ही आविर्भाव होवे है। व्यास भगवान का

परम अभिप्राय है, या स्थान में यह रहस्य है:-परमार्थ दृष्टिसे जीव भी परमात्मा से भिन्न नहीं, परन्तु जन्ममरणादिक बन्धक आत्माविषे जो अध्यास सो जीवका जीवपना है सो जन्मादिक बन्ध गणेशादिकन कूँ आत्मा में प्रतीत होवे नहीं याते जीव नहीं। इस रीतिसे गणेशादिकनकूँ ईश्वरता है, याते ग्रन्थके आरम्भ में तिनका चिंतन योग्य है नानारूप ईश्वरका जो कथन है सो सर्वकूँ ईश्वरता द्योतन करने वास्ते है और ईश्वर भक्ति और गुरुभक्ति विद्याकी प्राप्ति का मुख्य साधन है, इस अर्थ को भी द्योतन करने वास्ते है।

निर्गुणवस्तुनिर्देशरूपमंगल-दोहा।

जो विभु सत्य प्रकाशते, परकाशत रवि चन्द।
सो साक्षी मैं बुद्धि को, शुद्ध रूप आनन्द ॥१॥

सगुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल-दोहा।

नाशे विघ्न समूलते, श्रीगणपति को नाम।
जा चिन्तन विन है नहीं, देवनहू के काम ॥२॥
त्रिपुरवध में यह वार्ता प्रसिद्ध है ॥ २ ॥

नमस्काररूपमंगल-सोरठा।

असुरन को संहार, लक्ष्मी पारवती पति।
तिन्हैं प्रणाम हमार, भजतनकूँ सन्तत भजै ॥ ३ ॥

स्ववांछितप्रार्थनात्मकआशीर्वादरूपमंगल-दोहा।

जा शक्तिकी शक्ति लहि, करे ईश यह साज।
मेरी वाणी में वसहु, ग्रन्थ सिद्धि के काज ॥ ४ ॥

शिष्यवांछितप्रार्थनरूप आशीर्वाद दोहा।

बन्धहरण सुखकरण श्री, दादू दीन दयाल।
पढ़े सुनै जो ग्रन्थ यह, ताके हरहु जँजाल ॥ ५ ॥

वेदान्तशास्त्रकर्ता आचार्य नमस्काररूप—
मंगल कवित्त।

वेदवादवृक्ष बन भेदवादी वायु आय,
पकर हलाय क्रिया कण्टक पसारिके।
सरल सुशब्द शिष्य कञ्ज पुनि तोरि गेरि,
शूलन में फेरत फिरत फेरि फारिके ॥
पेखि सु पथिक भगवान न जान अनुचित,
अङ्क मे उठाय धाय व्यासरूप धारिके।
सूत्रकी बनाइ जाल बनको विभाग कीन्ह,
करत प्रणाम ताहि निश्चल पुकारिके ॥६॥

जैसे वायु, बन में पैठके वृक्षनकूं हलाय के तिनके कण्टक पसारिके सुन्दर कमलनके पुष्पनकूं स्वस्थान से तोरिके कण्टक विषे भ्रमावे तिन भ्रमते पुष्पन कूँ देखि के पथिकके चित्तमें ऐसी आवे कि, ये सुन्दर कमल या स्थान योग्य नहीं। किन्तु, उत्तम स्थान योग्य हैं। यह विचारिके तिन पुष्पनकूं उठाइ लेवै और फिर विचार करे जो आगे भी पवन कण्टकन विषे पुष्पन कूँ तोड़िके भ्रमण करावेगा, याते ऐसा उपाय करूँ जाते फिर वायु कण्टकनमें पुष्पनकूँ भ्रमावे नहीं। यह विचारिके सूत्रके

जालसे कण्टकयुक्त वृक्षनका विभाग कर देवे तो जालसे पुष्पनका कण्टकनमें प्रवेश होवे नहीं।

तैसे भेदवादी आचार्य रूप जो वायु है सो वेदरूपी वनमें वाद कहिये अर्थवादरूप जो कण्टकसहित वृक्ष हैं तिन्हते सकामकर्मरूप कण्टक प्रवर्त्त करिके सरल कहिये कपट रहित और सुशुद्ध कहिये अतिशुद्ध रागादि दोष रहित जो शिष्यरूप कमल पुष्प तिन्हकूं समाधिरूप जो स्वस्थान तासों तोरिके सकाम कर्मरूप कण्टक विषे भ्रमावते देखिके पथिक समान व्यापक विष्णु ने विचार किया। जो यह सुन्दर कमलरूप शुद्धपुरुष या स्थान योग्य नहीं है, किन्तु मेरे स्वरूपकूं प्राप्त होने योग्य है। यह विचारिके व्यासरूप धारिके तिन्ह शिष्यन कूं उपदेशरूप अङ्क में स्थापन किया। जैसे पुरुष के अङ्क में स्थित पुष्पकूं वात उड़ाने विषे समर्थ नहीं, तैसे ब्रह्मनिष्ट आचार्य के उपदेश में स्थित पुरुष कूं भेदवादि बहकावनमें समर्थ नहीं, याते उपदेश ही अङ्क कहिये गोद है। फिर व्यास भगवान्ने विचार किया जो भेदवादि और पुरुषनकूं आगे भी सकामकर्मरूप कण्टकमें भ्रमावेंगे। याते ऐसा उपाय होवे जाते आगे शिष्य भ्रमैं नहीं, यह विचारिके सूत्ररूपी जाल से वेद के वाक्यरूप वृक्षन का विभाग कर दिया।

जैसे वनमें दोय प्रकारके वृक्ष होवें, १-सकण्टक। २-कण्टक

रहित तिन्हका जालसे विभाग कर देवे और जालते पुष्पनका कण्टकसहित वृक्षनमें प्रवेश होवे नहीं। तैसे वेदमें दो प्रकारके वाक्य हैं। १-एक तो कर्मकी स्तुति करके कर्मविषे बहिर्मुख पुरुष की प्रवृत्ति करावें है, २-दूसरे कर्मके फलकूँ अनित्य बोधन करके पुरुष की निवृत्ति करावे हैं। तिन्ह वाक्यनका वेदव्यास ने विभाग करके सूत्रनसे यह बोधन किया जो सर्व वाक्यन का निवृत्तिमें तात्पर्य है, प्रवृत्तिमें किसी वाक्यका भी तात्पर्य नहीं। जो प्रवृत्तिबोधक वाक्य हैं तिन्हका भी स्वाभाविक और निषिद्ध जो प्रवृत्ति है तासे निवृत्ति करके विहितप्रवृत्तिसे अन्तःकरण शुद्ध होयके तासे भी निवृत्ति होयके ज्ञाननिष्ठ पुरुष होवे। इस रीतिसे निवृत्तिमें तात्पर्य है और अर्थवादवाक्यने जो कर्मका फल बोधन किया है सो गुड़जिह्वान्यायसे किया है। फलमें तिनका तात्पर्य नहीं, यह अर्थ सूत्रनमें व्यासजी ने बोधन किया है या अर्थकूँ सूत्रनसे जानिके पुरुषकी सकाम कर्म में प्रवृत्ति होवे नहीं जैसे सूत्रका जाल पुष्पनकूँ कण्टकनसे निरोध करे है तैसे व्यास भगवान्‌के सूत्र सकामकर्मन से निरोध करें हैं, याते जालरूप कहे॥ ६॥

❀ दोहा ❀

कोउक शिष्य उदारमति, गुरु के शरणै जाय।
प्रश्न कियो कर जोरिके, पादपद्म शिरनाय॥७॥

✽ शिष्य उवाच ✽

भो भगवन् मैं कौन यह, संसृति कातें होइ।
हेतु मुक्ति को ज्ञान वा, कर्म उपासन दोइ ॥ ८॥

हे भगवन्! मैं कौन हूँ देहस्वरूप हूं अथवा देह से भिन्न हूँ? मैं मनुष्य हूँ और मेरा शरीर है। यह दो प्रतीत होवे। याते मेरेकूं संशय है और देह से भिन्न भी जो आप कहो तो मैं कर्ता भोक्ता हूं अथवा अक्रिय हूँ? जो अक्रिय कहो तो भी सर्वशरीर विषे एक हूँ अथवा नाना हूँ? यह प्रथम प्रश्न का अभिप्राय है। २—यह संसृति कहिये संसार ताका कर्ता कौन है। याका यह अभिप्राय है, या संसारका कोई कर्ता है अथवा आप ही होवे, है, जो कर्ता कहो तो भी कोई जीव कर्ता है अथवा ईश्वर कर्ता है जो ईश्वर कहो तो भी एक देश में सो ईश्वर स्थित है अथवा सो ईश्वर व्यापक है। जो व्यापक है तो भी जैसे व्यापक आकाशते जीव भिन्न है, तैसे ता ईश्वरते जीव भिन्न है अथवा ईश्वरते जीव अभिन्न है। और मुक्तिका हेतु ज्ञान है अथवा कर्म है अथवा उपासना है अथवा दो है? जो दो कहो तो भी ज्ञानकर्म है, अथवा ज्ञान उपासना है अथवा कर्म उपासना है ॥ ७ ॥ ८ ॥

श्रीगुरुवाच–अर्द्ध दोहा।

सत चित आनँद एक तू, ब्रह्म अजन्य असङ्ग।

प्रथम जो शिष्य ने प्रश्न किया, ताका उत्तर कहैं

हैं-"तूँ सत चित आनन्दस्वरूप है" या कहने ते देहते
भिन्न कह्या। काहेते ? देह असत्रूप है और जड़ रूप है
और दुःखरूप है और कर्त्ता भोक्ता भी नहीं। काहेते ?
१-जाकेविषे दुःख होवे सो दुःखकी निवृत्ति औ सुखकी
प्राप्ति वास्ते क्रिया करे सो कर्ता कहिये है। सो तेरे विषे
दुःख है नहीं। याते दुःखी निवृत्ति वास्ते क्रिया का कर्ता
नहीं। तूँ आनन्दस्वरूप है, याते सुख की प्राप्तिके निमित्त
भी तू क्रिया का कर्ता नहीं। २-जो कर्त्ता होवे सोई
भोक्ता होवे है तू कर्ता नहीं याते भोक्ता भी नहीं पुण्य
पापका जनक जो कर्म ताका कर्ता और सुख दुःख का
भोक्ता स्थूल सूक्ष्मसङ्घात है, तू नहीं, तू सङ्घात का
साक्षी है, याहीते आत्मा एक है नाना नहीं। जो आत्मा
कर्ता भोक्ता होवे तब तो नाना होवे। काहेते ? कोई सुखी
है, कोई दुःखी है और कर्ता भोक्ता एक ही अङ्गीकार
होवे तो एक के सुख होनेते तथा दुःख हानेते सर्वकूँ
सुख तथा दुःख हुवा चाहिये। याते भोक्ता नाना हैं
और आत्मा भोक्ता है नहीं, याते एक है।

पूर्वपक्षी-सांख्यके मतमें आत्मा कर्ता भोक्ता अंगी-
कार नहीं करके नानापुरुष जो अंगीकार किये सो
अत्यन्त विरुद्ध है। काहेते ? सांख्य का सिद्धान्त है-
२-सत्व रज तमोगुणों की सम अवस्थाका नाम प्रधान
कहे हैं, सो प्रधान प्रकृति है, विकृति नहीं, विकृति नाम

कार्यका है और प्रकृति नाम उपादानकारण है, सो प्रधान महत्तत्त्वका उपादान कारण है, याते प्रकृति है और अनादि है, याते विकृति नहीं और महत्तत्त्व अहङ्कार पञ्चतन्मात्रा ये सात प्रकृति हैं, उत्तर उत्तर के प्रकृति हैं और पूर्वके विकृति हैं, तन्मात्रा भी भूतनके प्रकृति हैं, इस रीतिसे सात प्रकृति विकृति हैं और पञ्चभूत और दशइन्द्रिय और मन ये सोलह विकृति हैं, प्रकृति नहीं और पुरुष प्रकृति विकृति नहीं, काहेते ? जो हेतु किसी पदार्थका होवे तो प्रकृति होवे और कार्य होवे तो विकृति होवे, सो पुरुष किसीका हेतु नहीं, याते प्रकृति नहीं और कार्य नहीं याते विकृति नहीं याते पुरुष असङ्ग है, इस रीति से साँख्यमत में पच्चीसतत्त्व हैं तत्त्वनाम पदार्थका है, २-साँख्यमतमें ईश्वर का अंगीकार नहीं। ३-स्वतंत्रप्रकृति जगत्का कारण है। ४-पुरुषके भोग मोक्षके निमित्त प्रकृतिही प्रवृत्त होवे है, पुरुष नहीं, ५-प्रकृति के विषय रूप परिणामतें पुरुष कूँ भोग होवे है, ६-बुद्धि द्वारा विवेकरूप प्रकृति के परिणामतें मोक्ष होवे है. ७-यद्यपि पुरुष असंग है ताके विषे भोग मोक्ष बने नहीं, तथापि ज्ञान सुख दुःख रागद्वेष से आदि लेके बुद्धिके परिणाम हैं, ता बुद्धि का आत्मा से अविवेक है, विवेक नहीं। याते आत्मामें आरोपित बन्ध मोक्ष हैं परमार्थ से नहीं। ८-अविवेकसिद्धि जो आत्मा में भोग

तासेही आत्माकूँ साँख्यमतमें भोक्ता कहै हैं। ९-परमार्थसे आत्मा भोक्ता नहीं बुद्धिही भोक्ता है। १०-बुद्धि आत्मा से भिन्न है। ११-इस ज्ञान का नाम विवेक है, १२-ताके अभावका नाम अविवेक है, इस रीतिसे सांख्यमत में १३-आत्मा असङ्ग है। १४-सुखादिक बुद्धि के परिणाम हैं, याते बुद्धिके धर्म हैं। १५-आत्मा नाना हैं।

सिद्धान्ती-सो वार्ता अत्यन्त विरुद्ध है। जो सुख दुःख आत्मा के धर्म होवे तो सुख दुःख के प्रति शरीर भेद होनेते आत्माका भेद होवे। सो सुख दुःख आत्मा के धर्म तो हैं नहीं किन्तु बुद्धिके धर्म हैं। याते सुख दुःखके भेदसे बुद्धिकाही भेद सिद्ध होवे है आत्मा का भेद सिद्ध होवे नहीं। जैसे एकही व्यापक आकाशमें नाना उपाधि के धर्म उपाधि और आकाश के अविवेक से प्रतीत होवे हैं तैसे एकही व्यापक आत्मा में नाना बुद्धिके धर्म अविवेक से प्रतीत होवे हैं, यह वार्ता सांख्यमत में अङ्गीकार करनी उचितहै। आत्माकूँ असङ्ग मानिके नाना अङ्गीकार करने निष्फल हैं और कोई आत्मा मुक्त है औरनकूं बन्ध है, इस रीतिसे बन्ध मोक्षकेभेदसे जो आत्मा का भेद अङ्गीकार करे सो भी बने नहीं। काहेते? जो बन्ध मोक्ष आत्मा में अङ्गीकार करें तो बन्ध मोक्ष के भेद से आत्मा का भेद सिद्ध होवे, सो बन्धमोक्ष सांख्यमत में असङ्ग आत्मा में अङ्गीकार किये नहीं। किन्तु बुद्धि के अविवेकसे बन्ध अङ्गी

कार किया है और बुद्धिके विवेकसे बन्धका मोक्ष अंगीकार किया है, जो वस्तु अविवेक से होवे और विवेक से दूर होवे सो वस्तु रज्जु सर्पकी न्याईं मिथ्या होवे है, आत्माविषे भी बुद्धिके अविवेक से बन्ध है और विवेक से दूर होवे है, याते बन्ध मिथ्या है, जैसे बन्ध मिथ्या है, तैसे आत्माका मोक्ष भी मिथ्या है, जामें बन्ध सत्य होवे, ताकाही मोक्ष सत्य होवे है और आत्मा में बन्ध मिथ्या है, याते मोक्ष भी मिथ्याही है। इस रीतिसे मिथ्या जो बन्ध मोक्ष सो आकाशकी न्याईं एक आत्मामें भी बने है, तिनके भेद से आत्मा का भेद सिद्ध होवे नहीं याते सांख्यमत में आत्मा का भेद असंगत है।

तैसे-न्यायमत में भी आत्मा का भेद असंगत है। काहेते ? यह न्यायका सिद्धान्त है:-१-सुख, ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, ज्ञानके संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग ये चतुर्दश गुण जीवरूप आत्माविषे हैं। २-संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न ये अष्ट गुण ईश्वर में हैं। इतना भेद है:-ईश्वर के ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न नित्य हैं और जीवके तीनों अनित्य हैं, ईश्वर व्यापक है और नित्य, जीव नाना हैं, और अपूर्व व्यापक हैं, ईश्वरका ज्ञान नित्य है जीव का ज्ञान अनित्य है याते जब ज्ञान गुण होवे तब तो जीव चेतन है और ज्ञानगुण का नाश होवे

तत्र जड़रूप रहें हैं। ३-ईश्वर जीव की नाईं आकाश, काल, दिशा, मन नित्य हैं। ४-पृथ्वी, जल, तेज, वायुके परमाणु नित्य हैं, जो झरोखेमें सूक्ष्म रज प्रतीत होवे है, ताके छठे भागका नाम परमाणु है। परमाणु आत्म की न्याईं नित्यहै, ५-सो भी जाति से आदि लेके कितने पदार्थ न्यायमतमें नित्य हैं। वेदविरुद्ध सिद्धान्त का बहुत लिखनेका जिज्ञासुकूं उपयोग नहीं, याते लिखे नहीं। ६-"मैं मनुष्य हूँ, ब्राह्मण हूँ" ऐसी जो देहविषे आत्मा भ्रान्ति तासे राग द्वेष होवे है। ता राग द्वेषते धर्म अधर्म के निमित्त प्रवृत्त होवे हैं, तिनते शरीरके सम्बन्धद्वारा सुख दुःख होवे हैं, इसरीतिसे न्यायमतमें आत्माकूं संसार का हेतु भ्रान्तिज्ञान है। ७-सो भ्रान्तिज्ञान तत्त्वज्ञान से दूर होवे है, देहादिक सम्पूर्ण पदार्थनसे "आत्मा भिन्न है" या निश्चय का नाम तत्त्वज्ञान है। ता तत्त्वज्ञान से "मैं ब्राह्मण हूँ, मनुष्य हूं" यह भ्रान्ति दूर होवे है। भ्रान्ति के नाशते राग द्वेषका अभाव होवे है। तिन्हके अभावते धर्म अधर्मके निमित्त प्रवृत्तिका अभाव होवे है प्रवृत्तिके अभावते शरीर संबंधरूप जन्मका अभाव होवे है और प्रारब्ध का भोगते नाश होवे है। शरीरसम्बन्धके अभावते इक्कीस दुःख का नाश होवे है। ८-सो दुःख का नाश रूपही न्यायमत में मोक्ष है। एक शरीर और श्रोत्र, त्वक, नेत्र, रसना, घ्राण, मन ये षट् इन्द्रिय और षट् इन्द्रियों के विषय और षट्

इन्द्रियोंके ज्ञान और सुख दुःख ये इक्कीस दुःख हैं, शरीरादिक भी दुःखके जनक हैं याते दुःख कहिये है। और स्वर्गादिकों का सुख भी नाशके भयते दुःखका हेतु है, याते दुःख कहिये है।

यद्यपि न्यायमतमें श्रोत्र और मन नित्य हैं तिन्ह का नाश बने नहीं। तथापि जिस रूपकरके श्रोत्र मन दुःखके हेतु हैं तिस रूप का नाश होवे है। पदार्थन के ज्ञानकी उत्पत्ति करके दुःखके हेतु हैं। सो पदार्थनका ज्ञान मोक्ष कालमें श्रोत्र और मन करे नहीं। काहेते? जो कर्णगोलकमें स्थित आकाश है सो श्रोत्र कहिये है। ता कर्णगोलकका मोक्षकाल में अभाव है याते आकाश रूप श्रोत्र इन्द्रिय है भी, परन्तु गोलकके अभावते ज्ञान होवे नहीं, इस रीतिसे ज्ञानका जनक जो श्रोत्र इन्द्रिय का स्वरूप सोई दुःख है और ताकाही नाश होवेहै। १०-आत्माके साथ मनके संयोगते ज्ञान होवे सो मन का संयोग न्याय सिद्धान्तमें एककी क्रियाते अथवा दो की क्रियाते होवे है, जैसे बीजवृक्ष का संयोग एक बीज की क्रियाते होवे है, और दो मेषन का संयोग दो की क्रियाते होवे है तैसे विभु आत्मामें तो क्रिया कभी भी होवे नहीं और मोक्ष कालमें मन में भी क्रिया होवे नहीं। याते संयोगवान् मन का भी मोक्षकाल में अभाव होवे है।

कोई एकदेशी त्वचाके साथ मनके संयोगकूं ज्ञान का

हेतु कहे हैं। आत्मा के संयोग कूँ नहीं सुषुप्ति में पुरीतत नाम नाड़ीविषे मन प्रवेश करे है। त्वचा से मनका संयोग है नहीं। याते सुषुप्तिमें ज्ञान होवे नहीं। तिन के मत में त्वचासे संयोगवाला मनही ज्ञान द्वारा दुःख का हेतु होनेतैं दुःख रूप है, केवल मन नहीं। मोक्ष में त्वचा के नाश होनेते ताके साथ संयोग है नहीं याते ज्ञान होवे नहीं। मोक्षकालमें मन है भी परन्तु दुःखका हेतु जो ज्ञान का जनक त्वचासे संयोग वाला मन ताका सँयोग के नाशते नाश होवे है। ११-इस रीति से मोक्षकालमें परमात्मा से भिन्नही दुःखरहित होयके व्यापक आत्मा जड़रूप स्थित होवे है काहेते ? ज्ञानगुणते आत्मा का प्रकाश होवे है, सो जीवका ज्ञान सम्पूर्ण इन्द्रियजन्यही है, नित्य है नहीं। ता इन्द्रियजन्य ज्ञानका मोक्षकालमें नाश होवे है, याते प्रकाशरहित जड़रूप होयके आत्मा मोक्षकाल में स्थित होवे है, यह न्यायका सिद्धान्तहै, न्यायमतमें पूर्व उक्तप्रकार से सुख दुःख और बन्धमोक्ष आत्माकूं होवे हैं, याते आत्मा नाना है और सम्पूर्ण व्यापक है। सर्व अल्प पदार्थन से जो संयोग सोई न्यायमत में व्यापक का लक्षण है और सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदका अभाव, व्यापक का लक्षण नहीं, काहेते ? न्यायमतमें यद्यपि आत्मा निरवयव है, याते स्वगत भेदका तो ताके विषे अभाव है भी परन्तु सजातीय और विजातीय के भेद का अभाव नहीं किन्तु

अतमा के अंगा में भेद

१-सजातीय जो दूसरा आत्मा ताका भेद आत्मामें है। २-विजातीय घटादिकनका भेद भी आत्मामें है। याते सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदका अभाव व्यापकका लक्षण नहीं, किन्तु सर्व अल्प पदार्थन से संयोग ही व्यापक का लक्षण है।

याके विषे कोई शङ्का करे है-न्यायमत में आत्मा की न्याईं आकाश काल दिशा भी व्यापक हैं और परमाणु सूक्ष्म हैं निरवयव हैं तिन से सर्व व्यापक पदार्थन का संयोग बने नहीं, काहेते? जो परमाणु सावयव होवे तब तो किसी देशमें आत्मा का संयोग होवे और किसी देश में अन्य व्यापक पदार्थन का संयोग होवे. सो परमाणु सावयव है नहीं। किन्तु निरवयव हैं और अतिसूक्ष्म हैं। तिन्हके साथ एकही देशमें सर्व व्यापकपदार्थनका संयोग होवेगा सो बने नहीं, काहेते? जो एकके संयोग से स्थान निरुद्ध है, ता देश में अन्यपदार्थ का संयोग बने नहीं, याते नाना पदार्थनकूं व्यापकता बने नहीं, एकही कोई पदार्थ व्यापक बने है।

यह शङ्का बने नहीं। काहेते? जो सावयव वस्तुका संयोग है सो तो अन्य के संयोग का विरोधी है, १-जैसे जा पृथ्वी देशमें हस्तका संयोग होवे ता देशमें पादका संयोग होवे नहीं और निरवय का संयोग स्थान कूं रोके नहीं याते अन्यके संयोग का विरोधी नहीं यह वार्ता अनुभवसिद्ध है

२-जैसे घटके जा देशमें आकाशका संयोग है ता देश में ही कालका और दिशाका संयोग भी है। जो कोई घटका देश आकाशकालदिशासे बाहर होवे तौ ता देश देश में आकाशकालदिशाका संयोग होवे नहीं सो बाहिर तो कोई देश है नहीं। किन्तु सर्वपदार्थन के सर्व देश आकाश, दिशामेंही हैं याते सर्वपदार्थनके सर्वदेशनविषे आकाश काल, दिशा का संयोग है इस रीति से परमाणु विषे भी एकहीदेशमें नानानिरवयवविभु का संयोग बने है, कोईदोष नहीं, याते आत्मा नाना हैं और सम्पूर्ण व्यापक हैं।

सिद्धांती-सर्वका सर्वपदार्थन से संयोगहै यह न्यायका सिद्धांतहै सो समीचीन नहीं, काहेते? व्यापक आत्मा नाना अंगीकार करे तौ सर्व शरीरमें सर्व आत्माका संबंध अंगीकार करना होवेगा। याते कौन शरीर किसका है। यह निश्चय नहीं होवेगा। किन्तु एकएक आत्माके सर्वशरीर हुये चाहिये। जो ऐसे कहैं, जाके कर्म से जो शरीर उत्पन्न हुवा है ता आत्मा का शरीर है तो भी बने नहीं काहेते? कर्म जा शरीरसे होवेहै ता कर्मकारनेवाले पूर्वशरीर में भी सर्व आत्मा का सम्बन्ध है, याते कर्म भी सर्व आत्माके ही होवेंगे एकके नहीं और ऐसे कहैं, जा आत्मा के मनसहित शरीर है ता आत्मा का सा शरीर है, सो भी बने नहीं। काहेते? १-शरीर की न्याईं मन के साथ भी सर्व आत्मा का संबंध है ताके विषे यह निश्चय होवे नहीं।

जो कौनसा मन किस आत्माकाहै, किन्तु सर्व आत्माके सर्व मन हुए चाहिये। २-तैसे इन्द्रिय भी सर्व आत्मा के सर्वही होवेंगे। ३-बाहरके पदार्थनविषे " यह मेरा है, यह औरका है " ऐसा व्यवहार भी शरीर निमित्तक है, सो शरीर सर्व आत्मा के सर्व हैं, याते बाहर के पदार्थ भी सर्व आत्मा के सर्व हुए चाहिये और जो ऐसे कहैं-जा आत्मा कूँ जा शरीर में अहंबुद्धि और मम बुद्धि होवे ता आत्मा का सो शरीर है। सो अहंबुद्धि और ममबुद्धि एक है, याते सर्व आत्मामें रहै नहीं। किन्तु एक धर्म एकही धर्मी विषे रहै है। याते एक ही आत्मा का शरीर है। जा आत्माका जो शरीरहै ता शरीरके सम्बन्धी मन इन्द्रिय और बाहर के पदार्थ ता आत्माके हैं, याते व्यापक नाना आत्मा अङ्गीकार करने में भी दोष नहीं।

सो वार्त्ता भी बने नहीं। काहेते ? यद्यपि अहंबुद्धि एक देहमें एकही आत्माकूँ होवे है, तथापि सो न्यायमतमें बने नहीं, किन्तु सर्व आत्माकूँ एक देहमें अहंबुद्धि हुई चाहिये, काहेते ? न्यायमत में बुद्धि नाम ज्ञान का है सो ज्ञान आत्मा और मनके संयोगते होवे है। सो मनके साथ संयोग सर्व आत्माकाहै याते मनके संयोगते जैसे एक देहसे एक आत्माकूं अहंबुद्धि होवे है तैसे एक देह में सर्व आत्मा कूँ अहंबुद्धि हुई चाहिये। जो ऐसे कहैं:-यद्यपि मनका संयोग तो सर्व आत्मासे है तथापि जा आत्मामें ज्ञान का जनक

अदृष्ट है ता आत्मा कूँ अहंबुद्धि होवे है तो भी सर्व कूँ ही ज्ञान हुआ चाहिये । काहेते ? जो व्यापक नाना आत्मा अङ्गीकार करें तो एक शरीर की शुभ अशुभ क्रियाते शरीर में स्थित सर्व आत्मा में ही अदृष्ट हुये चाहिये । यह वार्त्ता पूर्व कहि आये । याते व्यापक जो नाना आत्मा अङ्गीकार करें तो एक देह में सर्व कूँ सुख दुःख का भोग हुआ चाहिये । याते व्यापक नाना कर्ता भोक्ता आत्मा है । यह न्याय का सिद्धान्त समीचीन नहीं ।

हमारे सिद्धान्तमें तो कर्ता भोक्ता अन्तःकरण है । सो अन्तःकरण नाना है, व्यापक और अणु नहीं । किन्तु शरीरके समान ता अन्तःकरण का परिणाम है, दीपक के प्रकाशकी न्याईं बड़े शरीरकूँ प्राप्ति होवे तब अन्तः-करण का विकाश होवे है और न्यून शरीर में सङ्कोच होवे है, यह वार्त्ता सिद्धान्तबिन्दुके व्याख्यानमें मधुसूदन स्वामीने प्रतिपादन करी है, जा अन्तःकरणका जा शरीर से सम्बन्ध है ता अन्तःकरणकूँ शरीरसे भोग होवे है । जो अन्तःकरणकूँ व्यापक अङ्गीकार करें ता सर्व शरीर सर्व के होवें और भोग भी सर्व कूँ होवे, सो व्यापक अन्तः करण नहीं, याते दोष नहीं और अन्तःकरण कूँ अणु अङ्गीकार करें तो शरीरके एकदेशमें अन्तःकरण रहै है, ऐसा अङ्गीकार करना होवेगा, सो वार्ता बने नहीं । काहेते ? जो एककालमें ही पाद और मस्तक में कराटक वेध होवे

तो दोनों स्थानमें एकही काल में पीड़ा होवे है सो नहीं हुई चाहिये, काहेते ? जो अन्तःकरण अणु होवे तो एकही स्थानमें एककाल में रहे याते जा स्थान में अन्तःकरण होवे ता स्थान में ही पीड़ा हुई चाहिये, दोनों स्थान में नहीं। याते अन्तःकरण अणु और व्यापक नहीं, किन्तु शरीरके समानहै, याते कोई दोष नहीं, अणु और व्यापक से विलक्षण जो है ताकूँ ही मध्यपरिणाम कहे हैं।

न्यायमत में किसी नवीन ने ऐसा अङ्गीकार किया है, १-आत्मा नाना है, कर्ता भोक्ता है। व्यापक नहीं। याते भोगका सङ्कर नहीं। २-अणु भी नहीं, याते दो स्थान में पीड़ा का असम्भव भी नहीं। किन्तु जैसे वेदान्त में अन्तःकरण मध्यम परिणाम है तैसे आत्मा भी मध्यम परिणाम है ताके विषे चतुर्दश गुण रहें हैं।

सो भी समीचीन नहीं। काहेते ? १-जो आत्मा कूँ सङ्कोच विकाशवाला अङ्गीकार करे तो दीपकी प्रभा की न्याईं आत्माविकारी और विनाशवाला होवेगा याते मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र और साधन निष्फल होवेंगे। २-मध्यम-परिणाम अङ्गीकार करके सङ्कोच विकाश अङ्गीकार नहीं करे तो कौन से शरीर के समान आत्मा कूँ अंगीकार करें ? यह निश्चय होवे नहीं। ३-जो मनुष्य शरीर के समान अंगीकार करें तो जब आत्मा हस्तीके शरीरकूँ प्राप्त होवे तब शरीर में आत्मा नहीं होवेगा। याते जा

जा देशमें हस्ती के आत्मा नहीं है ता देशमें पीड़ा नहीं हुई चाहिये। ४-हस्ती के शरीर के समान अंगीकार करे तो तासे औ शरीर बड़े है तिनके एक देश में पीड़ा नहीं हुई चाहिये और सर्वसे बड़ा किसी का शरीर है नहीं जाके समान आत्मा अंगीकार करें। सर्व से बड़ा विराट् का शरीर है ताके समान जो आत्मा अंगीकार करें तो विराट्के शरीर अन्तर्भूत सर्व शरीर हैं, याते सर्व आत्माका सर्व शरीरसे सम्बन्ध होवेगा, ताके विषे पूर्व-दोष कहेही हैं और यह नियम है:-जो मध्यम परिणाम वस्तु होवे सो शरीर की न्याईं अनित्य होवे है याते आत्मा भी अनित्य होवेगा और अन्तःकरण का तो हमारे मतमें ज्ञानते नाश होवे है, याते अनित्य है। मध्यम परिणाम अंगीकार कियेसे दोष नहीं। इस रीतसे नवीन तार्किका मत भी समीचीन नहीं।

पूर्व पक्षी-जो कोई ऐसे कहे:-आत्मा नाना है और अणु है।

सिद्धांती-सो वार्ता भी बने नहीं। काहेते? १-जो आत्माकूं कर्ता भोक्ता अंगीकार करे तो अन्तःकरण के अणुपक्षमें जो दोष कह्या सो दोष होवेगा। २-कर्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करें तो नाना आत्मा अंगीकार निष्फल होवेगा। एकही व्यापक सर्व शरीर में अंगीकार करना योग्य है और कर्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करें तो अपने

सिद्धान्त का भी त्याग होवेगा। काहेते ? अणुवादी का यह सिद्धान्त है:-ज्ञान सुख दुःख धर्मसे आदिलेके आत्मा के धर्म हैं, याते जो आत्माकूं अणु अंगीकार करे तो जो शरीरमें आत्मा नहीं है सो देश मृतसमान है, ताके विषे पीड़ादिक नहीं हुई चाहिये।

जो ऐसे कहैं—यद्यपि आत्मा तो शरीर के एक देशमें है, परन्तु कस्तूरी के गन्धकी न्याईं ताका ज्ञान सारे शरीरमें व्याप्त है, याते सर्व शरीरविषे अनुकूल प्रतिकूल के सम्बन्धकूं अनुभव करे है, सो भी बने नहीं। काहेते ? यह नियमहै: जितने देशमें गुणवाला रहै तासे बाहर गुण रहै नहीं, किन्तु गुणी में ही गुण रहे है। जैसे रूप घटादिकनते बाहिर रहे नहीं, तैसे आत्मासे बाहिर ज्ञान भी बने नहीं और कस्तूरीके सूक्ष्मभाग जितने देश में व्याप्त होवे उतने देशमें ही व्याप्त होवे है, याते कस्तूरी का दृष्टान्त भी बने नहीं। "याते आत्मा अणु है" यह पक्ष भी बने नहीं।

कहूँ श्रुति में आत्मा अत्यन्त अणुसे भी अणु जो कह्या है सो दुर्विज्ञेय है, याते कह्याहै, जैसे अत्यन्त अणुवस्तुका मन्ददृष्टि पुरुष कूं ज्ञान होवे नहीं, तैसे बहिर्मुख पुरुषकूं आत्माका भी ज्ञान होवे नहीं, याते अणुके समान है, यह श्रुतिका अभिप्राय है "आत्मा अणु है" यह अभिप्राय नहीं। काहेते ? बहुत स्थानमें व्यापक रूप आपही

वेदने प्रतिपादन किया है, याते अणु नहीं इस रीति से "व्यापक तथा मध्यम परिणाम अथवा अणु आत्मा नाना है" यह कहना सम्भवै नहीं !

परिशेषते एक व्यापक आत्माहै ताके विषे धर्म अधर्म सुख दुःख और बन्ध मोक्ष जो अङ्गीकार करे तो किसीकूँ सुख, किसीकूँ दुःख, किसीकूं बन्ध और किसीकूं मोक्ष ऐसा व्यवहार नहीं होवेगा, याते धर्मादिक बुद्धि के धर्म हैं यद्यपि बुद्धि जड़ है याते ताके विषे भी धर्मसुखादिक बने नहीं तथापि आत्मा के धर्म नहीं हैं, इस अभिप्रायते बुद्धि के धर्म कहिये हैं और "बुद्धि के धर्म हैं, याके विषे अभिप्राय नहीं, बुद्धि और सुखादिक आत्मा में अध्यस्त हैं। १-जो वस्तु भी जामें अध्यस्त होवे सो तामें परमार्थ से होवे नहीं, जैसे सर्प रज्जु में अध्यस्त है सो परमार्थ से रज्जुमें है नहीं। तैसे बुद्धि और सुखादिक आत्मा में है नहीं। २-अध्यस्त वस्तु भी किसी का आश्रय होवे नहीं, याते बुद्धि भी सुखादिकनका आश्रय है नहीं, परन्तु अज्ञान तो शुद्धचेतनमें अध्यस्तहै और अन्तःकरण अज्ञान उपहित में अध्यस्त है और अन्तःकरण उपहित में धर्म, अधर्म सुख दुःख, बन्ध, मोक्ष अध्यस्तहैं। इस रीतिसे आत्मामें धर्मादिकन के अधिष्ठानपने का अन्तःकरण उपाधि है, याते अन्तःकरणके धर्म कहिये हैं।

जो अन्तःकरणविशिष्ट में धर्मादिक अध्यस्त कहैं तो

बने नहीं, काहेते? विशेषणयुक्तका नाम विशिष्ट है। धर्मादिक अध्यासका अधिष्ठान जो आत्मा ताका अन्तःकरण जो विशेषण अङ्गीकार करे तो अन्तःकरण भी धर्म सुखादिकनका अधिष्ठान होवेगा, सो वार्ता बने नहीं। काहेते? मिथ्यावस्तु अधिष्ठान होवे नहीं। याते आत्मामें धर्मादिकनके अध्यास का अन्तःकरण विशेषण नहीं, किन्तु उपाधि है। १-उपाधिका यह स्वभाव है, आप तटस्थ होयके जितने देशमें आप होवे उतने देशमें स्थित वस्तुकूं जनावे। २-विशेषण का यह स्वभाव है:-जितने देश में आप होवे उतने देशमें स्थित वस्तुको अपने सहित जनावे १-विशेषणवान्कूं विशिष्ट में कहे हैं २-उपाधि वालेकूं उपहित कहे हैं, इस रीति से अन्तःकरण विशिष्ट जो धर्मादिअध्यस्त कहें, तो जितने देश में अन्तःकरण है ता देशमें स्थित चेतन भाग और अन्तःकरण दोनोंकूं अधिष्ठानता होवे सो अन्तःकरण आप भी अध्यस्त है, याते अधिष्ठान बने नहीं। इस अभिप्रायते अन्तःकरण उपहितमें धर्मादिक अध्यस्त कहे, याते "जितने देशमें अन्तःकरण है उतने देशमें स्थित चेतन भाग मात्र में अधिष्ठानता है अन्तःकरणमें नहीं" यह वार्ता बने है। तैसे अन्तःकरण भी अज्ञान उपहितमें अध्यस्त हैं अज्ञानविशिष्ट में नहीं, इस रीति से अध्यस्त जो धर्मादिक, तिनका अधिष्ठान आत्मा है। अध्यास के अधिष्ठान-

पने की अन्तःकरण उपाधि है। याते बुद्धिके धर्म कहे हैं,
२-अविवेकसे अन्तःकरण आत्मा दोनों विषे प्रतीत होवे
है, याते अन्तःकरणविशिष्ट जो प्रमाता ताके धर्म कहे हैं
१-धर्मादिक अन्तःकरणके धर्म होवे। २-अथवा अन्तः
करणविशिष्टप्रमाताके धर्म होवे। ३-अथवा रज्जु, सर्प,
स्वप्न के पदार्थ, गन्धर्व नगर, नभनीलता की न्याईं
किसीके धर्म न होवे. सर्व प्रकार से आत्माके धर्म नहीं।
यद्यपि आत्मा में अध्यस्त हैं, तथापि जो वस्तु जामें
अध्यस्त होवे सो तामेंही परमार्थ से होवे नहीं। अध्यस्त
नाम कल्पितका है। याते राग, द्वेष, धर्म, अधर्म, सुख,
दुःख, बन्ध, मोक्ष से रहित एक व्यापक आत्मा है, सो
आत्मा सत् है। १-जा वस्तु का ज्ञान से अभाव होवे
सो असत् कहिये है, जाकी निवृत्ति किसी काल में भी
नहीं होवे सो सत् कहिये है। सर्व पदार्थन का और
तिनकी निवृत्ति का आत्मा अधिष्ठान है जो आत्मा की
निवृत्ति होवे तौ ताका और अधिष्ठान कह्या चाहिये।
काहेते ? १-शून्यमें निवृत्ति होवे नहीं। २-जो आत्मा
और ताकी निवृत्तिका अन्य अधिष्ठान अङ्गीकार करे
तो ताका और अधिष्ठान अङ्गीकार करना होवेगा, इस
रीतिसे अनवस्था होवेगी और आत्मा की जो निवृत्ति
अंगीकारकरे ताकूं यह पूछे हैं। १-जो आत्माकी निवृत्ति
किसीने अनुभव करी है। २-अथवा नहीं ? जो ऐसे

कहैं, अनुभवकरी है। सो बने नहीं, काहेते ? जो अनुभव करनेवाला है सोई आत्मा है और अपना स्वरूपहै, ताकी निवृत्ति का अनुभव आपने मस्तक छेद के अनुभव समान है, याते आत्मा की निवृत्ति का अनुभव बने नहीं। २-ऐसे कहैं जो आत्मा की निवृत्ति तौ होवे है, परन्तु ताकी निवृत्तिका अनुभव किसीकूँ नहीं, तौ यह वार्ता सिद्ध हुई जो आत्मा की निवृत्ति तो होवे नहीं। काहेते ? जो वस्तु किसीने अनुभव नहीं करी सो वन्ध्या-पुत्रके समान होवे है, याते आत्माकी निवृति होवे नहीं याहीते आत्मा सत् है।

आत्मा चित है। प्रकाशरूप जो ज्ञान सो चित कहिये है। १-जो अप्रकाशरूप आत्मा अङ्गीकार करें तो अनात्मजड़वस्तुका प्रकाश कभी होवे नहीं। जो अन्तःकरण और इन्द्रियन से पदार्थका प्रकाश कहैं तो बने नहीं। काहेते ? अन्तःकरण और इन्द्रिय परिच्छिन्न हैं, याते कार्य हैं। १-जो परिच्छिन्न होवे सो घट की न्याईं कार्य होवे है अन्तःकरण इन्द्रिय भी परिच्छिन्न है, याते कार्य है २-देशकालते जाका अन्त होवे सो परिच्छिन्न कहियेहै, ३-जो कार्य होवे सो जड़ होवे है। याते अन्तःकरण और इन्द्रियें भी जड़ हैं, तिनते किसी वस्तु का प्रकाश बने नहीं। याते जो आत्मा सर्व का प्रकाश करे है सो प्रकाशरूप है।

जो ऐसे कहै—आत्मा प्रकाशरूप नहीं, किन्तु आत्मा तो जड़ है और ताके विषे ज्ञानगुण है ता ज्ञानते आत्मा और अनात्माका प्रकाश होवे है। ताकूँ यह पूछे हैं। १-अनात्मा का ज्ञान गुण नित्य है। अथवा अनित्य है। २-जो नित्य कहै तो आत्माका स्वरूप ही ज्ञान सिद्ध होवेगा। काहेते ? यह नियम है जो आत्मा से भिन्न होवे सो अनित्य होवे है, जो ज्ञानकूँ आत्मासे भिन्न अङ्गीकार करे तो अनित्यही होवेगा, याते नित्य मानिके आत्मा से भिन्नज्ञान है यह कहना बने नहीं और जो अनित्य अङ्गीकार करें तो घटादिकनकी न्याईं जड़ होवेगा जो अनित्य वस्तु होवे, सो जड़ होवे है याते "ज्ञान अनित्य है" यह कहना बने नहीं। किन्तु ज्ञान नित्यही सो नित्यज्ञान आत्म स्वरूपही है। जो अनित्य अङ्गीकार करें तो कदाचित् आत्मा में ज्ञान होवे और नित्य अङ्गीकार किये मे तो भिन्न होवे नहीं। जो गुण होवे सो गुणवान् विषे कदाचित् रहै और कदाचित् नहीं भी रहै, जैसे वस्त्र का नील पीत गुण कदाचित् रहे और कदाचित नहीं रहे। याते जो गुण होवे सो आगमापायी होवे है और ज्ञानकूँ नित्यता होनेते आगमापायी है नहीं। याते आत्मा का स्वरूप ही ज्ञान है।

ज्ञानकूं अनित्य कहै तो इन्द्रिय अथवा अन्तःकरण से ज्ञान उत्पन्न होते है, यह कहना होवेगा। सो बने नहीं।

काहेते ? सुषुप्तिमें इन्द्रियादिक तो हैं नहीं और सुख का ज्ञान होवे है। सो नहीं हुआ चाहिये, जो सुषुप्ति में सुखका ज्ञान अङ्गीकार नहीं करे तो जागि के "मैं सुखसे सोया" यह सुषुप्ति के सुख की स्मृति होवे है सो नहीं होनी चाहिये। जो वस्तु का पूर्व ज्ञान होवे ताकी स्मृति होवे है और अज्ञातवस्तुकी स्मृति होवे नहीं और सुषुप्ति के सुखकी जागिके स्मृति होवे है। याते सुषुप्ति में सुखका ज्ञान होवे है। ता ज्ञानके जनक इन्द्रियादिक सुषुप्ति में नहीं, याते नित्य है। ज्ञानकूं त्यागि के आत्मा कभी भी रहे नहीं याते ज्ञान आत्माका स्वरूप है जैसे उष्णताकूं त्यागि के अग्नि कभी रहे नहीं, याते उष्णता वह्नि का स्वरूप है। तैसे ज्ञान भी आत्मा का स्वरूप है जो आगमापायी होवे सो गुण होवे है, उष्णता और ज्ञान आगमापायी हैं नहीं, याते अग्नि और आत्माके स्वरूप हैं। जो वस्तु कदाचित् होवे और कदाचित् न होवे सो आगमपायी कहिये है।

उत्पत्ति और विनाश अन्तःकरण की वृत्ति के होवे हैं, ज्ञानके नहीं। १-आत्मस्वरूप जो ज्ञान है सो विशेष व्यवहार का हेतु नहीं किन्तु ज्ञान सहित वृत्ति अथवा वृत्तिमें आरूढज्ञान व्यवहार का हेतु है। यह अवच्छेदवाद की रीति है। २-आभासवाद में आभास सहित वृत्तिसे व्यवहार होवे है। आभास द्वारा अथवा साक्षात्

वृत्ति द्वारा आत्म स्वरूप ज्ञानते ही सब व्यवहार सिद्ध होवे है, नहीं तो होवे नहीं। इस रीति से सर्व का प्रकाशक ज्ञानस्वरूप आत्मा है। याते चित् है।

आत्मा आनन्द रूप है। जो आत्मा आनन्दरूप नहीं होवे तो विषय संबंधसे स्वरूप आनन्दका भान होवे है सो नहीं हुआ चाहिये। विषयमें आनन्द नहीं. यह वार्ता पूर्व कही हैं। जो विषयमें आनन्द होवे तो जा विषयते एक पुरुषकूं सुख होवे तासेही अन्यकूं दुःख होवे। जैसे अग्नि के स्पर्शते अग्नि कीट कूँ और सर्प सिंह के रूप देखनेते सर्पिणी सिंहनीकूं आनन्द होवे है और अन्यपुरुषकूं दुःख होवे है सो नहीं हुआ चाहिये और सिद्धान्तमें तो अग्नि-कीटकूँ अग्निस्पर्श की इच्छा होवे तब चञ्चलबुद्धिमें स्वरूप आनन्दका भान होवे नहीं। अग्निसंबंधते क्षणमात्र इच्छा दूर होयके निश्चलबुद्धिमें स्वरूप आनन्दका भान होवे है, अन्यपुरुषकूँ अग्नि सम्बन्ध की इच्छा है नहीं किन्तु अन्यपदार्थन की इच्छा है। तिन पदार्थन की इच्छा अग्निसम्बन्धसे दूर होवे नहीं। याते चञ्चल अन्तःकरण में अग्निसंबंधसे आनन्द होवे नहीं। याके विषे यह शङ्का होवे है:-जो इच्छा रूप अन्तःकरण की वृत्ति है सो तो विषय प्राप्तिसे नाशकूँ प्राप्त होय गई और अन्य वृत्ति का कोई निमित्त है नहीं। याते उत्पत्ति हुई नहीं और वृत्ति से बिना स्वरूप आनन्द का भान होवे नहीं, याते विषय में आनन्द है।

सो शङ्का बने नहीं। काहेते? १-यद्यपि इच्छारूप तो अन्तःकरण की वृत्ति का अभाव है सो इच्छारूप वृत्ति होवे तो भी ताके विषे आनन्दप्रकाश होवे नहीं, काहेते? इच्छारूप वृत्ति राजस है और आनन्दकाप्रकाश सात्त्विक वृत्ति में होवे है तथापि वांछितपदार्थ जो मिथ्या है ताके स्वरूपकूँ विषय करने वास्ते जो ज्ञानरूप अन्तः-करणकी वृत्ति है सो सात्त्विक है। काहेते? सत्त्वगुण से ज्ञान होवे है यह नियम है। ता सात्त्विक वृत्ति में आन-न्दका भान होवे है परन्तु सो ज्ञानरूप वृत्ति बहिर्मुख है। ताके पृष्ठभाग में स्थित जो अन्तःकरण उपहित चेतनस्व-रूप आनन्द ताका तिस वृत्ति से ग्रहण होवे नहीं। याते विषय उपहित चेतनस्वरूप आनन्द का भान होवे है सो विषय उपहित चेतन आत्मासे भिन्न नहीं याते आत्मा-नन्दकाही विषयमें भान कहिये है ता ज्ञानरूप वृत्ति विषे विषय के साथ नेत्रादिकनका सम्बन्ध ही निमित्त है।

२-अथवा ज्ञान रूप जो बहिर्मुखवृत्ति तासे अन्य अन्तर्मुखवृत्ति होवे है ताके विषे अन्तःकरणउपहित चेत-नरूप आनन्दकाही भान होवे है यह उत्तम सिद्धान्त है, ता वृत्तिकी उत्पत्तिमें इच्छादिकन का अभाव ही निमित्त है। जैसे इच्छादिकनते रहित जो एकान्तमें उदासीन पुरुष स्थित है ताकूं बहिर्मुखज्ञान रूपते कोई वृत्ति होवे नहीं आनन्दका भान होवे है याते इच्छादिकनके अभावरूप

निमित्तते अन्तर्मुखवृत्ति आनन्दग्रहण करनेवाली होवे है। तासे वाञ्छित विषय के लाभ से इच्छादिकन का अभाव होनेते ज्ञानसे अनन्तर अन्तर्मुखवृत्ति होवे है। तिसते अन्तःकरण उपहित आनन्द का ही ग्रहण होवे है। सो स्वरूप आनन्द का ग्रहण और विषय का ज्ञान अत्यन्त अव्यवहित है। याते पुरुषकूँ ऐसी भ्रान्ति होवे है "मैंने विषयमें आनन्द अनुभव किया है" प्रथमपक्ष से यह पक्ष उत्तम है। काहेते? जो विषयको ज्ञान रूप वृत्ति है तासे अन्तःकरणउपहित आनन्द का तो भान बने नहीं, याते विषय उपहित आनन्दका भान होवेगा तो मार्ग में वृक्षकी जो ज्ञान रूप वृत्ति है सो भी सात्विक है, तासे भी वृक्ष-उपहित चेतनस्वरूप आनन्दका भान हुआ चाहिये। तैसे सर्वज्ञानसे ज्ञेय उपहित चेतनरूप आनन्दका भान हुवा चाहिये। याते अनात्मवस्तुके ज्ञानरूप जो बहिर्मुख वृत्ति तासे ज्ञेय उपहित चेतन स्वरूप आनन्द का ग्रहण होवे नहीं। इस रीति से विषय के सम्बन्ध से आत्मस्वरूपानन्दका भान होवे है। जो आत्मा आनन्दरूप नहीं होवे तो विषय सम्बन्ध से आनन्द का भान बने नहीं। याते आत्मा आनन्दरूप है।

आत्माका सम्बन्धी जो वस्तु है ताके विषे प्रेम होवे है, तासे सन्निहितमें अधिक प्रेम होवे है, इस रीतिके बाहिर बाहिरके पदार्थन की अपेक्षाते अन्तर अन्तर के पदा-

थनमें अधिक प्रीति है। १-परम्पराते आत्माका सम्बन्धी जो पुत्रका मित्र है तामें प्रीति होवे है। २-पुत्रके मित्रको अपेक्षाते पुत्रमें अधिक प्रीति है। ३-पुत्र से भी स्थूल सूक्ष्म शरीरमें अधिक प्रीति है। ४-स्थूल सूक्ष्म शरीर में भी स्थूलते सूक्ष्ममें अधिक प्रीति है। पूर्वपूर्व से उत्तर २ आत्माके समीप है, १-आत्माका आभास सूक्ष्म शरीर में है और में नहीं, याते आभास द्वारा आत्मा का सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध है और से नहीं, २-स्थूलशरीरसे सूक्ष्म शरीर का संबंध है याते स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीर द्वारा आत्माका संबंध है ३-पुत्र से स्थूल शरीर द्वारा संबंधहै और पुत्रके मित्रसे पुत्रद्वारा संबंध है, इस रीति से उत्तर उत्तर जो आत्माके समीप ताके विषे अधिक प्रीति है, जो आत्माके संबंध होनेते पदार्थ में प्रीति होवे तो आत्मा में ही मुख्य प्रीति है और पदार्थ में नहीं। जैसे पुत्रके मित्र में पुत्रके संबंधसे प्रीति है याते पुत्रमें ही प्रीति है, पुत्रके मित्रमें नहीं। तैसे आत्माके अधिक समीपमें अधिक प्रीति होवे है। याते आत्मा विषेही सर्व की प्रीति है, सो प्रीति आनन्द में और दुःखके अभाव में होवे है और में नहीं और पदार्थ में जो प्रीति होवे सो आनन्द और दुःखके अभाव के निमित्त होवे है, याते आनन्द और दुःख के अभावसे और मे प्रीति नहीं, याते सबकी प्रीतिका विषय जो आत्मा सो आनन्दरूपहै और दुखका अभाव आत्मा

रूप है, कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप होवे है, जैसे-
सर्प का अभाव रज्जुरूप है। याते कल्पित जो दुःख
ताका अभाव भी आत्मारूप है, इस रीति से आत्मा
आनन्दरूप है।

न्यायमत में आत्माका आनन्दगुण है, सो समीचीन
नहीं। काहेते ? जो आनन्दगुणकूं नित्य अङ्गीकार करेंतो
आगमापायी नहीं होवे, याते आत्माका स्वरूप ही आनंद
सिद्ध होवेगा और नित्य आनन्द न्यायमत में है भी नहीं
और । अनित्य जो कहैं तो अनुकूल विषय और इंद्रिय के
संबंधसे आनन्दकी उत्पत्ति अंगीकार करनी होवेगी याते
सुषुप्तिमें आनन्दका भान नहीं हुवा चाहिये। काहेते सुषुप्ति
में विषयका और इंद्रियका सम्बन्ध है नहीं। याते आत्मा
का आनन्द गुण नहीं, किन्तु आत्मा आनन्द स्वरूप है,
इस रीतिसे आत्मा सतचित् आनन्दरूप है, सो सच्चिदा-
नंद परस्पर भिन्न नहीं, किन्तु एक ही है। जो आत्मा
के गुण होवे तो परस्पर भिन्न भी होवे और आत्म-
स्वरूप है, याते भिन्न नहीं। १-एकही आत्मा निवृत्ति
रहित है, याते सत् कहिये है। २-जड़ से विलक्षण
प्रकाशरूप है, याते चित कहिये है। ३-दुःखसे विलक्षण
मुख्यप्रीति का विषय है, याते आनंद कहिये है। जैसे-
उष्णप्रकाश रूप अग्नि है, तैसे सच्चित् आनंदरूप आत्मा
है और सच्चित् आनंदस्वरूपही शास्त्रमें ब्रह्म कह्या है।

याते ब्रह्मस्वरूप आत्मा है और ब्रह्म नाम व्यापक का है। १-देशते जाका अन्त नहीं होवे सो व्यापक कहिये है, तासे आत्मा जो भिन्न होवे तो देशते अन्त वाला होवेगा। २-जाका देशते अंत होवे ताका कालसे भी अंत होवे है, यह नियम है। याते अनित्य होवेगा। जाका कालसे अंत होवे सो अनित्य कहिये। याते ब्रह्म से भिन्न आत्मा नहीं और आत्मासे भिन्न जो ब्रह्म होवे तो अनात्मा होवेगा। जो अनात्मा घटादिक हैं सो जड़ हैं, याते आत्मासे भिन्न ब्रह्म भी जड़ही होवेगा। याते आत्मासे भिन्न ब्रह्म भी नहीं, किन्तु ब्रह्मस्वरूपही आत्मा है।

१-एक ही चेतन सर्वप्रपञ्च और माया का अधिष्ठान है याते ब्रह्म कहिये है, २-अविद्या और व्यष्टि देहादिकनका अधिष्ठान है याते आत्मा कहिये है, १-तत्पद का लक्ष्य ब्रह्म कहिये है। २-त्वम्पद का लक्ष्य आत्मा कहिये है। १-ईश्वरसाक्षी तत्पद का लक्ष्य है। २-जीवसाक्षी त्वम्पदका लक्ष्य है। १-व्यष्टिसंघातउपहित चेतन जीव साक्षी है। २-समष्टि संघात उपहित चेतन ईश्वरसाक्षी कहिये है। यद्यपि जीवकी और ईश्वर की एकता बने नहीं तथापि जीवसाक्षी और ईश्वरसाक्षी का उपाधि के भेद से भेद है और स्वरूप से एक ही है। जैसे मठमें स्थित जो घटाकाश और मठाकाश तिन्हका उपाधि के भेदबिना स्वरूपसे भेद नहीं। तैसे आत्मा और ब्रह्म का उपाधिभेद विना भेद नहीं एकही वस्तु है।

सो ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा कहिये जन्मरहित है। जो आत्मा का जन्म अङ्गीकार करे तो अनित्य होवेगा सो वार्ता परलोकवादी जो आस्तिक हैं तिन कूँ इष्ट नहीं। काहेते ? जो आत्मा उत्पत्ति नाशवान् होवे तो प्रथम जन्मविषे पूर्वकर्म विना ही सुखदुःखका भोग और किये कर्मका भोगसे विना नाश होवेगा। याते कर्ता भोक्ता जो आत्मा अंगीकार करे तो भी जन्म नाशरहित ही अङ्गीकार करना होवेगा और आत्मा का जन्म जो अंगीकार करे तो हेतुसे विना तो किसी वस्तुका जन्म होवे नहीं। याते किसी हेतु से ही जन्म होवेगा सो बने नहीं। काहेते ? जो आत्मा का हेतु है सो आत्मा से भिन्न हो कहना होवेगा। सो आत्मा से भिन्न सम्पूर्ण आत्मा में कल्पित हैं याते आत्मा का हेतु बने नहीं। जैसे रज्जु में कल्पित सर्प, रज्जु हेतु नहीं। तैसे आत्मा में कल्पित वस्तु आत्मा का हेतु बने नहीं।

जैसे एक रज्जुविषे नाना पुरुषनकूँ दण्ड, सर्प, पृथ्वी रेखा जलधाराकी भ्रान्ति होवे है, ता भ्रान्तिमें दो अंशहैं, १-एक तो सामान्य इदं अंश है। २-एक सर्पादिक विशेष अंश है सो सामान्य इदं अंश सर्पादिक विशेष अंशनमें सारे व्यापक है। १-"यह सर्प है। यह दण्ड है। ३-यह पृथ्वी की रेखा है। ४-यह जल की रेखा है" इस रीतिसे सर्पादिक विशेष अंश इदं अंशमें सार

व्यापक हैं सो व्यापक सामान्य इदंअंश रज्जु स्वरूप है, ता सामान्य इदंअंशके ज्ञानकूँ ही भ्रान्ति का हेतु रज्जु का सामान्य ज्ञान कहे हैं। सो सामान्य इदंअंश सत्य है। काहेते? रज्जुका ज्ञान हुयेसे अनन्तर भी ता इदं अंशकी प्रतीत होवे है। जैसे भ्रान्ति काल में "यह सर्प है" या रीति से सर्पादिकन से मिलिके इदम् अंश की प्रतीत होवे है। २-तैसे भ्रान्तिकी निवृत्ति से अनन्तर भी "यह रज्जु है" या रीति से रज्जु के साथ मिलिके इदम् अंशकी प्रतीत होवे है, जो इदम् अंश भी मिथ्या होवे तो सर्पादिकनकी न्याई भ्रान्तिकी निवृत्तिसे अनन्तर ताकी भी प्रतीत नहीं हुई चाहिये, याते सर्पादिकभ्रांतिमें व्यापक जो इदं अंश सो सत्य है और अधिष्ठान रज्जुरूप है और परस्पर व्यभिचारी जो सर्पादिक सो कल्पित है।

तैसे सर्व पदार्थन में पाँच अंश है। १-एक नाम। २-रूप। ३-अस्ति। ४-भाति तथा ५-प्रिय। १-"घट" यह दो अक्षर नाम। २-"गोलरूप"। ३-"घट है" यह अस्ति और ४-"घट प्रतीत होवे है" यह भाति और ५-"घट प्रिय है" यह आनंद, (सर्पादिक भी सर्पिणी आदिकनकूँ प्रिय हैं) इस रीतिसे सर्व पदार्थन में पांच अंश हैं। तिन विषे अस्ति-भाति-प्रियरूप तीन अंश सर्व पदार्थनमें व्यापक हैं और नाम, रूप व्यभिचारी हैं जो वस्तु कहूँ होवे और कहूँ नहीं होवे सो व्यभिचारी

कहिये है। घट नाम और गोल रूप पटविषे नहीं है। पट नाम और ताका रूप घटविषे नहीं है। इस रीतिसे सर्वपदार्थन विषे नाम, रूप, अंश व्यभिचारी हैं और अस्ति-भाति-प्रियरूप सर्वविषे अनुगत है। जैसे सर्पदण्डादिकनमें अनुगत इदं अंश सत्य और अधिष्ठान है, तैसे सर्व पदार्थनमें अनुगत अस्ति-भाति प्रियरूप सत्य है और अधिष्ठानरूप है और सर्पदण्डादिकन की न्याई व्यभिचारी नाम, रूप कल्पित हैं और अस्ति-भाति-प्रिय सच्चित् आनन्दरूप है, याते आत्मस्वरूप है, इस रीत से सच्चित् आनन्दरूप आत्माविषे सम्पूर्ण नाम रूप प्रपञ्च कल्पित है, सो कल्पित पदार्थ कोई आत्मा के जन्म का हेतु बने नहीं, याते आत्मा अजन्मा है, जा वस्तु का जन्म होवे ताही के सत्ता*, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय=, विनाशरूप पाँच विकार होवे हैं। आत्मा का जन्म होवे नहीं। याते उत्तर पाँच विकार भी होवे नहीं, इस रीत से अजन्मा कहिये जन्मादिक षट्विकार से रहित आत्मा है।

सो आत्मा असङ्ग है, सङ्ग नाम संबंध का है। सो सजातीय, विजातीय, स्वगतपदार्थसे होवे है। १-जैसे घटका घटसे जो संबंध है सो सजातीय से संबंध है। २-घटका पटसे जो संबंध सो विजातीय से संबध है। ३-स्वगत

* सत्ता-प्रगटता। = अपक्षय-घटना।

नाम अवयव है। याते पटका तंतुसे जो संबंध सो स्वागत मे संबंध है। १-आत्मा दो अथवा अनंत होवे तो सजातीय से आत्मा का संबंध होवे सो आत्मा एक है, याते सजातीय आत्मा मे आत्माका संबंध नहीं। २-आत्मा से विजातीय अनात्मा है सो मृग तृष्णा के जल की न्याई आत्मामें कल्पित है, ता कल्पित से आत्माका संबंध बने नहीं। जैसे मृगतृष्णाके जल से पृथ्वी का संबंध होवे नहीं, जो संबंध होवे तो ऊपरभूमि ता जलसे गीली हुई चाहिये, जैसे मृगतृष्णाके जलसे ऊपर भूमि का संबंध नहीं तैसे आत्मा में कल्पित जो विजातीय अनात्मा तासे आत्माका संबंध नहीं। ३-जो आत्माके अवयव होवे तो आत्मा का स्वगत से संबंध होवे, आत्मा नित्य है, याते निरवयवहै। ताका स्वगतसे संबंध बने नहीं। इस रीतिसे सजातीय विजातीय स्वगत संबंध आत्मा विषे नहीं, याते असङ्ग है। इस रीतिसे हे शिष्य! सच्चित् आनंद ब्रह्मरूप, जन्मादिकविकार रहित, असङ्ग आत्मा है, "सो तू है", यह प्रथम प्रश्न का अर्द्ध दोहे से आचार्यने उत्तर कह्या।

"जगत् का कर्ता कौन है?" यह द्वितीय प्रश्न का उत्तर अर्द्ध दोहे से कहे हैं—

❀ दोहार्द्ध ❀

विभु चेतन माया करें, जगको उत्पति भङ्ग ॥ ६ ॥

विभु कहिये व्यापक जो चेतन ताके आश्रित और

ताकूँ विषय करनेवाली माया कहिये सत् असत् से विल-
क्षण अद्भुत शक्तिरूप अज्ञान, तासे जगत् की उत्पत्ति
भङ्ग होवे है। उत्पत्ति और भङ्ग कहनेते स्थितिका ग्रहण
अर्थते होवे है। याते यह अर्थ सिद्ध हुआ। १-मायायुक्त
जो चेतन सो ईश्वर कहिये है। २-सो ईश्वर जगत् की
उत्पत्ति पालन नाशका हेतु है। या कहनेते १-"जगत् का
कोई कर्ता है, अथवा आपसे होवे है" याका उत्तर कह्या।
२-"जगत् का कर्ता कोई जीव है, अथवा ईश्वर है?"
याका भी उत्तर कह्या।

जगत्का कर्ता ईश्वर है, आपसे होवे नहीं। जो कर्ता से
बिना जगत् होवे तो कुलालबिना घट होना चाहिये। याते
जगत्का कोई कर्ता है। १-सो कर्ता सर्वज्ञ है। काहेते?
जो कार्यका कर्ता होवे सो ता कार्यकूँ और ताके उपा-
दानकूँ जानिके करे है। याते जगत्का कर्ता भी जगत्कूँ
और जगत्के उपादान कूँ जानिके करे है। इस रीति से
जगत्का कर्ता जगत्कूँ और जगत्के उपादान कूँ जाने
है, याते सर्वज्ञ है। २-सर्व शक्तिमान् है। काहेते? जो
अल्पशक्तिवाले जीव हैं तिन्हसे या जगत्की रचना मनसे
भी चिन्तन होवे नहीं, याते अद्भुत जगत् का कर्ता अद्भुत
शक्तिवाला है। इस रीतिसे जगत्का कर्ता सर्व शक्तिमान
है। ३-स्वतन्त्र है। काहेते? जो न्यून शक्ति वाला होवे
सो पराधीन होवे है और सर्व शक्ति वाला पराधीन होवे

नहीं, याते स्वतंत्र है। इस रीतिसे जगत्का कर्ता सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र है, ताहीकूँ ईश्वर कहैं हैं। और अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान्, पराधीन कूँ जीव कहैं हैं यद्यपि अल्पज्ञतादिक जीव में भी परमार्थ से नहीं तथापि अविद्याकृत मिथ्या अल्पज्ञतादिक जीवमें प्रतीत होवैं हैं, याते जीव में कहिये हैं। अविद्या कृत अल्पज्ञतादिकन की जो भ्रान्ति सोई जीवता है। सो अल्पज्ञतादिकन की भ्रान्ति ईश्वरमें नहीं, किन्तु मायाकृत सर्वज्ञतादिक ईश्वर में है। यह वार्ता विस्तार से आगे प्रतिपादन करेंगे। इस रीतिसे जगत्का कर्ता जीव नहीं, ईश्वर है। सो ईश्वर एकदेशमें स्थित नहीं, किन्तु सर्वत्र व्यापक है। जो एक देश में अङ्गीकार करें तो जा वस्तु का देशते अन्त होवे ताका कालसे भी अंत होवे है, याते अनित्य होवेगा। जो अनित्य होवै सो कर्तासे जन्य होवे है, याते ईश्वरका भी कर्ता अङ्गीकार करना होवेगा, सो ईश्वर का कर्ता बनै नहीं। काहेतें ? १-आप तो अपना कर्ता बने नहीं। जो अपना कर्ता आपही अङ्गीकार करें तो आत्माश्रय दोष होवेगा। आपही क्रियाका कर्ता, (आश्रय) और आपही क्रियाका कर्म, क्रिया विषयरूप कार्य होवे। तहाँ आत्माश्रय होवे है। जैसे कुलाल क्रिया का कर्ता है और घट कर्म है। तैसे क्रियाका कर्त्ता और कर्म भिन्न होवे हैं, एक बनै नहीं, यातें आत्माश्रय दोष है। कर्म नाम कार्य का

है और कार्यके विरोधी का नाम दोष है । आत्माश्रय कार्यका विरोधी है, यातें दोष है। यातें २-ईश्वर कर्ता अन्य अङ्गीकार करना होवेगा, सो अन्य भी प्रथम कर्ता की न्याईं कर्ता-जन्य ही कहना होवेगा, सो ताका कर्ता भी प्रथमकी न्याईं तासे भिन्न ही कहना होवेगा। सो प्रथम जो ईश्वर है ताकूँ द्वितीयकर्ता का कर्ता अङ्गीकार करें तो अन्योन्याश्रयदोष होवेगा। यातें तृतीय कर्ता अङ्गीकार करना होवेगा। ता तृतीयका कर्ता जो द्वितीय मानैं तब तो अन्योन्याश्रय दोष होवे और प्रथम मानैं तब चक्रिका दोष होवेगा। जैसे चक्रका भ्रमण होवे है तैसे प्रथमकर्ता द्वितीयजन्य और द्वितीयकर्ता तृतीय जन्य और तृतीय प्रथमजन्य, सो प्रथम फिर द्वितीयजन्य, इस रीतिसे कार्यकारणभावका भ्रमण होवेगा, चक्रिका स्थान में कोई भी सिद्ध होवे नहीं, सर्वकी परस्पर अपेक्षा है, अन्योन्याश्रयमें दोकी परस्पर अपेक्षा है। एक की सिद्ध हुये बिना अन्यकी सिद्धि होवे नहीं। यातें जैसे कुलालका कर्ता आप नहीं किंतु ताका पिता है, तैसे प्रथम ईश्वर कर्ता का अन्य कर्ता है और कुलाल का पिता अपने पुत्रसे उत्पन्न होवे नहीं, किन्तु अन्य पितासे उत्पन्न होवे है। तैसे द्वितीयकर्ता प्रथमकर्ता से उत्पन्न होवे नहीं, किंतु अन्यकर्ता से ही कहना होवेगा। और कुलालका पितामह, कुलाल और ताके पिता से उत्पन्न होवे नहीं, किंतु

चतुर्थ जो कुलाल का प्रपितामह तासे उत्पन्न होवे है, तैसे तृतीयकर्त्ता भी प्रथम और द्वितीय कर्त्ता से उत्पन्न होवे नहीं। याते चतुर्थ कर्त्ता और अङ्गीकार करना होवेगा। ता चतुर्थका कर्त्ता और पञ्चम मानना होवेगा, याते, अनवस्थादोष होवेगा. धाराका नाम अवस्था है। जो कर्त्ता की धारा अंगीकार करे तो कौनसा कर्त्ता जगत् करे है? यह निर्णय नहीं होवेगा। ३-किसी एककूँ जगत् का कर्त्ता माननेमें कोई युक्ति नहीं। ता युक्तिके अभावका नाम ही विनिगमना विरह कहैं हैं। ४-धारा की कहूँ विश्रांति अंगीकार करे तो जा कर्त्तामें धारा का अन्त अंगीकार किया सोई कर्त्ता जगत् का मानने योग्य है, पूर्व सारे निष्फल होवेंगे, याका नामही प्रागलोप कहैं हैं, पिछले के अभावका नाम प्रागलोप है, इस रीति से ईश्वर का देशतें अन्त अंगीकार करे तो उत्पत्ति अंगीकार करनी होवेगी और उत्पत्ति अंगीकार करे तो आत्माश्रयादि षट् दोष होवेंगे। याते ईश्वर का देशते अन्त नहीं, किंतु व्यापक है, याहीते नित्य है।

ता व्यापक ईश्वरका और जीव का स्वरूप से भेद नहीं किन्तु उपाधिसे भेद है। काहेते? १-अवच्छेदवाद में माया विशिष्टचेतन ईश्वर कहैं है और अविद्याविशिष्टचेतन जीव कहैं हैं, २-आभासवाद में माया और आभासविशिष्टचेतन ईश्वर कहैं हैं और आभास सहित अविद्या विशिष्ट

चेतनकूँ जीव कहैं हैं ? १आभासवाद में आभास सहित अविद्या और मायाका भेद है, चेतन का नहीं। २-तैसे अवच्छेदवादमें भी अविद्या और माया का भेद, स्वरूप से चेतनका भेद नहीं। ३-अज्ञानमें चेतनका प्रतिबिम्ब जीव है और बिम्ब ईश्वर है। या पक्षमें भी चेतनका स्वरूप से भेद नहीं, किन्तु एकही चेतनमें जीवपना और ईश्वर पना आरोपित है। यह वार्ता आगे कहैंगे। इस रीतिसे जगत का कर्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतन्त्र ईश्वर है, सो ईश्वर व्यापक है ताका और जीव का विशेषण मात्र से भेद है और स्वरूप से अभेद है। यह द्वितीय प्रश्न का उत्तर कह्या ॥ ९ ॥

"मोक्षका साधन ज्ञान है अथवा कर्म है अथवा उपासना है अथवा दो हैं।"

याका उत्तर कहैं हैं-दोहा।

हेतु मोक्षकी ज्ञान इक, नहीं कर्म नहिं ध्यान।
रज्जु सर्प तबहीं नशे, होय रज्जु के ज्ञान ॥ १० ॥

मुक्ति का हेतु कर्म और ध्यान कहिये उपासना नहीं, किन्तु ज्ञानही हेतु है। काहेते ? जो आत्मा में बन्ध सत्य होवे तो ताकी निवृत्ति रूप मोक्ष ज्ञान से होवे नहीं, किन्तु कर्म अथवा उपासना ते होवे सो बन्ध आत्मा में सत्य है नहीं किन्तु रज्जु सर्पकी न्याईं मिथ्या है। ता मिथ्या की निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञान से ही बने है, कर्म

अथवा उपासनासे नहीं। जैसे रज्जुका सर्प किसी क्रियाते दूर होवै नहीं, केवल रज्जु के ज्ञान से दूर होवै तैसे आत्मा के अज्ञान से प्रतीति होवे है, बंध तो बन्ध की प्रतीति और अज्ञान आत्मा के ज्ञानसे ही दूर होवे है।

जो कर्म का फल मोक्ष होवे तो मोक्ष अनित्य होवेगा, काहेते ? यह नियम है, जो कृषि आदि कर्मका फल अन्नादिक हैं सो अनित्य हैं और यज्ञादिक कर्म का फल स्वर्गादिक भी अनित्यहै जो मोक्ष भी कर्म का फल मोक्ष नहीं २-तैसे उपासनाका फल जो अङ्गीकार करे तो भी मोक्ष अनित्य होवेगा। काहेते ? उपासना भी मानस कर्म ही है और कर्म का फल अनित्य होवे है, याते उपासना रूप कर्म का फल भी मोक्ष नहीं।

कर्मकर्ताकूँ कर्म से पाँच प्रकारका उपयोग होवे है। १-पदार्थकी उत्पत्ति तथा। २-नाश अथवा। ३-पदार्थकी प्राप्ति वा। ४-पदार्थ का विकार। ५-तैसे संस्कार अन्य-स्वरूपकी प्राप्तिका नाम विकारहै। संस्कार दो प्रकार का होवे है। मलकी निवृत्ति और गुणकी उत्पत्ति, यह पाँच प्रकार का कर्म से उपयोग होवे है, सो मुमुक्षुकूँ कोई भी बनै नहीं। याते मुमुक्षु ज्ञानके साधन श्रवणादिक विषे ही प्रवृत्त होवै और कर्ममें नहीं। १-जैसे कुलाल के कर्मते कुलालकूँ घटकी उत्पत्ति उपयोग होवे है, तैसे मुमुक्षुकूँ कर्मते मोक्ष की उत्पत्ति उपयोग बनै नहीं काहेते ? जो

अनर्थकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्तिरूप मोक्ष है सो अनर्थकी निवृत्ति आत्मामें नित्य सिद्ध है। जैसे रज्जु में सर्पकी निवृत्ति नित्य सिद्ध है और आत्मा परम आनन्द स्वरूप है। याते परमानन्दकी प्राप्ति भी नित्यसिद्ध है, इस रीतिसे स्वभावसिद्ध मोक्ष को कर्मसे उत्पत्ति बने नहीं। जो वस्तु आगे सिद्ध नहीं होवै ताकी कर्मसे उत्पत्ति होवै है। और सिद्ध वस्तुकी उत्पत्ति होवे नहीं।

वेदान्त श्रवण भी मोक्षकी उत्पत्ति के निमित्त नहीं कह्या, किन्तु आत्मा नित्यमुक्त है, किंचितमात्र भी कर्तव्य नहीं। इस वार्ताके जानने वास्ते श्रवण है। यह जानि के कर्तव्यभ्रान्ति दूर होवे है और वेदांतश्रवण से अनन्तर भी जिनकूं कर्तव्यप्रतीति होवे है, तिन्ह ने तत्व जाना नहीं, इसी कारणते नित्यनिवृत्त जो अनर्थ ताकी निवृत्ति और नित्य प्राप्त अनन्द की प्राप्ति, वेदांतश्रवण का फल वेदगुरुने नैष्कर्म्यसिद्धि में कह्या है। याते मोक्ष की उत्पत्ति रूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं।

२–जैसे दण्डके प्रहाररूप कर्मका घटका नाशरूप उपयोग होवे है तैसे मुमुक्षुकूँ कर्मते किसी पदार्थका नाश रूप उपयोग भी बनै नहीं। काहेते? अन्यपदार्थका नाश तो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं। बन्ध का नाशही कर्म से उपयोग कहना होवेगा। सो बन्ध आत्मामें है नहीं। मिथ्या प्रतीति होवे है। ता मिथ्याप्रतीतिका नाश कर्मसे

बने नहीं और आत्माके यथार्थ ज्ञानसे तो मिथ्या प्रतीति का नाश बने है। याते मुमुक्षुकूं पदार्थन का नाश रूप उपयोग भी कर्मसे बने नहीं। ३-जैसे गमनरूप कर्मते ग्राम की प्राप्ति होवे है तैसे मोक्ष की प्राप्ति रूप उपयोग कर्मसे बने नहीं। काहेते? जो आत्मा नित्य मुक्त है ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बने नहीं। जाकूं बन्ध होवे ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बने है और आत्मामें बन्ध है नहीं। याते मोक्षकी प्राप्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बने नहीं।

४-जैसे पाकरूप कर्मसे अन्न का विकार रूप उपयोग पाचककूं होवे है, तैसे मुमुक्षुकूं कर्मते विकार रूप उपयोग भी बने नहीं। काहेते? और तो कोई विकार बने नहीं जो आत्मामें प्रथम बन्ध अंगीकार करे और मोक्ष दशा में चतुर्भुजादिक विलक्षणरूपकी प्राप्ति अंगीकार करे तो अन्यरूपकी प्राप्तिरूप विकार कर्मका उपयोग मुमुक्षु कूँ बने। सो अन्यरूपकी प्राप्ति आत्मा में अंगीकार नहीं, याते कर्मसे विकाररूप उपयोगभी मुमुक्षुकूँ बने नहीं।

५-जैसे वस्त्रके क्षालनरूप कर्मका मलकी निवृत्तिरूप संस्कार होवे है तैसे मल की निवृत्ति रूप संस्कार भी मुमुक्षुकूँ कर्मसे उपयोग नहीं। काहेते? अन्यके मल की निवृत्ति तो मुमुक्षुकूँ वांछित है नहीं, आत्मा के मल की निवृत्ति कहनी होवेगी। सो आत्मा नित्यशुद्ध है ताके विषे मल है नहीं। याते मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बने नहीं,

और अन्तःकरणविषे जो पापरूप मल है ताकी निवृत्ति जो कर्म से उपयोग कहैं तौ यह वार्ता सत्य है, परन्तु शुद्ध अन्तःकरण वाला जो मुमुक्षु है ताका विचार करें हैं। ताके अन्तःकरण में भी पाप है नहीं, याते पापरूप मलकी निवृत्तिरूप संस्कार भी मुमुक्षुकूँ कर्म से उपयोग बने नहीं और अज्ञानकूँ जो मल कहै तौ अज्ञान आत्मा में है परन्तु ताकी निवृत्ति कर्मसे होवे नहीं। काहेते ? अज्ञान का विरोधी ज्ञान है कर्म नहीं। याते मुमुक्षु कूँ मलकी निवृत्तिरूप संस्कार कर्म से उपयोग बने नहीं। जैसे वस्त्र का कुसुम्भ में मज्जनरूप कर्मका रक्तगुण की उत्पत्तिरूप संस्कार उपयोग होवे है, तैसे गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्म से उपयोग बने नहीं। काहेते ? अन्यविषे ता गुणकी उत्पत्ति कहना बने नहीं, आत्माविषेही कहना होवेगा। सो आत्मा निर्गुण है ताके विषे गुणकी उत्पत्ति बने नहीं, याते मुमुक्षु कूँ गुण की उत्पत्तिरूप संस्कार भी कर्म का उपयोग बने नहीं। या प्रकरण में उपयोग नाम फलका है। कर्म का पाँच ही प्रकारका फल होवे है और नहीं। सो पाँच प्रकार का फल कर्म का मुमुक्षु कूं बने नहीं, याते कर्म कूं त्यागिके ज्ञानके साधन श्रवणविषे ही मुमुक्षु प्रवृत्त होवे। उपासना भी मानस कर्म हीहै, याते ताके खंडनमें पृथक् युक्ति नहीं कही। इस रीति से केवल कर्म वा उपासना मोक्षका हेतु नहीं, किन्तु केवल ज्ञानहै।

पूर्वपक्षी:-कोई कर्मउपासना सहित ज्ञान कूँ मोक्ष के हेतु अङ्गीकार करे हैं और ताके विषे युक्ति दृष्टान्त भी कहैं हैं।

१-दृष्टान्त: जैसे आकाशमें पक्षी का एकपक्षसे गमन होवे नहीं किन्तु दो पक्षसे गमन होवे है। तैसे मोक्षलोक कूँ भी एक ज्ञानरूप पक्ष से गमन होवे नहीं। किन्तु एक पक्षतो उपासना सहित कर्म है और द्वितीयपक्ष ज्ञानहै। उपासना भी मानस कर्म ही है, याते एक ही पक्ष है। २-अन्य दृष्टान्त:-जैसे सेतुके दर्शन से पाप का नाश होवे है। सो सेतुका दर्शन भी प्रत्यक्षरूप ज्ञान है और श्रद्धाभक्तिसहित गमनादि नियमकी अपेक्षा करे है। जो श्रद्धादिक रहित पुरुष होवे ताकूँ सेतुदर्शन से फल होवे नहीं। जैसे सेतुका प्रत्यक्षज्ञान श्रद्धानियमादिकनकी फल की उत्पत्तिमें अपेक्षाकरे है, तैसे ब्रह्मज्ञान भी मोक्षरूपफल की उत्पत्ति में कर्म उपासन की अपेक्षा करे है और केवल ज्ञानसे जो मोक्ष अङ्गीकार करे हैं सो भी ज्ञानका हेतु तो कर्म उपासना माने हैं, शुद्ध और निश्चल अन्त:करण में ज्ञान होवे है। सो अन्त:करण शुभकर्म से शुद्ध होवेहै और उपासना से निश्चल होवे है। इस रीतिसे अन्त:करण की शुद्धि और निश्चलताद्वारा कर्म उपासना ज्ञानके हेतु अङ्गीकार किये हैं। जैसे ज्ञान के कर्म उपासना अङ्गीकार किये, तैसे ज्ञानके फल मोक्षके हेतु अङ्गीकार योग्य हैं।

१-दृष्टान्त-जैसे जलका सेचन वृक्ष की उत्पत्ति का हेतु और वृक्षके फलकी उत्पत्ति का भी हेतु है, जो वनके वृक्षन के जल सेचन बिना फल होवे है सो भी वृक्ष के मूलमें नीचे जल का सम्बन्ध है, याते फल होवे है और जलके सम्बन्ध बिना वृक्षही सूख जावे फल होवे नहीं। तैसे कर्म उपासना ज्ञान की उत्पत्ति के हेतु हैं और ज्ञान का फल जो मोक्ष ताके हेतु हैं, इस रीति से कर्म उपासना ज्ञान तीनों मोक्षके हेतु हैं। याते ज्ञानवान् भी कर्म करे अथवा कर्म उपासना ज्ञानकी रक्षा के हेतु हैं। काहेते ? जो कर्म उपासना का ज्ञानवान् त्याग करे तो उत्पन्न हुआ ज्ञानभी जलके बिना वृक्षकी न्याई नष्ट हो जावेगा। काहेते ? शुद्ध अन्तःकरणमें ज्ञान होवे है और शुभ कर्म नहीं करे तो ज्ञानवान् कूँ पाप होवेगा और उपासनाके त्यागसे अन्तःकरण फिर चञ्चल होजावेगा। ता मलिन और चञ्चल अन्तःकरण में ज्ञान रहे नहीं जैसे सूखी भूमि में उत्पन्न हुआ वृक्ष भी रहै नहीं।

२-अन्य दृष्टान्त-जैसे संस्कारसे शुद्ध किये स्थान में वेदपाठी ब्रह्मचारी निवास करे है और शुद्ध किया स्थान भी किसी निमित्तसे फेरि मलिन होय जावे तो ता स्थान कूं त्याग देवे है। तैसे कर्मके त्यागसे मलिन और उपासनाके त्याग से चञ्चल हुआ जो अन्तःकरण ताके विषे ज्ञान रहे नहीं, याते कर्म और उपासना ज्ञान की रक्षाके हेतु हैं।

इस रीति से १-कर्म, उपासना, ज्ञान ये तीन मोक्ष के हेतु अङ्गीकार करे। २-तथा ज्ञानकी रक्षा के हेतु कर्म-उपासना अंगीकार करे और केवल ज्ञान मोक्ष का हेतु अंगीकार करे दोनों प्रकार से ज्ञानवानकूँ कर्म उपासना कर्तव्य है याकूं समुच्चयवाद कहे हैं।

सिद्धान्ती-सो समीचीन नहीं काहेते? देह से भिन्न जो आत्मा नहीं जाने, तासे कर्म होवे नहीं। काहेते? जन्मान्तर के भोगके निमित्त कर्म करे हैं और देह का अग्निविषे दाह होवे है, तासे जन्मान्तर का भोग बने नहीं। १-याते शरीर से भिन्न आत्मा का ज्ञानकर्म का हेतु है। सो शरीर से भिन्न भी आत्मा का कर्ता भोक्ता रूप करके ज्ञान कर्म का हेतु है। "मैं पुण्य पाप का कर्ता हूँ और पुण्यपाप का फल मेरेकूं होवेगा" ऐसा जाकूं ज्ञान है सो कर्म करे है और ज्ञानवान् कूँ ऐसा आत्मा का ज्ञान है नहीं, किन्तु पुण्य पाप और सुख दुःखते रहित असंग ब्रह्मरूप आत्मा है। ऐसा वेदान्त-वाक्यसे ज्ञान होवे है, सो ज्ञान कर्म का हेतु नहीं। उलटा विरोधी है, याते ज्ञानवान से कर्म होवे नहीं। २-कर्ता कर्मफलका भेदज्ञान कर्म का हेतु है, सो कर्ता फल की ज्ञानकूँ आत्मा से भिन्न प्रतीति होवे नहीं। सम्पूर्ण आत्मस्वरूपही प्रतीत होवे है। याते भी ज्ञान-वानसे कर्म होवे नहीं और भाष्यकार ने बहुत प्रकार से

ज्ञानवानकूँ कर्मका अभाव प्रतिपादन किया है, कर्म का और ज्ञान का फलसे विरोध है, याते भी ज्ञान कर्म का समुच्चय बने नहीं। १-कर्म का फल अनित्य संसार है। २-ज्ञान का फल नित्य मोक्ष है। ३-आत्मा में जाति आश्रम अवस्थाका अध्यास कर्म का हेतु है। काहेते? जाति आश्रम अवस्था के योग्य भिन्न २ कर्म कहे हैं? याते जाति आदिकनका अध्यासकर्म का हेतु है यद्यपि जाति आश्रम अवस्था देह के धर्म हैं और कर्मीकूँ देह में आत्मा बुद्धि है नहीं, किन्तु देह से भिन्न कर्ता आत्मा कर्मी जाने है, यह वार्ता पूर्व कही, याते जाति आश्रम अवस्थाकी प्रतीति आत्मा में कर्मीकूं बोधन भी बने नहीं। तथापि देहसे भिन्न आत्माका कर्मी को अपरोक्षज्ञान नहीं। किन्तु शास्त्रसे परोक्षज्ञान है और देहमें आत्मज्ञान अपरोक्ष है। जो देहसे भिन्न आत्माका अपरोक्षज्ञान होवे तो देहमें अपरोक्ष आत्म ज्ञान का विरोधी होवै और परोक्षज्ञानका अपरोक्ष ज्ञान से विरोध है नहीं याते देह से भिन्न कर्ता आत्मा का ज्ञान और देह में आत्मबुद्धि दोनों एककूँ बने हैं। दृष्टान्त-मूर्ति में ईश्वर ज्ञान शास्त्र से परोक्ष है और पाषाण बुद्धि अपरोक्ष है तिन्हका विरोध नहीं, दोनों एककूं होवे है और रज्जुमें जाकूं सर्पसे अपरोक्ष भेदज्ञानहै, ताकूं अपरोक्ष सर्पभ्रांति दूर होवे है। याते यह नियम सिद्ध हुआ-अपरोक्ष भ्रांति

का अपरोक्षज्ञान से विरोध है परोक्ष से नहीं। याते देह से भिन्न आत्मा का परोक्षज्ञान और देह में अपरोक्षज्ञान बने है। सो दोनों कर्म के हेतु हैं। १-देह से भिन्न कर्तारूप करके आत्मा का ज्ञान कर्म का हेतु है। सो कर्तारूप करके आत्माका ज्ञान भ्रांति रूप है और भ्रान्ति विद्वान कूं है नहीं, याते कर्म का अधिकार नहीं और देहमें अपरोक्ष आत्म बुद्धि होवे तब देह का धर्म जाति आश्रम अवस्था प्रतीत होवे, सो देह में आत्म बुद्धि भी विद्वानकूँ है नहीं। किन्तु ब्रह्मरूप करके आत्मा का अपरोक्षज्ञान है, याते जाति आश्रम अवस्था की भ्रान्ति के अभावते भी विद्वान कूँ कर्म का अधिकार नहीं और उपासना भी "मैं उपासकहूँ देव उपास्य है" या बुद्धि से होवे है, सो विद्वानकूँ उपास्य उपासक भाव प्रतीत होवे नहीं "देहादिकसङ्घात तो मेरा और देव का स्वप्न की न्याईं कल्पित है और चेतन एक है" यह विद्वान् का निश्चय है, याते ज्ञान का उपासना से विरोध है और पक्षीके गमनका दृष्टान्त भी बने नहीं। काहेते ? पक्षीके तो दो पक्ष एककाल में रहे हैं। तिनका परस्पर विरोध नहीं और ज्ञानका तो कर्म उपासना से विरोध है। एक कालमें बने नहीं और ज्ञानमें कर्म उपासनाकी अपेक्षा नहीं।

सेतुके ज्ञानका दृष्टान्त बने नहीं। काहेते ? सेतु का दर्शन दृष्टफल का हेतु नहीं, किन्तु अदृष्टफलका हेतु है। १-प्रत्यक्ष

जो फल प्रतीत होवे सो दृष्टफल कहिये है। जैसे भोजन का फल तृप्ति प्रत्यक्ष है याते भोजन दृष्ट फल का हेतु है, २-तैसे सेतु के दर्शन से प्रत्यक्ष फल प्रतीत होवे नहीं। किन्तु पापका नाशरूप फल शास्त्रसे जाना जावे है। जो शास्त्रसे फल जानिये और प्रत्यक्ष प्रतीत होवे नहीं। सो अदृष्टफल कहिये है। याते जैसे यज्ञादिक कर्म स्वर्गादिक अदृष्टफल के हेतु हैं तैसे सेतु का दर्शन भी पाप के नाशरूप अदृष्टफल का हेतु है जो दृष्टफल का हेतु होवे है सो तो जितना फल की उत्पत्ति में शास्त्र ने सहाय किया है ता सहित फल का हेतु होवे है केवल नहीं, याते श्रद्धा नियमादिक सहित सेतु का दर्शन पापनाश रूप फलका हेतु है। श्रद्धानियमादिक रहित हेतु नहीं। काहेते ? सेतु के दर्शन से प्रत्यक्ष तो कोई फल प्रतीत होवे नहीं। केवल शास्त्रनसे जाना जावे है, सो शास्त्र श्रद्धादिकसहित सेतुके दर्शनसे फल बोधन करे है केवल दर्शन से फलकी उत्पत्तिमें कोई प्रमाण नहीं। याते सेतु का दर्शन फलकी उत्पत्तिमें श्रद्धा नियम भक्ति की अपेक्षा करे है।

ब्रह्मविद्या अपने फल की उत्पत्ति में कर्म उपासना की अपेक्षा करे नहीं। काहेते ? जो ब्रह्मविद्या का फल भी स्वर्ग न्याईं लोकविशेष अदृष्ट होवे सो लोक विशेष भी केवल ब्रह्मविद्यासे शास्त्रसेबोधन नहीं किया होवे किन्तु कर्मउपासना सहित से बोधन किया होवे तो ब्रह्मविद्या भी

सेतुके दर्शन की न्याईं फल की उत्पत्ति कर्म उपासना की अपेक्षा करे सो ब्रह्मविद्या का फल मोक्ष स्वर्ग की न्याईं लोकविशेषरूप अदृष्ट तो है नहीं, किन्तु मोक्ष नित्य प्राप्त है और भ्रांतिसे बंध प्रतीत होवे है ता भ्रांतिकी निवृत्तिही ब्रह्मविद्याका फल है सो भ्रान्ति की निवृत्ति केवल ब्रह्मविद्यासे हमारेकूँ प्रत्यक्ष है और रज्जुज्ञानसे सर्पभ्रान्ति की निवृत्ति सर्वकूं प्रत्यक्षहै, याते अधिष्ठान ज्ञानका भ्रांतिकी निवृत्तिदृष्टफलहै। दृष्टफलकी उत्पत्ति जितनी सामग्री से प्रत्यक्ष प्रतीत होवे है सो सामग्री दृष्टफल की हेतु कहिये है। १-जैसे तुरीयन्तवेमसे पटकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष है, याते तुरीतन्तवेम पटके हेतु हैं। २-केवल भोजन से तृप्तिरूप फल प्रत्यक्ष प्रतीत होवे है, याते केवल भोजन तृप्ति का हेतु है, तैसे केवल अधिष्ठान ज्ञानते भ्रान्तिकी निवृत्ति प्रत्यक्ष प्रतीत होवे है याते केवल अधिष्ठान का ज्ञानही भ्रान्तिकी निवृत्ति का हेतु है। जैसे रज्जुका ज्ञान भ्रांतिकी निवृत्तिमें अन्यकी अपेक्षा करे नहीं, तैसे बन्धकी भ्रांतिका अधिष्ठान जो नित्यमुक्त आत्मा ताका ज्ञान भी बन्धभ्रान्तिकी निवृत्तिमें कर्म उपासना की अपेक्षा करे नहीं १-ज्ञानके फल मोक्षकूँ जो स्वर्ग की न्याईं लोक विशेष अदृष्ट अङ्गीकार करे है सो वेदवाक्यसे विरुद्धहै। काहेते? ज्ञानवान् के प्राण किसी लोक कूं गमन नहीं करते। यह वेद में कहा है। २-लोक विशेष अङ्गीकार करनेते

स्वर्गकी न्याई मोक्ष अनित्य होवेगा। याते लोकविशेष रूप मोक्ष नहीं। ३-लोकविशेष जो मोक्ष अङ्गीकार करे ताकूँ भी केवल ज्ञानसेही मोक्षलोक की प्राप्ति अङ्गीकार करनी योग्य हैं। काहेते ? जो शास्त्रने प्रतिपादन किया अर्थ होवे सो शास्त्र के अनुसार ही अङ्गीकार करिये है सो शास्त्र केवल ज्ञान से मोक्ष कहे है, याते केवल ज्ञान मोक्षका हेतु है कर्म उपासना ज्ञान तीनों नहीं।

वृक्षका दृष्टान्त भी बने नहीं। काहेते ? यद्यपि जलका सेचन, वृक्षकी उत्पत्ति और रक्षामें हेतु है, तथापि वृक्षके फलकी उत्पत्ति में नहीं, वृद्ध जो वृक्ष है ताकेविषे जल का सेचन वृक्षकी रक्षा के निमित्त है, फल के निमित्त नहीं जलसे पुष्ट जो वृक्ष सोई फलका हेतु है जल सेचन नहीं तैसे कर्मउपासनाका भी ज्ञान की उत्पत्ति में उपयोग है, मोक्ष में नहीं याते ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्व ही अन्तःकरण की शुद्धि और निश्चलता के निमित्त कर्म उपासना करे ज्ञान से अनन्तर मोक्ष के निमित्त नहीं।

ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्व भी जितने अन्तःकरण में मल और विक्षेप होवे तब पर्यन्तही करे, शुद्ध और निश्चल अन्तःकरण जाका होवे सो जिज्ञासु श्रवण के विरोधी कर्मउपासना का त्याग करे। मल नाम पाप का है सो अशुभ वासनाका हेतु है, जब पर्यन्त मल होय तब पर्यन्त अशुभ वासना होवे है, जब अशुभ वासना होवे नहीं

तब मलका अभाव निश्चय करे। अन्तःकरणकी चञ्चलता और एकाग्रता अनुभवसिद्ध है याते उत्तम जिज्ञासु और विद्वानकूँ कर्मउपासना निष्फल है।

पूर्व जो कहा–"ज्ञानकी रक्षाके निमित्त कर्म उपासना करे। जैसे जलसे उत्पन्न हुआ जो वृक्ष ताकी जलसे रक्षा होवे है। जो जलका सम्बन्ध नहीं होवे तो वृद्ध वृक्ष भी सूख जावे है। तैसे कर्म उपासनासे उत्पन्न हुआ जो ज्ञान ताकी कर्मउपासना से रक्षा होवे है। जो ज्ञानी कर्म उपासना नहीं करे तो अन्तःकरण मलिन और चञ्चल फेरि होय जावेगा। ता मलिन और चञ्चल अन्तःकरणमें सूखी भूमि में वृक्षकी न्याईं उत्पन्न हुआ ज्ञान भी नष्ट हो जावेगा। याते ज्ञानवान् भी कर्म उपासना करे।"

सो बने नहीं। काहेते? आभाससहित अथवा चेतन सहित जो अन्तःकरणकी "मैं असङ्ग ब्रह्म हूँ" यहवृत्ति सो वेदान्त का फलरूप ज्ञान है ताका कर्म उपासना से बिना नाश होवेगा, अथवा चेतन स्वरूप ज्ञान का नाश होवेगा, जो ऐसे कहैं स्वरूपज्ञान तो नित्य है, याते ताका तो नाश और रक्षा बने नहीं, परन्तु वेदान्त का फल जो ब्रह्मविद्यारूप ज्ञानहै ताकी कर्मउपासनासे उत्पत्ति होवे है और कर्म उपासनाके त्याग से उत्पन्न हुई विद्या भी नष्ट हो जावेगी, याते ताकी रक्षा के निमित्त कर्म उपासना करे सो बने नहीं। काहेते? एक बार उत्पन्न

हुई जो अन्तःकरणकी ब्रह्माकारवृत्तिता से अज्ञान और भ्रांतिका नाशरूप फल तिसही समय सिद्ध होवे है, अज्ञान और भ्रांतिके नाशतें अनन्तर फेरि वृत्ति की रक्षा का उपयोग नहीं । २-अन्तःकरणकी वृत्तिकी कर्मउपासनासे रक्षा बनै भी नहीं। काहेतें ? जब कर्म उपासनाका अनुष्ठान करेगा । तब कर्म उपासनाकी सामग्रीकाही वृत्तिरूप ज्ञान होवेगा, ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं और वृत्ति हुयेतें प्रथम वृत्ति रहै नहीं । यातें कर्म उपासना ज्ञानकी उत्पत्ति के तो परंपरातें हेतु हैं और उत्पन्न हुई वृत्तिके विरोधी हैं। यातें कर्मउपासनातें ज्ञानकी रक्षा होवै नहीं ।

पूर्व जो कह्या-"ज्ञानवान्कूँ कर्म के त्याग से पाप होवै है" सो वार्ता बनै नहीं । काहेतें ? १-जो शुभकर्म का त्यागहै सो पापका हेतु नहीं, किन्तु निषिद्धकर्म का अनुष्ठानही पापका हेतु है यह वार्ता भाष्यकार ने बहुत प्रकार से प्रतिपादन करी है, यातें कर्म के त्याग से पाप होवै नहीं और ज्ञानवान्कूँ तो सर्व प्रकारसे पापका असम्भव है, काहेतें ? पुण्य पाप और तिनका आश्रय अन्तःकरण परमार्थसे हैं नहीं अविद्यासे मिथ्याप्रतीति होवै है सो अविद्या और मिथ्या प्रतीति ज्ञानवान् के है नहीं । यातें ज्ञानवान्कूँ शुभकर्म के त्याग से अथवा अशुभ के अनुष्ठान से पाप बनै नहीं।

या स्थान में यह सिद्धान्त है, १-मन्द, २-दृढ़, दो

प्रकारका ज्ञान है। १-संशयादिक सहित जो ज्ञान सो मन्दज्ञान कहिये है, २-संशयादिक रहित ज्ञान दृढ़ कहिये है। जाकूँ दृढ़ज्ञान होवे ताकूँ किञ्चिन्मात्र भी कर्त्तव्य नहीं। एकबार उत्पन्न हुआ जो संशयादिकरहित अन्तःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान सोई अविद्याका नाश कर देय है। सो ज्ञान आप भी दूर होय जावे तो भी भले प्रकारसे जाने आत्मामें फेरि भ्रान्ति होवे नहीं। काहेते? जो भ्रान्ति का कारण अविद्या है सो अविद्या एक बार उत्पन्न हुए ज्ञानसे नष्ट होय गई याते भ्रान्ति और अविद्याके अभावते वृत्ति ज्ञान की आवृत्ति का कुछ उपयोग नहीं और जीवन्मुक्तिके आनन्दवास्ते जो वृत्तिकी आवृत्ति अपेक्षित होवै तो बारम्बार वेदान्तके अर्थका चिन्तनही करे। वेदान्तके अर्थ चिन्तनसेही बारंबार ब्रह्माकार वृत्ति होवे है कर्म उपासनाते नहीं। काहेते? कर्म और उपासनाका अन्तःकरणकी शुद्धि और निश्चलता द्वाराही ज्ञान में उपयोग है और रीतिसे नहीं और विद्वान्‌के अन्तःकरण में पाप और चञ्चलता है नहीं। रागद्वेष द्वारा पाप और चञ्चलताका हेतु अविद्या है, ता अविद्या का ज्ञान से नाश होवे है। याते विद्वानके पाप और चञ्चलता के अभावते कर्म उपासनाका उपयोग नहीं।

जो कदाचित ऐसे कहैः-रागद्वेषादिक अन्तःकरण के सहज धर्म हैं, जितने अन्तःकरण हैं उतने रागद्वेष का

सर्वथा नाश ज्ञानवान् के भी होवे नहीं। तिन्ह रागद्वेष ते ज्ञानवान् का भी अन्तःकरण चञ्चल होवे है, याते चञ्चलता दूर करने वास्ते ज्ञानवान् भी उपासना करे।

यद्यपि ज्ञानवान्कूँ अन्तःकरणकी चञ्चलता से विदेह मोक्ष में हानि नहीं। तथापि चञ्चल अन्तःकरणमें स्वरूप-आनन्दका भान होवे नहीं, याते चञ्चलता जीवन्मुक्त की विरोधी है याते जीवन्मुक्ति के निमित्त चंचलता दूर करने वास्ते उपासना करे सो बने नहीं। काहेते ? यद्यपि दृढ़बोध जाके अन्तःकरणमें हुआ है ताके समाधि और विक्षेप समान है। याते अन्तःकरणकी निश्चलताके निमित्त किसी यत्नका आरम्भ विद्वान् कूँ बने नहीं। तथापि विद्वान्की प्रवृत्ति और निवृत्ति प्रारब्ध के अधीन है, प्रारब्ध कर्म सर्व का विलक्षण है। १-किसी विद्वान् का जनकादिकन की न्याई भोगका हेतु प्रारब्ध है। २-किसी का शुकदेव वामदेवादिकन की न्याई निवृत्ति का हेतु प्रारब्ध है। १—जाके भोग का हेतु प्रारब्ध ताकूँ ता प्रारब्धसे भोगकी इच्छा और भोगके साधनका यत्न होवे है। २-जाके निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध होवे ताकूँ जीवन्मुक्तके आनन्दकी इच्छा होवे है और भोग में ग्लानि होवे। जाकूँ जीवन्मुक्तके आनन्दकी इच्छा होवे सो ब्रह्मा-कारवृत्तिकी आवृत्तिके निमित्त वेदान्त अर्थ का चिन्तन ही करे उपासना नहीं। काहेते? अन्तःकरणकी निश्चल-

तामात्रसे ब्रह्मानन्दका विशेषरूपसे भान होवे नहीं। किन्तु ब्रह्माकारवृत्तिसे ही होवे है। सो ब्रह्माकार वृत्ति वेदान्त-चिंतनसेही होवे है उपासनाते नहीं और अन्तःकरण की चंचलता भी विद्वान्कूँ वेदान्त के चिंतनसे ही दूरी होय जावे है। याते अन्तःकरणकी निश्चलता के निमित्त भी उपासनामें प्रवृत्ति होवे नहीं। इस रीति से दृढ़बोध जाके हुआ है ताकी कर्मउपासनामें प्रवृत्ति होवे नहीं।

१-जाके मन्दबोध है सो भी मनन और निदिध्यासनही करे। कर्म उपासना नहीं। काहेते? मन्दबोध जाकूं हुआ है सो उत्तम जिज्ञासु है। ता उत्तम जिज्ञासुकूँ मनन निदिध्यासन से बिना अन्य कर्तव्य नहीं। यह वार्ता शारीरकमें सूत्रकार और भाष्यकारने प्रतिपादन करी है।

२-विद्वान्कू मनन निदिध्यासन भी कर्तव्य नहीं जो जीवनमुक्तिके आनंद वास्ते विद्वान मनन निदिध्यासन में प्रवृत्त होवे है सो भी अपनी इच्छा से प्रवृत्त होवे है और "मैं वेद की आज्ञा नहीं करूँगा तो मेरेकूँ जन्म मरण संसार होवेगा" इस बुद्धि से जो क्रिया करे सो कर्तव्य कहिये है सो जन्मादिकन की बुद्धि विद्वान के होवे नहीं याते अपनी इच्छाते जो विद्वान मनन निदिध्यासन करे सो कर्तव्य नहीं, इस रीतिसे मन्दबोध अथवा दृढ़ बोध जाके हुआ है तिसकूँ कर्म उपासना कर्तव्य नहीं।

३-जाके बोध नहीं हुआ है किन्तु आत्मा के जानने

की तीव्र इच्छा है भोग की नहीं ताका अन्तःकरण शुद्ध है, याते सो भी उत्तम ही जिज्ञासु है, ताकूं भी बोध के वास्ते श्रवणादिक ही कर्तव्य हैं, कर्म-उपासना नहीं। काहेते? जो कर्मउपासनाका फलहै सो ताके सिद्धहै।

४-ज्ञान का सामान्य इच्छाते जो श्रवण में प्रवृत्त हुआ है और अन्तःकरण भोगने में आसक्त है सो मन्दजिज्ञासु है सो भी श्रवणकूं त्यागिके फेरि कर्म उपासना में प्रवृत्त होवे नहीं। जो कर्मउपासना का फल अन्तःकरण की शुद्धि और निश्चलता है सो ताकूं श्रवणसे ही होजावेगा। श्रवण की आवृत्ति से अन्तःकरण के दोष दूर होय के इस जन्मविषे अथवा अन्य जन्म विषे अथवा ब्रह्म लोक विषे ज्ञान होवे है, आवृत्ति नाम बारम्बार का है और श्रवण कूँ त्यागिके जो कर्मउपासना में प्रवृत्त होवे है सो आरूढ़ पतित कहिये है। १-२-इस रीति से ज्ञानवान और उत्तम जिज्ञासु का कर्म उपासना विषे अधिकार नहीं। ३-मंद जिज्ञासु भी जो वेदान्तश्रवण में प्रवृत्त हुआ है ताका अधिकार नहीं। ज्ञान की जाकूं इच्छा तो है, परन्तु भोगमें बुद्धि आसक्त है याते श्रवण में प्रवृत्त नहीं हुआ ऐसा जो मंदजिज्ञासु ताका निष्काम कर्म और उपासनामें अधिकार है। ५-जाकी भोग विषेही आशक्ति है ज्ञान की इच्छा नहीं। ऐसा जो बहिर्मुख है ताको सकामकर्म विषे भी अधिकार है याते ज्ञानवान कूं कर्म

उपासना का अधिकार नहीं। कर्म उपासना का ज्ञान विरोधी है और दृढ़बोधके कर्म उपासना विरोधी नहीं परन्तु मंदबोध के विरोधी हैं।

कर्म उपासना भी अन्तःकरण की शुद्धि और निश्चलता द्वारा ज्ञानकी उत्पत्ति के तो हेतु है परन्तु ज्ञान की उत्पत्ति से अनंतर जो कर्म उपासना करे तो उत्पन्न हुआ ज्ञान नष्ट हो जावेगा। याते ज्ञान के विरोधी हैं रक्षाके हेतु नहीं, काहेते? १"मैं कर्ता हूँ और यज्ञादि मेरे कूं कर्तव्य हैं, यज्ञादिकन का स्वर्गादि फल है" या भेदबुद्धि से कर्म होवे है। २-"मैं उपासक हूँ। देव उपास्य है" या भेदबुद्धि से उपासना होवे है सो दोनों प्रकार की बुद्धि "सर्व ब्रह्म है" या बुद्धि कूं दूर करके होवे है याते कर्म उपासना ज्ञान के विरोधी हैं यद्यपि ज्ञानवान आत्माकूं असङ्ग जाने है तौ भी देह का भोजनादिक व्यवहार, अथवा जनकादिकन की न्याईं अधिक राज्यपालनादिक व्यवहार करे है ता व्यवहार का ज्ञान विरोधी नहीं और व्यवहार ज्ञान का भी विरोधी नहीं काहेते? जो आत्मस्वरूप ज्ञानसे असङ्ग जाना है ता आत्माविषे जो व्यवहार प्रतीत होवे तो व्यवहार का विरोधी ज्ञान तथा ज्ञानका विरोधी व्यवहार सो होवे विद्वानकूं आत्माविषे व्यवहार प्रतीत होवे नहीं। किन्तु सम्पूर्ण व्यवहार देहादिकनके आश्रित हैं और आत्माविषे

व्यवहारसहित देहादिकन का संबंध है नहीं। या बुद्धि से सम्पूर्ण व्यवहार करे हैं। इसी कारणते विद्वान्‌की प्रवृत्ति भी निवृत्ति ही कही है।

जैसे अन्य व्यवहार ज्ञानका विरोधी नहीं तैसे कर्म-उपासना भी अन्यबहिर्मुखपुरुषनके करानेवास्ते आत्माकूं असङ्ग जानिके और देह वाकअन्तःकरणके आश्रितक्रिया जानिके जो कर्मउपासना करे तो ज्ञान के विरोधी नहीं। काहेते ? आत्मा विद्वान ने असङ्ग जाना है, ताकूं कर्ता जानिके कोई कर्मउपासना करे तो ज्ञानके विरोधी होवे सो आत्मा का असङ्गरूप दृढ़निश्चय कर्म उपासना से विद्वान का दूर होवे नहीं। याते आभासरूप कर्म और उपासना दृढ़ज्ञानके विरोधी नहीं इसी कारण ते जनकादिकन ने आभासरूप कर्म करे हैं। जो आत्माकूं असङ्ग जानिके और व्यवहारकी न्याईं देहादिकनके धर्म जान के विद्वान शुभ क्रिया करे सो आभास रूप कर्म कहिये है, ताका ज्ञान से विरोध नहीं और भाष्यकारने कर्म उपासना का जो ज्ञान से विरोध कहा है सो आत्मा में कर्ता बुद्धि से जो कर्म उपासना करे है ताका विरोध कहा है और आभासरूपसे नहीं, तथापि मन्दबोधके आभासरूप कर्म और आभासरूप उपासना भी विरोधी हैं। काहेते ? जो संशयादिक सहित बोध है सो मन्द बोध कहिये है, जाके अन्तःकरण में "आत्मा असङ्ग है अथवा नहीं है"

ऐसा कदाचित् संशय होवै सो पुरुष जो बारम्बार "आत्मा असङ्ग है तेरे कूँ किंचिन्मात्र भी कर्तव्य नहीं" या अर्थकूं चिंतन करे तब तो संशय दूर होय के दृढ़बोध होय जावे। और कर्म उपासना करेगा तो मन्दबोध जो उत्पन्न हुवा है, सो दूर होयके "मैं कर्ता भोक्ता हूं" यह विपरीत निश्चय होय जावेगा। याते मंद बोधकी उत्पत्तिसे पूर्व ही कर्म उपासना करे अनंतर नहीं और जो मंदबोध वाला कर्म उपासना करेगा तो उत्पन्न हुवा बोध नष्ट होय जावेगा। दृष्टांत-जैसे पक्षी अपने अपने अंडेकू पक्षकी उत्पत्तिसे पूर्व सेवन करे है और पक्षकी उत्पत्तिसे अनंतर नहीं जो पक्षकी उत्पत्तिसे अनंतर भी अंडेकूं सेवन करे तो बालपक्षिके ता अण्डे के जलसे पक्ष गल जावै। तैसे ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्व ही कर्म उपासनाका सेवन करे और ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर नहीं। जो ज्ञानकी उत्पत्ति से अनंतर भी कर्म उपासना का सेवन करे तो बाल पक्षीकी न्याई मंदज्ञान का नाश होय जावे और वृद्ध पक्षीको जैसे अण्डेके संबंध से हानि होवे नहीं तैसे दृढ़बोध की तो हानि होवे नहीं और वृद्ध-पक्षीकी न्याई दृढ़बोधकूँ कर्म उपासना से उपयोग भी नहीं। इस रीतिसे ज्ञानवानकूँ मोक्षके निमित्त किंचित्मात्र भी कर्तव्य नहीं। यह तृतीय प्रश्न का उत्तर कहा ॥१०॥

वो शिष्यकूँ आचार्यने उत्तर कहे, सो वेदके अनुसार है, याते यथार्थ हैं, यह वार्ता कहैं हैं।

❀ दोहा ❀

शिष्य कह्यो जो तोहि मैं, सर्व वेद को सार ।
लहै ताहि अनयासही, संसृति नशै अपार ॥ ११ ॥

हे शिष्य ! जो मैं तेरे कूँ कहा सो सर्ववेदका सार है याते याविषे विश्वास करे और याके जाननेतें अनायास कहिये खेदबिना अपार जो संसृति कहिये जन्म मरण-रूप संसार ताका नाश होवै है ॥ ११ ॥

यद्यपि खेदका नाम आयास है ताके अभाव का नाम अनायास है, तथापि छंदके वास्ते अनयास पढ्या है । भाषामें छन्दके वास्ते गुरुके स्थानमें लघु और लघु के स्थान में गुरु पढ़ने का दोष नहीं ।

॥ और मोक्षके स्थानमें मोच्छही भाषामें पाठ होवै है । काहेतें ? यह भाषा की संप्रदाय है ।

❀ दोहा ❀

लघु गुरु गुरु लघु होत है, वृत्त होत उच्चार ।
रू है अरुकी ठौर में, अबकी ठौर बकार ॥
संयोगी क्ष न कपर ख न, नहीं टवर्ग णकार ।
भाषा में ऋ लृ ॡ नहीं, अरु तालव्य शकार ॥

इतने अक्षर भाषामें नहीं कोई लिखे तौ कवि अशुद्ध कहै । १-क्षके स्थानमें छ, २-खके स्थान में ष, ३-णकारके स्थानमें नकार, ४-ऋ लृके स्थानमें रि लि है, ५-शकारके स्थानमें सकार भाषा में लिखने योग्य है ।

"जगत् का कर्ता ईश्वर है सो तेरसे भिन्न नहीं और सत् चित् आनन्दरूप ब्रह्म तू है।" यह आचार्यने कह्या सोई कृपाते फिरि कहैं हैं:—

❀ कवित्त ❀

दीनताकूं त्यागि नर आपनो स्वरूप देखि,
तू तौ शुद्धब्रह्म अज दृश्य को प्रकाशी है।
आपनै अज्ञानतें जगत सब तू ही रचै,
सर्वको संहार करे आप अविनाशी है॥
मिथ्या परपंच देखि दुःख जिन आनि जिय,
देवनको देव तू तो सब सुखराशी है।
जीव जगईश होय माया से प्रभासे तूँ ही,
जैसे रज्जु साँप सीप रूप है प्रभासी है॥ १२॥

अर्थ–स्पष्ट है॥ १२॥

❀ कवित्त ❀

राग जारि लोभ हारि द्वेष मारि मार वारि,
वार वार मृगवारि पारवार पेखिये।
ज्ञानभानु आनि तम तम तारि भागयाग,
जीव सीव भेद छेद वेदन सु लेखिये॥
वेदको विचार सार आपकूं सँभारि यार,
टारि दासपास आशा ईशकी न देखिये।
निश्चल तू चल न अचल चलदल छल,
नभअनिल तलमल तासूं न विशेषिये॥१३॥

ज्ञानके साधन कहैं हैं:-हे शिष्य ! राग जो पदार्थनमें दृढ़ आसक्ति है ताकूँ जारिके लोभकूँ हारि कहिये नाश कर द्वेषकूं मार मार कहिये कामकूँ वारि दूरिकर राग लोभ द्वेष कामके ग्रहणते सर्व राजसी तामसी वृत्तिका ग्रहण है, याते सब राजसी तामसी वृत्ति का नाशकर यह अर्थ सिद्ध हुआ राजसी वृत्ति और तामसी वृत्ति ज्ञान की विरोधी हैं। तिन्हके नाश विना ज्ञान होवे नहीं। याते तिन्हकी वृत्ति जिज्ञासु कूँ अपेक्षित विवेक, वैराग्य, शमादि षट् सम्पत्ति, मुमुक्षुता ये चारि जो ज्ञानके साधनहैं तिन्हमें विवेक प्रधानहै। काहेते ? विवेकसे वैराग्यादिक उत्पन्न होय हैं याते विवेक का उपदेश आचार्य करे हैं:-हे शिष्य ! पारवार जो संसार है ताकूँ बारंबार मृगवारि कहिये मृगतृष्णा के जल समान मिथ्या जान। १-पारवार नाम संसार का है। २-अपारवार नाम आत्माका है पारवार मिथ्या है, या कहनेते अपारवार मिथ्या नहीं किन्तु सत्यहै, यह वार्त्ता अर्थ से कही। जैसे बाजीगर के तमासे देखते पुत्रकूँ पिता कहै-हे पुत्र ! "यह आम्रवृक्षसे आदिलेके जो बाजीगर ने बनाये हैं सो मिथ्या हैं" या कहनेसे बाजीगरकूँ मिथ्या नहीं जाने है, किन्तु सत्य जाने है। तैसे जगत कूँ मिथ्या कहनेते आत्माकूँ सत्य जानि लेवेगा, या अभिप्रायते आचार्यने पारवार मिथ्या कह्या। इस रीतिसे जगत मिथ्या है और

आत्मा सत्य है या विवेकका उपदेश करया। ता विवेक से अन्य साधन आदही उत्पन्न होवे हैं याते विवेक के उपदेश सर्व साधनका उपदेश अर्थ से कह्या। ज्ञान के बहिरङ्ग साधन कहे अन्तरङ्ग साधन श्रवणादि कहे हैं-हे शिष्य! ज्ञानरूपी जो भानु है ताकूँ आनि कहिये श्रवणसे सम्पादन करके तम कहिये ज्ञान रूपी जो तम अन्धेरा है ताकूँ तार कहिये नाशकर तम नाम अन्धेरे और अज्ञानका है अन्धेरा उपमान है और अज्ञान उपमेय है। प्रथम जो तम शब्द है सो उपमेयका वाचक है और दूसरा उपमान का वाचक है॥ १३॥

❀ दोहा ❀

जाकूं उपमा दीजिये, सो उपमेय बखानि।
जाकी उपमा दीजिये, सो कहिये उपमानि॥१४॥

ज्ञानका स्वरूप अन्यशास्त्र में नाना प्रकार का अङ्गीकार किया है। याते वाक्य के अनुसार ज्ञान का स्वरूप कहें हैं:-हे शिष्य! १-जीव और ईश्वर विषे अविद्या और मायाभागकूं त्याग के तिन्हका जो भेद प्रतीत होवे है, ताकूं छेद कहिये दूर कर और २-जीव ईश्वरमें जो वेदन कहिये चेतन भाग है ताकूं भेद रहित जान, या कहनेते यह वार्ता कही-महावाक्यनमें भाग त्याग लक्षणाते जीव ईश्वरकी एकता जान शिवके स्थान में सीव पढ्या है तृतीय पादका अर्थ स्पष्ट है॥ १४॥

पूर्व कहे अर्थकूं संक्षेपते चतुर्थ पादसे कहैं हैं। हे शिष्य! चल कहिये विनाशी जो देहादिक संघात सो तूं नहीं किन्तु अचल कहिये अविनाशी जो ब्रह्म सो तूं है और चलदल कहिये वृक्षरूप जो संसार सो छल कहिये मिथ्या है। जैसे-नभ विषे नीलता और तलमल कहिये कटाहरूपता है नहीं। किन्तु मिथ्या प्रतीत होवे है। तैसे संसार भी आत्मविषे है नहीं मिथ्या प्रतीत होवे है। वृक्ष रूप करके संसार श्रुतिस्मृतिमें कह्या है, याते वृक्ष के वाचक चलदल शब्द का संसार में प्रयोग करया है। मोक्ष का साधन ज्ञान है या अर्थकूं अन्यप्रकार से कहैं हैं—

❀ कवित्त ❀

बन्ध मोक्ष गेह देहवान ज्ञानवान जान,
राग रु विराग दोइ ध्वजा फहरात है।
विषे विषे सत्यभ्रम भ्रममति वात तात,
हललात प्रात रात घरी न ठहरात है॥
साक्षय साक्षी पूतरी अनूजरी रु ऊजरी द्वै,
देखि रागी त्यागी ललचात जन जात है।
चञ्चल अचल भ्रम ब्रह्म लखि रूप निज,
दुःख कूप आनन्द स्वरूप में समात है॥ १५॥

हे शिष्य! देहवान कहिये देह अभिमानी अज्ञानी और ज्ञानवान् बन्ध और मोक्ष के गेह कहिये धाम हैं १-अज्ञानी तो बन्धका धाम है। २-ज्ञानी मोक्ष का धाम

है। राग और विराग तिनकी ध्वजा हैं जैसे-ध्वजा राजाके नगरका चिह्न होवे है तैसे राग और विराग तिन के चिह्न हैं। १-अज्ञानी का राग चिह्न है २-ज्ञानी का विराग चिह्न है। अज्ञानीविषे भी विराग होवे है। याते ज्ञानीका ज्ञानीसे विलक्षण विराग कहें हैं। हे तात! विषय जो शब्दादिक हैं तिन्ह विषे सत्यभ्रम कहिये सत्य पने की भ्रान्ति और भ्रमपति कहिये रज्जु सर्प की न्याईं विषय भ्रम रूप हैं, यह जो मतिनिश्चय सो वातकी न्याईं राग और विरागकूं हलावे है। जैसे-वायु ध्वजाकी चञ्चलता करे है, तैसे विषय में सत्यबुद्धि और भ्रमबुद्धि राग और विराग कूं चञ्चल करे हैं शिथिल होने देवें नहीं। १-विषय में सत्यबुद्धि से रागकी शिथिलता दूर होवे है। २-विषयमें भ्रमबुद्धि से विराग की शिथिलता दूर होवे है।

विषय असत्य है, याते तिन्हमें सत्यबुद्धि भ्रान्तिरूप है। इस वार्त्ता जनावनेकूं कवित्तमें सत्यभ्रम कह्या, सत्य-बुद्धि नहीं कही। भ्रान्तिज्ञान और भ्रान्ति ज्ञान का विषय जो मिथ्या वस्तु सो दोनों भ्रम कहिये हैं। या कहनेतें, अज्ञानीके विरागते ज्ञानीके वैरागका भेद कह्या, काहेतें? जो अज्ञानीका विरागहै,सो विषयमें मिथ्याबुद्धि से उत्पन्न नहीं हुआ याते मन्द है। विषय मिथ्या हैं, यह बुद्धि अज्ञा-नीकूं होवे नहीं। १-यद्यपि शास्त्र युक्ति से अज्ञानी भी मिथ्या जाने है तथापि विषय मिथ्या हैं, यह अपरोक्ष-

मति ज्ञानवान्कूँ ही होवे है अज्ञानी कूँ नहीं। याते अज्ञानीकूं विषयमें परोक्ष जो मिथ्या बुद्धि तासे अपरोक्ष सत्यभ्रांति दूर होवे नहीं। इस रीतिसे अज्ञानीकूँ विषय में जब विराग होवे है, ता कालमें परोक्ष मिथ्या बुद्धि है भीपरन्तु परोक्ष मिथ्याबुद्धि से प्रबल अपरोक्ष सत्य बुद्धि है। याते अज्ञानीकी परोक्ष मिथ्याबुद्धि विराग को हेतु नहीं, किन्तु प्रबल जो सत्य बुद्धि तासे विषय में रागही होवे है और जो विराग होवे तो भी मिथ्याबुद्धिसे नहीं, किन्तु विषयमें दोषदृष्टिसे होवे है। २-ज्ञानवान् सर्व प्रपंचकूँ अपरोक्ष रूप करके मिथ्या जाने है ता अपरोक्ष मिथ्याबुद्धि से अपरोक्ष सत्य बुद्धि दूर होवे है, याते राग को हेतु विषय में सत्यबुद्धि तो ज्ञानीकूँ है नहीं। विराग को हेतु विषयमें मिथ्याबुद्धि ज्ञानवान्कूँ है जो ज्ञानी कूँ विषय में सत्य बुद्धि फेरि होवे तो राग फेरि होवे और विराग दूर होवे सो अपरोक्षरूपते मिथ्या जाने पदार्थमें फेरि सत्य बुद्धि होवे नहीं जैसे अपरोक्ष रूपते मिथ्या जान्या जो रज्जु में सर्प ताके विषे सत्य बुद्धि फेरि होवे नहीं। तैसे ज्ञानीकूँ फेरि सत्यबुद्धि होवे नहीं। इस रीति से राग की उत्पत्ति और विरागकी निवृत्ति ज्ञानीको होवे नहीं, याते ज्ञानीका विराग दृढ़ है और दोषदृष्टिसे जो अज्ञानी कूँ विराग होवे है सो तो दूर होय जावे है। काहेते ? जा पदार्थनमें दोषदृष्टि होवे है ता पदार्थ में ही अन्य काल में सम्यक् बुद्धि भी होय

जावे है। जैसे-सर्व पुरुषनकूं पशुधर्मके अन्तमें स्त्रीविषे दोष दृष्टि होवे और कालान्तरमें फेरि सम्यक्बुद्धि होवे है इस रीतिसे दोष दृष्टि जब दूर होवे तब अज्ञानी का विराग भी दूर होय जावे है यातें अज्ञानीकूं दृढ़विराग होवे नहीं, इस रीतिसे राग और विराग अज्ञानी के और ज्ञानी के चिह्न कहे और भी चिह्न कहे हैं-हे शिष्य! जैसे धामके ऊपरि पुतरी कहिये हस्ती आदिकन की मूर्ति होवे है, तैसे बन्धमोक्षका धाम जो अज्ञानी और ज्ञानीका अन्तः-करण है ताके विषे साक्ष्य साक्षी पूतरी है। १-अज्ञानी अन्तःकरणविषे तो साक्ष्यरूपी पूतरी है। २-ज्ञानी अन्तःकरणमें साक्षीरूपी पूतरी है। साक्षीका विषय जो प्रपंच है ताकूं साक्ष्य कहे हैं। १-साक्ष्यरूपी पूतरी अनूजरी कहिये मलिन है और २-साक्षीरूपी पूतरी ऊजरी कहिये शुद्ध है, आगे अर्थ स्पष्ट है। चंचलभ्रम निजरूप लखि, और अचलब्रह्म निजरूप लखि, या क्रमतें अन्वयहै॥१५॥

भागत्यागलक्षणा का जो कवित्त में विशेष करके ग्रहण किया है ताविषे हेतु कहने कूँ लक्षणाका भेद कहैं हैं—

दोहा-त्रिविधलच्छना कहत हैं, कोविद बुद्धि निधान।
जहती अरु अजहती पुनि, भागत्याग निजजान॥
आदि दोइ नहिं सम्भवैं, महावाक्य में तात।
भाग त्यागते रूप निज, ब्रह्मरूप दरशात॥१६॥

अर्थ स्पष्ट है॥ १६॥

शिष्य उवाच—अर्द्धशङ्कर—छन्द।

अब लच्छना प्रभु कहत काकूं, देहु यह समुझाय।
मुनि भेद ताके तीनि तिनके, लच्छनहुँ दरशाय॥१७॥

सामान्य ज्ञानसे अनन्तर विशेष का ज्ञान होवे है। जैसे सामान्यब्राह्मण का ज्ञान हुये से अनन्तर सारस्वत आदिक विशेष का ज्ञान होवे है। तैसे लक्षणा सामान्य का ज्ञान होवे तो जहती आदिक विशेष रूपनका ज्ञान होवे, लक्षणा का सामान्यरूप जाने बिना जहतीआदिक विशेषरूपन का ज्ञान होवे नहीं। इस अभिप्रायते शिष्य कहै है-हे प्रभो ! लक्षणा काकूं कहते हैं। यह मैं नहीं जानूं हूँ। याते लक्षणाका सामान्यरूप दिखायके तिस से अनन्तर जो जहती आदिक लक्षणाके तीनभेद कहिये विशेष हैं, तिन्हके जुदे जुदे लक्षण दिखावो, छन्दवास्ते प्रभोकूं प्रभु पढ्या और भाषाकी सम्प्रदायते लक्षणा के स्थान में लच्छना पढ्या। लक्षण के स्थान में लच्छन पढ्या॥१७॥

गुरुवाक्य शङ्करछंद

श्रुति चित्त निज एकाग्र कर, अब शिष्य सुनि मम बानि।
ज्यूं लच्छना अरु भेद ताके, लेहु नीके जानि॥
सुनि वृत्ति है द्वै भाँति पद की, शक्ति तामें एक।
तहाँ लच्छना पुनि जानि दूजी, सुनहु सो सविवेक॥१८॥

पदका जो अर्थसे संबंध सो वृत्ति कहिये है, सो वृत्ति

दो प्रकार की है। ता दो प्रकारमें एक शक्तिवृत्तिहै और दूजी लच्छना वृत्ति है, तिनकूं सविवेक कहिये विवेक सहित याको लच्छनसहित सुनि ॥ १८ ॥

शक्तिलक्षण-दोहा।

जा पदतें जा अर्थ की, है सुनतेहि प्रतीत।
ऐसी इच्छा ईश की, शक्ति न्याय की रीत ॥ १९ ॥

जा पदते कहिये घटपदते, जा अर्थ की कहिये कलशअर्थ की सुनतेही प्रतीत कहिये ज्ञान सब पुरुषनकूं होवे ऐसी जो ईश्वर की इच्छा ताकूं न्यायशास्त्र में शक्ति कहे हैं ॥१९॥

स्वरीतिशक्तिलक्षण।

(पद में अर्थ के ज्ञान की सामर्थ्य)

अर्द्धअक्कर-छन्द।

सामर्थ्य पदकी शक्ति जानहु, वेदमत अनुसार।
सो वह्निमें जिम दाहको है, शक्ति त्यूं निरधार ॥२०॥

१-घटपदके श्रोताकूं वस्त्ररूप अर्थ के ज्ञान करने का जो घटपदविषे सामर्थ्य सोई घटपद में शक्ति है। २-तैसे पटपदके श्रोताको वस्त्ररूप अर्थ के ज्ञान करने का जो पटपदके सामर्थ्य सोई पटपदमें शक्तिवृत्ति है ऐसे सर्वपदन में जानि लेनी। दृष्टान्त-जैसे वह्नि अपने से मिलते ही वस्तु के दाह करने की सामर्थ्यरूप शक्ति है। तैसे श्रोता के कर्णसे मिलते ही वस्तु के ज्ञान करने की जो पदविषे सामर्थ्य सो शक्ति कहिये है। सामर्थ्य नाम सम-

थेपनेका है ताकूं समर्थाई कहैं हैं। और बल भी कहैं हैं जोर भी कहैं हैं, जैसे-अग्निमें दाहकी शक्तिहै तैसे जल-विषे गीलाकरनेकी, तृषा दूर करने की, पिंड बांधने की जो समर्थाई है सो शक्ति है इस प्रकार से सर्व पदार्थन विषे अपना अपना कार्य करनेकी सामर्थ्य है सोई शक्ति है। यह वेदका सिद्धान्तहै ताहीकूँ निर्धार कहिये निश्चय कर और न्यायकी रीति त्यागने कूँ योग्य है॥ २०॥

प्रश्नः-वर्ण समुदाय से जुदी शक्ति नहीं। याते ईश इच्छा शक्ति है।

शिष्य उवाच-शङ्करछन्द।

ननु वह्नि में नहिं शक्ति भासै, वह्नि बिन कछु और।
है हेतुता जो दाह की, सो वह्नि में तिहि ठौर॥
इस पदनहू में वर्ण बिन कछु, शक्ति भासत नाहिं।
या हेतुते जो ईशइच्छा, शक्ति मो मति माहिं॥२१॥

ननुशब्द सन्देह का वाचक है, वह्निमें ताके स्वरूप से जुदी शक्ति भासै कहिये प्रतीत होवे नहीं और पूर्व कह्या दाहका हेतु जो वह्निमें सामर्थ्य, सोई वह्नि में शक्ति है सो बने नहीं। काहेते? दाहकी हेतुता कहिये जनकता कारणपना केवल वह्निमें ही है अप्रसिद्ध सामर्थ्य वह्नि में मानिके ताकू विषे हेतुता मानने का, और प्रसिद्ध वह्नि में हेतुता त्यागने का कुछ प्रयोजन नहीं। जैसे-दृष्टान्त में शक्ति नहीं सम्भव, इस कहिये इस रीतिसे पदन के विषे

भी वर्णका समुदाय जो पद का स्वरूप, तासे जुदी शक्ति भासे नहीं और ताका प्रयोजन भी नहीं। या हेतुते ईश्वरकी इच्छारूप जो न्याय की रीति से शक्ति, सोई मेरी मतिमाहिं भासे है ॥ २१ ॥

सिद्धान्तरीति से अग्नि आदिकनमें दाहादिककार्यकी सामर्थ्यरूप शक्ति का प्रतिपादन।

गुरुरुवाच-शङ्करछन्द।

प्रतिबन्ध होते वह्नितैं नहिं, दाह उपजै अङ्ग।
उत्तेजक रु जब धरै तब फिर, दहैं वह्नि स्वसङ्ग॥
है वह्नि में जो हेतुता तो, दाह है सब काल।
जो नशै उपजै वह्नि होते, हेतु शक्ति सुबाल ॥२२॥

हे अङ्गप्रिय! प्रतिबन्धक होते अग्निसे दाह होवे नहीं। और उत्तेजक समीप धरे, तब स्वसङ्ग कहिये अग्नि से मिल्या जो पदार्थ ताका दाह, प्रतिबन्ध होते भी होवे है। जो शक्तिसे बिना केवल अग्निकूँ दाहकी हेतुता होवे तो सर्वकाल कहिये उत्तेजक सहित प्रति बन्ध काल और प्रतिबन्धरहितकालकी न्याईं उत्तेजक रहित प्रतिबन्धकाल में भी दाह हुआ चाहिये। काहेते? दाह का हेतु केवल अग्नि ता काल में भी है और स्वमत में तो यह दोष नहीं। काहेते? स्वमतमें अग्नि की शक्ति अथवा शक्ति सहित अग्नि दाह का हेतु है, केवल अग्नि नहीं, जहाँ प्रतिबन्धहै तहाँ यद्यपि प्रतिबन्धसे अग्नि का तो नाश वा

तिरोधान नहीं भी होता, तथापि अग्नि की शक्ति का नाश वा तिरोधान होवे है। याते दाह का हेतु शक्ति अथवा शक्ति सहित अग्नि का अभाव होनेते दाह होवे नहीं और जा स्थान में प्रतिबन्ध के समीप उत्तेजक आया है। इहाँ प्रतिबन्धने तो अग्नि की शक्ति का नाश वा तिरोधान कर दिया, परन्तु उत्तेजकने फेरि शक्ति की उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव किया है। याते प्रतिबन्ध के होते भी उत्तेजक के माहात्म्यते दाह का हेतु शक्ति वा शक्ति सहित अग्नि के होनेते दाह होवे है। चतुर्थ पाद का अक्षरार्थ यह है-हे बाल अज्ञाततत्त्व ! जो नशै कहिये नाश कूँ प्राप्त होवे प्रतिबन्ध से उपजे उत्तेजकते, सु कहिये सो शक्ति दाहका हेतु है। १-कारज का जो विरोधी सो प्रति बन्धक कहिये है। २-प्रतिबन्धक के होते कारज का साधक उत्तेजक कहिये है। १-अग्नि के स्थान प्रतिबन्ध और उत्तेजक मणि-मन्त्र औषध हैं, जा मणि वा मन्त्र वा औषधि के सन्निधान से दाह होवे नहीं सो प्रतिबन्धक और २-जा मणि-मन्त्र औषध के सन्निधान से प्रतिबन्धक होते भी दाह होवे, सो उत्तेजक है ॥ २२ ॥

गुरुवाक्य-अर्द्ध शङ्कर-छन्द।

शिष रीति यह सब वस्तु में तू, शक्ति लेहु पिछानि।
बिन शक्ति नहीं कछु काज होवे, यहै निश्चय मानि॥

हे शिष्य ! वाह्निकी न्याईं जल आदिक सर्व पदार्थ विषे तूँ शक्ति पिछान। शक्तिसे बिना किसी हेतुसे कोई कार्य होवै नहीं। सार्धशङ्करसे शक्तिका प्रयोजन कह्या-

पूर्व जो शिष्य ने प्रश्न किया था-"शक्ति" वह्नि से भिन्न प्रतीत होवै नहीं। ताका समाधान कहनेकूँ अर्ध-शङ्कर से शक्ति का अनुभव दिखावें है।

मूल अर्धशङ्कर-छन्द।

अब शक्ति यामें है नहीं वह, शक्ति उपजी और।
यह शक्तिको परसिद्ध अनुभव, लांपि है किस ठौर॥

अर्थ-स्पष्ट॥ २४॥

सिद्धांतकी रीति से शक्तिका स्वरूप और शक्ति में प्रमाण निरूपण किया अन्यमतकी शक्तिका खंडन करें हैं।

अर्धशङ्कर-छन्द।

जो शक्ति इच्छा ईशकी, सो पदनके न नजीक।
मतन्यायको अन्याय या विधि, शक्तिजानि अलीक॥२५॥

जो ईश्वरकी इच्छारूप पदशक्ति कही सो बनै नहीं। काहेते? ईश्वरकी इच्छा ईश्वर का धर्म है, याते ईश्वर में रहै जो इच्छा सो पदकी शक्ति है, यह कहना बनै नहीं जो पदका धर्म शक्ति होवै तो पदकी शक्ति है यह कहना बनें याते पदकी सामर्थ्यरूपही पद की शक्ति है इसकी इच्छा पदके नजीक भी नहीं सो पद की शक्ति है, यह कहना बनै नहीं। अलीक नाम झूठका है॥ २५॥

❀ वैयाकरण रीति शक्तिलक्षण ❀

(पद में अर्थ की योग्यता)

अर्धशङ्कर-छन्द।

योग्यता जो अर्थ की, पदमांहि शक्ति सु देखि।
यूँ कहत वैयाकरण भूषण, कारिका हरि लेखि ॥२६॥

पद के विषे जो अर्थ की योग्यता कहिये अर्थ के ज्ञानकी हेतुता हेतुपना सो पद में शक्ति है जैसे घटपद-विषे कलशरूप अर्थके ज्ञानकी हेतुता रूप योग्यता है। सोई शक्ति है। इस रीतिसे वैयाकरण भूषणग्रन्थमें हरि को कारिका प्रमाण लिखिके शक्ति कही है। अथवा वैयाक-रणके जो भूषण कहिये उत्तम वैयाकरण सो हरिकी कारिका कहिये श्लोककूँ देखिके कहते हैं ॥ २६ ॥

❀ वैयाकरण रीतिकी शक्तिका खण्डन ❀

गुरुवाक्य-सार्धशङ्कर-छन्द।

सुनि शिष्य वैयाकरण मतमें, प्रबल दूषण एक।
सामर्थ्य पदमें है न वा यह, पूछि ताहि विवेक ॥२७॥
भाषे जु है हो शक्ति मानहु, ताहि लोक प्रसिद्ध।
कहिं नाहीं जो असमर्थपदसों, योग्य है यह सिद्ध ॥२८॥
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रु, कहतही सविरोध।
जो और दूषण देखनो, तौ ग्रन्थ दर्पण शोध ॥२९॥

प्रथमपाद स्पष्ट है, हे शिष्य! अर्थज्ञान की हेतुता-रूप योग्यताकूँ जो शक्ति मानै है ताकूँ यह विवेक पूछि

र्थनमें तो सादिनिद्रादोष भी अविद्या का सहायक है। १-याते अन्यदोषरहित केवल अविद्याजन्यव्यावहारिक कहिये है। २-सादिदोषसहित अविद्याजन्य प्रातिभासिक कहिये हैं। १-स्वप्नके पदार्थ निद्रादोषसहित अविद्या-जन्य होनेते प्रातिभासिक हैं। २-जाग्रत्के पदार्थ अन्य दोषरहित अविद्याजन्य होनेते व्यावहारिक कहिये हैं। इस रीतिसे स्वप्नके पदार्थनमें जाग्रत्पदार्थनते विलक्ष-णता है, परन्तु यह संपूर्ण तीन प्रकारकी सत्ता मानिके स्थूलदृष्टिसे कहीहै। विचारदृष्टिसे तो १-तीनिप्रकारकी सत्ता बने नहीं। २-जाग्रत् स्वप्नकी परस्पर विलक्षणता भी बने नहीं।

यद्यपि वेदान्तपरिभाषादिकग्रन्थनमें पूर्व प्रकारते व्यावहारिक और प्रातिभासिकपदार्थनका भेद कह्या है। याते तीनि सत्ता मानी है। तैसे विद्यारण्यस्वामीने भी तीनि सत्ता मानी हैं। काहेते ? यह प्रसंग तिन्होंने लिखा है। दो प्रकारके देहादिक पदार्थ हैं। १-एक तो ईश्वररचित हैं सो बाह्य हैं और दूसरे जीव के संकल्प रचित हैं सो मनोमय कहिये हैं, और अन्तर हैं तिन दोनोंमें २-जीवसंकल्पते रचित अन्तर मनोमय साक्षी-भास्य हैं। और ईश्वररचित बाह्य हैं सो प्रमाताप्रमा-णके विषय हैं। १-अन्तर मनोमय देहादिकही जीवकूँ सुखदुःखके हेतु हैं और बाह्य जो ईश्वर रचित हैं

सो सुखदुःखके हेतु नहीं। ४-याते मनोमयपदार्थनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अपेक्षित है और बाह्य प्रपंच सुख दुःखका हेतु नहीं याते ताकी निवृत्ति अपेक्षित नहीं। जैसे दो पुरुषनके दो पुत्र विदेशमें गये होवें तिनमें एकका पुत्र मरिजावे, एकका जीवता होवे सो जीवता पुत्र बड़ी विभूतिकूं प्राप्त होयके किसी पुरुष द्वारा अपने पिताकूं अपनी विभूतिप्राप्तिका और तृतीय के मरणका समाचार भेजे, तहां समाचार सुनावनेवाला दुष्ट होवे, याते जीवते पुत्रके पिताकूं कहे तेरा पुत्र मरिगया और मरे पुत्रके पिताकूं कहे तेरा पुत्र शरीरते नीरोग है बड़ी विभूतिकूं प्राप्त हुआ है थोड़े कालमें हस्ति आरूढ बड़े समाजते आवेगा। ता वंचक वचनकूं सुनिके १-जीवते पुत्रका पिता रोवे है। बड़े दुःखको अनुभव करे है और मरे पुत्रका पिता बड़े हर्षकूं प्राप्त होवे है। इस रीतिसे देशान्तरविषे १-ईश्वररचित पुत्र जीवे है तो भी मनोमयपुत्र मरि गया याते दुःख होवे है। ईश्वर रचित जीवतेका सुख होवे नहीं। २-तैसे दूसरेका ईश्वररचित पुत्र मरिगया है ताका दुःख होवे नहीं। मनोमय जीवे है ताका सुख होवे है। याते १-जीवसृष्टिही सुखदुःख की हेतुहैं। २-ईश्वरसृष्टि सुखदुःखकी हेतु नहीं। इस रीतिसे विद्यारण्यस्वामीने जीवसृष्टि दो प्रकारकी कहीहैं। तहां १-जीवसृष्टि प्रातिभासिक है। २-ईश्वर सृष्टि व्याव-

हारिक है,ऐसे और ग्रन्थकारोंने भी सत्ता तीनि प्रकारकी कही है। १-चेतनकी परमार्थसत्ता है और चेतनसे भिन्न जड़पदार्थनकी दो प्रकारकी सत्ता है। एक व्यावहारिक-सत्ता और दूसरी प्रातिभासिकसत्ता है। २-सृष्टि के आदिकालमें ईश्वर संकल्पते उपजे जो केवल अविद्याके कार्यपंचभूत और तिनके कार्यकी व्यावहारिक सत्ताहै। ३-दोषसहित अविद्याके कार्य स्वप्न शुक्तिरजतादिकन की प्रातिभासिकसत्ताहै। इस रीति से १-जाग्रतपदार्थन की व्यावहारिकसत्ता। २-स्वप्न की प्रतिभासिक सत्ता कही है। तथापि अनात्मपदार्थनकी सबकी प्रातिभासि-कही सत्ता हैं, यातें दो प्रकारकीही सत्ता है १-चेतनकी परमार्थ सत्ता है। २-चेतन से भिन्न सकल अनात्माकी प्रतिभासिक ही सत्ता है, जाग्रत् स्वप्न के पदार्थन की किंचित् मात्र भी विलक्षणता सिद्ध होवे नहीं। या उत्तमसिद्धान्तकूं प्रतिपादन करे हैं॥ ७॥

चौपाई।।

बिन सामग्री उपजत यातैं। स्वप्नसृष्टि सब मिथ्या तातैं॥
देशकालको लेश न जामें। सर्व जगत् उपजतहै तामें॥
स्वप्न समान झूठ जगजानहु।लेश सत्यताकू मत मानहु॥
जाग्रतमाहिं स्वप्न नहिजैसे। स्वप्न माहिं जाग्रतनहितैसे॥

देशकालसामग्री बिना स्वप्नके हस्तीपर्वतादिक उपजें हैं यातें मिथ्या कहिये हैं तैसे आकाशादिक प्रपंच की

सृष्टि ब्रह्मतें होवे है ता ब्रह्मविषे देशकाल का लेश भी नहीं है। स्वप्नविषे हस्तीपर्वतादिकन के योग्य तो देशकाल नहीं है तथापि अल्प देशकाल है, वैसे आकाशादिकन की सृष्टि में अल्पदेशकाल भी नहीं है काहेतें? देशकालरहित परमात्मा से आकाशादिकनकी सृष्टि कही है। इस कारणतें १-तैत्तिरीय श्रुति में आकाशादिकन की क्रमतें सृष्टि कही है, देशकाल की सृष्टि नहीं कही। २-सूत्रकार भाष्यकार ने भी देशकाल की सृष्टि नहीं कही। सृष्टि नाम उत्पत्ति का है। तहाँ तैत्तिरीय-श्रुतिका और सूत्रकार भाष्यकार का यही अभिप्राय है:-आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति देशकालसामग्री विना होवे है, यातें आकाशादिक स्वप्नकी न्याईं मिथ्या है।

यद्यपि मधुसूदन स्वामी ने देशकाल साक्षात् अविद्या के कार्य कहे हैं, यातें मायाविशिष्ट परमात्मा से पहली मायाके परिणाम देशकाल होवे हैं। तिसतें अनन्तर आकाशादिकनकी उत्पत्ति होवे है। यातें योग्यदेशकाल तें आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति सम्भवे है।

तथापि मधुसूदनस्वामी का यह अभिप्राय नहीं:-जो देशकाल प्रथम होवे है और आकाशादिक उत्तर होवें हैं काहेतें? १-अतीतकाल में होवे सो प्रथम और पूर्व कहिये है। २-भविष्यकालमें होवे सो उत्तम कहिये है, जाकू पाछे कहें हैं। आकाशादिकन की उत्पत्तितें प्रथम

देश काल उपजे हैं, या कहनेतें आकाशादिकन की उत्पत्तिकालतें पूर्वकाल उपहित परमात्मा देश काल का अधिष्ठान है, यह सिद्ध होवेगा। यातें देशकालकी उत्पत्ति में पूर्वकाल की अपेक्षा होवेगा और कालकी उत्पत्ति बिना पूर्वकाल असिद्ध है, यातें आकाशादिकनतें पूर्व कालमें देशकालादिक होवे हैं, यह कहना बने नहीं। किन्तु मधुसूदन स्वामी का यह अभिप्राय है-१-जैसे भूत भौतिक प्रपंच प्रतीत होवे है तैसे देशकाल भी प्रतीत होवे हैं और आत्मासे भिन्न कोई नित्य हैं नहीं यातें देशकाल नित्य नहीं और बिना हुयेकी प्रतीति होवे नहीं। यातें आकाशादिकन की न्याईं देशकाल की भी उत्पत्ति होवे है। सो देशकाल माया के परिणाम हैं और चेतनके विवर्त हैं, जो विवर्त होवे सो किसी का कारण होवे नहीं। यातें आकाशादिक प्रपंच की उत्पत्ति में देश-कालकूँ कारणता बने नहीं। २-किम्वा कारण प्रथम होवे है, कार्य उत्तर होवे है आकाशादिक प्रपंचतें देश-काल प्रथम होवे है यह कहना बने नहीं। यह वार्ता नजदीक कहि आये हैं। यातें भी देशकाल कूँ आकाशादिक प्रपंच की कारणता बने नहीं, किन्तु स्वप्न के पिता पुत्रकी न्याईं देशकाल सहित आका-शादिक प्रपंच मायाविशिष्ट परमात्मातें उत्पन्न होवे है, और कोई पदार्थ किसी देशमें किसी कालमें उपजे है

अन्यदेशमें अन्यकालमें नहीं उपजे हैं। इस रीतिसे सारे पदार्थ प्रलयकालमें नहीं उपजे हैं। सृष्टिकाल में उपजे हैं, याते देशकालकूँ कारणता प्रतीति भी होवे है तौ भी जा मायाते देशकाल सहित प्रपञ्च की उत्पत्ति होवे है ता मायाते ही देशकाल में कारणता, अन्यप्रपञ्चमें कार्यता प्रतीत होवे है और आकाशादि प्रपञ्चके देशकाल कारण नहीं याके विषे ऐसी शङ्का होवे है-विना हुये पदार्थन की तौ प्रतीति होवे नहीं और सिद्धान्त में अङ्गीकार नहीं जो विना हुये की प्रतीति माने तौ १-असत्ख्याति का अङ्गीकार होवेगा और विना हुये वन्ध्यापुत्र शश-शृङ्गादिकन की प्रतीति हुई चाहिये। याते विना हुये की प्रतीति होवे नहीं। याते देशकाल में कारणता नहीं होवे तौ देशकालमें सर्व पदार्थन की कारणता माया के बलतें भी प्रतीति नहीं हुई चाहिये और कारणता देशकाल में प्रतीत होवे है, याते देशकाल सर्व प्रपञ्च के कारण है और जो सिद्धान्ती ऐसे कहैं-सर्व प्रपञ्च का कारण ब्रह्म है। ब्रह्म की कारणता देशकाल में प्रतीत होवे है और देशकाल में कारणता नहीं सो भी बने नहीं। काहेतें? १-जैसे देशकाल का अधिष्ठान ब्रह्म है, तैसे सर्व प्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है, देशकालमें ही ब्रह्मकी कारणता प्रतीत होवे, अन्यमें नहीं या कहने से कोई हेतु नहीं। याते अधि-ष्ठानब्रह्म की कारणता देशकाल में प्रतीत होवे तो ब्रह्म

सर्व प्रपञ्चका अधिष्ठान है, याते सर्वप्रपञ्च में कारणता प्रतीत हुई चाहिये। किसीमें कारणता, किसीमें कार्यता, ऐसा भेद नहीं चाहिये। २-किंवा देशकाल में कारणता नहीं है और ब्रह्म में कारणता है सो ब्रह्म की कारणता देशकाल में प्रतीत होवे या कहनेते अन्यथाख्याति का अङ्गीकार होवेगा। काहेते? अन्यवस्तुकी अन्यरूपते प्रतीत कूँ अन्यथाख्याति कहें हैं। देश काल कारण नहीं, याते कारणते अन्यकारण है, तिनकी अन्य रूपते कहिये कारणरूपते प्रतीति मानने में अन्यथाख्याति का अङ्गीकार होवेगा और सिद्धान्तमें अन्यथा ख्याति अङ्गीकार नहीं। जो या स्थानमें अन्यथाख्याति मानें तो शुक्तिमें अनिर्वचनीय रूप्य की उत्पत्ति सिद्धान्त में मानी है सो निष्फल होवेगी। काहेते? अन्यथाख्यातिमें दो मत हैं:—एक तो अन्यदेशमें स्थित पदार्थकी अन्य देशमें प्रतीत अन्यथाख्याति, जैसे कान्ताकरमें स्थित रजतकी सन्मुख शुक्तिदेश में प्रतीति अन्यथाख्याति अथवा अन्य पदार्थ की अन्यरूपते प्रतीति अन्यथाख्याति। जैसे शुक्तिकी ही रजतरूपते प्रतीति अन्यथाख्याति। ऐसे सारे भ्रमस्थलमें अन्यथाख्याति से निर्वाह सम्भवे है। अनिर्वचनीयरजतादिकनकी उत्पत्तिकथन असङ्गत होवेगा और जो सिद्धांती ऐसे कहें:—विषय के समानकार ज्ञान होवे हैं। अन्य वस्तु का अन्यरूपते ज्ञान सम्भवे नहीं। याते रजता-

कारज्ञान का विषय भी अनिर्वचनीयरजत उत्पन्न होवे है। या अद्वैत सिद्धान्तमें कारणते अन्य जो देश,काल, तिनविषे ब्रह्मकी कारणताका ज्ञान सम्भवे नहीं, याते देश कालमें कारणता जो प्रतीत होवे है ताका विना हुये का अथवा ब्रह्ममें स्थितका भान सम्भवे नहीं, किन्तु देश काल में ही कारणता है ताका भान होवे है, इस रीति से "आकाशादिक प्रपंच के कारण देश काल नहीं" यह कथन असङ्गत है, सो शङ्का बने नहीं। काहेते ? ब्रह्म की कारणता देशकाल में प्रतीत होवे है जैसे— जपापुष्प सम्बन्धी स्फटिक में पुष्प की रक्तता प्रतीत होवे है, अधिष्ठान की सत्यता स्वप्न काल में मिथ्या हस्तीपर्वतादिकन में प्रतीत होवे है। तहाँ स्फटिक में अनिर्वचनीय रक्तता की उत्पत्ति का अङ्गीकार नहीं, किन्तु पुष्पकी रक्तता स्फटिक में प्रतीत होवे है। याते श्वेतस्फटिक की रक्त रूपते प्रतीति होनेते रक्तताके ज्ञान में अन्यथा ख्याति ही मानी है, तैसे स्वप्न में मिथ्या-पदार्थन विषे सत्यता प्रतीत होवे। तहाँ अनिर्वचनीय सत्यता तिन पदार्थन विषे उत्पन्न होवे है, यह कथन तो "सत्य मिथ्या है" इस (व्याघातदोष वाले) वचनकी न्याई सम्भवे नहीं और बिना हुयेकी प्रतीति होवे नहीं। किन्तु स्वप्नके अधिष्ठान चेतनकी सत्यता मिथ्या पदार्थ-नमें प्रतीत होवे है। याते मिथ्या पदार्थन की सत्यरूपते

प्रतीति होनेते सत्यताके ज्ञानमें अन्यथा ख्यातिही मानी है। तैसे अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देशकाल में अन्यथा-ख्याति से प्रतीत होवे है।

जो ऐसे कहैं:-इतने स्थान में अन्यथाख्याति मानें तो सारे भ्रममें अन्यथाख्याति ही माननी चाहिये। सो शङ्का बने नहीं। काहेते? शुक्तिरजतादिकनमें अन्यथा ख्याति मानने में यह दोष कह्या है:-विषयते विलक्षण ज्ञान बने नहीं और जहाँ स्फटिकमें रक्तता का ज्ञान होवे तहाँ रक्त पुष्पका स्फटिकते सम्बन्ध है। याते स्फटिकसम्बन्धी पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवे है। काहेते? अन्तः करण की वृत्ति जब रक्त पुष्पाकार होवे ताही वृत्ति का विषय रक्तपुष्प सम्बन्धी स्फटिक है, याते पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवे है और तैसे शुक्तिका तो रजत-रूपते ज्ञान सम्भवे नहीं। काहेते? शुक्तिदेशमें अनिर्वच-नीय तथा व्यावहारिकरजत तो अन्यमतमें है नहीं, किन्तु शुक्ति है तो शुक्तिके सम्बन्ध से शुक्ति के समानाकार ही अन्तःकरणकी वृत्ति होवेगी, रजताकार अन्तःकरणकी वृत्ति होवे नहीं। याते अविद्याका परिणाम चेतनका विवर्त अनिर्वचनीयरजत और ताका ज्ञान दोनों उत्पन्न होवे हैं और स्फटिकमें रक्तता प्रतीत होवे तहाँ वृत्तिका संबंध स्फटिक और रक्तपुष्प दोनों से होवे है। रक्तपुष्पके संबंध ते रक्ताकार वृत्ति होवे है। ता वृत्ति का स्फटिकते भी

सम्बन्ध है और स्फटिकमें रक्तताकी छायाहै। याते पुष्पका धर्म रक्तता, स्फटिकमें ताही वृत्तिका विषय है। इस रीति मे १-जहाँ दो पदार्थनका सम्बन्ध है तहाँ एकके धर्मकी दूसरेमें प्रतीति सम्भवे है तहाँ अन्यथाख्याति ही सम्भवे है। २-जहाँ दोनों पदार्थनका सम्बन्ध नहीं तहाँ अन्यथा ख्याति नहीं, किन्तु अनिर्वचनीय ख्याति है, जैसे पुष्प-सम्बन्धी स्फटिक में पुष्प की रक्तता प्रतीत होवे है तैसे स्वप्न के हरितपर्वतादिकन का भी अधिष्ठान चेतनते सम्बन्ध है याते चेतनकी धर्मसत्यता भी चेतन सम्बन्धी हस्तीपर्वतादिकनमें प्रतीति होवे है सो अन्यथा ख्याति है तैसे अधिष्ठान चेतनका धर्मकारणता अधिष्ठान चेतन सम्बन्धी देशकाल में प्रतीत होवे है।

जो पूर्व शङ्का करी "अधिष्ठानचेतन का सम्बन्ध सर्व प्रपंचते है जो सम्बन्धीका धर्म अन्यथाख्याति से अन्यमें प्रतीत होवे तौ चेतनकी कारणता सर्वप्रपंचमें प्रतीत हुई चाहिये" सो शङ्का बने नहीं। काहेते? जैसे स्वप्न में दो शरीर उत्पन्न होवे हैं, एक शरीर पितारूप प्रतीत होवे है और दूसरा शरीर पुत्र रूप प्रतीत होवे तहाँ दोनों शरीरनका स्वप्न के अधिष्ठानचेतनते सम्बन्ध भी है तथापि पिताशरीरमें अधिष्ठानचेतनकी कारणता प्रतीत होवे है और पुत्रशरीर में कारणता प्रतीत होवे नहीं, किन्तु पिता जन्य पुत्र है, इस रीति से पुत्र शरीर में

कार्यता प्रतीत होवे है इस रीतिसे यद्यपि अधिष्ठानचेतन से सम्बन्ध तो सब का है, तथापि देशकालमें चेतन धर्म कारणताकी प्रतीति होवे है औरनमें कार्यता की प्रतीति होवे है। २-अथवा न्यारा अधिष्ठान चेतन असङ्ग है सो किसीका परमार्थते कारण नहीं। मायामें आभास यद्यपि कारण है तथापि आभास का स्वरूप मिथ्या होवे है। जो आप ही मिथ्या होवे सो दूसरेका कारण बने नहीं। याते परमात्मा विषे प्रपञ्च की कारणता होवे तो ताकी देशकालमें भ्रमते प्रतीत सम्भवे। सो परमात्माविषे कारणता है नहीं। परमात्मा कारणतादिक धर्म रहित असङ्ग है। ताकी कारणता देशकालमें प्रतीत होवे है, यह कहना सम्भवे नहीं, किन्तु मायाकृत अनिर्वचनीय देशकाल अनिर्वचनीय कारणता वाले होवे हैं और परमार्थ देशकाल कारण नहीं। जैसे पुत्रहीन पुरुष स्वप्न में पुत्र पौत्र दोनोंकूं देखे तहाँ पुत्र पौत्रशरीरकी अनिर्वचनीय होवे है और पुत्रशरीर में पौत्रशरीर की अनिर्वचनीयकारणता होवे है। तहाँ परमार्थ से पुत्रशरीर और पौत्रशरीर का परस्पर कार्यकारणभाव नहीं होवे है। तैसे अनिर्वचनीयकारण देशकाल प्रतीत होवे है। परमार्थ से देश काल और आकाशादिकप्रपंचका कार्यकारणभाव है नहीं। इस रीतिसे देश काल सामग्री बिना जाग्रत् प्रपंच की उत्पत्ति होवे है। याते स्वप्न की न्याई जाग्रत भी मिथ्या है।

जैसे-स्वप्नके स्त्री पुत्रादिक स्वप्न में ही सुख दुःख के हेतु हैं, जाग्रत में तिनका अभाव है, तैसे जाग्रत् के पदार्थन का स्वप्नमे अभाव होवे है दोनों सम हैं और जाग्रत्के पदार्थ ज्ञानके साथही होवे हैं याते दूसरी जाग्रतमें रहैं नहीं।

जो ऐसे कहैं-जाग्रत से स्वप्न होयके फिर जाग्रत होवे तहाँ पहली जाग्रतके जो पदार्थ हैं, सोई स्वप्न व्यवहित दूसरे जाग्रत में रहें हैं और प्रथम स्वप्न के पदार्थ दूसरे स्वप्न में नहीं रहे हैं याते स्वप्न के पदार्थनते जाग्रत् के पदार्थ विलक्षण हैं।

सो शङ्का भी सिद्धान्तके अज्ञानी मूढ़नकी दृष्टिते होवे है, काहेते ? ऐसी मूर्खनकी दृष्टि है, संसार प्रवाह अनादि है तामें जीवनकूँ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति होवे है। १-जाग्रत् कालमें स्वप्न सुषुप्ति नष्ट होवे है। २-स्वप्नकालमें जाग्रत् सुषुप्ति नष्ट होवे है। ३-तैसे सुषुप्तिकालमें जाग्रत् स्वप्न नष्ट होवे है, परन्तु स्वप्न सुषुप्ति होवे तब जाग्रत् काल के स्त्री पुत्र पशु धनादिक दूर होवे नहीं, किन्तु बने रहैं तिनका ज्ञानही दूर होवे है। फिर जाग्रत् होवे तब प्रथम जाग्रत के विद्यमान पदार्थन का ज्ञान होवे है। यह अज्ञानी मूर्खन की दृष्टि है।

सिद्धान्त यह है:-१-सारे पदार्थ चेतन का विवर्त हैं, २-अविद्याका परिणाम है। याते शुक्ति रजत की न्याईं जिस कालमें जो पदार्थ प्रतीत होवे तिसकालमें अधिष्ठान

चेतन आश्रित अविद्या का द्विविध परिणाम होवे है। १–अविद्याके तमोगुण अंश का घटादि विषयरूप परिणाम होवे है। २–अविद्याके सत्त्वगुण का ज्ञानरूप परिणाम होवे है। यद्यपि चेतन कूँ ज्ञान कहे हैं, याते सत्त्वगुणका परिणाम ज्ञान है। यह कहना बने नहीं, तथापि सारे व्यापकचेतन ज्ञान नहीं, किन्तु साभासवृत्ति में आरूढ़ चेतनकू ज्ञान कहें हैं। याते चेतन में ज्ञान व्यवहार की सम्पादकवृत्तिहै इसरीतिसे चेतन में ज्ञानपने की सम्पादक वृत्ति है। इस रीतिसे चेतनमें ज्ञानपने की उपाधि वृत्ति है ताके विषेभी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवे है जैसे लोक में कहे हैं "घटका ज्ञान उत्पन्न हुआ पटका ज्ञान नष्ट हुआ," तहाँ वृत्तिमें आरूढ़ चेतन का तो उत्पत्ति नाश सम्भवे नहीं, वृत्तिके उत्पत्ति नाश होवे हैं और ज्ञान के उत्पत्ति नाश कहे हैं। याते वृत्ति में भी ज्ञानशब्द का प्रयोग होवे है सो वृत्तिरूप ज्ञान सत्त्वगुण का परिणाम है यह कहना सम्भव है। १–तावृत्तिरूप परिणाम में चेतन का आभास होवे है। २–घटादिक विषय रूप परिणाम में चेतन का आभास होवे नहीं, काहेते ? विषय और वृत्ति यद्यपि दोनों अविद्या के परिणाम हैं तथापि १–घटादिक विषय तो अविद्याके तमोगुणका परिणाम है याते मलिन हैं तिनमें आभास होवे नहीं। २–वृत्ति, सत्त्वगुण का परिणाम स्वच्छ है तामें आभास होवे है इस रीतिसे १–वृत्ति को

चेतन के आभासग्रहण की योग्यता होनेते वृत्ति अवछिन्न चेतनका ज्ञान कहें हैं और साक्षी कहें हैं। २-घटादिक विषयकूँ आभास ग्रहणकी योग्यता नहीं। इस कारण ते विषय अवछिन्न चेतन ज्ञान नहीं और साक्षी भी नहीं। इस रीतिसे जाग्रत् पदार्थ और तिनका ज्ञान दोनों साथ ही उत्पन्न होवे हैं और साथही नष्ट होवे हैं। यह वेद का गूढ़ सिद्धान्त है। याते जाग्रत् के पदार्थ दूसरी जाग्रत् में रहे हैं, यह कहना सम्भवे नहीं।

यद्यपि स्वप्नते जागे पुरुषकूँ ऐसी प्रत्यभिज्ञा होवे है, "जो पूर्वपदार्थ थे सोई यह पदार्थ हैं।" याते जाग्रत के पदार्थन का ज्ञान के समकाल उत्पत्ति नाश नहीं होवे हैं, किन्तु ज्ञानसे प्रथम विद्यमान होवे है और ज्ञान नाशते अनन्तर भी रहे है।

तथापि जैसे स्वप्न के पदार्थ तिस क्षण में उत्पन्न होवे हैं और ऐसे प्रतीत होवे हैं:-" मेरे जन्म से भी प्रथम उपजे ये पर्वतसमुद्रादिक हैं" तहाँ तत्काल उपजे पदार्थन में बहुकाल स्थिरता की भ्रान्ति होवे है याते जा अविद्या ने मिथ्या पर्वत समुद्रादिक उपजाये हैं तिसी अविद्यासे बहुकालस्थिरता और स्थिरता की प्रतीत अनिर्वचनीय उपजै है। तैसे जाग्रत् के पदार्थन विषमी अनेक दिन स्थिरता है नहीं, किन्तु अविद्या बल से मिथ्या स्थिरता भी तिन पदार्थनके साथ उपजिके प्रतीत होवेहै।

जो ऐसे कहैं :—१—स्वप्नके पदार्थ साक्षात् अविद्या के परिणाम हैं। २—जाग्रत् के पदार्थ साक्षात् अविद्या के परिणाम नहीं। किन्तु घटकी उत्पत्ति दण्ड चक्र कुलाल से होवे है तैसे सर्वपदार्थन की उत्पत्ति अपने अपने कारणते होवे है, साक्षात् अविद्यासे नहीं। जो साक्षात् अविद्याके परिणाम होवे तो आकाशादिक क्रमते पञ्चभूतनकी उत्पत्ति और पञ्चीकरण तिनसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति श्रुति में कही है सो असङ्गत होवेगी याते ईश्वर सृष्टी जाग्रत के पदार्थ अपने अपने उपादानके परिणामहैं। अविद्याके साक्षात् परिणाम नहीं। १—स्वप्न के तो सारे पदार्थ अविद्या के परिणाम हैं तिनका एक अविद्या उपादान होनेते तिन पदार्थनकी और तिनके ज्ञानकी एक अविद्या से एक कालमें उत्पत्ति सम्भवे है। २—जाग्रतके पदार्थ भिन्न भिन्न कारणसे उत्पन्न होवे हैं। कार्यते पहले कारण होवे है और कारणमें कार्य का लय होवे है। याते घटकी उत्पत्तिसे प्रथम और घटनाशसे आगे मृत्पिण्ड रहे हैं, इस रीतिसे कोई पदार्थ अल्प काल स्थिर और कोई अधिककालस्थिर कार्यकारण हैं तैसे स्वप्न के नहीं।

सो शङ्का बने नहीं। काहेते ? जाग्रत के पदार्थनकी न्याई स्वप्नके पदार्थनविषे भी कार्य कारण भाव प्रतीत होवे है। जैसे किसीकूं ऐसा स्वप्न होवे:—मेरी गऊ के बच्छा हुआहै अथवा मेरी स्त्रीके पुत्र हुआ है। तहाँ गऊ

और स्त्री विषे कारणता की प्रतीत और बहुकाल स्थायिताकी प्रतीत होवे है, वत्स और पुत्र विषे कार्यता और अल्पकालस्थिरता प्रतीत होवे है और सारे समकाल हैं, कोई किसी का कारण नहीं, किन्तु गऊ वत्स स्त्री आदिकन का अविद्याही उपादान है। तैसे जाग्रत् विषे भी कोई अधिककाल स्थायी कारण स्वरूपते कोई न्यूनकाल स्थायी कार्यरूपते स्वप्नकी न्याई प्रतीत होवे है कोई किसी का परस्पर कार्य कारण नहीं, किन्तु साक्षात् अविद्या के कार्य हैं।

श्रुतिविषे जो क्रमते सृष्टि कही है तहाँ सृष्टिप्रतिपादन में श्रुतिका अभिप्राय नहीं, किन्तु अद्वैतबोधन में अभिप्राय है। सारे पदार्थ परमात्मासे उपजे हैं, याते ताके विवर्त हैं, जो जाका विवर्त होवे सो ताका ही स्वरूप होवे है, याते सारा नामरूप ब्रह्मते पृथक् नहीं, ब्रह्म ही है, इस अर्थबोधन करनेकूँ सृष्टि कही है सृष्टि का और प्रयोजन नहीं। तहाँ क्रमका जो कथन है, सो स्थूलदृष्टिकूँ विपरीत क्रमते लय चिन्तन के निमित्त है ताका भी अद्वैत बोध ही प्रयोजन है याते क्रमकथन में भी अभिप्राय नहीं सृष्टिमें क्रम नहीं है किन्तु सारे पदार्थ एक अविद्या से उपजे हैं। तिसका परस्पर कार्यकारण भाव और पूर्व उत्तरभाव, अविद्याकृत स्वप्न की न्याई मिथ्या प्रतीत होवे है और श्रुति ने तिनकी आपस में कार्यका-

रणता और पूर्व उत्तरता कही है, सो तत्व चिन्तन के निमित्त कही है ध्यानमें यह नियम नहीं, जैसा स्वरूप होवे तैसा ही ध्यान होवे है, याते जाग्रत् के पदार्थन का आपस में कार्य कारण भाव नहीं।

किन्तु सारे पदार्थ साक्षात् अविद्या के कार्य हैं, शुक्ति-रजत की न्याईं वा स्वप्नकी न्याई अविद्याकी वृत्ति उपहित साक्षीते तिनका प्रकाश होवे है, याते सारे पदार्थ साक्षीभास्य हैं और ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार अविद्या का परिणाम एकही काल में उपजै है। साथ ही नष्ट होवे है याते जब पदार्थकी प्रतीत होवे, तब ही प्रतीत का विषय पदार्थ होवे है, अन्य काल में नहीं होवे है याहीकूँ दृष्टि सृष्टिवाद कहें हैं।

या पक्ष में पदार्थ की अज्ञातसत्ता नहीं, ज्ञातसत्ताहै, अद्वैतवादमें यह सिद्धान्तरत्न है, या पक्ष में दो सता हैं तीन नहीं, काहेतें ? अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्याईं प्रातिभासिक हैं प्रतीतकाल से भिन्नकाल में अनात्मा की सत्ता नहीं, याते तीसरी व्यावहारिक सत्ता नहीं यापक्ष में सारे अनात्मपदार्थ साक्षीभास्य हैं। प्रमाता प्रमाणका विषय कोई भी नहीं, काहेतें ? अन्तःकरण और इन्द्रिय तथा घटादिक, सारी त्रिपुटी और ज्ञान, स्वप्नकी न्याईं एक काल में उपजे हैं, तिनका विषय विषयी भाव बनै नहीं। जो घटादिक विषय और नेत्रादिक इन्द्रिय तैसे

अन्तःकरण ये ज्ञानतें प्रथम होवे तो नेत्रादि द्वारा अन्तःकरण की वृत्ति रूप ज्ञान प्रमाण जन्य होवे। अन्तःकरण, इन्द्रिय, विषय तीनों ज्ञान के पूर्वकाल में है नहीं, किन्तु ज्ञानसम काल ही स्वप्न की न्याईं त्रिपुटी उपजे है। यातें त्रिपुटी जन्य ज्ञान कोई भी नहीं तथापि ज्ञान विषे स्वप्न की न्याईं त्रिपुटीजन्यता प्रतीत होवे है, यातें जाग्रत के पदार्थ साक्षी भास्य हैं; प्रमाण जन्य ज्ञान के विषय नहीं। यातें भी स्वप्न के समान मिथ्या हैं। १-किम्वा जाग्रत में कितने पदार्थन कूँ मिथ्यारूप करके जाने हैं। २—औरनकूँ सत्यरूप करके ऐसे जाने हैं, अनादिकाल के पदार्थ हैं तिन में कोई नष्ट होवे हैं और तिसके समान उत्पन्न होवे है, ऐसे प्रपञ्चधारा को उच्छेद कभी होवे नहीं, जाकूँ ज्ञान होवे है ताकूँ प्रपञ्च की प्रतीत होवे नहीं औरन कूँ प्रपञ्चकी प्रतीत होवे है ता ज्ञान के साधन वेदगुरु हैं, तिनतें परमसत्य की प्राप्ति होवे है, ऐसी प्रतीत जाग्रत में होवे है। १-तहाँ किसी पदार्थ में मिथ्यापना। २-किसी में नाश। ३-किसीमें उत्पत्ति। ४-वेदगुरुतें परम पुरुषार्थ की प्राप्ति ये सारे अविद्याकृत स्वप्न की न्याईं मिथ्या हैं। वाशिष्ठ में ऐसे अनन्त इतिहास कहे हैं। १-क्षणमात्र के स्वप्न में बहुकाल प्रतीत होवे है और जाग्रतकी न्याईं स्थायी पदार्थ प्रतीत होवे हैं और तिनतें

बहुतकाल भोग होवे है याते जाग्रत्पदार्थकी स्वप्नते किञ्चित विलक्षणता नहीं किन्तु आत्म भिन्न सर्व मिथ्या है ८-१०॥

शिष्य उवाच-दोहा।

लाख हजारन कल्प को, यह उपज्यो संसार।
याते ज्ञानी मुक्त है, बन्धे अज्ञ हजार॥ ११॥
झूठो स्वप्न समान जो, क्षण घटिका है याम।
बद्ध कौनको मुक्त है, श्रवणादिक किह काम॥१२॥

ईश्वर सृष्टि अनन्त कल्पते अनादि है तामें ज्ञानी मुक्त होवे हैं अज्ञानी कूँ बन्ध रहे हैं जो स्वप्न समान होवे तो स्वप्न एक क्षण घड़ी तथा पहर होवे है तैसे संसार भी क्षण अथवा घड़ी वा पहरकाल वा किञ्चित अधिक काल होवेगा। १-स्वप्न की न्याई स्वल्प काल स्थायी संसार होवे तो अनादिकाल का बन्धन नहीं होवेगा, २-बन्धनिवृत्तिरूप मोक्ष के निमित्त श्रवणादिक साधन निष्फल होवेंगे।

गुरुः-यद्यपि पूर्वोक्त सिद्धान्त में १-बन्ध मोक्ष भेद गुरु अङ्गीकार नहीं। २ किन्तु चेतन नित्यमुक्त है, ३-अविद्याके परिणाम चेतन में नाना विवर्त होवे हैं ताते आत्मरूप की किञ्चित् मात्र भी हानि नहीं। ४—आत्मा सदा असङ्ग एकरस है ५-आजतक कोई मुक्त हुआ नहीं, आगे होवे नहीं किन्तु चेतन नित्यमुक्त है, ६-अविद्या और ताके परिणाम का चेतनसे किसी काल में सम्बन्ध नहीं

याते बन्ध और वेद गुरुश्रवणादिक और समाधि तथा मोक्ष इनकी प्रतीति भी स्वप्नकी न्याईं अविद्या जन्य है याते मिथ्या है। ७-इन विषे बहुतकाल स्थायिता भी अविद्या जन्य है, तथापि या सिद्धान्तकूँ नहीं जानि के स्थूल दृष्टि का प्रश्न है ॥ ११ ॥ १२ ॥

गुरुवाक्य-दोहा।

अगृधदेव कूँ स्वप्न में, भ्रम उपज्यो जिहि रीति।
शिष तोकूँ यह ऊपजी, बन्ध मोक्ष परतीति ॥ १३ ॥

हे शिष्य! जैसे निद्रा दोषते स्वप्नमें अध्यापक अध्ययन, वेदशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र और अध्ययनकर्त्ता कर्म और तिनका फल प्रतीति होवे है और तिन सर्व पदार्थनमें सत्यताकी भ्राँति होवे है, तथापि स्वप्न के सारे पदार्थ मिथ्या हैं। तैसे जाग्रतके सारे पदार्थ मिथ्याहैं तिन विषे सत्यता प्रतीति भ्रम है। दोहेमें बन्ध मोक्ष ग्रहणते सर्व अनात्मा का ग्रहण है जैसे तेरे कूँ हम गुरु प्रतीत होवे हैं, वेद अर्थ का बन्ध विघातक उपदेश करे है सो तेरे कूँ मिथ्याप्रतीति है, जैसे अगृधदेवकूँ स्वप्न में मिथ्या प्रतीत के विषय गुरु वेदादिक अनिर्वचनीय उपजै हैं तैसे तेरी प्रतीति के विषे मेरे से आदि लेके सारे अनिर्वचनीय मिथ्या हैं। सो अगृधदेवको ऐसा स्वप्न हुवा है, एक अगृध नामदेवता अनादि कालका निद्रा में सोवता हुआ स्वप्नकूँ देखताभया, ता स्वप्न में तिस पुरुषकूँ ऐसी प्रतीति हुई

१–जो मैं चण्डाल हूँ। २–महा दुखी हूँ। ३–अस्थि मज्जा रुधिर त्वचा मांस मेदवीर्य रूप सप्त धातु से मेरा मुख भरया है। ४–महाघोर भयङ्कर सर्प हस्ती आदिक से युक्त जो वन ताके विषे मैं भ्रमण करूँ हूं। सो देवता भ्रमण करता हुआ तो वन में अनन्त स्थान देखता हुआ। १–कहूँ नाना भयङ्कर प्राणी सन्मुख भक्षण करनेकूँ धावन करे हैं। २–कहूँ राध रुधिरसे भरे कुण्ड हैं तिनमें पड़े प्राणी हाहाकार शब्द करे हैं। ३–कहूँ लोहेके तप्त स्तम्भ हैं, तिनसे बन्धे पुरुष रोवे हैं। ४-कहूं तप्तवालुयुक्त मार्ग होयके नग्नपाद पुरुष जावे हैं और तिन पुरुषनकूँ राजभट लोहमय डण्डोंसे ताडनाकरे हैं। इस रीतिसे १–नाना जो भयङ्कर स्थान हैं तिन कूँ सो देवता देखता हुआ। २-कदाचित् आप भी अपराध करके स्वप्नमें तिन दुःखकूं प्राप्त होता भया। कहूँ दिव्य स्थान देखता हुआ, १-तिन स्थान में उत्तम देव विराजे हैं। २-तिन देवनके दिव्य भोग हैं। ३-अमृतके दर्शन मात्रसे तिनकूं तृप्ति रहै है। ४–क्षुधा तृषा की बाधा तिन देवनकूं होवे नहीं, ५–मल मूत्र रहित जिनका प्रकाशमान शरीर है, ६–उत्तम विमान में स्थित होय के कोई देव रमण करे है, सो विमान तो देव की इच्छा के अनुसार गमन करे है, ७–कहूँ रम्भा उर्वशी से आदि लेके अप्सरा नृत्य करे हैं तिनके सम्पूर्ण अङ्ग दोष रहित हैं और सम्पूर्ण

स्त्री गुणयुक्त है। ८-उत्तम सुगन्ध तिनके शरीरसे कामभी प्रकाशक आवे हैं और कहूँ तिनसे देव रमण करे हैं, ६-कदाचित् आप भी देवभाव कूं प्राप्त होय के तिनसे बहुत काल रमण करे हैं। १०-कदाचित् तिन अप्सरानसे दिव्य स्थानमें रमण करता हुआ अकस्मात् रुधिर मलपूरित जो कुण्ड हैं तिन विषे मज्जन करे है।

एक स्थानमें सर्वका अधिपति पुरुष स्थित है ताके आज्ञाकारी अनुचर ताके आगे स्थित हैं। १-कितने पुरुषनकूं सो अधिपति और ताके अनुचर सौम्य रूप प्रतीत होवे है। ता वनमें स्थित पुरुषनकूं कर्म के अनुसार फल देवे हैं, इस रीतिसे अगृध नाम देवता स्वप्न-काल में नाना जो स्थान हैं तिनकूँ देखता हुआ, १-कहूं अन्यस्थान में ब्राह्मण वेद की ध्वनि करे हैं, २-कहूं यज्ञशालामें उत्तमकर्म करे हैं। ३-कहूं कहूं उत्तम नदी बहैं हैं, तिनमें पुण्यके निमित्त लोक स्नान करे हैं, ४-कहूं ज्ञानवान् आचार्य शिष्यनकूं ब्रह्मविद्या का उपदेश करे हैं। ता ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होयके ता बन से निकसि जावे हैं। इस रीति से स्वप्नविषे अगृध नाम देवता क्षणमात्र में नाना आश्चर्यरूप पदार्थ ता वन में देखता हुआ। ताकूं ऐसी प्रतीति स्वप्न में हुई जो १-मैं अनन्तकाल का या वनमें स्थित हूँ, २-या वनका कभी उच्छेद होवे नहीं। ३-कदा-

चित् बागवान् चारिमुखन मे नानाबीज निकासि के बन को उत्पत्ति करे है और जलसेचन से पालन करें हैं और कदाचित् घोरहास्य करके मुख से अग्नि निकासि के बनका दाह करे है। ४-बनकी उत्पत्ति के सङ्गही मेरी उत्पत्ति होवे है और बनके दाहसङ्गही मेरा दाह होवे है। ५-सर्व बनका दाह करके सो बागवान् एकही रहे है। ६-ताके शरीर में बनके बीज रहे हैं, यह प्रतीति स्वप्न वेदके श्रवणसे ता अगृधदेवताकूं स्वप्नही विषे हुई॥१३॥

अगृधदेवका गुरु से मिलाप।

तब बारम्बार अपना जन्म मरण सुनिके ता अगृधदेवने विचार किया। १-जो किसी प्रकारसे बनके बाहर निकस जाऊँ। बनके बाहर नहीं भी निकसूँ तो भी चाण्डालभाव मेरा दूर होय जावे और देवभाव सदा बन्या रहे। ३-सो और तो कोई उपाय बनते निकलने का है नहीं। ब्रह्मविद्या के उपदेश करने वाला आचार्य अपने शिष्यन कूं बनके बाहर निकासे हैं। यह विचार के आचार्यकूं स्वप्नकालमें ही सो अगृधदेवता प्राप्त हुआ सो विधिपूर्वक प्राप्त हुआ जो शिष्य ताकूं आचार्य देव वाणीरूप मिथ्या ग्रन्थ उपदेश करता हुआ।

मिथ्या आचार्य का मिथ्या शिष्यकूँ मिथ्या संस्कृत ग्रंथ से उपदेश ग्रन्थ के मङ्गलाचरण।

संस्कृत ग्रन्थ जो मिथ्या आचार्य ने मिथ्या शिष्यकूँ

उपदेश किया ता ग्रन्थकूँ भाषा करके लिखे हैं। संस्कृत ग्रन्थके भाषा करनेमें मङ्गल करे हैं। काहेते ? १-मङ्गल करनेते जो ग्रन्थकी समाप्तिके प्रतिबन्धक विघ्न हैं तिनका नाश होवे है। विघ्न नाम पाप का है पापते शुभ कार्य की समाप्ति होवे नहीं ता पाप का मङ्गलते नाश होवे है २-जो पापरहित होवे सो भी ग्रन्थ के आरम्भ में मङ्गल अवश्य करे। काहेते ? जो ग्रन्थ आरम्भ में मङ्गल नहीं किया होवे तो ग्रन्थकर्ताविषे पुरुषन कूं नास्तिक भ्रान्ति होयके ग्रन्थ में प्रवृत्ति होवे नहीं।

सो मङ्गल तीन प्रकार का है-एक वस्तुनिर्देश रूप है और दूसरा नमस्कार रूप है और तीसरा आशीर्वाद-रूप है। सगुण अथवा निर्गुण जो परमात्मा सो वस्तु कहिये है ताके कीर्तन का नाम वस्तुनिर्देश कहिये है। अपना अथवा शिष्यनका जो वांछित वस्तु ताके प्रार्थन का नाम आशीर्वादरूप मङ्गल कहिये है। सो अपने वांछित का प्रार्थन चतुर्थ दोहेमें स्पष्ट है। शिष्य के इष्ट का प्रार्थन पञ्चम दोहे में स्पष्ट है।

गणेश और देवीकू ईश्वरता पुराण में प्रसिद्ध है, याते अनीश्वर का चिन्तन नहीं और पुराणमें गणेश का जो जन्म है सो जीवनकी न्याईं कर्मका फल नहीं किन्तु, रामकृष्णादिकनकी न्याईं भक्त जनके अनुग्रह वास्ते पर-मात्मा का ही आविर्भाव होवे है। व्यास भगवान् का

परम अभिप्राय है, या स्थान में यह रहस्य है:-परमार्थ दृष्टिसे जीव भी परमात्मा से भिन्न नहीं, परन्तु जन्ममरणादिक बन्धक आत्माविषे जो अध्यास सो जीवका जीवपना है सो जन्मादिक बन्ध गणेशादिकन कूँ आत्मा में प्रतीत होवे नहीं याते जीव नहीं। इस रीतिसे गणेशादिकनकूँ ईश्वरता है, याते ग्रन्थके आरम्भ में तिनका चिंतन योग्य है नानारूप ईश्वरका जो कथन है सो सर्वकूँ ईश्वरता द्योतन करने वास्ते है और ईश्वर भक्ति और गुरुभक्ति विद्याकी प्राप्ति का मुख्य साधन है, इस अर्थ को भी द्योतन करने वास्ते है।

निर्गुणवस्तुनिर्देशरूपमंगल-दोहा।

जो विभु सत्य प्रकाशते, परकाशत रवि चन्द।
सो साक्षी मैं बुद्धि को, शुद्ध रूप आनन्द ॥१॥

सगुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल-दोहा।

नाशे विघ्न समूलते, श्रीगणपति को नाम।
जा चिन्तन विन है नहीं, देवनहू के काम ॥२॥
त्रिपुरवध में यह वार्ता प्रसिद्ध है ॥ २ ॥

नमस्काररूपमंगल-सोरठा।

असुरन को संहार, लक्ष्मी पारवती पति।
तिन्हें प्रणाम हमार, भजतनकूँ सन्तत भजै ॥ ३ ॥

स्ववांछितप्रार्थनात्मकआशीर्वादरूपमंगल-दोहा।

जा शक्तिकी शक्ति लहि, करे ईश यह साज।
मेरी वाणी में वसहु, ग्रन्थ सिद्धि के काज ॥ ४ ॥

शिष्यवांछितप्रार्थनरूप आशीर्वाद दोहा ।

बन्धहरण सुखकरण श्री, दादू दीन दयाल ।
पढ़े सुनै जो ग्रन्थ यह, ताके हरहु जँजाल ॥ ५ ॥

वेदान्तशास्त्रकर्ता आचार्य नमस्काररूप—
मंगल कवित्त ।

वेदवादवृक्ष वन भेदवादी वायु आय,
पकर हलाय क्रिया कण्टक पसारिके ।
सरल सुशब्द शिष्य कञ्ज पुनि तोरि गेरि,
शूलन में फेरत फिरत फेरि फारिके ॥
पेख सु पथिक भगवान न जान अनुचित,
अङ्क में उठाय ध्याय व्यासरूप धारिके ।
सूत्रकी बनाइ जाल बनको विभाग कीन्हे,
करत प्रणाम ताहि निश्चल पुकारिके ॥६॥

जैसे वायु, बन में पैठके वृक्षनकूं हलाय के तिनके कण्टक पसारिके सुन्दर कमलनके पुष्पनकूं स्वस्थान से तोरिके कण्टक विषे भ्रमावे तिन भ्रमते पुष्पन कूँ देखि के पथिकके चित्तमें ऐसी आवे कि, ये सुन्दर कमल या स्थान योग्य नहीं। किन्तु, उत्तम स्थान योग्य हैं। यह विचारिके तिन पुष्पनकूं उठाइ लेवे और फिर विचार करे जो आगे भी पवन कण्टकन विषे पुष्पन कूँ तोड़िके भ्रमण करावेगा, याते ऐसा उपाय करूँ जाते फिर वायु कण्टकनमें पुष्पनकूं भ्रमावे नहीं । यह विचारिके सूत्रके

जालसे कण्टकयुक्त वृक्षनका विभाग कर देवे ता जालसे पुष्पनका कण्टकनमें प्रवेश होवे नहीं।

तैसे भेदवादी आचार्य रूप जो वायु है सो वेदरूपी बनमें वाद कहिये अर्थवादरूप जो कण्टकसहित वृक्ष हैं तिन्हते सकामकर्मरूप कण्टक प्रवर्त्त करिके सरल कहिये कपट रहित और सुशुद्ध कहिये अतिशुद्ध रागादि दोष रहित जो शिष्यरूप कमल पुष्प तिन्हकूं समाधिरूप जो स्वस्थान तासों तोरिके सकाम कर्मरूप कण्टक विषे भ्रमावते देखिके पथिक समान व्यापक विष्णु ने विचार किया। जो यह सुन्दर कमलरूप शुद्धपुरुष या स्थान योग्य नहीं है, किन्तु मेरे स्वरूपकूं प्राप्त होने योग्य है। यह विचारिके व्यासरूप धारिके तिन्ह शिष्यन कूं उपदेशरूप अङ्क में स्थापन किया। जैसे पुरुष के अङ्क में स्थित पुष्पकूं वात उड़ाने विषे समर्थ नहीं, तैसे ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के उपदेश में स्थित पुरुष कूं भेदवादि बहकावनमें समर्थ नहीं, याते उपदेश ही अङ्क कहिये गोद है। फिर व्यास भगवान्ने विचार किया जो भेदवादि और पुरुषनकूं आगे भी सकामकर्मरूप कण्टकमें भ्रमावेंगे। याते ऐसा उपाय होवे जाते आगे शिष्य भ्रमैं नहीं, यह विचारिके सूत्ररूपी जाल से वेद के वाक्यरूप वृक्षन का विभाग कर दिया।

जैसे बनमें दोय प्रकारके वृक्ष होवें, १-सकण्टक। २-कण्टक

रहित तिन्हका जालसे विभाग कर देवे और जालते पुष्पनका कण्टकसहित वृक्षनमें प्रवेश होवे नहीं। तैसे वेदमें दो प्रकारके वाक्य हैं। १-एक तो कर्मकी स्तुति करके कर्मविषे बहिर्मुख पुरुष की प्रवृति करावें हैं, २-दूसरे कर्मके फलकूँ अनित्य बोधन करके पुरुष की निवृत्ति करावे हैं। तिन्ह वाक्यनका वेदव्यास ने विभाग करके सूत्रनसे यह बोधन किया जो सर्व वाक्यन का निवृत्तिमें तात्पर्य है, प्रवृत्तिमें किसी वाक्यका भी तात्पर्य नहीं। जो प्रवृत्तिबोधक वाक्य हैं तिन्हका भी स्वाभाविक और निषिद्ध जो प्रवृत्ति है तासे निवृत्ति करके विहितप्रवृत्तिसे अन्तःकरण शुद्ध होयके तासे भी निवृत्ति होयके ज्ञाननिष्ठ पुरुष होवे। इस रीतिसे निवृत्तिमें तात्पर्य है और अर्थवादवाक्यने जो कर्मका फल बोधन किया है सो गुड़जिह्वान्यायसे किया है। फलमें तिनका तात्पर्य नहीं, यह अर्थ सूत्रनसे व्यासजी ने बोधन किया है या अर्थकूं सूत्रनसे जानिके पुरुषकी सकाम कर्म में प्रवृत्ति होवे नहीं जैसे सूत्रका जाल पुष्पनकूँ कण्टकनसे निरोध करे है तैसे व्यास भगवान्‌के सूत्र सकामकर्मनसे निरोध करें हैं, याते जालरूप कहे ॥ ६ ॥

❀ दोहा ❀

कोउक शिष्य उदारमति, गुरु के शरणै जाय।
प्रश्न कियो कर जोरिके, पादपद्म शिरनाय ॥७॥

❀ शिष्य उवाच ❀

भो भगवन् मैं कौन यह, संसृति कातें होइ।
हेतु मुक्ति को ज्ञान वा, कर्म उपासन दोइ ॥ ८॥

हे भगवन्! मैं कौन हूँ देहस्वरूप हूं अथवा देह से भिन्न हूँ? मैं मनुष्य हूँ और मेरा शरीर है। यह दो प्रतीत होवे। याते मेरेकूं संशय है और देह से भिन्न भी जो आप कहो तो मैं कर्ता भोक्ता हूँ अथवा अक्रिय हूँ? जो अक्रिय कहो तो भी सर्वशरीर विषे एक हूँ अथवा नाना हूँ? यह प्रथम प्रश्न का अभिप्राय है। २—यह संसृति कहिये संसार ताका कर्ता कौन है। याका यह अभिप्राय है, या संसारका कोई कर्ता है अथवा आप ही होवे, है, जो कर्ता कहो तो भी कोई जीव कर्ता है अथवा ईश्वर कर्ता है जो ईश्वर कहो तो भी एक देश में सो ईश्वर स्थित है अथवा सो ईश्वर व्यापक है। जो व्यापक है तो भी जैसे व्यापक आकाशते जीव भिन्न है, तैसे ता ईश्वरते जीव भिन्न है अथवा ईश्वरते जीव अभिन्न है। और मुक्तिका हेतु ज्ञान है अथवा कर्म है अथवा उपासना हैं अथवा दो हैं? जो दो कहो तो भी ज्ञानकर्म है, अथवा ज्ञान उपासना है अथवा कर्म उपासना है ॥ ७ ॥ ८ ॥

श्रीगुरुरुवाच—अर्द्ध दोहा।

सत चित आनँद एक तू, ब्रह्म अजन्य असङ्ग।

प्रथम जो शिष्य ने प्रश्न किया, ताका उत्तर कहैं

हैं-"तूँ सत चित् आनन्दस्वरूप है" या कहने ते देहते भिन्न कह्या। काहेते? देह असत्रूप है और जड़ रूप है और दुःखरूप है और कर्त्ता भोक्ता भी नहीं। काहेते? १-जाकेविषे दुःख होवे सो दुःखकी निवृत्ति औ सुखकी प्राप्ति वास्ते क्रिया करे सो कर्त्ता कहिये है। सो तेरे विषे दुःख है नहीं। याते दुःखी निवृत्ति वास्ते क्रिया का कर्त्ता नहीं। तूँ आनन्दस्वरूप है, याते सुखकी प्राप्तिके निमित्त भी तू क्रिया का कर्त्ता नहीं। २-जो कर्त्ता होवे सोई भोक्ता होवे है तू कर्त्ता नहीं याते भोक्ता भी नहीं पुण्य पापका जनक जो कर्म ताका कर्त्ता और सुख दुःख का भोक्ता स्थूल सूक्ष्मसङ्घात है, तू नहीं, तू सङ्घात का साक्षी है, याहीते आत्मा एक है नाना नहीं। जो आत्मा कर्त्ता भोक्ता होवे तब तो नाना होवे। काहेते? कोई सुखी है, कोई दुःखी है और कर्त्ता भोक्ता एक ही अङ्गीकार होवे तो एक के सुख होनेते तथा दुःख होनेते सर्व कूँ सुख तथा दुःख हुवा चाहिये। याते भोक्ता नाना है और आत्मा भोक्ता है नहीं, याते एक है।

पूर्वपक्षी-सांख्यके मतमें आत्मा कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करके नानापुरुष जो अंगीकार किये सो अत्यन्त विरुद्ध है। काहेते? सांख्य का सिद्धान्त है-२-सत्त्व रज तमोगुणों की सम अवस्थाका नाम प्रधान कहे हैं, सो प्रधान प्रकृति है, विकृति नहीं, विकृति नाम

कार्यका है और प्रकृति नाम उपादानकारण है, सो प्रधान महत्तत्त्वका उपादान कारण है, याते प्रकृति है और अनादि है, याते विकृति नहीं और महत्तत्त्व अहङ्कार पञ्चतन्मात्रा ये सात प्रकृति हैं, उत्तर उत्तर के प्रकृति हैं और पूर्वके विकृति हैं, तन्मात्रा भी भूतनके प्रकृति हैं, इस रीतिसे सात प्रकृति विकृति हैं और पञ्चभूत और दशइन्द्रिय और मन ये सोलह विकृति हैं, प्रकृति नहीं और पुरुष प्रकृति विकृति नहीं, काहेते ? जो हेतु किसी पदार्थका होवे तो प्रकृति होवे और कार्य होवे तो विकृति होवे, सो पुरुष किसीका हेतु नहीं, याते प्रकृति नहीं और कार्य नहीं याते विकृति नहीं याते पुरुष असङ्ग है, इस रीति से साँख्यमत में पच्चीस तत्त्व हैं तत्त्वनाम पदार्थका है, २-साँख्यमतमें ईश्वर का अंगीकार नहीं । ३-स्वतंत्रप्रकृति जगत्का कारण है । ४-पुरुषके भोग मोक्षके निमित्त प्रकृतिही प्रवृत्त होवे है, पुरुष नहीं, ५-प्रकृति के विषय रूप परिणामतें पुरुष कूँ भोग होवे है, ६-बुद्धि द्वारा विवेकरूप प्रकृति के परिणामते मोक्ष होवे है. ७-यद्यपि पुरुष असंग है ताके विषे भोग मोक्ष बने नहीं, तथापि ज्ञान सुख दुःख रागद्वेष से आदि लेके बुद्धिके परिणाम हैं, ता बुद्धि का आत्मा से अविवेक है, विवेक नहीं । याते आत्मामें आरोपित बन्ध मोक्ष हैं परमार्थ से नहीं । ८-अविवेकसिद्धि जो आत्मा में भोग

तासेही आत्माकूँ साँख्यमतमें भोक्ता कहे हैं। ९-परमार्थसे आत्मा भोक्ता नहीं बुद्धिही भोक्ता है। १०-बुद्धि आत्मा से भिन्न है। ११-इस ज्ञान का नाम विवेक है, १२-ताके अभावका नाम अविवेक है, इस रीतिसे सांख्यमत में १३-आत्मा असङ्ग है। १४-सुखादिक बुद्धि के परिणाम हैं, याते बुद्धिके धर्म हैं। १५-आत्मा नाना हैं।

सिद्धान्ती-सो वार्ता अत्यन्त विरुद्ध है। जो सुख दुःख आत्मा के धर्म होवे तो सुख दुःख के प्रति शरीर भेद होनेते आत्माका भेद होवे। सो सुख दुःख आत्मा के धर्म तो हैं नहीं किन्तु बुद्धिके धर्म हैं। याते सुख दुःखके भेदसे बुद्धिकाही भेद सिद्ध होवे है आत्मा का भेद सिद्ध होवे नहीं। जैसे एकही व्यापक आकाशमें नाना उपाधि के धर्म उपाधि और आकाश के अविवेक से प्रतीत होवे हैं तैसे एकही व्यापक आत्मा में नाना बुद्धिके धर्म अविवेक से प्रतीत होवे हैं, यह वार्ता सांख्यमत में अङ्गीकार करनी उचितहै। आत्माकूँ असङ्ग मानिके नाना अङ्गीकार करने निष्फल हैं और कोई आत्मा मुक्त है औरनकूं वन्ध है, इस रीतिसे वन्ध मोक्षकेभेदसे जो आत्मा का भेद अङ्गीकार करे सो भी बने नहीं। काहेते? जो वन्ध मोक्ष आत्मा में अङ्गीकार करें तो वन्ध मोक्ष के भेद से आत्मा का भेद सिद्ध होवे, सो वन्धमोक्ष सांख्यमत में असङ्ग आत्मा में अङ्गीकार किये नहीं। किन्तु बुद्धि के अविवेकसे वन्ध अङ्गी

कार किया है और बुद्धिके विवेकसे बन्धका मोक्ष अंगीकार किया है, जो वस्तु अविवेक से होवे और विवेक से दूर होवे सो वस्तु रज्जु सर्पकी न्याईं मिथ्या होवे है, आत्माविषे भी बुद्धिके अविवेक से बन्ध है और विवेक से दूर होवे है, याते बन्ध मिथ्या है, जैसे बन्ध मिथ्या है, तैसे आत्माका मोक्ष भी मिथ्या है, जामें बन्ध सत्य होवे, ताकाही मोक्ष सत्य होवे है और आत्मा में बन्ध मिथ्या है, याते मोक्ष भी मिथ्याही है। इस रीतिसे मिथ्या जो बन्ध मोक्ष सो आकाशकी न्याईं एक आत्मामें भी बने है, तिनके भेद से आत्मा का भेद सिद्ध होवे नहीं याते सांख्यमत में आत्मा का भेद असंगत है।

तैसे—न्यायमत में भी आत्मा का भेद असंगत है। काहेते? यह न्यायका सिद्धान्त है:-१-सुख, ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, ज्ञानके संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग ये चतुर्दश गुण जीवरूप आत्माविषे हैं। २-संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न ये अष्ट गुण ईश्वर में हैं। इतना भेद है:-ईश्वर के ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न नित्य हैं और जीवके तीनों अनित्य हैं, ईश्वर व्यापक है और नित्य, जीव नाना हैं, और अपूर्व व्यापक हैं, ईश्वरका ज्ञान नित्य है जीव का ज्ञान अनित्य है याते जब ज्ञान गुण होवे तब तो जीव चेतन है और ज्ञानगुण का नाश होवे

तत्र जड़रूप रहें हैं। ३-ईश्वर जीव की नाईं आकाश, काल, दिशा, मन नित्य हैं। ४-पृथ्वी, जल, तेज, वायुके परमाणु नित्य हैं, जो झरोखेमें सूक्ष्म रज प्रतीत होवे है, ताके छठे भागका नाम परमाणु है। परमाणु आत्म की न्याईं नित्यहै, ५-सो भी जाति से आदि लेके कितने पदार्थ न्यायमतमें नित्य हैं। वेदविरुद्ध सिद्धान्त का बहुत लिखनेका जिज्ञासुकूं उपयोग नहीं, याते लिखे नहीं। ६-"मैं मनुष्य हूं, ब्राह्मणहूं" ऐसी जो देहविषे आत्मा भ्रान्ति तासे राग द्वेष होवे है। ता राग द्वेषते धर्म अधर्म के निमित्त प्रवृत्त होवे हैं, तिनते शरीरके सम्बन्धद्वारा सुख दुःख होवे हैं, इसरीतिसे न्यायमतमें आत्माकूं संसार का हेतु भ्रान्तिज्ञान है। ७-सो भ्रान्तिज्ञान तत्त्वज्ञान से दूर होवे है, देहादिक सम्पूर्ण पदार्थनसे "आत्मा भिन्न है" या निश्चय का नाम तत्त्वज्ञान है। ता तत्त्वज्ञान से "मैं ब्राह्मण हूं, मनुष्य हूं" यह भ्रान्ति दूर होवे है। भ्रान्ति के नाशते राग द्वेषका अभाव होवे है। तिन्हके अभावते धर्म अधर्मके निमित्त प्रवृत्तिका अभाव होवे है प्रवृत्तिके अभावते शरीर संबंधरूप जन्मका अभाव होवे है और प्रारब्ध का भोगते नाश होवे है। शरीरसम्बन्ध के अभावते इक्कीस दुःख का नाश होवे है। ८-सो दुःख का नाश रूपही न्यायमत में मोक्ष है। एक शरीर और श्रोत्र, त्वक, नेत्र, रसना, घ्राण, मन ये षट् इन्द्रिय और षट् इन्द्रियों के विषय और षट्

इन्द्रियोंके ज्ञान और सुख दुःख ये इक्कीस दुःख हैं, शरीरादिक भी दुःखके जनक हैं याते दुःख कहिये है। और स्वर्गादिकों का सुख भी नाशके भयते दुःखका हेतु है, याते दुःख कहिये है।

यद्यपि न्यायमतमें श्रोत्र और मन नित्य हैं तिन्ह का नाश बने नहीं। तथापि जिस रूपकरके श्रोत्र मन दुःखके हेतु हैं तिस रूप का नाश होवे है। पदार्थन के ज्ञानकी उत्पत्ति करके दुःखके हेतु हैं। सो पदार्थनका ज्ञान मोक्ष कालमें श्रोत्र और मन करे नहीं। काहेते? जो कर्णगोलकमें स्थित आकाश है सो श्रोत्र कहिये है। ता कर्णगोलकका मोक्षकाल में अभाव है याते आकाश रूप श्रोत्र इन्द्रिय है भी, परन्तु गोलकके अभावते ज्ञान होवे नहीं, इस रीतिसे ज्ञानका जनक जो श्रोत्र इन्द्रिय का स्वरूप सोई दुःख है और ताकाही नाश होवेहै। १०-आत्माके साथ मनके संयोगते ज्ञान होवे सो मन का संयोग न्याय सिद्धान्तमें एककी क्रियाते अथवा दो की क्रियाते होवे है, जैसे बीजवृक्ष का संयोग एक बीज की क्रियाते होवे है, और दो मेषन का संयोग दो की क्रियाते होवे है तैसे विभु आत्मामें तो क्रिया कभी भी होवे नहीं और मोक्ष कालमें मन में भी क्रिया होवे नहीं। याते संयोगवान् मन का भी मोक्षकाल में अभाव होवे है।

कोई एकदेशी त्वचाके साथ मनके संयोगकूं ज्ञान का

हेतु कहे हैं। आत्मा के संयोग कूँ नहीं सुषुप्ति में पुरीतत नाम नाड़ीविषे मन प्रवेश करे है। त्वचा से मनका संयोग है नहीं। याते सुषुप्तिमें ज्ञान होवे नहीं। तिन के मत में त्वचासे संयोगवाला मनही ज्ञान द्वारा दुःख का हेतु होनेतें दुःख रूप है, केवल मन नहीं। मोक्ष में त्वचा के नाश होनेते ताके साथ संयोग है नहीं याते ज्ञान होवे नहीं। मोक्षकालमें मन है भी परन्तु दुःखका हेतु जो ज्ञान का जनक त्वचासे संयोग वाला मन ताका सँयोग के नाशते नाश होवे है। ११-इस रीति से मोक्षकालमें परमात्मा से भिन्नही दुःखरहित होयके व्यापक आत्मा जड़रूप स्थित होवे है काहेते ? ज्ञानगुणते आत्मा का प्रकाश होवे है, सो जीवका ज्ञान सम्पूर्ण इन्द्रियजन्यही है, नित्य है नहीं। ता इन्द्रियजन्य ज्ञानका मोक्षकालमें नाश होवे है, याते प्रकाशरहित जड़रूप होयके आत्मा मोक्षकाल में स्थित होवे है, यह न्यायका सिद्धान्तहै, न्यायमतमें पूर्व उक्तप्रकार से सुख दुःख और बन्धमोक्ष आत्माकूं होवे हैं, याते आत्मा नाना है और सम्पूर्ण व्यापक है। सर्व अल्प पदार्थन से जो संयोग सोई न्यायमत में व्यापक का लक्षण है और सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदका अभाव, व्यापक का लक्षण नहीं, काहेते ? न्यायमतमें यद्यपि आत्मा निरवयव है, याते स्वगत भेदका तो ताके विषे अभाव है भी परन्तु सजातीय और विजातीय के भेद का अभाव नहीं किन्तु

अतम के आगा ने वेहव

१-सजातीय जो दूसरा आत्मा ताका भेद आत्मामें है। २-विजातीय घटादिकनका भेद भी आत्मामें है। याते सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदका अभाव व्यापकका लक्षण नहीं, किन्तु सर्व अल्प पदार्थन से संयोग ही व्यापक का लक्षण है।

याके विषे कोई शङ्का करे है-न्यायमत में आत्मा की न्याईं आकाश काल दिशा भी व्यापक हैं और परमाणु सूक्ष्म हैं निरवयव हैं तिन से सर्व व्यापक पदार्थन का संयोग बने नहीं, काहेते ? जो परमाणु सावयव होवे तब तो किसी देशमें आत्मा का संयोग होवे और किसी देश में अन्य व्यापक पदार्थन का संयोग होवे. सो परमाणु सावयव है नहीं। किन्तु निरवयव हैं और अतिसूक्ष्म हैं। तिन्हके साथ एकही देशमें सर्व व्यापकपदार्थनका संयोग होवेगा सो बने नहीं, काहेते ? जो एकके संयोग से स्थान निरुद्ध है, ता देश में अन्यपदार्थ का संयोग बने नहीं, याते नाना पदार्थनकूं व्यापकता बने नहीं, एकही कोई पदार्थ व्यापक बने है।

यह शङ्का बने नहीं। काहेते ? जो सावयव वस्तुका संयोग है सो तो अन्य के संयोग का विरोधी है, १-जैसे जा पृथ्वी देशमें हस्तका संयोग होवे ता देशमें पादका संयोग होवे नहीं और निरवय का संयोग स्थान कूं रोके नहीं याते अन्यके संयोग का विरोधी नहीं यह वार्ता अनुभवसिद्ध है

२-जैसे घटके जा देशमें आकाशका संयोग है ता देश में ही कालका और दिशाका संयोग भी है। जो कोई घटका देश आकाशकालदिशासे बाहर होवे तौ ता देश देश में आकाशकालदिशाका संयोग होवे नहीं सो बाहिर तो कोई देश है नहीं। किन्तु सर्व पदार्थन के सर्व देश आकाश, दिशामेंही हैं याते सर्व पदार्थनके सर्व देशनविषे आकाश काल, दिशा का संयोग है इस रीति से परमाणु विषे भी एकहीदेशमें नानानिरवयवविभु का संयोग बने है, कोईदोष नहीं, याते आत्मा नाना हैं और सम्पूर्ण व्यापक हैं।

सिद्धांती-सर्व का सर्व पदार्थन से संयोगहै यह न्यायका सिद्धांतहै सो समीचीन नहीं, काहेते? व्यापक आत्मा नाना अंगीकार करे तौ सर्व शरीरमें सर्व आत्माका संबंध अंगीकार करना होवेगा। याते कौन शरीर किसका है। यह निश्चय नहीं होवेगा। किन्तु एक एक आत्माके सर्व शरीर हुये चाहिये। जो ऐसे कहैं, जाके कर्म से जो शरीर उत्पन्न हुवा है ता आत्मा का शरीर है तो भी बने नहीं काहेते? कर्म जा शरीरसे होवेहै ता कर्मकरनेवाले पूर्वशरीर में भी सर्व आत्मा का सम्बन्ध है, याते कर्म भी सर्व आत्माके ही होवेंगे एकके नहीं और ऐसे कहैं, जा आत्मा के मनसहित शरीर है ता आत्मा का सा शरीर है, सो भी बने नहीं। काहेते? १-शरीर की न्याईं मन के साथ भी सर्व आत्मा का संबंध है ताके विषे यह निश्चय होवे नहीं।

जो कौनसा मन किस आत्माकाहै, किन्तु सर्व आत्माके सर्व मन हुए चाहिये। २-तैसे इन्द्रिय भी सर्व आत्मा के सर्वही होवेंगे। ३-बाहरके पदार्थनविषे " यह मेरा है, यह औरका है " ऐसा व्यवहार भी शरीर निमित्तक है, सो शरीर सर्व आत्मा के सर्व हैं, याते बाहर के पदार्थ भी सर्व आत्मा के सर्व हुए चाहिये और जो ऐसे कहैं-जा आत्मा कूँ जा शरीर में अहंबुद्धि और मम बुद्धि होवे ता आत्मा का सो शरीर है। सो अहंबुद्धि और ममबुद्धि एक है, याते सर्व आत्मामें रहै नहीं। किन्तु एक धर्म एकही धर्मी विषे रहै है। याते एक ही आत्मा का शरीर है। जा आत्माका जो शरीरहै ता शरीरके सम्बन्धी मन इन्द्रिय और बाहर के पदार्थ ता आत्माके हैं, याते व्यापक नाना आत्मा अङ्गीकार करने में भी दोष नहीं।

सो वार्त्ता भी बने नहीं। काहेते ? यद्यपि अहंबुद्धि एक देहमें एकही आत्माकूँ होवे है, तथापि सो न्यायमतमें बने नहीं, किन्तु सर्व आत्माकूँ एक देहमें अहंबुद्धि हुई चाहिये, काहेते ? न्यायमत में बुद्धि नाम ज्ञान का है सो ज्ञान आत्मा और मनके संयोगते होवे है। सो मनके साथ संयोग सर्व आत्माकाहै याते मनके संयोगते जैसे एक देहसे एक आत्माकूं अहंबुद्धि होवे है तैसे एक देह में सर्व आत्मा कूँ अहंबुद्धि हुई चाहिये। जो ऐसे कहैं:-यद्यपि मनका संयोग तो सर्व आत्मासे है तथापि जा आत्मामें ज्ञान का जनक

अदृष्ट है ता आत्मा कूँ अहंबुद्धि होवे है तो भी सर्व कूँ ही ज्ञान हुआ चाहिये । काहेते ? जो व्यापक नाना आत्मा अङ्गीकार करें तो एक शरीर की शुभ अशुभ क्रियाते शरीर में स्थित सर्व आत्मा में ही अदृष्ट हुये चाहिये । यह वार्त्ता पूर्व कहि आये । याते व्यापक जो नाना आत्मा अङ्गीकार करें तो एक देह में सर्व कूँ सुख दुःख का भोग हुआ चाहिये । याते व्यापक नाना कर्ता भोक्ता आत्मा है । यह न्याय का सिद्धान्त समीचीन नहीं ।

हमारे सिद्धान्तमें तो कर्ता भोक्ता अन्तःकरण है । सो अन्तःकरण नाना है, व्यापक और अणु नहीं । किन्तु शरीरके समान ता अन्तःकरण का परिणाम है, दीपक के प्रकाशकी न्याईं बड़े शरीरकूँ प्राप्ति होवे तब अन्तःकरण का विकाश होवे है और न्यून शरीर में सङ्कोच होवे है, यह वार्त्ता सिद्धान्तबिन्दुके व्याख्यानमें मधुसूदन स्वामीने प्रतिपादन करी है, जा अन्तःकरणका जा शरीर से सम्बन्ध है ता अन्तःकरणकूँ शरीरसे भोग होवे है । जो अन्तःकरणकूँ व्यापक अङ्गीकार करें तो सर्व शरीर सर्व के होवे और भोग भी सर्व कूँ होवे, सो व्यापक अन्तःकरण नहीं, याते दोष नहीं और अन्तःकरण कूँ अणु अङ्गीकार करें तो शरीरके एकदेशमें अन्तःकरण रहे है, ऐसा अङ्गीकार करना होवेगा, सो वार्ता बने नहीं । काहेते ? जो एककालमें ही पाद और मस्तकमें कण्टक वेध होवे

तो दोनों स्थानमें एकही काल में पीड़ा होवे है सो नहीं हुई चाहिये, काहेते ? जो अन्तःकरण अणु होवे तो एकही स्थानमें एककाल में रहे याते जा स्थान में अन्तःकरण होवे ता स्थान में ही पीड़ा हुई चाहिये, दोनों स्थान में नहीं । याते अन्तःकरण अणु और व्यापक नहीं, किन्तु शरीरके समानहै, याते कोई दोष नहीं, अणु और व्यापक से विलक्षण जो है ताकूँ ही मध्यपरिणाम कहे हैं ।

न्यायमत में किसी नवीन ने ऐसा अङ्गीकार किया है, १-आत्मा नाना है, कर्त्ता भोक्ता है । व्यापक नहीं । याते भोगका सङ्कर नहीं । २-अणु भी नहीं, याते दो स्थान में पीड़ा का असम्भव भी नहीं । किन्तु जैसे वेदान्त में अन्तःकरण मध्यम परिणाम है तैसे आत्मा भी मध्यम परिणाम है ताके विषे चतुर्दश गुण रहें हैं ।

सो भी समीचीन नहीं । काहेते ? १-जो आत्मा कूँ सङ्कोच विकाशवाला अङ्गीकार करे तो दीपकी प्रभा की न्याईं आत्मा विकारी और विनाशवाला होवेगा याते मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र और साधन निष्फल होवेंगे । २-मध्यम-परिणाम अङ्गीकार करके सङ्कोच विकाश अङ्गीकार नहीं करे तो कौन से शरीर के समान आत्मा कूँ अंगीकार करें ? यह निश्चय होवे नहीं । ३-जो मनुष्य शरीर के समान अंगीकार करें तो जब आत्मा हस्तीके शरीरकूँ प्राप्त होवे तब शरीर में आत्मा नहीं होवेगा । याते जा

आ देशमें हस्ती के आत्मा नहीं है ता देशमें पीड़ा नहीं हुई चाहिये । ४-हस्ती के शरीर के समान अंगीकार करे तो तासे औ शरीर बड़े है तिनके एक देश में पीड़ा नहीं हुई चाहिये और सर्वसे बड़ा किसी का शरीर है नहीं जाके समान आत्मा अंगीकार करें । सर्व से बड़ा विराट् का शरीर है ताके समान जो आत्मा अंगीकार करें तो विराट्के शरीर अन्तर्भूत सर्व शरीर हैं, याते सर्व आत्माका सर्व शरीरसे सम्बन्ध होवेगा, ताके विषे पूर्व-दोष कहेही हैं और यह नियम है:-जो मध्यम परिणाम वस्तु होवे सो शरीर की न्याईं अनित्य होवे है याते आत्मा भी अनित्य होवेगा और अन्तःकरण का तो हमारे मतमें ज्ञानते नाश होवे है, याते अनित्य है । मध्यम परिणाम अंगीकार कियेसे दोष नहीं । इस रीतसे नवीन तार्किका मत भी समीचीन नहीं ।

पूर्व पक्षी-जो कोई ऐसे कहै:-आत्मा नाना है और अणु है ।

सिद्धांती-सो वार्ता भी बने नहीं । काहेते ? १-जो आत्माकूं कर्ता भोक्ता अंगीकार करे तो अन्तःकरण के अणुपक्षमें जो दोष कह्या सो दोष होवेगा । २-कर्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करें तो नाना आत्मा अंगीकार निष्फल होवेगा । एकही व्यापक सर्व शरीर में अंगीकार करना योग्य है और कर्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करें तो अपने

सिद्धान्त का भी त्याग होवेगा। काहेते ? अणुवादी का यह सिद्धान्त है:-ज्ञान सुख दुःख धर्मसे आदिलेके आत्मा के धर्म हैं, याते जो आत्माकूं अणु अंगीकार करे तो जा शरीरमें आत्मा नहीं है सो देश मृतसमान है, ताके विषे पीड़ादिक नहीं हुई चाहिये।

जो ऐसे कहैं—यद्यपि आत्मा तो शरीर के एक देशमें है, परन्तु कस्तूरी के गन्धकी न्याईं ताका ज्ञान सारे शरीरमें व्याप्त है, याते सर्व शरीरविषे अनुकूल प्रतिकूल के सम्बन्धकूं अनुभव करे है, सो भी बने नहीं। काहेते ? यह नियमहै: जितने देशमें गुणवाला रहै तासे बाहर गुण रहै नहीं, किन्तु गुणी में ही गुण रहे है। जैसे रूप घटादिकनते बाहिर रहे नहीं, तैसे आत्मासे बाहिर ज्ञान भी बने नहीं और कस्तूरीके सूक्ष्मभाग जितने देश में व्याप्त होवे उतने देशमें ही व्याप्त होवे है, याते कस्तूरी का दृष्टान्त भी बने नहीं। "याते आत्मा अणु है" यह पक्ष भी बने नहीं।

कहूँ श्रुति में आत्मा अत्यन्त अणुसे भी अणु जो कह्या है सो दुर्विज्ञेय है, याते कह्याहै, जैसे अत्यन्त अणुवस्तुका मन्ददृष्टि पुरुष कूं ज्ञान होवे नहीं, तैसे बहिर्मुख पुरुषकूं आत्माका भी ज्ञान होवे नहीं, याते अणुके समान है, यह श्रुतिका अभिप्राय है "आत्मा अणु है" यह अभि-प्राय नहीं। काहेते ? बहुत स्थानमें व्यापक रूप आपही

वेदने प्रतिपादन किया है, याते अणु नहीं इस रीति से "व्यापक तथा मध्यम परिणाम अथवा अणु आत्मा नाना है" यह कहना सम्भवै नहीं !

परिशेषते एक व्यापक आत्माहै ताके विषे धर्म अधर्म सुख दुःख और बन्ध मोक्ष जो अङ्गीकार करे तौ किसीकूँ सुख, किसीकूँ दुःख, किसीकूं बन्ध और किसीकूं मोक्ष ऐसा व्यवहार नहीं होवेगा, याते धर्मादिक बुद्धि के धर्म हैं यद्यपि बुद्धि जड़ है याते ताके विषे भी धर्मसुखादिक बने नहीं तथापि आत्मा के धर्म नहीं हैं, इस अभिप्रायते बुद्धि के धर्म कहिये हैं और "बुद्धि के धर्म हैं, याके विषे अभिप्राय नहीं, बुद्धि और सुखादिक आत्मा में अध्यस्त हैं। १-जो वस्तु भी जामें अध्यस्त होवे सो तामें परमार्थ से होवे नहीं, जैसे सर्प रज्जु में अध्यस्त है सो परमार्थ से रज्जुमें है नहीं। तैसे बुद्धि और सुखादिक आत्मा में है नहीं। २-अध्यस्त वस्तु भी किसी का आश्रय होवे नहीं, याते बुद्धि भी सुखादिकनका आश्रय है नहीं, परन्तु अज्ञान तो शुद्धचेतनमें अध्यस्तहै और अन्तःकरण अज्ञान उपहित में अध्यस्त है और अन्तःकरण उपहित में धर्म, अधर्म सुख दुःख, बन्ध, मोक्ष अध्यस्तहैं। इस रीतिसे आत्मामें धर्मादिकन के अधिष्ठानपने का अन्तः-करण उपाधि है, याते अन्तःकरणके धर्म कहिये हैं।

जो अन्तःकरणविशिष्ट में धर्मादिक अध्यस्त कहें तो

बने नहीं, काहेते ? विशेषणयुक्तका नाम विशिष्ट है। धर्मा-
दिक अध्यासका अधिष्ठान जो आत्मा ताका अन्तःकरण
जो विशेषण अङ्गीकार करे तो अन्तःकरण भी धर्म सुखा-
दिकनका अधिष्ठान होवेगा, सो वार्ता बने नहीं। काहेते ?
मिथ्यावस्तु अधिष्ठान होवे नहीं। याते आत्मामें धर्मादि-
कनके अध्यास का अन्तःकरण विशेषण नहीं, किन्तु
उपाधि है। १-उपाधिका यह स्वभाव है, आप तटस्थ
होयके जितने देशमें आप होवे उतने देशमें स्थित वस्तुकूं
जनावे। २-विशेषण का यह स्वभाव है:-जितने देश में
आप होवे उतने देशमें स्थित वस्तुको अपने सहित जनावे
१-विशेषणवान्कूँ विशिष्ट में कहे हैं २-उपाधि वालेकूँ
उपहित कहे हैं, इस रीति से अन्तःकरण विशिष्ट जो
धर्मादिअध्यस्त कहें, तो जितने देश में अन्तःकरण हैं
ता देशमें स्थित चेतन भाग और अन्तःकरण दोनोंकूँ
अधिष्ठानता होवे सो अन्तःकरण आप भी अध्यस्त है,
याते अधिष्ठान बने नहीं। इस अभिप्रायते अन्तःकरण
उपहितमें धर्मादिक अध्यस्त कहे, याते "जितने देशमें
अन्तःकरण है उतने देशमें स्थित चेतन भाग मात्र में
अधिष्ठानता है अन्तःकरणमें नहीं" यह वार्ता बने है।
तैसे अन्तःकरण भी अज्ञान उपहितमें अध्यस्त हैं अज्ञा-
नविशिष्ट में नहीं, इस रीति से अध्यस्त जो धर्मादिक,
तिनका अधिष्ठान आत्मा है। अध्यास के अधिष्ठान-

पने की अन्तःकरण उपाधि है। यातें बुद्धिके धर्म कहे हैं, २-अविवेकसे अन्तःकरण आत्मा दोनों विषे प्रतीत होवे है, यातें अन्तःकरणविशिष्ट जो प्रमाता ताके धर्म कहे हैं १-धर्मादिक अन्तःकरणके धर्म होवे। २-अथवा अन्तःकरणविशिष्टप्रमाताके धर्म होवे। ३-अथवा रज्जु, सर्प, स्वप्न के पदार्थ, गन्धर्व नगर, नभनीलता की न्याईं किसीके धर्म न होवे, सर्व प्रकार से आत्माके धर्म नहीं। यद्यपि आत्मा में अध्यस्त हैं, तथापि जो वस्तु जामें अध्यस्त होवे सो तामेंही परमार्थ से होवे नहीं। अध्यस्त नाम कल्पितका है। यातें राग, द्वेष, धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, बन्ध, मोक्ष से रहित एक व्यापक आत्मा है, सो आत्मा सत् है। १-जा वस्तु का ज्ञान से अभाव होवे सो असत् कहिये है, जाकी निवृत्ति किसी काल में भी नहीं होवे सो सत् कहिये है। सर्व पदार्थन का और तिनकी निवृत्ति का आत्मा अधिष्ठान है जो आत्मा की निवृत्ति होवे तौ ताका और अधिष्ठान कह्या चाहिये। काहेते ? १-शून्यमें निवृत्ति होवे नहीं। २-जो आत्मा और ताकी निवृत्तिका अन्य अधिष्ठान अङ्गीकार करे तो ताका और अधिष्ठान अङ्गीकार करना होवेगा, इस रीतिसे अनवस्था होवेगी और आत्मा की जो निवृत्ति अंगीकारकरे ताकूं यह पूछे हैं। १-जो आत्माकी निवृत्ति किसीने अनुभव करी है। २-अथवा नहीं ? जो ऐसे

कहैं, अनुभवकरी है । सो बने नहीं, काहेते ? जो अनुभव करनेवाला है सोई आत्मा है और अपना स्वरूपहै, ताकी निवृत्ति का अनुभव अपने मस्तक छेद के अनुभव समान है, याते आत्मा की निवृत्ति का अनुभव बने नहीं । २-ऐसे कहैं जो आत्मा की निवृत्ति तौ होवे है, परन्तु ताकी निवृत्तिका अनुभव किसीकूँ नहीं, तौ यह वार्ता सिद्ध हुई जो आत्मा की निवृत्ति तौ होवे नहीं । काहेते ? जो वस्तु किसीने अनुभव नहीं करी सो बन्ध्यापुत्रके समान होवे है, याते आत्माकी निवृति होवे नहीं याहीते आत्मा सत् है ।

आत्मा चित है । प्रकाशरूप जो ज्ञान सो चित कहिये है । १-जो अप्रकाशरूप आत्मा अङ्गीकार करें तो अनात्मजड़वस्तुका प्रकाश कभी होवे नहीं । जो अन्तःकरण और इन्द्रियन से पदार्थ का प्रकाश कहैं तो बने नहीं । काहेते ? अन्तःकरण और इन्द्रिय परिच्छिन्न हैं, याते कार्य हैं । १-जो परिच्छिन्न होवे सो घट की न्याईं कार्य होवे है अन्तःकरण इन्द्रिय भी परिच्छिन्न है, याते कार्य है २-देशकालते जाका अन्त होवे सो परिच्छिन्न कहियेहै, ३-जो कार्य होवे सो जड़ होवे है । याते अन्तःकरण और इन्द्रियें भी जड़ हैं, तिनते किसी वस्तु का प्रकाश बने नहीं । याते जो आत्मा सर्व का प्रकाश करे है सो प्रकाशरूप है ।

जो ऐसे कहे—आत्मा प्रकाशरूप नहीं, किन्तु आत्मा तो जड़ है और ताके विषे ज्ञानगुण है ता ज्ञानते आत्मा और अनात्माका प्रकाश होवे है। ताकूँ यह पूछे हैं। १-अनात्मा का ज्ञान गुण नित्य है। अथवा अनित्य है। १-जो नित्य कहे तो आत्माका स्वरूप ही ज्ञान सिद्ध होवेगा। काहेते ? यह नियम है जो आत्मा से भिन्न होवे सो अनित्य होवे है, जो ज्ञानकूँ आत्मासे भिन्न अङ्गीकार करे तो अनित्यही होवेगा, याते नित्य मानिके आत्मा से भिन्नज्ञान है यह कहना बने नहीं और जो अनित्य अङ्गीकार करें तो घटादिकनकी न्याई जड़ होवेगा जो अनित्य वस्तु होवे, सो जड़ होवे है याते "ज्ञान अनित्य है" यह कहना बने नहीं। किन्तु ज्ञान नित्यही सो नित्यज्ञान आत्म स्वरूपही है। जो अनित्य अङ्गीकार करें तो कदाचित् आत्मा में ज्ञान होवे और नित्य अङ्गीकार किये मे तो भिन्न होवे नहीं। जो गुण होवे सो गुणवान् विषे कदाचित् रहे और कदाचित् नहीं भी रहै, जैसे वस्त्र का नील पीत गुण कदाचित रहे और कदाचित नहीं रहे। याते जो गुण होवे सो आगमापायी होवे है और ज्ञानकूँ नित्यता होनेते आगमापायी है नहीं। याते आत्मा का स्वरूप ही ज्ञान है।

ज्ञानकूं अनित्य कहै तो इन्द्रिय अथवा अन्तःकरण से ज्ञान उत्पन्न होते है, यह कहना होवेगा। सो बने नहीं।

काहेते ? सुषुप्तिमें इन्द्रियादिक तो हैं नहीं और सुख का ज्ञान होवे है। सो नहीं हुआ चाहिये, जो सुषुप्ति में सुखका ज्ञान अङ्गीकार नहीं करे तो जागि के "मैं सुखसे सोया" यह सुषुप्ति के सुख की स्मृति होवे है सो नहीं होनी चाहिये। जा वस्तु का पूर्व ज्ञान होवे ताकी स्मृति होवे है और अज्ञातवस्तुकी स्मृति होवे नहीं और सुषुप्ति के सुखकी जागिके स्मृति होवे है। याते सुषुप्ति में सुखका ज्ञान होवे है। ता ज्ञानके जनक इन्द्रियादिक सुषुप्ति में नहीं, याते नित्य है। ज्ञानकूं त्यागि के आत्मा कभी भी रह नहीं याते ज्ञान आत्माका स्वरूप है जैसे उष्णताकूं त्यागि के अग्नि कभी रहे नहीं, याते उष्णता वह्नि का स्वरूप है। तैसे ज्ञान भी आत्मा का स्वरूप है जो आगमापायी होवे सो गुण होवे है, उष्णता और ज्ञान आगमापायी हैं नहीं, याते अग्नि और आत्माके स्वरूप हैं। जो वस्तु कदाचित् होवे और कदाचित् न होवे सो आगमपायी कहिये है।

उत्पत्ति और विनाश अन्तःकरण की वृत्ति के होवे हैं, ज्ञानके नहीं। १-आत्मस्वरूप जो ज्ञान है सो विशेष व्यवहार का हेतु नहीं किन्तु ज्ञान सहित वृत्ति अथवा वृत्तिमें आरूढज्ञान व्यवहार का हेतु है। यह अवच्छेदवाद की रीति है। २-आभासवाद में आभास सहित वृत्तिसे व्यवहार होवे है। आभास द्वारा अथवा साक्षात्

वृत्ति द्वारा आत्म स्वरूप ज्ञानते ही सब व्यवहार सिद्ध होवे है, नहीं तौ होवे नहीं। इस रीति से सर्व का प्रकाशक ज्ञानस्वरूप आत्मा है। याते चित् है।

आत्मा आनन्द रूप है। जो आत्मा आनन्दरूप नहीं होवे तो विषय संबंधसे स्वरूप आनन्दका भान होवे है सो नहीं हुआ चाहिये। विषयमें आनन्द नहीं, यह वार्ता पूर्व कही है। जो विषयमें आनन्द होवे तौ जा विषयते एक पुरुषकूं सुख होवे तासेही अन्यकूं दुःख होवे। जैसे अग्नि के स्पर्शते अग्नि कीट कूँ और सर्प सिंह के रूप देखनेते सर्पिणी सिंहनीकूँ आनन्द होवे है और अन्यपुरुषकूं दुःख होवे है सो नहीं हुआ चाहिये और सिद्धान्तमें तौ अग्नि-कीटकूँ अग्निस्पर्शकी इच्छा होवे तब चञ्चलबुद्धिमें स्वरूप आनन्दका भान होवे नहीं। अग्निसंबंधते क्षणमात्र इच्छा दूर होयके निश्चलबुद्धिमें स्वरूप आनन्दका भान होवे है, अन्यपुरुषकूँ अग्नि सम्बन्ध की इच्छा है नहीं किन्तु अन्यपदार्थन की इच्छा है। तिन पदार्थन की इच्छा अग्निसम्बन्धसे दूर होवे नहीं। याते चञ्चल अन्तःकरण में अग्निसंबंधसे आनन्द होवे नहीं। याके विषे यह शङ्का होवे है:-जो इच्छा रूप अन्तःकरण की वृत्ति है सो तो विषय प्राप्तिसे नाशकूँ प्राप्त होय गई और अन्य वृत्ति का कोई निमित्त है नहीं। याते उत्पत्ति हुई नहीं और वृत्ति से बिना स्वरूप आनन्द का भान होवे नहीं, याते विषय में आनन्द है।

सो शङ्का बने नहीं । काहेते ? १-यद्यपि इच्छारूपतो अन्तःकरण की वृत्ति का अभाव है सो इच्छारूप वृत्ति होवे तो भी ताके विषे आनन्दप्रकाश होवे नहीं, काहेते? इच्छारूप वृत्ति राजस है और आनन्दकाप्रकाश सात्त्विक वृत्ति में होवे है तथापि वांछितपदार्थ जो मिथ्या है ताके स्वरूपकूँ विषय करने वास्ते जो ज्ञानरूप अन्तः-करणकी वृत्ति है सो सात्त्विक है । काहेते ? सत्त्वगुण से ज्ञान होवे है यह नियम है । ता सात्त्विक वृत्ति में आन-न्दका भान होवे है परन्तु सो ज्ञानरूप वृत्ति वहिर्मुख है । ताके पृष्ठभाग में स्थित जो अन्तःकरण उपहित चेतनस्व-रूप आनन्द ताका तिस वृत्तिसे ग्रहण होवे नहीं । याते विषय उपहित चेतनस्वरूप आनन्द का भान होवे है सो विषय उपहित चेतन आत्मासे भिन्न नहीं याते आत्मा-नन्दकाही विषयमें भान कहिये है ता ज्ञानरूप वृत्ति विषे विषय के साथ नेत्रादिकनका सम्बन्धही निमित्त है ।

२-अथवा ज्ञान रूप जो वहिर्मुखवृत्ति तासे अन्य अन्तर्मुखवृत्ति होवे है ताके विषे अन्तःकरणउपहित चेत-नरूप आनन्दकाही भान होवे है यह उत्तम सिद्धान्त है, ता वृत्तिकी उत्पत्तिमें इच्छादिकन का अभाव ही निमित्त है । जैसे इच्छादिकनते रहित जो एकान्तमें उदासीन पुरुष स्थित है ताकूं बहिर्मुखज्ञान रूपते कोई वृत्ति होवे नहीं आनन्दका भान होवे है याते इच्छादिकनके अभावरूप

निमित्तते अन्तर्मुखवृत्ति आनन्दग्रहण करनेवाली होवे है। तासे वाञ्छित विषय के लाभ से इच्छादिकन का अभाव होनेते ज्ञानसे अनन्तर अन्तर्मुखवृत्ति होवे है। तिसते अन्तःकरण उपहित आनन्द का ही ग्रहण होवे है। सो स्वरूप आनन्द का ग्रहण और विषय का ज्ञान अत्यन्त अव्यवहित है। याते पुरुषकूँ ऐसी भ्रान्ति होवे है "मैंने विषयमें आनन्द अनुभव किया है" प्रथमपक्ष से यह पक्ष उत्तम है। काहेते? जो विषयको ज्ञान रूप वृत्ति है तासे अन्तःकरणउपहित आनन्द का तो भान बने नहीं, याते विषय उपहित आनन्दका भान होवेगा तो मार्ग में वृक्षकी जो ज्ञान रूप वृत्ति है सो भी सात्त्विक है, तासे भी वृक्ष-उपहित चेतनस्वरूप आनन्दका भान हुआ चाहिये। तैसे सर्वज्ञानसे ज्ञेय उपहित चेतनरूप आनन्दका भान हुवा चाहिये। याते अनात्मवस्तुके ज्ञानरूप जो बहिर्मुख वृत्ति तासे ज्ञेय उपहित चेतन स्वरूप आनन्द का ग्रहण होवे नहीं। इस रीति से विषय के सम्बन्ध से आत्मस्वरूपानन्दका भान होवे है। जो आत्मा आनन्दरूप नहीं होवे तो विषय सम्बन्ध से आनन्द का भान बने नहीं। याते आत्मा आनन्दरूप है।

आत्माका सम्बन्धी जो वस्तु है ताके विषे प्रेम होवे है, तासे सन्निहितमें अधिक प्रेम होवे है, इस रीतिके बाहिर बाहिरके पदार्थन की अपेक्षाते अन्तर अन्तर के पदा-

र्थनमें अधिक प्रीति है। १-परम्परातें आत्माका सम्बन्धी जो पुत्रका मित्र है तामें प्रीति होवे है। २-पुत्रके मित्रको अपेक्षाते पुत्रमें अधिक प्रीति है। ३-पुत्र से भी स्थूल सूक्ष्म शरीरमें अधिक प्रीति है। ४-स्थूल सूक्ष्म शरीर में भी स्थूलते सूक्ष्ममें अधिक प्रीति है। पूर्वपूर्व से उत्तर २ आत्माके समीप है, १-आत्माका आभास सूक्ष्म शरीर में है और में नहीं, याते आभास द्वारा आत्मा का सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध है और से नहीं, २-स्थूलशरीरसे सूक्ष्म शरीर का संबंध है याते स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीर द्वारा आत्माका संबंध है ३-पुत्र से स्थूल शरीर द्वारा संबंधहै और पुत्रके मित्रसे पुत्रद्वारा संबंध है, इस रीति से उत्तर उत्तर जो आत्माके समीप ताके विषे अधिक प्रीति है,जो आत्माके संबंध होनेते पदार्थमें प्रीति होवे तो आत्मा में ही मुख्य प्रीति है और पदार्थमें नहीं। जैसे पुत्रके मित्र में पुत्रके संबंधसे प्रीति है याते पुत्रमें ही प्रीति है, पुत्रके मित्रमें नहीं। तैसे आत्माके अधिक समीपमें अधिक प्रीति होवे है। याते आत्मा विषेही सर्वकी प्रीति है, सो प्रीति आनन्द में और दुःखके अभाव में होवे है और में नहीं और पदार्थमें जो प्रीति होवे सो आनन्द और दुःखके अभाव के निमित्त होवे है, याते आनन्द और दुःख के अभावसे और में प्रीति नहीं, याते सबकी प्रीतिका विषय जो आत्मा सो आनन्दरूपहै और दुखका अभाव आत्मा

रूप है, कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप होवे है, जैसे-सर्प का अभाव रज्जुरूप है। याते कल्पित जो दुःख ताका आभाव भी आत्मारूप है, इस रीति से आत्मा आनन्दरूप है।

न्यायमत में आत्माका आनन्दगुण है, सो समीचीन नहीं। काहेते ? जो आनन्दगुणकूं नित्य अङ्गीकार करेंतो आगमापायी नहीं होवे, याते आत्माका स्वरूप ही आनंद सिद्ध होवेगा और नित्य आनन्द न्यायमत में है भी नहीं और। अनित्य जो कहैं तो अनुकूल विषय और इंद्रिय के संबंधसे आनन्दकी उत्पत्ति अंगीकार करनी होवेगी याते सुषुप्तिमें आनन्दका भान नहीं हुवा चाहिये। काहेते सुषुप्ति में विषयका और इंद्रियका सम्बन्ध है नहीं। याते आत्मा का आनन्द गुण नहीं, किन्तु आत्मा आनन्द स्वरूप है, इस रीतिसे आत्मा सतचित आनन्दरूप है, सो सच्चिदानंद परस्पर भिन्न नहीं, किन्तु एक ही है। जो आत्मा के गुण होवे तो परस्पर भिन्न भी होवै और आत्मस्वरूप है, याते भिन्न नहीं। १–एकही आत्मा निवृत्ति रहित है, याते सत् कहिये है। २–जड़ से विलक्षण प्रकाशरूप है, याते चित कहिये है। ३-दुःखसे विलक्षण मुख्यप्रीति का विषय है, याते आनंद कहिये है। जैसे-उष्णप्रकाश रूप अग्नि है, तैसे सच्चित् आनंदरूप आत्मा है और सच्चित् आनंदस्वरूपही शास्त्रमें ब्रह्म कहा है।

याते ब्रह्मस्वरूप आत्मा है और ब्रह्म नाम व्यापक का है। १-देशते जाका अन्त नहीं होवे सो व्यापक कहिये है, तासे आत्मा जो भिन्न होवे तो देशते अन्त वाला होवेगा। २-जाका देशते अंत होवे ताका कालसे भी अंत होवे है, यह नियम है। याते अनित्य होवेगा। जाका कालसे अंत होवे सो अनित्य कहिये। याते ब्रह्म से भिन्न आत्मा नहीं और आत्मासे भिन्न जो ब्रह्म होवे तो अनात्मा होवेगा। जो अनात्मा घटादिक हैं सो जड़ हैं. याते आत्मासे भिन्न ब्रह्म भी जड़ही होवेगा। याते आत्मासे भिन्न ब्रह्म भी नहीं, किन्तु ब्रह्मस्वरूपही आत्मा है।

१-एक ही चेतन सर्वप्रपञ्च और माया का अधिष्ठान है याते ब्रह्म कहिये है, २-अविद्या और व्यष्टि देहादिकनका अधिष्ठान है याते आत्मा कहिये है, १-तत्पद का लक्ष्य ब्रह्म कहिये है। २-त्वम्पद का लक्ष्य आत्मा कहिये है। १-ईश्वरसाक्षी तत्पद का लक्ष्य है। २-जीवसाक्षी त्वम्पदका लक्ष्य है। १-व्यष्टिसंघातउपहित चेतन जीव साक्षी है। २-समष्टि संघात उपहित चेतन ईश्वरसाक्षी कहिये है। यद्यपि जीवकी और ईश्वर की एकता बने नहीं तथापि जीवसाक्षी और ईश्वरसाक्षी का उपाधि के भेद से भेद है और स्वरूप से एक ही है। जैसे मठमें स्थित जो घटाकाश और मठाकाश तिन्हका उपाधि के भेदाबिना स्वरूपसे भेद नहीं। तैसे आत्मा और ब्रह्म का उपाधिभेद बिना भेद नहीं एकही वस्तु हैं।

सो ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा कहिये जन्मरहित है। जो आत्मा का जन्म अङ्गीकार करे तो अनित्य होवेगा सो वार्ता परलोकवादी जो आस्तिक हैं तिन कूँ इष्ट नहीं। काहेते? जो आत्मा उत्पत्ति नाशवान् होवे तो प्रथम जन्मविषे पूर्वकर्म बिना ही सुखदुःखका भोग और किये कर्मका भोगसे बिना नाश होवेगा। याते कर्ता भोक्ता जो आत्मा अंगीकार करे तो भी जन्म नाशरहित ही अङ्गीकार करना होवेगा और आत्मा का जन्म जो अंगीकार करे तो हेतुसे बिना तो किसी वस्तुका जन्म होवे नहीं। याते किसी हेतु से ही जन्म होवेगा सो बने नहीं। काहेते? जो आत्मा का हेतु है सो आत्मा से भिन्न हो कहना होवेगा। सो आत्मा से भिन्न सम्पूर्ण आत्मा में कल्पित हैं याते आत्मा का हेतु बने नहीं। जैसे रज्जु में कल्पित सर्प, रज्जु हेतु नहीं। तैसे आत्मा में कल्पित वस्तु आत्मा का हेतु बने नहीं।

जैसे एक रज्जुविषे नाना पुरुषनकूँ दण्ड, सर्प, पृथ्वी रेखा जलधाराकी भ्रान्ति होवे है, ता भ्रान्तिमें दो अंश हैं, १-एक तो सामान्य इदं अंश है। २-एक सर्पादिक विशेष अंश है सो सामान्य इदं अंश सर्पादिक विशेष अंशनमें सारे व्यापक है। १-"यह सर्प है। यह दण्ड है। ३-यह पृथ्वी की रेखा है। ४-यह जल की रेखा है" इस रीतिसे सर्पादिक विशेष अंश इदं अंशमें सार

व्यापक हैं सो व्यापक सामान्य इदंअंश रज्जु स्वरूप है, ता सामान्य इदंअंशके ज्ञानकूँ ही भ्रान्ति का हेतु रज्जु का सामान्य ज्ञान कहे हैं। सो सामान्य इदंअंश सत्य है। काहेते? रज्जुका ज्ञान हुयेसे अनन्तर भी ता इदं अंशकी प्रतीत होवे है। जैसे भ्रान्ति काल में " यह सर्प है " या रीति से सर्पादिकन से मिलिके इदम् अंश की प्रतीत होवे है। २-तैसे भ्रान्तिकी निवृत्ति से अनन्तर भी "यह रज्जु है" या रीति से रज्जु के साथ मिलिके इदम् अंशकी प्रतीत होवे है, जो इदम् अंश भी मिथ्या होवे तो सर्पादिकनकी न्याईं भ्रान्तिकी निवृत्तिसे अनन्तरताकी भी प्रतीत नहीं हुई चाहिये, याते सर्पादिकभ्रांतिमें व्यापक जो इदं अंश सो सत्य है और अधिष्ठान रज्जुरूप है और परस्पर व्यभिचारी जो सर्पादिक सो कल्पित है।

तैसे सर्व पदार्थन में पाँच अंश है। १-एक नाम। २-रूप। ३-अस्ति। ४-भाति तथा ५-प्रिय। १-"घट" यह दो अक्षर नाम। २-"गोलरूप"। ३-"घट है" यह अस्ति और ४-"घट प्रतीत होवे है" यह भाति और ५-"घट प्रिय है" यह आनंद, (सर्पादिक भी सर्पिणी आदिकनकूँ प्रिय हैं) इस रीतिसे सर्व पदार्थन में पांच अंश हैं। तिन विषे अस्ति-भाति-प्रियरूप तीन अंश सर्व पदार्थनमें व्यापक हैं और नाम, रूप व्यभिचारी हैं जो वस्तु कहूँ होवे और कहूँ नहीं होवे सो व्यभिचारी

कहिये है। घट नाम और गोल रूप पटविषे नहीं है। पट नाम और ताका रूप घटविषे नहीं है। इस रीतिसे सर्वपदार्थन विषे नाम, रूप, अंश व्यभिचारी हैं और अस्ति-भाति-प्रियरूप सर्वविषे अनुगत है। जैसे सर्पदण्डादिकनमें अनुगत इदं अंश सत्य और अधिष्ठान है, तैसे सर्व पदार्थनमें अनुगत अस्ति-भाति प्रियरूप सत्य है और अधिष्ठानरूप है और सर्पदण्डादिकन की न्याईं व्यभिचारी नाम, रूप कल्पित हैं और अस्ति-भाति-प्रिय सच्चित् आनन्दरूप है, याते आत्मस्वरूप है, इस रीत से सच्चित् आनन्दरूप आत्माविषे सम्पूर्ण नाम रूप प्रपञ्च कल्पित है, सो कल्पित पदार्थ कोई आत्मा के जन्म का हेतु बने नहीं, याते आत्मा अजन्मा है, जा वस्तु का जन्म होवे ताही के सत्ता*, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय=, विनाशरूप पाँच विकार होवे हैं। आत्मा का जन्म होवे नहीं। याते उत्तर पाँच विकार भी होवे नहीं, इस रीत से अजन्मा कहिये जन्मादिक षट्विकार से रहित आत्मा है।

सो आत्मा असङ्ग है, सङ्ग नाम संबंध का है। सो सजातीय, विजातीय, स्वगतपदार्थसे होवे है। १-जैसे घटका घटसे जो संबंध है सो सजातीय से संबंध है। २-घटका पटसे जो संबंध सो विजातीय से संबंध है। ३-स्वगत

* सत्ता-प्रगटता। = अपक्षय-घटना।

नाम अवयव है। याते पटका तंतुसे जो संबंध सो स्वागत मे संबंध है। १-आत्मा दो अथवा अनंत होवे तो सजातीय से आत्मा का संबंध होवे सो आत्मा एक है, याते सजातीय आत्मा मे आत्माका संबंध नहीं। २-आत्मा से विजातीय अनात्मा है सो मृग तृष्णा के जल की न्याईं आत्मामें कल्पित है, ता कल्पित से आत्माका संबंध बने नहीं। जैसे मृगतृष्णाके जल से पृथ्वी का संबंध होवे नहीं, जो संबंध होवे तो ऊपरभूमि ता जलसे गीली हुई चाहिये, जैसे मृगतृष्णाके जलसे ऊपर भूमि का संबंध नहीं तैसे आत्मा में कल्पित जो विजातीय अनात्मा तासे आत्माका संबंध नहीं। ३-जो आत्माके अवयव होवे तो आत्मा का स्वगत से संबंध होवे, आत्मा नित्य है, याते निरवयवहै। ताका स्वगतसे संबंध बने नहीं। इस रीतिसे सजातीय विजातीय स्वगत संबंध आत्मा विषे नहीं, याते असङ्ग है। इस रीतिसे हे शिष्य! सच्चित् आनंद ब्रह्मरूप, जन्मादिकविकार रहित, असङ्ग आत्मा है, "सो तू है" यह प्रथम प्रश्न का अर्द्ध दोहे से आचार्यने उत्तर कह्या।

"जगत् का कर्ता कौन है?" यह द्वितीय प्रश्न का उत्तर अर्द्ध दोहे से कहे हैं—

❀ दोहार्द्ध ❀

विभु चेतन माया करें, जगको उत्पति भङ्ग ॥ ६ ॥

विभु कहिये व्यापक जो चेतन ताके आश्रित और

ताकूँ विषय करनेवाली माया कहिये सत् असत् से विलक्षण अद्भुत शक्तिरूप अज्ञान, तासे जगत् की उत्पत्ति भङ्ग होवे है। उत्पत्ति और भङ्ग कहनेते स्थितिका ग्रहण अर्थते होवे है। याते यह अर्थ सिद्ध हुआ। १-मायायुक्त जो चेतन सो ईश्वर कहिये है। २-सो ईश्वर जगत् की उत्पत्ति पालन नाशका हेतु है। यह कहनेते १-"जगत् का कोई कर्ता है, अथवा आपसे होवे है" याका उत्तर कह्या। २-"जगत् का कर्त्ता कोई जीव है, अथवा ईश्वर है?" याका भी उत्तर कह्या।

जगत्का कर्ता ईश्वर है, आपसे होवे नहीं। जो कर्ता से बिना जगत् होवे तो कुलालबिना घट होना चाहिये। याते जगत्का कोई कर्ता है। १-सो कर्ता सर्वज्ञ है। काहेते? जो कार्यका कर्ता होवे सो ता कार्यकूँ और ताके उपादानकूँ जानिके करे है। याते जगत्का कर्ता भी जगत्कूँ और जगत्के उपादान कूँ जानिके करे है। इस रीति से जगत्का कर्त्ता जगत्कूँ और जगत्के उपादान कूँ जाने है, याते सर्वज्ञ है। २-सर्व शक्तिमान् है। काहेते? जो अल्पशक्तिवाले जीव हैं तिन्हसे या जगत्की रचना मनसे भी चिन्तन होवे नहीं, याते अद्भुत जगत् का कर्ता अद्भुत शक्तिवाला है। इस रीतिसे जगत्का कर्ता सर्व शक्तिमान है। ३ स्वतन्त्र है। काहेते? जो न्यून शक्ति वाला होवे सो पराधीन होवे है और सर्व शक्ति वाला पराधीन होवे

नहीं, याते स्वतंत्र है। इस रीतिसे जगत्का कर्ता सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र है, ताहीकूँ ईश्वर कहैं हैं। और अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान्, पराधीन कूँ जीव कहैं हैं यद्यपि अल्पज्ञतादिक जीव में भी परमार्थसे नहीं तथापि अविद्याकृत मिथ्या अल्पज्ञतादिक जीवमें प्रतीत होवै हैं, याते जीव में कहिये हैं। अविद्या कृत अल्पज्ञतादिकन की जो भ्रान्ति सोई जीवता है। सो अल्पज्ञतादिकन की भ्रान्ति ईश्वरमें नहीं, किन्तु मायाकृत सर्वज्ञतादिक ईश्वर में है। यह वार्ता विस्तारसे आगे प्रतिपादन करेंगे। इस रीतिसे जगत्का कर्ता जीव नहीं, ईश्वर है। सो ईश्वर एकदेशमें स्थित नहीं, किन्तु सर्वत्र व्यापक है। जो एक देश में अङ्गीकार करें तो जा वस्तु का देशते अन्त होवे ताका कालसे भी अंत होवे है, याते अनित्य होवेगा। जो अनित्य होवे सो कर्तासे जन्य होवे है, याते ईश्वरका भी कर्ता अङ्गीकार करना होवेगा, सो ईश्वर का कर्ता बनै नहीं। काहेते? १-आप तो अपना कर्ता बने नहीं। जो अपना कर्ता आपही अङ्गीकार करें तो आत्माश्रय दोष होवेगा। आपही क्रियाका कर्ता, (आश्रय) और आपही क्रियाका कर्म, क्रिया विषयरूप कार्य होवे। तहाँ आत्माश्रय होवे है। जैसे कुलाल क्रिया का कर्ता है और घट कर्म है। तैसे क्रियाका कर्त्ता और कर्म भिन्न होवे हैं, एक बनै नहीं, याते आत्माश्रय दोष है। कर्म नाम कार्यका

है और कार्यके विरोधी का नाम दोष है। आत्माश्रय कार्यका विरोधी है, यातें दोष है। यातें २-ईश्वर कर्ता अन्य अङ्गीकार करना होवेगा, सो अन्य भी प्रथम कर्ता की न्याईं कर्ता-जन्य ही कहना होवेगा, सो ताका कर्ता भी प्रथमकी न्याईं तासे भिन्न ही कहना होवेगा। सो प्रथम जो ईश्वर है ताकूँ द्वितीयकर्ताका कर्ता अङ्गीकार करें तो अन्योन्याश्रयदोष होवेगा। यातें तृतीय कर्ता अङ्गीकार करना होवेगा। ता तृतीयका कर्ता जो द्वितीय मानें तब तो अन्योन्याश्रय दोष होवे और प्रथम मानें तब चक्रिका दोष होवेगा। जैसे चक्रका भ्रमण होवे है तैसे प्रथमकर्ता द्वितीयजन्य और द्वितीयकर्ता तृतीय जन्य और तृतीय प्रथमजन्य, सो प्रथम फिर द्वितीयजन्य, इस रीतिसे कार्यकारणभावका भ्रमण होवेगा, चक्रिका स्थान में कोई भी सिद्ध होवे नहीं, सर्वकी परस्पर अपेक्षा है, अन्योन्याश्रयमें दोकी परस्पर अपेक्षा है। एक की सिद्ध हुये बिना अन्यकी सिद्धि होवे नहीं। यातें जैसे कुलालका कर्ता आप नहीं किंतु ताका पिता है, तैसे प्रथम ईश्वर कर्ता का अन्य कर्ता है और कुलाल का पिता अपने पुत्रसे उत्पन्न होवे नहीं, किन्तु अन्य पितासे उत्पन्न होवे है। तैसे द्वितीयकर्ता प्रथमकर्तासे उत्पन्न होवे नहीं, किंतु अन्यकर्ता से ही कहना होवेगा। और कुलालका पितामह, कुलाल और ताके पिता से उत्पन्न होवे नहीं, किंतु

चतुर्थ जो कुलाल का प्रपितामह तासे उत्पन्न होवे है, तैसे तृतीयकर्त्ता भी प्रथम और द्वितीय कर्ता से उत्पन्न होवे नहीं। याते चतुर्थ कर्ता और अङ्गीकार करना होवेगा। ता चतुर्थका कर्ता और पञ्चम मानना होवेगा, याते, अनवस्थादोष होवेगा. धाराका नाम अवस्था है। जो कर्ता की धारा अंगीकार करे तो कौनसा कर्त्ता जगत करे है? यह निर्णय नहीं होवेगा। ३-किसी एककूँ जगत् का कर्त्ता माननेमें कोई युक्ति नहीं। ता युक्तिके अभावका नाम ही विनिगमना विरह कहें हैं। ४-धारा की कहूँ विश्रांति अंगीकार करे तो जा कर्त्तामें धारा का अन्त अंगीकार किया सोई कर्त्ता जगत् का मानने योग्य है, पूर्व सारे निष्फल होवेंगे, याका नामही प्राग्लोप कहैं हैं, पिछले के अभावका नाम प्राग्लोप है, इस रीति से ईश्वर का देशते अन्त अंगीकार करे तो उत्पत्ति अंगीकार करनी होवेगी और उत्पत्ति अंगीकार करे तो आत्माश्रयादि षट् दोष होवेंगे। याते ईश्वर का देशते अन्त नहीं, किंतु व्यापक है, याहीते नित्य है।

ता व्यापक ईश्वरका और जीव का स्वरूप से भेद नहीं किन्तु उपाधिसे भेद है। काहेते? १-अवच्छेदवाद में माया विशिष्टचेतन ईश्वर कहैं है और अविद्याविशिष्टचेतन जीव कहैं हैं, २-आभासवाद में माया और आभासविशिष्टचेतन ईश्वर कहैं है और आभास सहित अविद्या विशिष्ट

चेतनकूँ जीव कहैं हैं ? १आभासवाद में आभास सहित अविद्या और मायाका भेद है, चेतन का नहीं। २-तैसे अवच्छेदवादमें भी अविद्या और माया का भेद, स्वरूप से चेतनका भेद नहीं। ३-अज्ञानमें चेतनका प्रतिबिम्ब जीव है और बिम्ब ईश्वर है। या पक्षमें भी चेतनका स्वरूप से भेद नहीं, किन्तु एकही चेतनमें जीवपना और ईश्वर पना आरोपित है। यह वार्ता आगे कहैंगे। इस रीतिसे जगत का कर्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतन्त्र ईश्वर है, सो ईश्वर व्यापक है ताका और जीव का विशेषण मात्र से भेद है और स्वरूप से अभेद है। यह द्वितीय प्रश्न का उत्तर कह्या ॥ ६ ॥

" मोक्षका साधन ज्ञान है अथवा कर्म है अथवा उपासना है अथवा दो हैं।"

याका उत्तर कहैं हैं-दोहा।

हेतु मोक्षकी ज्ञान इक, नहीं कर्म नहिं ध्यान।
रज्जु सर्प तबहीं नशे, होय रज्जु के ज्ञान ॥ १० ॥

मुक्ति का हेतु कर्म और ध्यान कहिये उपासना नहीं, किन्तु ज्ञानही हेतु है। काहेते ? जो आत्मा में बन्ध सत्य होवे तो ताकी निवृत्ति रूप मोक्ष ज्ञान से होवे नहीं, किन्तु कर्म अथवा उपासना ते होवे सो बन्ध आत्मा में सत्य है नहीं किन्तु रज्जु सर्पकी न्याईं मिथ्या है। तो मिथ्या की निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञान से ही बने है, कर्म

अथवा उपासनासे नहीं। जैसे रज्जुका सर्प किसी क्रियाते दूर होवै नहीं, केवल रज्जु के ज्ञान से दूर होवै तैसे आत्मा के अज्ञान से प्रतीति होवे है, बंध तो बन्ध की प्रतीति और अज्ञान आत्मा के ज्ञानसे ही दूर होवे है।

जो कर्म का फल मोक्ष होवे तो मोक्ष अनित्य होवेगा, काहेते ? यह नियम है, जो कृषि आदि कर्मका फल अन्नादिक हैं सो अनित्य हैं और यज्ञादिक कर्म का फल स्वर्गादिक भी अनित्यहै जो मोक्ष भी कर्म का फल मोक्ष नहीं २-तैसे उपासनाका फल जो अङ्गीकार करे तो भी मोक्ष अनित्य होवेगा। काहेते ? उपासना भी मानस कर्म ही है और कर्म का फल अनित्य होवे है, याते उपासना रूप कर्म का फल भी मोक्ष नहीं।

कर्मकर्ताकूँ कर्म से पाँच प्रकारका उपयोग होवै है। १-पदार्थकी उत्पत्ति तथा। २-नाश अथवा। ३-पदार्थकी प्राप्ति वा। ४-पदार्थ का विकार। ५-तैसे संस्कार अन्य-स्वरूपकी प्राप्तिका नाम विकारहै। संस्कार दो प्रकार का होवै है। मलकी निवृत्ति और गुणकी उत्पत्ति, यह पाँच प्रकार का कर्म से उपयोग होवे है, सो मुमुक्षुकूँ कोई भी बनै नहीं। याते मुमुक्षु ज्ञानके साधन श्रवणादिक विषे ही प्रवृत्त होवै और कर्ममें नहीं। १-जैसे कुलाल के कर्मते कुलालकूँ घटकी उत्पत्ति उपयोग होवे है, तैसे मुमुक्षुकूँ कर्मते मोक्ष की उत्पत्ति उपयोग बनै नहीं काहेते ? जो

अनर्थकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्तिरूप मोक्ष है सो अनर्थकी निवृत्ति आत्मामें नित्य सिद्ध है। जैसे रज्जु में सर्पकी निवृत्ति नित्य सिद्ध है और आत्मा परम आनन्द स्वरूप है। याते परमानन्दकी प्राप्ति भी नित्यसिद्ध है, इस रीतिसे स्वभावसिद्ध मोक्ष की कर्मसे उत्पत्ति बने नहीं। जो वस्तु आगे सिद्ध नहीं होवै ताकी कर्मसे उत्पत्ति होवे है। और सिद्ध वस्तुकी उत्पत्ति होवे नहीं।

वेदान्त श्रवण भी मोक्ष की उत्पत्ति के निमित्त नहीं कह्या, किन्तु आत्मा नित्यमुक्त है, किंचित्मात्र भी कर्तव्य नहीं। इस वार्ताके जानने वास्ते श्रवण है। यह जानि के कर्तव्यभ्रान्ति दूर होवे है और वेदांतश्रवण से अनन्तर भी जिनकूं कर्तव्यप्रतीति होवे है, तिन्ह ने तत्त्व जाना नहीं, इसी कारणते नित्यनिवृत्त जो अनर्थ ताकी निवृत्ति और नित्य प्राप्त अनन्द की प्राप्ति, वेदांतश्रवण का फल वेदगुरुने नैष्कर्म्यसिद्धि में कह्या है। याते मोक्ष की उत्पत्ति रूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं।

२-जैसे दण्डके प्रहाररूप कर्मका घटका नाशरूप उपयोग होवे है तैसे मुमुक्षुकूं कर्मते किसी पदार्थका नाश रूप उपयोग भी बनै नहीं। काहेते? अन्यपदार्थका नाश तो मुमुक्षुकूं वाञ्छित है नहीं। बन्ध का नाशही कर्म से उपयोग कहना होवेगा। सो बन्ध आत्मामें है नहीं। मिथ्या प्रतीति होवे है। ता मिथ्याप्रतीतिका नाश कर्म से

बने नहीं और आत्माके यथार्थ ज्ञानसे तो मिथ्या प्रतीति का नाश बने है। याते मुमुक्षुकूं पदार्थन का नाश रूप उपयोग भी कर्मसे बने नहीं। ३-जैसे गमनरूप कर्मते ग्राम की प्राप्ति होवे है तैसे मोक्ष की प्राप्ति रूप उपयोग कर्मसे बने नहीं। काहेते? जो आत्मा नित्य मुक्त है ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बने नहीं। जाकूं बन्ध होवे ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बने है और आत्मामें बन्ध है नहीं। याते मोक्षकी प्राप्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बने नहीं।

४-जैसे पाकरूप कर्मसे अन्न का विकार रूप उपयोग पाचककूं होवे है, तैसे मुमुक्षुकं कर्मते विकार रूप उपयोग भी बने नहीं। काहेते? और तो कोई विकार बने नहीं जो आत्मामें प्रथम बन्ध अंगीकार करे और मोक्ष दशा में चतुर्भुजादिक विलक्षणरूपकी प्राप्ति अंगीकार करे तो अन्यरूपकी प्राप्तिरूप विकार कर्मका उपयोग मुमुक्षु कूँ बने। सो अन्यरूपकी प्राप्ति आत्मा में अंगीकार नहीं, याते कर्मसे विकाररूप उपयोगभी मुमुक्षुकूँ बने नहीं।

५-जैसे वस्त्रके क्षालनरूप कर्मका मलकी निवृत्तिरूप संस्कार होवे है तैसे मल की निवृत्ति रूप संस्कार भी मुमुक्षुकूँ कर्मसे उपयोग नहीं। काहेते? अन्यके मल की निवृत्ति तो मुमुक्षुकूँ वांछित है नहीं, आत्मा के मल की निवृत्ति कहनी होवेगी। सो आत्मा नित्यशुद्ध है ताके विषे मल है नहीं। याते मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बने नहीं,

और अन्तःकरणविषे जो पापरूप मल है ताकी निवृत्ति
जो कर्म से उपयोग कहैं तो यह वार्ता सत्य है, परन्तु
शुद्ध अन्तःकरण वाला जो मुमुक्षु है ताका विचार करें
हैं। ताके अन्तःकरण में भी पाप है नहीं, याते पापरूप
मलकी निवृत्तिरूप संस्कार भी मुमुक्षुकूँ कर्म से उपयोग
बने नहीं और अज्ञानकूँ जो मल कहै तो अज्ञान आत्मा
में है परन्तु ताकी निवृत्ति कर्मसे होवे नहीं। काहेते ? अज्ञान
का विरोधी ज्ञान है कर्म नहीं। याते मुमुक्षु कूँ मलकी
निवृत्तिरूप संस्कार कर्म से उपयोग बने नहीं। जैसे वस्त्र
का कुसुम्भ में मज्जनरूप कर्मका रक्तगुण की उत्पत्तिरूप
संस्कार उपयोग होवे है, तैसे गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार
मुमुक्षुकूं कर्म से उपयोग बने नहीं। काहेते ? अन्यविषे
तो गुणकी उत्पत्ति कहना बने नहीं, आत्माविषेही कहना
होवेगा। सो आत्मा निर्गुण है ताके विषे गुणकी उत्पत्ति
बने नहीं, याते मुमुक्षु कूँ गुण की उत्पत्तिरूप संस्कार
भी कर्म का उपयोग बने नहीं। या प्रकरण में उपयोग
नाम फलका है। कर्म का पाँच ही प्रकारका फल होवे है
और नहीं। सो पाँच प्रकार का फल कर्म का मुमुक्षु कूँ
बने नहीं, याते कर्म कूं त्यागिके ज्ञानके साधन श्रवणविषे
ही मुमुक्षु प्रवृत्त होवे। उपासना भी मानस कर्म ही है, याते
ताके खंडनमें पृथक् युक्ति नहीं कही। इस रीति से केवल
कर्म वा उपासना मोक्ष का हेतु नहीं, किन्तु केवल ज्ञानहै।

पूर्वपक्षी:-कोई कर्मउपासना सहित ज्ञान कूँ मोक्ष के हेतु अङ्गीकार करे हैं और ताके विषे युक्ति दृष्टान्त भी कहैं हैं।

१-दृष्टान्त: जैसे आकाशमें पक्षी का एकपक्षसे गमन होवे नहीं किन्तु दो पक्षसे गमन होवे है। तैसे मोक्षलोक कूँ भी एक ज्ञानरूप पक्ष से गमन होवे नहीं। किन्तु एक पक्षतो उपासना सहित कर्म है और द्वितीयपक्ष ज्ञानहै। उपासना भी मानस कर्म ही है, याते एक ही पक्ष है। २-अन्य दृष्टान्त:-जैसे सेतुके दर्शन से पाप का नाश होवे है। सो सेतुका दर्शन भी प्रत्यक्षरूप ज्ञान है और श्रद्धाभक्तिसहित गमनादि नियमकी अपेक्षा करे है। जो श्रद्धादिक रहित पुरुष होवे ताकूँ सेतुदर्शन से फल होवे नहीं। जैसे सेतुका प्रत्यक्षज्ञान श्रद्धानियमादिकनकी फल की उत्पत्तिमें अपेक्षाकरे है, तैसे ब्रह्मज्ञान भी मोक्षरूपफल की उत्पत्तिमें कर्म उपासन की अपेक्षा करे है और केवल ज्ञानसे जो मोक्ष अङ्गीकार करे हैं सो भी ज्ञानका हेतु तो कर्म उपासना माने हैं, शुद्ध और निश्चल अन्तःकरण में ज्ञान होवे है। सो अन्तःकरण शुभकर्म से शुद्ध होवेहै और उपासना से निश्चल होवे है। इस रीतिसे अन्तःकरण की शुद्धि और निश्चलताद्वारा कर्म उपासना ज्ञानके हेतु अङ्गीकार किये हैं। जैसे ज्ञान के कर्म उपासना अङ्गीकार किये, तैसे ज्ञानके फल मोक्षके हेतु अङ्गीकार योग्य हैं।

१—दृष्टान्त—जैसे जलका सेचन वृक्ष की उत्पत्ति का हेतु और वृक्षके फलकी उत्पत्ति का भी हेतु है, जो वनके वृक्षन के जल सेचन बिना फल होवे है सो भी वृक्ष के मूलमें नीचे जल का सम्बन्ध है, याते फल होवे है और जलके सम्बन्ध बिना वृक्षही सूख जावे फल होवे नहीं। तैसे कर्म उपासना ज्ञान की उत्पत्ति के हेतु हैं और ज्ञान का फल जो मोक्ष ताके हेतु हैं, इस रीति से कर्म उपासना ज्ञान तीनों मोक्षके हेतु हैं। याते ज्ञानवान् भी कर्म करे अथवा कर्म उपासना ज्ञानकी रक्षा के हेतु हैं। काहेते ? जो कर्म उपासना का ज्ञानवान् त्याग करे तो उत्पन्न हुआ ज्ञानभी जलके बिना वृक्षकी न्याईं नष्ट हो जावेगा। काहेते ? शुद्ध अन्तःकरणमें ज्ञान होवे है और शुभ कर्म नहीं करे तो ज्ञानवान् कूँ पाप होवेगा और उपासनाके त्यागसे अन्तःकरण फिर चञ्चल होजावेगा। ता मलिन और चञ्चल अन्तःकरण में ज्ञान रहे नहीं जैसे सूखी भूमि में उत्पन्न हुआ वृक्ष भी रहै नहीं।

२—अन्य दृष्टान्त—जैसे संस्कारसे शुद्ध किये स्थान में वेदपाठी ब्रह्मचारी निवास करे है और शुद्ध किया स्थान भी किसी निमित्तसे फेरि मलिन होय जावे तो ता स्थान कूं त्याग देवे है। तैसे कर्म के त्यागसे मलिन और उपासनाके त्याग से चञ्चल हुआ जो अन्तःकरण ताके विषे ज्ञान रहे नहीं, याते कर्म और उपासना ज्ञान की रक्षाके हेतु हैं।

इस रीति से १-कर्म, उपासना, ज्ञान ये तीन मोक्ष के हेतु अङ्गीकार करे। २-तथा ज्ञानकी रक्षा के हेतु कर्म-उपासना अंगीकार करे और केवल ज्ञान मोक्ष का हेतु अंगीकार करे दोनों प्रकार से ज्ञानवानकूँ कर्म उपासना कर्तव्य है याकूं समुच्चयवाद कहे हैं।

सिद्धान्ती-सो समीचीन नहीं काहेते? देह से भिन्न जो आत्मा नहीं जाने, तासे कर्म होवे नहीं। काहेते? जन्मान्तर के भोगके निमित्त कर्म करे हैं और देह का अग्निविषे दाह होवे है, तासे जन्मान्तर का भोग बने नहीं। १-याते शरीर से भिन्न आत्मा का ज्ञानकर्म का हेतु है। सो शरीर से भिन्न भी आत्मा का कर्ता भोक्ता रूप करके ज्ञान कर्म का हेतु है। "मैं पुण्य पाप का कर्ता हूँ और पुण्यपाप का फल मेरेकूं होवेगा" ऐसा जाकूं ज्ञान है सो कर्म करे है और ज्ञानवान् कूँ ऐसा आत्मा का ज्ञान है नहीं, किन्तु पुण्य पाप और सुख दुःखते रहित असंग ब्रह्मरूप आत्मा है। ऐसा वेदान्त-वाक्यसे ज्ञान होवे है, सो ज्ञान कर्म का हेतु नहीं। उलटा विरोधी है, याते ज्ञानवान से कर्म होवे नहीं। २-कर्ता कर्मफलका भेदज्ञान कर्म का हेतु है, सो कर्ता फल की ज्ञानकूँ आत्मा से भिन्न प्रतीति होवे नहीं। सम्पूर्ण आत्मस्वरूपही प्रतीत होवे है। याते भी ज्ञान-वान्से कर्म होवे नहीं और भाष्यकार ने बहुत प्रकार से

ज्ञानवानकूँ कर्मका अभाव प्रतिपादन किया है, कर्म का और ज्ञान का फलसे विरोध है, याते भी ज्ञान कर्म का समुच्चय बने नहीं। १-कर्म का फल अनित्य संसार है। २-ज्ञान का फल नित्य मोक्ष है। ३-आत्मा में जाति आश्रम अवस्थाका अध्यास कर्मका हेतु है। काहेते? जाति आश्रम अवस्था के योग्य भिन्न २ कर्म कहे हैं? याते जाति आदिकनका अध्यासकर्म का हेतु है यद्यपि जाति आश्रम अवस्था देह के धर्म हैं और कर्मीकूँ देह में आत्मा बुद्धि है नहीं, किन्तु देह से भिन्न कर्ता आत्मा कर्मी जाने है, यह वार्ता पूर्व कही, याते जाति आश्रम अवस्थाकी प्रतीति आत्मा में कर्मीकूं बोधन भी बने नहीं। तथापि देहसे भिन्न आत्माका कर्मी को अपरोक्षज्ञान नहीं। किन्तु शास्त्रसे परोक्षज्ञान है और देहमें आत्मज्ञान अपरोक्ष है। जो देहसे भिन्न आत्माका अपरोक्षज्ञान होवे तो देहमें अपरोक्ष आत्म ज्ञान का विरोधी होवे और परोक्षज्ञानका अपरोक्ष ज्ञान से विरोध है नहीं याते देह से भिन्न कर्ता आत्मा का ज्ञान और देह में आत्मबुद्धि दोनों एककूँ बने हैं। दृष्टान्त-मूर्ति में ईश्वर ज्ञान शास्त्र से परोक्ष है और पाषाण बुद्धि अपरोक्ष है तिन्हका विरोध नहीं, दोनों एककूं होवे है और रज्जुमें जाकूं सर्पसे अपरोक्ष भेदज्ञानहै, ताकूं अपरोक्ष सर्पभ्रांति दूर होवे है। याते यह नियम सिद्ध हुआ-अपरोक्ष भ्रांति

का अपरोक्षज्ञान से विरोध है परोक्ष से नहीं। याते देह से भिन्न आत्मा का परोक्षज्ञान और देह में अपरोक्षज्ञान बने है। सो दोनों कर्म के हेतु हैं। १-देह से भिन्न कर्तारूप करके आत्मा का ज्ञान कर्म का हेतु है। सो कर्तारूप करके आत्माका ज्ञान भ्रांति रूप है और भ्रान्ति विद्वान कूं है नहीं, याते कर्म का अधिकार नहीं और देहमें अपरोक्ष आत्म बुद्धि होवे तब देह का धर्म जाति आश्रम अवस्था प्रतीत होवे, सो देह में आत्म बुद्धि भी विद्वानकूँ है नहीं। किन्तु ब्रह्मरूप करके आत्मा का अपरोक्षज्ञान है, याते जाति आश्रम अवस्था की भ्रान्ति के अभावते भी विद्वान कूँ कर्म का अधिकार नहीं और उपासना भी "मैं उपासकहूँ देव उपास्य है" या बुद्धि से होवे है, सो विद्वानकूँ उपास्य उपासक भाव प्रतीत होवे नहीं "देहादिकसङ्घात तो मेरा और देव का स्वप्न की न्याईं कल्पित है और चेतन एक है" यह विद्वान् का निश्चय है, याते ज्ञान का उपासना से विरोध है और पक्षीके गमनका दृष्टान्त भी बने नहीं। काहेते? पक्षीके तो दो पक्ष एककाल में रहे हैं। तिनका परस्पर विरोध नहीं और ज्ञानका तो कर्म उपासना से विरोध है। एक कालमें बने नहीं और ज्ञानमें कर्म उपासनाकी अपेक्षा नहीं।

सेतुके ज्ञानका दृष्टान्त बने नहीं। काहेते? सेतु का दर्शन दृष्टफल का हेतु नहीं, किन्तु अदृष्टफलका हेतु है। १-प्रत्यक्ष

जो फल प्रतीत होवे सो दृष्टफल कहिये है । जैसे भोजन का फल तृप्ति प्रत्यक्ष है याते भोजन दृष्ट फल का हेतु है, २-तैसे सेतु के दर्शन से प्रत्यक्ष फल प्रतीत होवे नहीं । किन्तु पापका नाशरूप फल शास्त्रसे जाना जावे है । जो शास्त्रसे फल जानिये और प्रत्यक्ष प्रतीत होवे नहीं । सो अदृष्टफल कहिये है । याते जैसे यज्ञादिक कर्म स्वर्गादिक अदृष्टफल के हेतु हैं तैसे सेतु का दर्शन भी पाप के नाशरूप अदृष्टफल का हेतु है जो दृष्टफल का हेतु होवे है सो तो जितना फल की उत्पत्ति में शास्त्र ने सहाय किया है ता सहित फल का हेतु होवे है केवल नहीं, याते श्रद्धा नियमादिक सहित सेतु का दर्शन पापनाश रूप फलका हेतु है । श्रद्धानियमादिक रहित हेतु नहीं । काहेते ? सेतु के दर्शन से प्रत्यक्ष तो कोई फल प्रतीत होवे नहीं । केवल शास्त्रनसे जाना जावे है, सो शास्त्र श्रद्धादिकसहित सेतुके दर्शनसे फल बोधन करे है केवल दर्शन से फलकी उत्पत्तिमें कोई प्रमाण नहीं । याते सेतु का दर्शन फलकी उत्पत्तिमें श्रद्धा नियम भक्ति की अपेक्षा करे है ।

ब्रह्मविद्या अपने फल की उत्पत्ति में कर्म उपासना की अपेक्षा करे नहीं । काहेते ? जो ब्रह्मविद्या का फल भी स्वर्ग न्याईं लोकविशेष अदृष्ट होवे सो लोक विशेष भी केवल ब्रह्मविद्यासे शास्त्रसे बोधन नहीं किया होवे किन्तु कर्मउपासना सहित से बोधन किया होवे तो ब्रह्मविद्या भी

सेतुके दर्शन की न्याई फल की उत्पत्ति कर्म उपासना की अपेक्षा करे सो ब्रह्मविद्या का फल मोक्ष स्वर्ग की न्याई लोकविशेषरूप अदृष्ट तो है नहीं, किन्तु मोक्ष नित्य प्राप्त है और भ्रांतिसे बंध प्रतीत होवे है ता भ्रांतिकी निवृत्तिही ब्रह्मविद्याका फल है सो भ्रान्ति की निवृत्ति केवल ब्रह्मविद्यासे हमारेकूं प्रत्यक्ष है और रज्जुज्ञानसे सर्पभ्रान्ति की निवृत्ति सर्वकूं प्रत्यक्षहै, याते अधिष्ठान ज्ञानका भ्रांतिकी निवृत्तिदृष्टफलहै। दृष्टफलकी उत्पत्ति जितनी सामग्री से प्रत्यक्ष प्रतीत होवे है सो सामग्री दृष्टफल की हेतु कहिये है। १-जैसे तुरीयन्तवेमसे पटकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष है, याते तुरीतन्तवेम पटके हेतु हैं। २-केवल भोजन से तृप्तिरूप फल प्रत्यक्ष प्रतीत होवे है, याते केवल भोजन तृप्ति का हेतु है, तैसे केवल अधिष्ठान ज्ञानते भ्रान्तिकी निवृत्ति प्रत्यक्ष प्रतीत होवे है याते केवल अधिष्ठान का ज्ञानही भ्रान्तिकी निवृत्ति का हेतु है। जैसे रज्जुका ज्ञान भ्रांतिकी निवृत्तिमें अन्यकी अपेक्षा करे नहीं, तैसे बन्धकी भ्रांतिका अधिष्ठान जो नित्यमुक्त आत्मा ताका ज्ञान भी बन्धभ्रान्तिकी निवृत्तिमें कर्म उपासना की अपेक्षा करे नहीं १-ज्ञानके फल मोक्षकूं जो स्वर्ग की न्याई लोक विशेष अदृष्ट अङ्गीकार करे है सो वेदवाक्यसे विरुद्धहै। काहेतें? ज्ञानवान् के प्राण किसी लोक कूं गमन नहीं करते। यह वेद में कहा है। २-लोक विशेष अङ्गीकार करनेतें

स्वर्गकी न्याईं मोक्ष अनित्य होवेगा। याते लोकविशेष रूप मोक्ष नहीं। ३-लोकविशेष जो मोक्ष अङ्गीकार करे ताकूँ भी केवल ज्ञानसेही मोक्षलोक की प्राप्ति अङ्गीकार करनी योग्य है। काहेते? जो शास्त्रने प्रतिपादन किया अर्थ होवे सो शास्त्र के अनुसार ही अङ्गीकार करिये है सो शास्त्र केवल ज्ञान से मोक्ष कहे है, याते केवल ज्ञान मोक्षका हेतु है कर्म उपासना ज्ञान तीनों नहीं।

वृक्षका दृष्टान्त भी बने नहीं। काहेते? यद्यपि जलका सेचन, वृक्षकी उत्पत्ति और रक्षामें हेतु है, तथापि वृक्षके फलकी उत्पत्ति में नहीं, वृद्ध जो वृक्ष है ताकेविषे जल का सेचन वृक्षकी रक्षा के निमित्त है, फल के निमित्त नहीं जलसे पुष्ट जो वृक्ष सोई फलका हेतु है जल सेचन नहीं तैसे कर्मउपासनाका भी ज्ञान की उत्पत्ति में उपयोग है, मोक्ष में नहीं याते ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्व ही अन्तःकरण की शुद्धि और निश्चलता के निमित्त कर्म उपासना करे ज्ञान से अनन्तर मोक्ष के निमित्त नहीं।

ज्ञानकी उत्पत्ति से पूर्व भी जितने अन्तःकरण में मल और विक्षेप होवे तब पर्यन्तही करे, शुद्ध और निश्चल अन्तःकरण जाका होवे सो जिज्ञासु श्रवण के विरोधी कर्मउपासना का त्याग करे। मल नाम पाप का है सो अशुभ वासनाका हेतु है, जब पर्यन्त मल होय तब पर्यन्त अशुभ वासना होवे है, जब अशुभ वासना होवे नहीं

तव मलका अभाव निश्चय करे। अन्तःकरणकी चञ्चलता और एकाग्रता अनुभवसिद्ध है याते उत्तम जिज्ञासु और विद्वानकूँ कर्मउपासना निष्फल है।

पूर्व जो कहा–"ज्ञानकी रचाके निमित्त कर्म उपासना करे। जैसे जलसे उत्पन्न हुआ जो वृच ताकी जलसे रचा होवे है। जो जलका सम्बन्ध नहीं होवे तो बृद्ध वृच भी सूख जावे है। तैसे कर्म उपासनासे उत्पन्न हुआ जो ज्ञान ताकी कर्मउपासना से रचा होवे है। जो ज्ञानी कर्म उपासना नहीं करे तो अन्तःकरण मलिन और चञ्चल फेरि होय जावेगा। ता मलिन और चञ्चल अन्तःकरणमें सूखी भूमि में वृच की न्याई उत्पन्न हुआ ज्ञान भी नष्ट हो जावेगा। याते ज्ञानवान् भी कर्म उपासना करे।"

सो बने नहीं। काहेते? आभाससहित अथवा चेतन सहित जो अन्तःकरणकी "मैं असङ्ग ब्रह्म हूँ" यहवृत्ति सो वेदान्त का फलरूप ज्ञान है ताका कर्म उपासना से बिना नाश होवेगा, अथवा चेतन स्वरूप ज्ञान का नाश होवेगा, जो ऐसे कहैं स्वरूपज्ञान तो नित्य है, याते ताका तो नाश और रचा बने नहीं, परन्तु वेदान्त का फल जो ब्रह्मविद्यारूप ज्ञानहै ताकी कर्मउपासनासे उत्पत्ति होवे है और कर्म उपासनाके त्याग से उत्पन्न हुई विद्या भी नष्ट हो जावेगी, याते ताकी रचा के निमित्त कर्म उपासना करे सो बने नहीं। काहेते? एक बार उत्पन्न

हुई जो अन्तःकरणकी ब्रह्माकारवृत्तिता से अज्ञान और भ्रांतिका नाशरूप फल तिसही समय सिद्ध होवे है, अज्ञान और भ्रांतिके नाशते अनन्तर फेरि वृत्ति की रचा का उपयोग नहीं। २-अन्तःकरणकी वृत्तिकी कर्मउपासनासे रचा बनै भी नहीं। काहेते ? जब कर्म उपासनाका अनुष्ठान करेगा। तब कर्म उपसनाकी सामग्रीकाही वृत्तिरूप ज्ञान होवेगा, ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं और वृत्ति हुयेते प्रथम वृत्ति रहै नहीं। याते कर्म उपासना ज्ञानकी उत्पत्ति के तो परंपराते हेतु हैं और उत्पन्न हुई वृत्तिके विरोधी हैं। याते कर्मउपासनाते ज्ञानकी रचा होवे नहीं।

पूर्व जो कह्या–"ज्ञानवान्कूँ कर्म के त्याग से पाप होवै है" सो वार्ता बनै नहीं। काहेते ? १-जो शुभकर्म का त्यागहै सो पापका हेतु नहीं, किन्तु निषिद्धकर्म का अनुष्ठानही पापका हेतु है यह वार्ता भाष्यकार ने बहुत प्रकार से प्रतिपादन करी है, याते कर्म के त्याग से पाप होवै नहीं और ज्ञानवान्कूँ तो सर्व प्रकारसे पापका असम्भव है, काहेते ? पुण्य पाप और तिनका आश्रय अन्तःकरण परमार्थसे हैं नहीं अविद्यासे मिथ्याप्रतीति होवै है सो अविद्या और मिथ्या प्रतीति ज्ञानवान् के है नहीं। याते ज्ञानवान्कूँ शुभकर्मके त्याग से अथवा अशुभ के अनुष्ठान से पाप बनै नहीं।

या स्थान में यह सिद्धान्त है, १–मन्द, २–दृढ़, दो

प्रकारका ज्ञान है। १-संशयादिक सहित जो ज्ञान सो मन्दज्ञान कहिये है, २-संशयादिक रहित ज्ञान दृढ़ कहिये है। जाकूँ दृढ़ज्ञान होवे ताकूँ किञ्चिन्मात्र भी कर्त्तव्य नहीं। एकबार उत्पन्न हुआ जो संशयादिकरहित अन्तःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान सोई अविद्याका नाश कर देय है। सो ज्ञान आप भी दूर होय जावे तो भी भले प्रकारसे जाने आत्मामें फेरि भ्रान्ति होवे नहीं। काहेते? जो भ्रान्ति का कारण अविद्या है सो अविद्या एक बार उत्पन्न हुए ज्ञानसे नष्ट होय गई याते भ्रान्ति और अविद्याके अभावते वृत्ति ज्ञान की आवृत्ति का कुछ उपयोग नहीं और जीवन्मुक्तिके आनन्दवास्ते जो वृत्तिकी आवृत्ति अपेक्षित होवै तो बारम्बार वेदान्तके अर्थका चिन्तनही करे। वेदान्तके अर्थ चिन्तनसेही बारंबार ब्रह्माकार वृत्ति होवे है कर्म उपासनाते नहीं। काहेते? कर्म और उपासनाका अन्तःकरणकी शुद्धि और निश्चलता द्वाराही ज्ञान में उपयोग है और रीतिसे नहीं और विद्वान्‌के अन्तःकरण में पाप और चञ्चलता है नहीं। रागद्वेष द्वारा पाप और चञ्चलताका हेतु अविद्या है, ता अविद्या का ज्ञान से नाश होवे है। याते विद्वानके पाप और चञ्चलता के अभावते कर्म उपासनाका उपयोग नहीं।

जो कदाचित ऐसे कहैः-रागद्वेषादिक अन्तःकरण के सहज धर्म हैं, जितने अन्तःकरण हैं उतने रागद्वेष का

जबत क्रौ

सर्वथा नाश ज्ञानवान् के भी होवे नहीं। तिन्ह रागद्वेष ते ज्ञानवान् का भी अन्तःकरण चञ्चल होवे है, याते चञ्चलता दूर करने वास्ते ज्ञानवान् भी उपासना करे।

यद्यपि ज्ञानवान्कूँ अन्तःकरणकी चञ्चलता से विदेह मोक्ष में हानि नहीं। तथापि चञ्चल अन्तःकरणमें स्वरूप-आनन्दका भान होवे नहीं, याते चञ्चलता जीवन्मुक्त की विरोधी है याते जीवन्मुक्ति के निमित्ति चंचलता दूर करने वास्ते उपासना करे सो बने नहीं। काहेते ? यद्यपि दृढ़बोध जाके अन्तःकरणमें हुआ है ताके समाधि और विक्षेप समान है। याते अन्तःकरणकी निश्चलताके निमित्त किसी यत्नका आरम्भ विद्वान् कूँ बने नहीं। तथापि विद्वान्की प्रवृत्ति और निवृत्ति प्रारब्ध के अधीन है, प्रारब्ध कर्म सर्व का विलक्षण है। १-किसी विद्वान् का जनकादिकन की न्याई भोगका हेतु प्रारब्ध है। २-किसी का शुकदेव वामदेवादिकन की न्याई निवृत्ति का हेतु प्रारब्ध है। १—जाके भोग का हेतु प्रारब्ध ताकूँ ता प्रारब्धसे भोगकी इच्छा और भोगके साधनका यत्न होवे है। २-जाके निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध होवे ताकूँ जीवन्मुक्तके आनन्दकी इच्छा होवे है और भोग में ग्लानि होवे। जाकूँ जीवन्मुक्तके आनन्दकी इच्छा होवे सो ब्रह्माकारवृत्तिकी आवृत्तिके निमित्त वेदान्त अर्थ का चिन्तन ही करे उपासना नहीं। काहेते? अन्तःकरणकी निश्चल-

तामात्रसे ब्रह्मानन्दका विशेषरूपसे भान होवे नहीं। किन्तु ब्रह्माकारवृत्तिसे ही होवे है। सो ब्रह्माकार वृत्ति वेदान्त-चिंतनसेही होवे है उपासनाते नहीं और अन्तःकरण की चंचलता भी विद्वान्कूँ वेदान्त के चिंतनसे ही दूरी होय जावे है। याते अन्तःकरणकी निश्चलता के निमित्त भी उपासनामें प्रवृत्ति होवे नहीं। इस रीति से दृढ़बोध जाके हुआ है ताकी कर्मउपासनामें प्रवृत्ति होवे नहीं।

१-जाके मन्दबोध है सो भी मनन और निदिध्यासनही करे। कर्म उपासना नहीं। काहेते? मन्दबोध जाकूं हुआ है सो उत्तम जिज्ञासु है। ता उत्तम जिज्ञासुकूँ मनन निदिध्यासन से बिना अन्य कर्तव्य नहीं। यह वार्ता शारीरकमें सूत्रकार और भाष्यकारने प्रतिपादन करी है।

२-विद्वान्कू मनन निदिध्यासन भी कर्तव्य नहीं जो जीवनमुक्तिके आनंद वास्ते विद्वान मनन निदिध्यासन में प्रवृत्त होवे है सो भी अपनी इच्छा से प्रवृत्त होवे है और "मैं वेद की आज्ञा नहीं करूँगा तो मेरेकूँ जन्म मरण संसार होवेगा" इस बुद्धि से जो क्रिया करे सो कर्तव्य कहिये है सो जन्मादिकन की बुद्धि विद्वान के होवे नहीं याते अपनी इच्छाते जो विद्वान मनन निदिध्यासन करे सो कर्तव्य नहीं, इस रीतिसे मन्दबोध अथवा दृढ़बोध जाके हुआ है तिसकूँ कर्म उपासना कर्तव्य नहीं।

३-जाके बोध नहीं हुआ है किन्तु आत्मा के जानने

की तीव्र इच्छा है भोग की नहीं ताका अन्तःकरण शुद्ध है, याते सो भी उत्तम ही जिज्ञासु है, ताकूं भी बोध के वास्ते श्रवणादिक ही कर्तव्य हैं, कर्म-उपासना नहीं। काहेते? जो कर्मउपासनाका फलहै सो ताके सिद्धहै।

४-ज्ञान का सामान्य इच्छाते जो श्रवण में प्रवृत्त हुआ है और अन्तःकरण भोगने में आसक्त है सो मन्दजिज्ञासु है सो भी श्रवणकूं त्यागिके फेरि कर्म उपासना में प्रवृत्त होवे नहीं। जो कर्मउपासना का फल अन्तःकरण की शुद्धि और निश्चलता है सो ताकूं श्रवणसे ही होजावेगा। श्रवण की आवृत्ति से अन्तःकरण के दोष दूर होय के इस जन्मविषे अथवा अन्य जन्म विषे अथवा ब्रह्म लोक विषे ज्ञान होवे है, आवृत्ति नाम बारम्बार का है और श्रवण कूँ त्यागिके जो कर्मउपासना में प्रवृत्त होवे है सो आरूढ़ पतित कहिये है। १-२-इस रीति से ज्ञानवान और उत्तम जिज्ञासु का कर्म उपासना विषे अधिकार नहीं। ३-मंद जिज्ञासु भी जो वेदान्तश्रवण में प्रवृत्त हुआ है ताका अधिकार नहीं। ज्ञान की जाकूं इच्छा तो है, परन्तु भोगमें बुद्धि आसक्त है याते श्रवण में प्रवृत्त नहीं हुआ ऐसा जो मंदजिज्ञासु ताका निष्काम कर्म और उपासनामें अधिकार है। ५-जाकी भोग विषेही अशक्ति है ज्ञान की इच्छा नहीं। ऐसा जो बहिर्मुख है ताको सकामकर्म विषे भी अधिकार है याते ज्ञानवान कूं कर्म

उपासना का अधिकार नहीं। कर्म उपासना का ज्ञान विरोधी है और दृढ़बोधके कर्म उपासना विरोधी नहीं परन्तु मंदबोध के विरोधी हैं।

कर्म उपासना भी अन्तःकरण की शुद्धि और निश्चलता द्वारा ज्ञानकी उत्पत्ति के तो हेतु है परन्तु ज्ञान की उत्पत्ति से अनंतर जो कर्म उपासना करे तो उत्पन्न हुआ ज्ञान नष्ट हो जावेगा। याते ज्ञान के विरोधी हैं रक्षाके हेतु नहीं, काहेते? १"मैं कर्ता हूँ और यज्ञादि मेरे कूं कर्तव्य हैं, यज्ञादिकन का स्वर्गादि फल है" या भेदबुद्धि से कर्म होवे है। २-"मैं उपासक हूँ। देव उपास्य है" या भेदबुद्धि से उपासना होवे है सो दोनों प्रकार की बुद्धि "सर्व ब्रह्म है" या बुद्धि कूं दूर करके होवे है याते कर्म उपासना ज्ञान के विरोधी हैं यद्यपि ज्ञानवान आत्माकूं असङ्ग जाने है तो भी देह का भोजनादिक व्यवहार, अथवा जनकादिकन की न्याईं अधिक राज्यपालनादिक व्यवहार करे है ता व्यवहार का ज्ञान विरोधी नहीं और व्यवहार ज्ञान का भी विरोधी नहीं काहेते? जो आत्मस्वरूप ज्ञानसे असङ्ग जाना है ता आत्माविषे जो व्यवहार प्रतीत होवे तो व्यवहार का विरोधी ज्ञान तथा ज्ञानका विरोधी व्यवहार सो होवे विद्वानकूं आत्माविषे व्यवहार प्रतीत होवे नहीं। किन्तु सम्पूर्ण व्यवहार देहादिकनके आश्रित हैं और आत्माविषे

व्यवहारसहित देहादिकन का संबंध है नहीं। या बुद्धि से सम्पूर्ण व्यवहार करे हैं। इसी कारणते विद्वान्‌की प्रवृत्ति भी निवृत्ति ही कही है।

जैसे अन्य व्यवहार ज्ञानका विरोधी नहीं तैसे कर्म-उपासना भी अन्यवहिर्मुखपुरुषनके करानेवास्ते आत्माकूं असङ्ग जानिके और देह वाक अन्तःकरणके आश्रितक्रिया जानिके जो कर्मउपासना करे तो ज्ञान के विरोधी नहीं। काहेते? आत्मा विद्वान ने असङ्ग जाना है, ताकूं कर्ता जानिके कोई कर्मउपासना करे तो ज्ञानके विरोधी होवे सो आत्मा का असङ्गरूप दृढ़निश्चय कर्म उपासना से विद्वान का दूर होवै नहीं। याते आभासरूप कर्म और उपासना दृढ़ज्ञानके विरोधी नहीं इसी कारण ते जनकादिकन ने आभासरूप कर्म करे हैं। जो आत्माकूं असङ्ग जानिके और व्यवहारकी न्याई देहादिकनके धर्म जान के विद्वान शुभ क्रिया करे सो आभास रूप कर्म कहिये है, ताका ज्ञान से विरोध नहीं और भाष्यकारने कर्म उपासना का जो ज्ञान से विरोध कहा है सो आत्मा में कर्ता बुद्धि से जो कर्म उपासना करे है ताका विरोध कहा है और आभासरूपसे नहीं, तथापि मन्दबोधके आभासरूप कर्म और आभासरूप उपासना भी विरोधी हैं। काहेते? जो संशयादिक सहित बोध हैं सो मन्द बोध कहिये है, जाके अन्तःकरण में "आत्मा असङ्ग है अथवा नहीं है"

ऐसा कदाचित् संशय होवै सो पुरुष जो बारम्बार "आत्मा असङ्ग है तेरे कूँ किंचिन्मात्र भी कर्तव्य नहीं" या अर्थकूं चिंतन करे तब तो संशय दूर होय के दृढ़बोध होय जावे। और कर्म उपासना करेगा तो मन्दबोध जो उत्पन्न हुवा है, सो दूर होयके "मैं कर्ता भोक्ता हूं" यह विपरीत निश्चय होय जावेगा। यातै मंद बोधकी उत्पत्तिसे पूर्व ही कर्म उपासना करे अनंतर नहीं और जो मंदबोध वाला कर्म उपासना करेगा तो उत्पन्न हुवा बोध नष्ट होय जावेगा। दृष्टांत-जैसे पक्षी अपने अपने अंडेकूं पक्षकी उत्पत्तिसे पूर्व सेवन करे है और पक्षकी उत्पत्तिसे अनंतर नहीं जो पक्षकी उत्पत्तिसे अनंतर भी अंडेकूं सेवन करे तो बालपक्षिके ता अण्डे के जलसे पक्ष गल जावै। तैसे ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्व ही कर्म उपासनाका सेवन करे और ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर नहीं। जो ज्ञानकी उत्पत्ति से अनंतर भी कर्म उपासना का सेवन करे तो बाल पक्षीकी न्याईं मंदज्ञान का नाश होय जावे और वृद्धपक्षीको जैसे अण्डेके संबंध से हानि होवै नहीं तैसे दृढ़बोध की तो हानि होवे नहीं और वृद्ध-पक्षीकी न्याईं दृढ़बोधकूँ कर्म उपासना से उपयोग भी नहीं। इस रीतिसे ज्ञानवानकूँ मोक्षके निमित्त किंचित्मात्र भी कर्तव्य नहीं। यह तृतीय प्रश्न का उत्तर कहा ॥१०॥

वो शिष्यकूँ आचार्यने उत्तर कहे, सो वेदके अनुसार वहे, यातै यथार्थ है, यह वार्ता कहैं हैं।

❀ दोहा ❀

शिष्य कह्यो जो तोहि में, सर्व वेद को सार ।
लहै ताहि अनयासही, संसृति नशै अपार ॥ ११ ॥

हे शिष्य ! जो मैं तेरे कूँ कहा सो सर्ववेदका सार है याते याविषे विश्वास करे और याके जाननेते अनायास कहिये खेदबिना अपार जो संसृति कहिये जन्म मरणरूप संसार ताका नाश होवै है ॥ ११ ॥

यद्यपि खेदका नाम आयास है ताके अभाव का नाम अनायास है, तथापि छंदके वास्ते अनयास पढ्या है । भाषामें छन्दके वास्तो गुरुके स्थानमें लघु और लघु के स्थान में गुरु पढ़ने का दोष नहीं ।

और मोक्षके स्थानमें मोच्छही भाषामें पाठ होवै है । काहेते ? यह भाषा की संप्रदाय है ।

❀ दोहा ❀

लघु गुरु गुरु लघु होत है, वृत्त होत उच्चार ।
रू है अरुकी ठौर में, अवकी ठौर बकार ॥
संयोगी क्ष न ऊपर ख न, नहीं टवर्ग णकार ।
भाषा में ऋ लृ ह्र नहीं, अरु तालव्य शकार ॥

इतने अक्षर भाषामें नहीं कोई लिखे तो कवि अशुद्ध कहे । १-क्षके स्थानमें छ, २-खके स्थान में ष, ३-णकारके स्थानमें नकार, ४-ऋ लृके स्थानमें रि लि है, ५-शकारके स्थानमें सकार भाषा में लिखने योग्य है ।

"जगत् का कर्ता ईश्वर है सो तरसे भिन्न नहीं और सत् चित् आनन्दरूप ब्रह्म तू है।" यह आचार्यने कहा सोई कृपाते फिरि कहैं हैं:—

❋ कवित्त ❋

दीनताकूं त्यागि नर आपनो स्वरूप देखि,
तू तौ शुद्धब्रह्म अज दृश्य की प्रकाशी है।
आपनै अज्ञानतै जगत सब तू ही रचै,
सर्वको संहार करे आप अविनाशी है॥
मिथ्या परपंच देखि दुःख जिन आनि जिय,
देवनको देव तू तौ सब सुखराशी है।
जीव जगईश होय माया से प्रभासे तूँ ही,
जैसे रज्जु साँप सीप रूप ह्वै प्रभासी है॥ १२॥

अर्थ—स्पष्ट है॥ १२॥

❋ कवित्त ❋

राग जारि लोभ हारि द्वेष मारि मार वारि,
वार वार मृगवारि पारवार पेखिये।
ज्ञानभानु आनि तम तम तारि भागयाग,
जीव सीव भेद छेद वेदन सु लेखिये॥
वेदको विचार सार आपकूँ सँभारि यार,
टारि दासपास आशा ईशकी न देखिये।
निश्चल तू चलै न अचल चलदल ज्यौं,
नभअनिल तलमल तासूं न विशेषिये॥१३॥

ज्ञानके साधन कहैं हैं:-हे शिष्य ! राग जो पदार्थनमें दृढ़ आसक्ति है ताकूँ जारिके लोभ कूँ हारि कहिये नाश कर द्वेषकूं मार मार कहिये कामकूँ वारि दूरिकर राग लोभ द्वेष कामके ग्रहणते सर्व राजसी तामसी वृत्तिका ग्रहण है, याते सब राजसी तामसी वृत्ति का नाशकर यह अर्थ सिद्ध हुआ राजसी वृत्ति और तामसी वृत्ति ज्ञान की विरोधी हैं। तिन्हके नाश बिना ज्ञान होवै नहीं। याते तिन्हकी प्राप्ति जिज्ञासु कूँ अपेक्षित विवेक, वैराग्य,शमादि षट् सम्पत्ति, मुमुक्षुता ये चारि जो ज्ञानके साधनहैं तिन्हमें विवेक प्रधानहै। काहेते ? विवेक से वैराग्यादिक उत्पन्न होय हैं याते विवेक का उपदेश आचार्य करे हैं:-हे शिष्य ! पारवार जो संसार है ताकूँ बारंबार मृगवारि कहिये मृगतृष्णा के जल समान मिथ्या जान। १-पारवार नाम संसार का है। २-अपारवार नाम आत्माका है पारवार मिथ्या है, या कहनेते अपारवार मिथ्या नहीं किन्तु सत्यहै, यह वार्त्ता अर्थ से कही। जैसे बाजीगर के तमासे देखते पुत्रकूँ पिता कहै-हे पुत्र ! "यह आम्रवृक्षसे आदिलेके जो बाजीगर ने बनाये हैं सो मिथ्या हैं" या कहनेसे बाजीगरकूँ मिथ्या नहीं जाने है, किन्तु सत्य जाने है। तैसे जगत् कूँ मिथ्या कहनेते आत्माकूँ सत्य जानि लेवेगा, या अभिप्रायते आचार्यने पारवार मिथ्या कह्या। इस रीतिते जगत् मिथ्या है और

आत्मा सत्य है या विवेकका उपदेश करया। ता विवेक से अन्य साधन आदही उत्पन्न होवे हैं याते विवेक के उपदेश सर्व साधनका उपदेश अर्थ से कह्या। ज्ञान के बहिरङ्ग साधन कहे अन्तरङ्ग साधन श्रवणादि कहे हैं-हे शिष्य! ज्ञानरूपी जो भानु है ताकूँ आनि कहिये श्रवणसे सम्पादन करके तम कहिये ज्ञान रूपी जो तम अन्धेरा है ताकूँ तार कहिये नाशकर तम नाम अन्धेरे और अज्ञानका है अन्धेरा उपमान है और अज्ञान उपमेय है। प्रथम जो तम शब्द है सो उपमेयका वाचक है और दूसरा उपमान का वाचक है॥ १३॥

❀ दोहा ❀

जाकूं उपमा दीजिये, सो उपमेय बखानि।
जाकी उपमा दीजिये, सो कहिये उपमानि॥१४॥

ज्ञानका स्वरूप अन्यशास्त्र में नाना प्रकार का अङ्गीकार किया है। याते वाक्य के अनुसार ज्ञान का स्वरूप कहैं हैं:-हे शिष्य! १-जीव और ईश्वर विषे अविद्या और मायाभागकूं त्याग के तिन्हका जो भेद प्रतीत होवे है, ताकूं छेद कहिये दूर कर और २-जीव ईश्वरमें जो वेदन कहिये चेतन भाग है ताकूं भेद रहित जान, या कहनेते यह वार्ता कही-महावाक्यनमें भाग त्याग लक्षणाते जीव ईश्वरकी एकता जान शिवके स्थान में सीव पढ्या है तृतीय पादका अर्थ स्पष्ट है॥ १४॥

पूर्व कहे अर्थकूं संक्षेपते चतुर्थ पादसे कहैं हैं। हे शिष्य! चल कहिये विनाशी जो देहादिक संघात सो तूं नहीं किन्तु अचल कहिये अविनाशी जो ब्रह्म सो तूं है और चलदल कहिये वृक्षरूप जो संसार सो छल कहिये मिथ्या है। जैसे-नभ विषे नीलता और तलमल कहिये कटाहरूपता है नहीं। किन्तु मिथ्या प्रतीत होवे है। तैसे संसार भी आत्मविषे है नहीं मिथ्या प्रतीत होवे है। वृक्ष रूप करके संसार श्रुतिस्मृतिमें कह्या है, याते वृक्ष के वाचक चलदल शब्द का संसार में प्रयोग करया है। मोक्ष का साधन ज्ञान है या अर्थकूं अन्यप्रकार से कहैं हैं—

❀ कवित्त ❀

बन्ध मोक्ष गेह देहवान ज्ञानवान जान,
राग र विराग दोइ ध्वजा फहरात है।
विषे विषे सत्यभ्रम भ्रममति बात तात,
हललात प्रात रात घरी न ठहरात है॥
साक्षय साक्षी पूतरी अनूजरी रु ऊजरी द्वै,
देखि रागी त्यागी ललचात जन जात है।
चञ्चल अचल भ्रम ब्रह्म लखि रूप निज,
दुःख कूप आनन्द स्वरूप में समात है॥ १५॥

हे शिष्य! देहवान कहिये देह अभिमानी अज्ञानी और ज्ञानवान् बन्ध और मोक्ष के गेह कहिये धाम हैं १-अज्ञानी तो बन्धका धाम है। २-ज्ञानी मोक्ष का धाम

है। राग और विराग तिनकी ध्वजा हैं जैसे-ध्वजा राजाके नगरका चिह्न होवे हैं तैसे राग और विराग तिन के चिह्न हैं। १-अज्ञानी का राग चिह्न है २-ज्ञानी का विराग चिह्न है। अज्ञानीविषे भी विराग होवे है। याते ज्ञानीका ज्ञानीसे विलक्षण विराग कहैं हैं। हे तात! विषय जो शब्दादिक हैं तिन्ह विषे सत्यभ्रम कहिये सत्य पने की भ्रान्ति और भ्रमपति कहिये रज्जु सर्प की न्याईं विषय भ्रम रूप हैं, यह जो मतिनिश्चय सो वातकी न्याईं राग और विरागकूं हलावे है। जैसे-वायु ध्वजाकी चञ्चलता करे है, तैसे विषय में सत्यबुद्धि और भ्रमबुद्धि राग और विराग कूं चञ्चल करे हैं शिथिल होने देवें नहीं। १-विषय में सत्यबुद्धि से रागकी शिथिलता दूर होवे है। २-विषयमें भ्रमबुद्धि से विराग की शिथिलता दूर होवे है।

विषय असत्य है, याते तिन्हमें सत्यबुद्धि भ्रान्तिरूप है। इस वार्त्ता जनावनेकूं कवित्तमें सत्यभ्रम कह्या, सत्य-बुद्धि नहीं कही। भ्रान्तिज्ञान और भ्रान्ति ज्ञान का विषय जो मिथ्या वस्तु सो दोनों भ्रम कहिये हैं। या कहनेतें, अज्ञानीके विरागते ज्ञानीके वैरागका भेद कह्या, काहेतें? जो अज्ञानीका विरागहै,सो विषयमें मिथ्याबुद्धि से उत्पन्न नहीं हुआ याते मन्द है। विषय मिथ्या हैं, यह बुद्धि अज्ञा-नीकूं होवे नहीं। १-यद्यपि शास्त्र युक्ति से अज्ञानी भी मिथ्या जाने है तथापि विषय मिथ्या हैं, यह अपरोक्ष-

भ्रांति ज्ञानवान्कूँ ही होवे है अज्ञानी कूँ नहीं। याते अज्ञानीकूं विषयमें परोक्ष जो मिथ्या बुद्धि तासे अपरोक्ष सत्य-भ्रांति दूर होवे नहीं। इस रीतिसे अज्ञानीकूँ विषय में जब विराग होवे है, ता कालमें परोक्ष मिथ्या बुद्धि है औपरन्तु परोक्ष मिथ्याबुद्धि से प्रबल अपरोक्ष सत्य बुद्धि है। याते अज्ञानीकी परोक्ष मिथ्याबुद्धि विराग की हेतु नहीं, किन्तु प्रबल जो सत्य बुद्धि तासे विषय में रागही होवे है और जो विराग होवे तो भी मिथ्याबुद्धिसे नहीं, किन्तु विषयमें दोषदृष्टिसे होवे है। २-ज्ञानवान् सर्व प्रपंचकूँ अपरोक्षरूप करके मिथ्या जाने है ता अपरोक्ष मिथ्याबुद्धि से अपरोक्ष सत्य बुद्धि दूर होवे है, याते राग की हेतु विषय में सत्यबुद्धि तो ज्ञानीकूँ है नहीं। विराग की हेतु विषयमें मिथ्याबुद्धि ज्ञानवान्कूँ है जो ज्ञानी कूँ विषय में सत्य बुद्धि फेरि होवे तो राग फेरि होवे और विराग दूर होवे सो अपरोक्षरूपते मिथ्या जाने पदार्थमें फेरि सत्य बुद्धि होवे नहीं जैसे अपरोक्ष रूपते मिथ्या जान्या जो रज्जु में सर्प ताके विषे सत्य बुद्धि फेरि होवे नहीं। तैसे ज्ञानीकूँ फेरि सत्यबुद्धि होवे नहीं। इस रीति से राग की उत्पत्ति और विरागकी निवृत्ति ज्ञानीको होवे नहीं, याते ज्ञानीका विराग दृढ़ है और दोषदृष्टिसे जो अज्ञानी कूँ विराग होवे है सो तो दूर होय जावे है। काहेते? जा पदार्थनमें दोषदृष्टि होवे है ता पदार्थ में ही अन्य काल में सम्यक् बुद्धि भी होय

जावे है। जैसे-सर्व पुरुषनकूं पशुधर्मके अन्तमें स्त्रीविषे दोष दृष्टि होवे और कालान्तरमें फेरि सम्यक्बुद्धि होवे है इस रीतिसे दोष दृष्टि जब दूर होवे तब अज्ञानी का विराग भी दूर होय जावे है यातें अज्ञानीकूं दृढ़विराग होवे नहीं, इस रीतिसे राग और विराग अज्ञानी के और ज्ञानी के चिह्न कहे और भी चिह्न कहे हैं–हे शिष्य! जैसे धामके ऊपरि पुतरी कहिये हस्ती आदिकन की मूर्ति होवे है, तैसे बन्धमोक्षका धाम जो अज्ञानी और ज्ञानीका अन्तः-करण है ताके विषे साक्ष्य साक्षी पूतरी है। १-अज्ञानी अन्तःकरणविषे तो साक्ष्यरूपी पूतरी है। २-ज्ञानी अन्तः करणमें साक्षीरूपी पूतरी है। साक्षीका विषय जो प्रपंच है ताकूं साक्ष्य कहे हैं। १-साक्ष्यरूपी पूतरी अनूजरी कहिये मलिन है और २-साक्षीरूपी पूतरी ऊजरी कहिये शुद्ध है, आगे अर्थ स्पष्ट है। चंचलभ्रम निजरूप लखि, और अचलब्रह्म निजरूप लखि, या क्रमते अन्वयहै ॥१५॥

भागत्यागलक्षणा का जो कवित्त में विशेष करके ग्रहण किया है ताविषे हेतु कहने कूँ लक्षणाका भेद कहें हैं—

दोहा-त्रिविधलच्छना कहत हैं, कोविद बुद्धि निधान।
जहती अरु अजहती पुनि, भागत्याग निजजान॥
आदि दोइ नहिं सम्भवैं, महावाक्य में तात।
भाग त्यागते रूप निज, ब्रह्मरूप दरशात ॥१६॥

अर्थ स्पष्ट है ॥ १६ ॥

शिष्य उवाच—अर्द्धशङ्कर—छन्द।

अब लच्छना प्रभु कहत काकूं, देहु यह समुझाय।
मुनि भेद ताके तीनि तिनके, लच्छनहुं दरशाय॥१७॥

सामान्य ज्ञानसे अनन्तर विशेष का ज्ञान होवे है। जैसे सामान्यब्राह्मण का ज्ञान हुये से अनन्तर सारस्वत आदिक विशेष का ज्ञान होवे है। तैसे लक्षणा सामान्य का ज्ञान होवे तो जहती आदिक विशेष रूपनका ज्ञान होवे, लक्षणा का सामान्यरूप जाने बिना जहतीआदिक विशेषरूपन का ज्ञान होवे नहीं। इस अभिप्रायते शिष्य कहै है-हे प्रभो! लक्षणा काकूं कहते हैं। यह मैं नहीं जानूं हूं। याते लक्षणाका सामान्यरूप दिखायके तिस से अनन्तर जो जहती आदिक लक्षणाके तीनभेद कहिये विशेष हैं, तिन्हके जुदे जुदे लक्षण दिखावो, छन्दवास्ते प्रभोकूं प्रभु पढ्या और भाषाकी सम्प्रदायते लक्षणा के स्थान में लच्छना पढ्या। लक्षण के स्थान में लच्छन पढ्या॥ १७॥

गुरुवाक्य शङ्करछंद

श्रुति चित्त निज एकाग्र कर, अब शिष्य सुनि मम बानि।
ज्यूं लच्छना अरु भेद ताके, लेहु नीके जानि॥
सुनि वृत्ति है द्वै भांति पद की, शक्ति तामें एक।
तहां लच्छना पुनि जानि दूजी, सुनहु सो सविवेक॥१८॥

पदका जो अर्थसे संबंध सो वृत्ति कहिये है, सो वृत्ति

दो प्रकार की है। ता दो प्रकारमें एक शक्तिवृत्तिहै और दूजी लच्छना वृत्ति है, तिनकूं सविवेक कहिये विवेक सहित याको लच्छनसहित सुनि ॥ १८ ॥

शक्तिलक्षण-दोहा।

जा पदतें जा अर्थ की, है सुनतेहि प्रतीत।
ऐसी इच्छा ईश की, शक्ति न्याय की रीत ॥ १९ ॥

जा पदते कहिये घटपदते, जा अर्थ की कहिये कलशअर्थ की सुनतेही प्रतीत कहिये ज्ञान सब पुरुषनकूं होवे ऐसी जो ईश्वर की इच्छा ताकूं न्यायशास्त्र में शक्ति कहे हैं ॥१९॥

स्वरीतिशक्तिलक्षण।

(पद में अर्थ के ज्ञान की सामर्थ्य)

अर्द्धअक्कर-छन्द।

सामर्थ्य पदकी शक्ति जानहु, वेदमत अनुसार।
सो वह्निमें जिम दाहको है, शक्ति त्यूं निरधार ॥२०॥

१-घटपदके श्रोताकूं वस्त्ररूप अर्थ के ज्ञान करने का जो घटपदविषे सामर्थ्य सोई घटपद में शक्ति है। २-तैसे पटपदके श्रोताको वस्त्ररूप अर्थ के ज्ञान करने का जो पटपदके सामर्थ्य सोई पटपदमें शक्तिवृत्ति है ऐसे सर्वपदन में जानि लेनी। दृष्टान्त-जैसे वह्नि अपने से मिलते ही वस्तु के दाह करने की सामर्थ्यरूप शक्ति है। तैसे श्रोता के कर्णसे मिलते ही वस्तु के ज्ञान करने की जो पदविषे सामर्थ्य सो शक्ति कहिये है। सामर्थ्य नाम सम-

थेपनेका है ताकूँ समर्थाई कहैं हैं। और बल भी कहैं हैं जोर भी कहैं हैं, जैसे-अग्निमें दाहकी शक्तिहै तैसे जल-विषे गीलाकरनेकी, तृषा दूर करने की, पिंड बांधने की जो समर्थाई है सो शक्ति है इस प्रकार से सर्व पदार्थन विषे अपना अपना कार्य करनेकी सामर्थ्य है सोई शक्ति है। यह वेदका सिद्धान्तहै ताहीकूँ निर्धार कहिये निश्चय कर और न्यायकी रीति त्यागने कूँ योग्य है॥ २०॥

प्रश्नः–वर्ण समुदाय से जुदी शक्ति नहीं। याते ईश इच्छा शक्ति है।

शिष्य उवाच–शङ्करछन्द।

ननु वह्नि में नहिं शक्ति भासै, वह्नि बिन कछु और।
है हेतुता जो दाह की, सो वह्नि में तिहि ठौर॥
इस पदनहू में वर्ण बिन कछु, शक्ति भासत नाहिं।
या हेतुते जो ईशइच्छा, शक्ति मो मति माहिं॥२१॥

ननुशब्द सन्देह का वाचक है, वह्निमें ताके स्वरूप से जुदी शक्ति भासे कहिये प्रतीत होवे नहीं और पूर्व कह्या दाहका हेतु जो वह्निमें सामर्थ्य, सोई वह्नि में शक्ति है सो बने नहीं। काहेते? दाहकी हेतुता कहिये जनकता कारणपना केवल वह्निमें ही है अप्रसिद्ध सामर्थ्य वह्नि में मानिके ताकू विषे हेतुता मानने का, और प्रसिद्ध वह्नि में हेतुता त्यागने का कुछ प्रयोजन नहीं। जैसे–दृष्टान्त में शक्ति नहीं सम्भव, इस कहिये इस रीतिसे पदन के विषे

भी वर्णका समुदाय जो पद का स्वरूप, तासे जुदी शक्ति भासे नहीं और ताका प्रयोजन भी नहीं । या हेतुते ईश्वरकी इच्छारूप जो न्याय की रीति से शक्ति, सोई मेरी मतिमाहिं भासे है ॥ २१ ॥

सिद्धान्तरीति से अग्नि आदिकनमें दाहादिककार्यकी सामर्थ्यरूप शक्ति का प्रतिपादन ।

गुरुरुवाच-शङ्करछन्द ।

प्रतिबन्ध होते वह्नितैं नहिं, दाह उपजै अङ्ग ।
उत्तेजक रु जब धरै तब फिर, दहैं वह्नि स्वसङ्ग ॥
है वह्नि में जो हेतुता तो, दाह है सब काल ।
जो नशै उपजै वह्नि होते, हेतु शक्ति सुबाल ॥२२॥

हे अङ्गप्रिय ! प्रतिबन्धक होते अग्निसे दाह होवे नहीं । और उत्तेजक समीप धरे, तब स्वसङ्ग कहिये अग्नि से मिल्या जो पदार्थ ताका दाह, प्रतिबन्ध होते भी होवे है । जो शक्तिसे बिना केवल अग्निकूँ दाहकी हेतुता होवे तो सर्वकाल कहिये उत्तेजक सहित प्रति बन्ध काल और प्रतिबन्धरहितकालकी न्याईं उत्तेजक रहित प्रतिबन्धकाल में भी दाह हुआ चाहिये । काहेते ? दाह का हेतु केवल अग्नि ता काल में भी है और स्वमत में तो यह दोष नहीं । काहेते ? स्वमतमें अग्नि की शक्ति अथवा शक्ति सहित अग्नि दाह का हेतु है, केवल अग्नि नहीं, जहाँ प्रतिबन्धहै तहाँ यद्यपि प्रतिबन्धसे अग्नि का तौ नाश वा

तिरोधान नहीं भी होता, तथापि अग्नि की शक्ति का नाश वा तिरोधान होवे है। याते दाह का हेतु शक्ति अथवा शक्ति सहित अग्नि का अभाव होनेते दाह होवे नहीं और जा स्थान में प्रतिबन्ध के समीप उत्तेजक आया है। इहाँ प्रतिबन्धने तौ अग्नि की शक्ति का नाश वा तिरोधान कर दिया, परन्तु उत्तेजकने फेरि शक्ति की उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव किया है। याते प्रति-बन्ध के होते भी उत्तेजक के माहात्म्यते दाह का हेतु शक्ति वा शक्ति सहित अग्नि के होनेते दाह होवे है। चतुर्थ पाद का अक्षरार्थ यह है-हे बाल अज्ञाततत्त्व ! जो नशै कहिये नाश कूँ प्राप्त होवे प्रतिबन्ध से उपजे उत्तेजकते, सु कहिये सो शक्ति दाहका हेतु है। १-कारज का जो विरोधी सो प्रति बन्धक कहिये है। २-प्रतिबन्धक के होते कारज का साधक उत्तेजक कहिये है। १-अग्नि के स्थान प्रतिबन्ध और उत्तेजक मणि-मन्त्र औषध हैं, जा मणि वा मन्त्र वा औषधि के सन्नि-धान से दाह होवे नहीं सो प्रतिबन्धक और २-जा मणि-मन्त्र औषध के सन्निधान से प्रतिबन्धक होते भी दाह होवे, सो उत्तेजक है ॥ २२ ॥

गुरुवाक्य-अर्द्ध शङ्कर-छन्द।

शिष रीति यह सब वस्तु में तू, शक्ति लेहु पिछानि।
बिन शक्ति नहीं कछु काज होवै, यहै निश्चय मानि ॥

हे शिष्य ! वाह्निकी न्याईं जल आदिक सर्व पदार्थ विषे तूं शक्ति पिछान। शक्तिसे बिना किसी हेतुसे कोई कार्य होवै नहीं। सार्धशङ्करसे शक्तिका प्रयोजन कह्या-

पूर्व जो शिष्य ने प्रश्न किया था-"शक्ति" वह्नि से भिन्न प्रतीत होवै नहीं। ताका समाधान कहनेकूँ अर्ध-शङ्कर से शक्ति का अनुभव दिखावें है।

मूल अर्धशङ्कर-छन्द।

अब शक्ति यामें है नहीं वह, शक्ति उपजी और।
यह शक्तिको परसिद्ध अनुभव, सांपि है किस ठोर॥

अर्थ-स्पष्ट ॥ २४ ॥

सिद्धांतकी रीति से शक्तिका स्वरूप और शक्ति में प्रमाण निरूपण किया अन्यमतकी शक्तिका खंडन करें है।

अर्धशङ्कर-छन्द।

जो शक्ति इच्छा ईशकी, सो पदनके न नजीक।
मतन्यायका अन्याय या विधि, शक्तिजानि अलीक२५॥

जो ईश्वरकी इच्छारूप पदशक्ति कही सो बनै नहीं। काहेते ? ईश्वरकी इच्छा ईश्वर का धर्म है, याते ईश्वर में रहै जो इच्छा सो पदकी शक्ति है, यह कहना बनै नहीं जो पदका धर्म शक्ति होवै तो पदकी शक्ति है यह कहना बनें याते पदकी सामर्थ्यरूपही पद की शक्ति है इसकी इच्छा पदके नजीक भी नहीं सो पद की शक्ति है, यह कहना बनै नहीं। अलीक नाम झूठका है ॥ २५ ॥

❀ वैयाकरण रीते शक्तिलक्षण ❀

(पद में अर्थ की योग्यता)

अर्धशङ्कर-छन्द।

योग्यता जो अर्थ की, पदमांहि शक्ति सु देखि।
यूँ कहत वैयाकरण भूषण, कारिका हरि लेखि ॥२६॥

पद के विषे जो अर्थ की योग्यता कहिये अर्थ के ज्ञानकी हेतुता हेतुपना सो पद में शक्ति है जैसे घटपद-विषे कलशरूप अर्थके ज्ञानकी हेतुता रूप योग्यता है। सोई शक्तिहै। इस रीतिसे वैयाकरण भूषणग्रन्थमें हरि की कारिका प्रमाण लिखिके शक्ति कही है। अथवा वैयाक-रणके जो भूषण कहिये उत्तम वैयाकरण सो हरिकी कारिका कहिये श्लोककूँ देखिके कहते हैं ॥ २६ ॥

❀ वैयाकरण रीतिकी शक्तिका खण्डन ❀

गुरुवाक्य-सार्धशङ्कर-छन्द।

सुनि शिष्य वैयाकरण मतमें, प्रबल दूषण एक।
सामर्थ्य पदमें है न वा यह, पूछि ताहि विवेक ॥२७॥
भाषे जु है हो शक्ति मानहु, ताहि लोक प्रसिद्ध।
कहिं नाहीं जो असमर्थपदसों, योग्य है यह सिद्ध ॥२८॥
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रु, कहतही सविरोध।
जो और दूषण देखनो, तौ ग्रन्थ दर्पण शोध ॥२९॥

प्रथमपाद स्पष्ट है, हे शिष्य ! अर्थज्ञान की हेतुता-रूप योग्यताकूँ जो शक्ति मानै है ताकूँ यह विवेक पूछि

तेरे मतमें पदविषे सामर्थ्य है अथवा नहीं है ? प्रथमपक्ष कहै तो हमारे मतकी शक्ति बलसे सिद्ध होवै है, यह तृतीयपादसे कहैं हैं 'भाषे जु है तौ' इति। याका अन्वयः जु कहिये जो भाषेहै तौ लोकप्रसिद्ध शक्ति ताहि मानहु। अर्थ–जो वैयाकरण कहे, पदमें सामर्थ्य है तो लोक में प्रसिद्ध जो सामर्थ्यरूप शक्तिहै ताहि पद में भी मानहु। पद में अर्थ ज्ञान की जनकता रूप योग्यता कूँ शक्ति मति मान।

अभिप्राय यह है:-जो पद में सामर्थ्य अङ्गीकार करे ताकूँ सामर्थ्यसे भिन्नरूप शक्तिका मानना योग्य नहीं। किंतु समर्थ्यरूपही शक्तिहै,यह मानना योग्य है। काहेते? सामर्थ्य बल जो शक्ति,ये च्यारि नाम एक वस्तु के लोक में प्रसिद्ध हैं, जोरहीनकूँ लोक कहे हैं यह सामर्थ्य हीन है, बलहीन है, शक्तिहीन है और भर्जित अन्नकूँ कहैं हैं। याके विषे अंकुरोत्पत्तिकी सामर्थ्य नहीं है, बल नहीं है, शक्ति नहीं है, जोर नहीं है, इस रीतिसे सामर्थ्य और शक्ति की एकता लोक में प्रसिद्ध है और वह्नि में भी सामर्थ्यरूपही शक्ति निर्णीत है। याते पदमें सामर्थ्यरूप ही शक्ति माननी योग्य है और पदमें सामर्थ्य मानि के तासे भिन्न योग्यताकूँ शक्ति कहने का लोक प्रसिद्धिके विरोधविना और फल नहीं केवल लोक प्रसिद्धिका विरोधही फलहै और जो ऐसे कहैं, सामर्थ्यकूँ ही हम योग्यता

कहे हैं तो हमारा ही मत सिद्ध होवे है और ऐसे कहैं हम सामर्थ्य अङ्गीकार करें तो सामर्थ्य रूप शक्ति पद में सम्भवै सो सामर्थ्यकूँ अगीकारही नहीं करते, याते अर्थ ज्ञानकी जनकता रूप योग्यता ही पद में शक्ति है ताकूँ यह पूछ्या चाहिये सामर्थ्य का अभाव केवल पद में ही अङ्गीकार करे हैं अथवा वह्नि आदिक सर्वपदार्थन में सामर्थ्यका अभाव अङ्गीकार करे हैं ? जो अन्त्यपत्त कहै ता वह्नि आदिक पदार्थनमें सामर्थ्यरूप शक्ति के प्रतिपादन में उक्त जो युक्ति तिन्हते खण्डितहै और प्रथम पत्त कहैं तो ताके विषे अन्त्यपत्त उक्त दोष तो यद्यपि नहीं है। काहेते? जो वह्निआदिक सर्व पदार्थनमें सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं मानैं तो प्रतिबन्धकते दाह का अभाव बनै नहीं। यह अन्त्यपत्तमें दोष है सो दोषप्रथमपत्तमें नहीं काहेते? वह्निआदिक सर्वपदार्थन में तो सामर्थ्यरूप शक्तिहै, याते प्रतिबन्धकते दाहके अभाव का सम्भव नहीं। परन्तु पदके विषे अर्थ ज्ञानकी जनकता रूप योग्यता से भिन्न सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं किंतु पदमें अर्थकी योग्यताही शक्ति है। यह प्रथमपत्त है । ताके विषे प्रतिबन्धकते दाह का असम्भवरूप दोष तो नहीं तथापि पद विषे भी वह्नि की न्याईं सामर्थ्यका अंगीकार अवश्य किया चाहिये, यह प्रतिपादन करें हैं। शङ्करके दो पादनतेः-नहिं जो असमर्थ इत्यादि सविरोध पर्यन्त । अर्थं नाहिं कहिये पदमें

सामर्थ्य का अंगीकार नहीं तो जो असमर्थ पद सो योग्य कहिये अर्थ ज्ञानका जनक है, यह सिद्ध कहिये मत का निश्चय है, सो असंगत है। काहेते ? पद असमर्थ है और अर्थ योग्य कहिये अर्थ ज्ञानका जनक है, यह वाक्य नपुंसकका अमोघ वीर्य है, इस वाक्य की न्याईं कहते ही सविरोध है-विरोध सहित है। १-सामर्थ्यसहितका नाम समर्थ है २-सामर्थ्यरहितका नाम असमर्थहै। असमर्थ से कोई कार्य होवे नहीं। यह लोक में प्रसिद्ध है। याते असमर्थ पद से भी अर्थ का ज्ञानरूप कार्य बने नहीं। याते पदमें सामर्थ्य मानना योग्य है। जब सामर्थ्य पद में अंगीकार किया तब शक्ति भी पद में सामर्थ्य रूप ही माननी योग्यहै। इस रीतिसे अर्थ ज्ञान की जनकतारूप योग्यतापदमें शक्ति नहीं, किंतु सामर्थ्यरूपही शक्ति है जो वैयाकरणमतमें और दूषण देखना होवे तो शक्तिके निरूपण में दर्पणग्रन्थकूं शोध कहिये देख। दूषण क्लिष्ट है याते दर्पणउक्त दूषण लिख्या नहीं॥ २७॥ २८॥ २९॥

❋ भट्टरीति-शक्ति लक्षण ❋

(पदका अर्थसे भेदाभेदरूप तादात्म्य)

अर्धशङ्कर-छन्द।

सम्बन्ध पद को अर्थ से तादात्म्य शक्ति सु वेद।
इस भट्ट के अनुसारि भासत ताहि भेदाभेद॥३०॥

पदका अर्थ से जो तादात्म्य संबंध, ताकूँ भट्टके अनु-

सारी शक्ति कहै हैं । सो भेद कहिये तू जान । ताहि कहिये तिस तादात्म्य कूँ भेदाभेद रूप कहै हैं । यह तिन्ह का अभिप्राय है । १-अग्निपदका अङ्गार अर्थ से अत्यन्तभेद नहीं जो अत्यन्त भेद होवे तो जैसे अग्निपदसे अत्यन्तभिन्न जल आदिक हैं, तिन्हको अग्निपद से प्रतीत होवे नहीं तैसे अग्निपदसे अङ्गाररूप अर्थ की प्रतीत नहीं होवेगी । पदसे अत्यन्तभिन्न अर्थ की प्रतीत होवे नहीं । २-जैसे पदका अपने अर्थ से अत्यन्तभेद नहीं,तैसे अत्यन्त अभेद भी नहीं । जो अत्यन्त अभेद वाच्यवाचक का होवे तो जैसे अग्निपद के वाच्य अङ्गार से मुख का दाह होवे है, तैसे अङ्गार का वाचक अग्निपद के उच्चारण कियेते भी मुख का दाह हुआ चाहिये और पद के उच्चारणते दाह होवे नहीं,याते अत्यन्त अभेद भी नहीं, किंतु अग्निपद का अङ्गाररूप अर्थ से भेद सहित अभेद है । १-भेद है याते दाह होवे नहीं । २-अभेद है याते अग्निपदते जलआदि-कन की न्याईं अङ्गारकी प्रतीत का असम्भव भी नहीं । जैसे अग्निपदका अंगाररूप अर्थ से भेदसहित अभेदहै, तैसे उदक, वन, जल, दक, जीवन पदन का पानीरूप अर्थ से भेदसहित अभेद है । १-जो अत्यन्त भेद होवे तो जैसे उदक आदिक पदनते अत्यन्त भिन्न अग्नि आदिक हैं तिन्ह की उदक आदिक पदनते प्रतीत होवे नहीं तैसे पानीरूप अर्थ की भी उदकआदिक पदनते प्रतीत नहीं

होवेगी, याते अत्यन्त भेद नहीं, और २-अत्यन्त अभेद भी नहीं जो अत्यन्त अभेद होवे तो जैसे पानीते मुख में शीतलता होवे है, तैसे उदक आदिकपदन के उच्चारणते भी मुख में शीतलता हुई चाहिये और पदनते शीतलता होवे नहीं याते अत्यन्त अभेद नहीं किंतु भेद सहित अभेद होनेते दोऊ दोष नहीं। इस रीतिसे सर्वत्रही अपने अपने वाच्यतें वाचकपदनका भेदसहित अभेद है। ता भेदसहित अभेद कूँ ही भट्ट के अनुसारी तादात्म्य सम्बन्ध कहैं हैं और भेदाभेद कहें हैं। सो भेद भेदरूप तादात्म्य संबंध ही सर्वपदनमें अपने अपने अर्थ की शक्ति है। तादात्म्य सम्बन्धसे जुदी सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं। भेदाभेद में युक्ति कही। अब प्रमाण कहैं हैं ॥ ३० ॥

अर्धशङ्कर-छन्द।

यह ओम् अक्षर ब्रह्म है यों, कहत वेद अभेद।
पुनि वानि में पद अर्थ बाहिर, देखियत यह भेद॥ ३१॥

मांडूक्य आदिक वेदवाक्यन में "ॐ अक्षरब्रह्म है" यह कह्या है। तहाँ व्याकरण की रीति से अकार रूप सर्वकी रक्षा करता ॐ अक्षर का अर्थ है। सो ब्रह्महै। याते ॐ अक्षर ब्रह्मका वाचक है और ब्रह्म वाच्य है।

१-जो वाच्यवाचकका आपस में अत्यन्त भेद होवे, तो वाचक ॐ अक्षर का और वाच्य ब्रह्मका मांडूक्य आदिकनमें अभेद नहीं। काहेते? और "ॐ अक्षर ब्रह्म

है" इस रीतिसे अभेद कह्या है । यातै वाच्य वाचक कै अभेद में वेदवचन प्रमाण है २-सर्व लोक की प्रतीत से वाच्यवाचकका भेद सिद्ध है । काहेतें ? अग्नि आदिकपद बानीमें हैं और अंगार आदिक तिन का अर्थ बानीतें बाहर चुल्हिआदिकनमें है । तैसे ॐ अक्षररूप पद बानीमें है और ताका अर्थ ब्रह्म बानी में नहीं, किंतु बानीतें बाहिर कहिये अपने महिमा में हैं । यद्यपि ब्रह्म व्यापक है, यातें बानी में ब्रह्म का अभाव नहीं । तथापि ब्रह्म में बानी है और बानीमें ब्रह्म नहीं, इस रीतिसे सर्वलोकनकूँ पद बानीमें और अर्थ बानीतें बाहिर प्रतीत होवे है । यातें पदका और अर्थका भेद लोकमें प्रसिद्ध है । १-इस रीति से वाच्यवाचक के भेद में सर्व लोक का अनुभव प्रमाण है यातें पदका अर्थ से भेदाभेदरूप तादात्म्यसबंध अप्रमाण नहीं, किंतु प्रमाणसिद्ध है ॥ ३२ ॥

प्रसंग तें अन्य स्थान में भी भेदाभेद तादात्म्य संबंध दिखावैं हैं ।

अर्द्धशङ्कर-छन्द ।

जो गुण गुणी और जाति व्यक्ति, क्रिया अरु तद्वान ।
संबंध लखि तादात्य इनको, कार्यकारण सान ॥ ३१ ॥

१-रूप रस गन्ध आदिक गुण हैं, तिन्ह का आश्रय गुणी कहिये हैं । जैसे रूप आदिकन का आश्रय भूमि गुणी है । २-अनेकनके माहिं रहे जो एकधर्म सो जाति

कहिये है, जैसे सर्वब्राह्मणशरीरन के माँहि एक ब्राह्मणत्व है और सर्व शूद्रनमाँहि शूद्रत्व है और सर्व जीवन माहिं जीवत्व है, पुरुषनमें पुरुषत्व है, सर्व घटनमाहिं घटत्वहै। जाकूँ लोकमाहिं ब्राह्मणपना, शूद्रपना, जीवपना, पुरुषपना, घटपना कहते हैं, सोइ ब्राह्मण आदिक शरीरनमाहिं ब्राह्मणत्व आदिक जाति हैं, जाति का आश्रय जो ब्राह्मणादिक, सो व्यक्ति कहिये हैं। ३-गमन आगमन आदिक क्रिया कहिये हैं और तद्वान कहिये तिसवाला अर्थ यह क्रिया का आश्रय। इतने पदार्थन का तादात्म्य संबंध है, यह लखि कहिये जानि और कारण कार्य कूं सान कहियं गुणगुणी आदिक विषे मिलावे। अभिप्राय यह है:-१-कारणकार्य का भी गुणगुणीकी न्याईं तादात्म्य संबंध है। २-गुणका और गुणीका आपसमें तादात्म्य संबंधहै। ३-जातिका और व्यक्ति का आपसमें तादात्म्य संबंध है। ४-तैसे क्रिया और क्रियावान् का तादात्म्य संबंध है। कारण का और कार्य का भी तादात्म्य संबंध है। तादात्म्य नाम भेदसहित अभेदका है।

यद्यपि निमित्त कारणका और कार्यका तो भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं है, किन्तु अत्यन्त भेद है। तथापि उपादानकारणका और कार्य का भेदाभेद रूप तादात्म्यही संबंध है। जैसे घटके निमित्त कारण कुलाल दण्ड आदिक हैं तिनका घटरूप कार्य से अत्यन्त भेद भी है

परन्तु उपादानकारण मृत्तिकापिण्ड और घटकार्यका भेद सहित अभेदहै। १-जो मृत्तिकापिण्ड पे घट अत्यन्त भिन्न होवे तो जैसे मृत्तिकापिण्डसे घट अत्यन्त भिन्न होवे तैसे की उत्पत्ति होवे नहीं तैसे घट की भी उत्पत्ति नहीं होवेगी। २-उपादान कारण का कार्यते अत्यन्त अभेद होवे तो भी मृत्पिण्डसे घटकी उत्पत्ति होवे नहीं। काहेते? अपने स्वरूप से अपनी उत्पत्ति होवे नहीं। १-याते उपादान कारण का कार्यते भेद सहित अभेद है। याते अभेद है अत्यन्त भेद पक्षका दोष नहीं। २-भेद है याते अभेद पक्षका दोष नहीं, इस रीतिसे उपादानकारण का कार्यते भेदाभेद युक्ति सिद्ध है। १-प्रतीत से उपादानते कार्य का भेदाभेदही सिद्ध है यह मृत्पिण्ड है, यह घट है। इस रीतकी भिन्न प्रतीतिसे भेद सिद्ध होवे है। २-विचारते देखें तो घट के बाहर भीतर मृत्तिकासे भिन्न कुछ वस्तु प्रतीत होवे नहीं किन्तु मृत्तिका प्रतीत होवे है। याते अभेद सिद्ध होवे है। इसरीत से उपादानकारण का कार्य से भेदाभेदरूप तादात्म्य सम्बन्धहै। तैसे गुण और गुणी का भी भेदाभेद है। १-जो घटके रूपका घटसे अत्यन्त भेद होवे तो जैसे घटते पटका अत्यन्त भेद है सो पट घटके आश्रित नहीं किन्तु स्वतन्त्रहै तैसे घटका रूप भी घटके आश्रित नहीं होवेगा। २-गुणगुणी का अत्यन्त अभेद होवे तो भी घटका रूप घटके आश्रित बने नहीं।

काहेते ? अपना आश्रय आप होवे नहीं याते गुणगुणी भेदाभेदरूप तादात्म्य सम्बन्ध है, यह युक्ति जाति और व्यक्ति तथा क्रिया और क्रिया वाले के भेदाभेद रूप तादात्म्य सम्बन्ध में जाननी और खण्डन करना जो मत ताके विषे बहुत युक्ति कहने का प्रयोजन नहीं याते और युक्ति नहीं लिखी ॥ ३२ ॥

भट्टमतखण्डन-दोहा।

एक वस्तु को एक में, भेद अभेद विरुद्ध।
युक्ति युक्त याते कहत, यह मत सकल अशुद्ध॥३३॥

अक्षरार्थ स्पष्ट है और अभिप्राय यह है:-यद्यपि एक घटमें अपना अभेद है और परका भेद है तथापि १-जाका अभेद है ताका भेद नहीं और जाका भेद है ताका अभेद नहीं, इस अभिप्रायते एक वस्तु का भेद अभेद विरुद्ध कह्या है। २-तथा एक वस्तु का कहिये घटकाही अपने में अभेद और परमें भेद है परन्तु जामें अभेदहै तामें भेद नहीं और जामें भेद है तामें अभेद नहीं इस अभिप्रायते एक वस्तुका भेद अभेद एकमें विरुद्ध कह्या है। भेद अभेद आपसमें विरोधी हैं। एक वस्तु में जाका भेद होवे ताका अभेद और जाका अभेद होवे ताका भेद विरुद्ध है, याते वाच्यवाचक, गुणगुणी, जातव्यक्ति, क्रिया क्रियावान्, उपादानकारण कार्यका जो भेदाभेद-रूप तादात्म्य अङ्गीकार किया सो अशुद्धहै। पूर्व वाच्य-

वाचक के भेदाभेद में प्रमाण जो कह्या:-"१-वानी में वाचक और बाहर वाच्य यातें भेद और २-श्रुति में ॐ अक्षर ब्रह्म कह्या है यातें अभेद ॥२३॥"

ताका समाधान—दोहा।

प्रणव वर्ण अरु ब्रह्मको, कह्यो जु वेद अभेद।
तामें अन्य रहस्य कछु, लख्यो न भट्ट सु भेद ॥३४॥

प्रणववर्णकहिये ॐ अक्षर अरु ब्रह्मका जो वेदमें अभेद कह्याहै तो वेदवचनका वाचक के अभेद में तात्पर्य नहीं। किंतु तामें अन्य ही रहस्य कहिये गोप्य अभिप्राय है सो भेद कहिये अभिप्राय भट्टने लख्या नहीं। जहाँ ओ३म् अक्षर ब्रह्म कह्या है तिस वाक्यका ओं अक्षर और ब्रह्मके अभेदमें तात्पर्य नहीं है, किंतु 'ओं' अक्षरकूं ब्रह्मरूप करके उपासना करे। इस अर्थ में तात्पर्य है। उपासना जाकी विधान करी है ता उपास्यके स्वरूप का यह नियम नहीं है:-जैसी उपासना विधान करी है। तैसाही उपास्य का स्वरूप होवे है किंतु जैसा वस्तु का स्वरूप है ताकूं त्यागके अन्य स्वरूपकी भी ताके विषे उपासना करिये है। १-जैसे शालग्राम और नर्मदेश्वरकी विष्णुरूप और शिव रूप करके उपासना कही है तहाँ शङ्ख चक्र आदिक सहित चतुर्भुज मूर्ति शालग्राम की नहीं है और गङ्गा भूषित जटाजूट डमरु चर्मकपालका सहित भद्रामुद्रा से शरणागतन कूँ त्रिगुण रहित आत्मा का उपदेश देने वाली

मूर्ति नर्मदेश्वरकी नहीं है, किंतु दोनों शिलारूप हैं और शास्त्रकी आज्ञातें तिन शिलारूप की दृष्टि त्यागके दोनों विषे क्रमतें विष्णुरूप और शिवरूप की उपासना करिये है। यातें उपास्य के स्वरूप के अधीन उपासना नहीं होवे है। किंतु विधि के अधीन है। जैसे शास्त्र का वचन विधान करे। तैसी उपासना करे। २-जैसे छांदोग्य उपनिषद् में पञ्चाग्नि विद्या प्रकरण में स्वर्गलोक, मेघ, भूमि, पुरुष, स्त्री इन पाँच पदार्थन की अग्निरूप करके उपासना कही है और श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न, वीर्य इन पाँच पदार्थनकी पञ्च अग्नि की आहुतिरूप उपासना कही है तहाँ स्वर्ग आदिक अग्नि नहीं हैं और श्रद्धा सोम आदिक आहुति नहीं हैं तथापि वेद की आज्ञातें स्वर्गलोकादिकन की अग्नि रूपतें और श्रद्धा आदिकन की आहुतिरूपतें उपासना करिये है। इस रीति से ओं अक्षर की ब्रह्मरूप करके उपासना कही है। तहाँ ओं, अक्षर ब्रह्मरूप नहीं है। तो भी ब्रह्म रूप करके उपासना बने है।

उपासना वाक्य में वस्तु के अभेद की अपेक्षा नहीं किंतु भिन्न वस्तु की अभिन्नरूपतें उपासना होवे है और विचारतें देखिये तो ब्रह्म का वाचक जो ओं अक्षर है ताका तो अपने वाच्यब्रह्मतें अभेद बने भी है घटादिक अन्यपदनका अपने जड़रूप अर्थसे अभेद बने नहीं

काहेते ? सर्व नामरूप ब्रह्ममें कल्पित है ब्रह्म अधिष्ठान है। ओं अक्षर भी ब्रह्मका नाम है याते ब्रह्ममें कल्पित है, कल्पित वस्तु अधिष्ठान से भिन्न होवे नहीं, किंतु अधिष्ठानरूपही होवे है याते ओं अक्षर ब्रह्मरूपहै। और घटआदिक पदनका जो जड़रूप अपना अर्थ सो अधिष्ठान नहीं। किंतु वाच्य सहित घटआदिक पद ब्रह्म में कल्पित हैं और ब्रह्म तिनका अधिष्ठानहै। याते ब्रह्म से तो सर्वका अभेद बने भी है, परन्तु घटआदिक पदन का अपने जड़रूप वाच्य अर्थसे अभेद किसी रीत से बने नहीं। याते भट्टमतमें वाच्य वाचकका अभेद असङ्गत है।

केवल भेद जो वाच्य वाचक का अङ्गीकार करे हैं, तिनके मत में यह दोष भट्टने कहा है:-जो घटपद का वाच्य घटपदसे अत्यन्त भिन्न होवे तो जैसे घटपद से अत्यन्त भिन्न वस्त्ररूप अर्थकी प्रतीत होवे नहीं, तैसे घटपद से अत्यन्त भिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीत भी नहीं होवेगी और घटपद से वाच्यकूँ भिन्न मानिके ताकी घटपद से प्रतीत मानोगे तो जैसे घटपद ते अत्यन्त भिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीत होवे है तैसे अत्यन्त भिन्न वस्त्रकी भी घटपदसे प्रतीत हुई चाहिये, यह दोष भी जो सामर्थ्य अथवा इच्छारूप शक्ति नहीं मानें तिन्ह के मतमें है। जो शक्ति अङ्गीकार करें तिनके मत में दोष नहीं। काहेते ? जो घटपद का वाच्य कलश और

ताका अवाच्य वस्त्रादिक सो दोनों घटपट से भिन्न है। परन्तु घटपदमें कलशरूप अर्थ के ज्ञान करने की शक्ति है और अन्य अर्थ के ज्ञान करने की शक्ति नहीं याते घटपदते कलशरूप अर्थ ते भिन्न अर्थ की प्रतीत होवे नहीं। इस रीत से जो पदमें जिस अर्थ की शक्ति है ताही अर्थ की तिस पदसे प्रतीत होवे है अन्य अर्थ की नहीं। याते वाच्यवाचक के अत्यन्त भेद में दोष नहीं। तिनका भेद सहित अभेदरूप तादात्म्य सम्बन्ध बने नहीं। भेद और अभेद आपसमें विरोधी है। तैसे उपादानकारणका कार्यते भेदसहित अभेद नहीं केवल भेद है और केवल भेदमें जो दोष कह्या है सो नैयायिक और शक्तिवादीके मत में नहीं। काहेते? कारण कार्यके अत्यन्त भेदमें यह दोषहै:-जो मृत्पिण्डसे अत्यन्त भिन्न घट की उत्पत्ति होवे तो अत्यन्तभिन्न तैलकी भी मृत्पिण्ड से उत्पत्ति हुई चाहिये और अत्यन्तभिन्न तैलकी उत्पत्ति नहीं होवेगी तो अत्यन्त भिन्न घटकी भी मृत्पिण्ड से उत्पत्ति नहीं हुई चाहिये।

यह दोष नैयायिकमत में नहीं। काहेते? सर्व वस्तु की उत्पत्ति में नैयायिक प्रागभाव कूँ कारण माने है जैसे घट की उत्पत्तिमें दण्ड, चक्र, कुलाल कारण हैं तैसे घटका प्रागभावभी घटका कारणहैं। तैसे सर्वका प्रागभाव सर्वकी उत्पत्ति में कारण है। १--सो घट का प्राग भाव घट के उपादानकारण मृत्पिण्डमें रहे है। अन्यमें नहीं। २-तैल का

प्रागभाव तिलनमें रहे है, अन्य में नहीं। ऐसे सर्व कार्य-नका प्रागभाव अपने अपने उपादानकारण में रहे है जिस पदार्थ में जाका प्रागभाव होवे तिस पदार्थ से ताकी उत्पत्ति होवे है। अन्यकी नहीं। १-जैसे मृत्पिण्डमें घटका प्रागभाव है, याते मृत्पिण्ड से घटकीही उत्पत्ति होवे है, तैलकी नहीं, २-तैलका प्रागभाव तिलनमें रहे है, याते तिलनते तैलकी ही उत्पत्ति होवे है घटकी नहीं, ऐसे सर्व कार्य में प्रागभाव कारण है याते कारण कार्य का अत्यन्त भेद माननेते नैयायिकमत में दोष नहीं।

सामर्थ्यरूप शक्ति वादीके मतमें दोष नहीं। काहेते? मृत्पिण्डमें घटकी सामर्थ्यरूप शक्ति है, तैलकी नहीं और तिलनमें तैलकी सामर्थ्य है घट की नहीं, याते मृत्पिण्डते घटकी उत्पत्ति होवे है और तैलकी नहीं। तैसे तिलनते तैलकी ही उत्पत्ति होवे है घटकी नहीं। इस रीति से उपा-दानकारणका और कार्यका अत्यन्त भेदमानने में दोष नहीं। भेदाभेद असङ्गतहै और भेद में तथा अभेदमें जो दोष भट्टने कहे हैं सो दोनों पक्ष के दोष भट्ट के मत में अवश्य रहें हैं। काहेते? भट्टने भेद सहित अभेद अङ्गी-कार किया है याते यह अर्थ सिद्ध हुआ:-कारणकार्यका भेदभी है और अभेद भी है। १-भेद है। याते भेदपक्ष उक्तदोष होवेंगे। २-अभेद है याते अभेदपक्ष उक्त दोष होवेंगे जैसे चोरी का दोष और द्यूतका दोष जो एकएक

करने वाले कूँ कहें हैं सो दोऊ व्यसन जाके होवे ताके चोरी द्यूत दोनों दोष होवे हैं तैसे गुणगुणी आदिकनके भेदाभेद मानते भी भेदपक्षके और अभेदपक्ष के दोनों दोष होवेंगे और शक्तिवादी के मत में केवल भेद अङ्गीकार कियेते दोष नहीं। काहेते? गुणीमें गुणके धारने की शक्ति है अन्यकी नहीं। याते भेदपक्षमें जो दोष कह्या था:-घट के रूपादिक जैसे घट से भिन्न है, तैसे पटआदिक भी घटसे भिन्न हैं रूपादिकनकी न्याई पटआदिक भी घटमें रहे चाहिये। अथवा पटआदिकन की न्याई रूपादिक भी नहीं रहे चाहिये सो दोष शक्ति नहीं अङ्गीकार करे ताके मतमें है शक्तिवादीके मतमें केवल भेद मानेते भी दोष नहीं, उलटा। १-भट्टमत में भेद अभेद दोनों माननेते दोनोंपक्षके दोष उक्त दृष्टान्तसे हैं। २-भेद अभेद विरोधी धर्मका असम्भव दोष है तैसे जातिव्यक्तिका और क्रिया क्रियावान का भी केवल भेदहै तथापि व्यक्ति में जातिके धारनेकी शक्तिहै और क्रियावान्में क्रिया धारने की शक्ति है अन्यधारने की शक्ति नहीं। इस रीतिसे उपादान और कार्यका तथा गुणगुणी आदिकन का भेदाभेदरूप तादात्म्य सम्बन्ध असङ्गत है। सर्व का आपसमें भेद माननेमें भट्ट उक्त दोषनकूँ शक्ति ग्रसे है। यद्यपि वेदान्तसिद्धान्तमे भी कार्य गुण जाति क्रिया का उपादान गुणी व्यक्ति क्रियावानते अत्यन्त भेद नहीं

किन्तु तादात्म्य सम्बन्ध ही अङ्गीकार किया है। तथापि वेदान्त मतमें भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं, किन्तु भेद और अभेद से विलक्षण अनिर्वचनीयरूप तादात्म्य संबंध है। १-भेदसे विलक्षण है याते अभेदपक्ष के दोष नहीं। २-अभेदसे विलक्षण हैं याते भेदपक्ष के दोष नहीं। इस रीति से भेदाभेद से विलक्षण अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध है परन्तु भेदाभेदरूप तादात्म्य असङ्गत है याते "वाचक-वाच्य का भेदाभेद तादात्म्य संबंधी शक्ति है" यह भट्ट अनुसारी का पक्ष समीचीन नहीं। किन्तु पद के सुनते ही अर्थ के ज्ञान करने की जो पदमें सामर्थ्य सोई पदमें शक्ति है। इति शक्तिनिरूपण ॥ ३४ ॥

लक्षणाके ज्ञानमें शक्यका ज्ञान उपयोगी है। काहेते? शक्य संबंध लक्षणा का स्वरूप है। शक्य जाने बिना शक्य संबंधरूप लक्षणा का ज्ञान होवे नहीं याते शक्य का लक्षण कहैं हैं—

❀ दोहा ❀

है पद में जा अर्थ की, शक्ति शक्य सो जानि।
वाच्य अर्थ पुनि कहत तिहिं, वाचक पदहि पिछानि॥

जा पदमें जा अर्थ की शक्ति होइ ता पदका सो अर्थ शक्य जानि और शक्यअर्थकूँ ही वाच्य अर्थ भी कहैं हैं जैसे अग्निपद में अङ्गाररूप अर्थ की शक्ति है, याते अग्निपदका अङ्गार शक्यअर्थ और वाच्य अर्थ कहियेहै

और वाच्य अर्थका बोधकपद वाचक कहिये है॥३५॥

लक्ष्य अर्थ और लक्षणाका सामान्यरूप।

लक्षणा और जहती आदिक भेद लक्षण।

कवित्त-शक्य को संबंध जो स्वरूप जानि लक्षण को,
लक्षणा सो भान जाको लक्ष्य सु पिछानिये।
वाच्य अर्थ सारो त्यागि वाच्य को संबंध जहाँ,
होई परतीति तहाँ जहती बखानिये॥
वाच्ययुत वाच्यके संबंधी का जु ज्ञानि होय,
ताहि ठौर लक्षणा अजहतिहि मानिये।
एक वाच्य भागत्याग होत तहाँ भाग त्याग,
दूजो नाम जहती अजहती प्रमानिये॥३६॥

शक्य कहिये वाच्य अर्थका जो संबंध कहिये मिलाप सो लक्षणा का स्वरूप कहिये लक्षण जानि और जा अर्थका पदकी शक्तिसे ज्ञान होवे किन्तु लक्षणाते भान कहिये ज्ञान होवे सो पदका लक्ष्य अर्थ कहिये है एक पादसे लक्षणाका स्वरूप कह्या।

जहति, अजहति और भागत्यागलक्षणाका लक्षण

लक्षणाके जहति आदिक तीनहूँ भेदन के लक्षण एक एकपादमें कहे हैं-"वाच्य" इत्यादि से। १-जहाँ वाच्य अर्थ संपूर्ण त्यागिके वाच्य अर्थके संबंधी की प्रतीति होवे तहाँ जहतिलक्षणा कहिये है। जैसे किसीने कह्या "गंगामें ग्राम है" या स्थानमें गंगापदकी तीरमें जहति

लक्षणा है। काहेते ? गङ्गापदका वाच्य अर्थ देवनदी का प्रवाह है ताके विषे ग्रामकी स्थितिका असम्भव है। याते सारे वाच्य अर्थकूँ त्यागके तीर विषे गङ्गापद की जहति लक्षणाहै, वाच्यके संबंधका नाम लक्षणा है या स्थान में गङ्गापदका वाच्य जो प्रवाह ताका तीरसे संयोग सम्बन्ध है याते गङ्गापदके वाच्यका जो तीरसे सम्बन्ध सो लक्षणा और सम्पूर्ण वाच्यका त्याग याते जहतिलक्षणा। २-"वाच्ययुत" इत्यादि, तृतीयपादसे अजहति लक्षणा दिखावे हैं। वाच्ययुत कहिये वाच्य अर्थ सहित वाच्यके संबंधी का जा पदमे ज्ञान होय ता पदमें अजहतिलक्षणा मानिये। जैसे किसीने कहा-"सोन* धावन करे है" तहां सोन-पदकी लालरंगवाले अश्वविषे अजहतिलक्षणा। काहेते ? सोन नाम लालरंगका है याते सोनपद का लालरग वाच्य है। ता केवलमें धावन का असम्भव है, इस कारणते सोन पदका वाच्य जो लालरंग ता सहित अश्वमें सोनपद की अजहतिलक्षणा है। गुण का और गुणी का तादात्म्य-संबंध कहे हैं और लाल भी रूपका भेद होनेते गुण है याते सोनपदका वाच्य जो लालगुण ताका गुणी अश्वके साथ जो तादात्म्य संबंध सो लक्षणा और वाच्य का त्याग नहीं अधिकका ग्रहण याते अजहतिलक्षणा। एक वाच्य" इत्यादि चतुर्थपादसे भागत्यागलक्षणा बतावे हैं

* भाषा में शीघ्रकूँ सोन पढे हैं।

जहाँ पदनके वाच्य अर्थ मध्य एक भाग का त्याग होवे एक भागका ग्रहण होवे तहाँ भागत्याग लक्षणा कहिये है तो भागत्यागकूँ ही जहति-अजहति लक्षणा भी कहै हैं। जैसे-प्रथम देखे पदार्थन कूँ अन्य देश में देखिके किसी ने कह्या "सो यह है" वहाँ भागत्यागलक्षणा है। काहेतें ? अतीतकाल में और अन्यदेशमें स्थित वस्तुको "सो" कहै है। यातें अतीतकाल सहित और अन्यदेश सहित वस्तु सो पदका वाच्यअर्थ है और वर्तमान काल समीपदेशमें स्थित वस्तुकूँ "यह" कहे हैं, यातें वर्तमान काल सहित और समीप देश सहित वस्तु, यह पद का वाच्यअर्थ है और अतीतकाल सहित अन्यदेश सहित जो वस्तु सोई वर्तमानकाल और समीप देश सहित है यह समुदायका वाच्यअर्थ है, सो सम्भवे नहीं। काहेते ? अतीतकाल और वर्तमान काल का विरोध है, तथा अन्यदेश का और समीपदेश का विरोध है। यातें दोनों पदनमें देशकाल जो वाच्यभाग ताकूँ त्यागि के वस्तु-मात्रमें दोनों पदकी भागत्याग लक्षणा है ॥३६॥

महावाक्यन में लक्षणा।

"तत्त्वमसि" महावाक्यमें लक्षणा दिखावने कूँ तत्पद और त्वंपद का वाच्यअर्थ दिखावे हैं:—

दोहा-सर्वशक्ति सर्वज्ञ विभु, ईश स्वतन्त्र परोक्ष।
मायी तत्पद वाच्य सो, जामें बन्ध न मोक्ष ॥३७॥

१-सर्वशक्ति कहिये जामें सर्व सामर्थ्य । २-सर्वज्ञ कहिये सर्ववस्तुका जाननेवाला। ३-विभु कहिये व्यापक। ४-ईश कहिये सर्वका प्रेरक। ५-स्वतन्त्र कहिये कर्म के अधीन नहीं। ६-परोक्ष कहिये जीवके प्रत्यक्ष का विषय नहीं। मायी कहिये माया जाके अधीन। ७-बन्ध मोक्ष रहित। जामें बन्ध होवे ताका मोक्ष होवे है। ईश्वर बन्ध रहित है याते ईश्वर में मोक्ष भी नहीं। इतने धर्म वाला ईश्वर चेतन तत्पद का वाच्य अर्थ है॥ ३७॥

त्वंपदवाच्यनिरूपण

दोहा-कहे धर्म जो ईश के, सब तिनते बिपरीत।
हे जिहिं चेतन जीव तिहिं, त्वंपद वाच्य प्रतीत॥३८॥

जो ईशके धर्म कहे तिनते विपरीत धर्म जामें होवे सो जीवचेतन त्वंपदका वाच्य, प्रतीत कहिये जान। याका भाव यह है:-१-अल्पशक्ति, २-अल्पज्ञ, ३-परिच्छिन्न ४-अनीश, ५-कर्म के आधीन, ६-अविद्या मोहित, ७-बन्धमोक्ष वाला, ८-प्रत्यक्ष। काहेते? अपना स्वरूप किसीकूँ परोक्ष नहीं, प्रत्यक्ष है तथापि ईश्वर का ईश्वरकूँ भी अपना स्वरूप प्रत्यक्ष है तथापि ईश्वर का स्वरूप जीवकू प्रत्यक्ष नहीं याते परोक्ष कहिये है और जीव के स्वरूपकूं जीव ईश्वर दोनों जाने हैं, याते प्रत्यक्ष

कहिये हैं इतने धर्म वाला जीव चेतन त्वंपद का वाच्य कहिये है ॥ ३८ ॥

वाच्य अर्थ में एकता का विरोध व लक्षण की कर्तव्यता—

❋ दोहा ❋

महावाक्य में एकता, है दोनों की भान ।
सो न बनै यातैं सुमति, लक्ष्यलक्षणहि जान ॥

सामवेद के छान्दोग्य उपनिषद् में उद्दालकमुनिने अपने पुत्र श्वेतकेतुकूं जगत्की उत्पत्ति करने वाला ईश्वर बताय के कह्या:—

"तत्त्वमसि" ताका यह वाच्यअर्थ है:-१-तत् कहिये सो जगत् की उत्पत्ति करने वाला, सर्व शक्ति सर्वज्ञता आदिकधर्म सहित ईश्वर, २-त्वं कहिये तू अल्प शक्ति अल्पज्ञता आदिक धर्मवाला जीव। ३-असि कहिये है। इहाँ "सो तू है" इस कहनेते, ईश्वर जीवकी एकता वाच्य अर्थसे भान होवे है सो बने नहीं। काहेते ? १-सर्व शक्ति और अल्पशक्ति, २-सर्वज्ञ और अल्पज्ञ। ३-विभु और परिच्छिन्न, ४-स्वतन्त्र और कर्म अधीन, ५-परोक्ष और प्रत्यक्ष, ६-माया जाके अधीन और अविद्या मोहित एक है, यह कहना "अग्नि शीतल है" इस कहने के समान है। याते हे सुमति ! लक्षणही कहिये लक्षणाते। लक्ष्य अर्थ जान। वाच्य अर्थमें विरोध है ॥ ३९ ॥

❁ दोहा ❁

आदि दोय नहिं सम्भवै, महावाक्य में तात।
भागत्याग यातें लखहु, ह्वै जातैं कुशलात॥ ४० ॥

हे तात! महावाक्य में आदि दोय कहिये जहति अजहति नहीं सम्भवै। यातें भागत्यागलच्णा महावाक्य में लखहु कहिये जानों, जातें कुशलात कहिये विरोधका परिहार होवे॥ ४०॥ X

जहति असम्भवप्रतिपादन-दोहा।

ज्ञेय जु साची ब्रह्मचित, वाच्य माहिं सो लीन।
मानहु जहती लच्णा, ह्वै कछु ज्ञेय नवीन॥ ४१ ॥

सम्पूर्ण वेदान्त का ज्ञेय, साची चेतन और ब्रह्मचित् कहिये ब्रह्मचेतन है सो साचीचेतन और ब्रह्मचेतन त्वं पद और तत्पदके वाच्य में लीन कहिये प्रविष्ट हैं और जहतिलच्णा जहाँ होवे तहाँ वाच्य सम्पूर्ण का त्याग करके, वाच्य का संबंधी अन्य ज्ञेय होवे। यातें महावाक्य में जहतिलच्णा माने तो वाच्य में आया जो चेतन तासें नवीन कहिये अन्य कछु ज्ञेय होवेगा। चेतन से भिन्न असत् जड़ दुःखरूप है ताके जाननेते पुरुषार्थ सिद्ध होवे नहीं यातें महावाक्यमें जहतिलच्णा नहीं॥४१॥

अजहतिलच्णा असम्भवप्रतिपादन-दोहा।

वाच्यहु सारो रहत है, जहाँ अजहती मीत।
वाच्यअर्थ सविरोध यों, तजहु अजहती रीत॥४२॥

हे मीतप्रिय ! जहाँ अजहति लक्षणा होवे तहाँ वाच्य अर्थ सारे रहे हैं और वाच्यसे अधिकका ग्रहण होवे है महावाक्यनमें अजहतिलक्षणा अंगीकार करें तो वाच्य अर्थ सारा रहेगा और वाच्य अर्थ महावाक्यनमें सविरोध कहिये विरोधसहितहै, विरोध दूर करनेकू लक्षणा अंगीकार करी है, अजहती माने तो महावाक्यन में विरोध दूर होवे नहीं याते अजहती की रीति महावाक्यनमें तजहु ॥ ४२ ॥

भागत्यागलक्षणाप्रकार दोहा।

त्यागि विरोधी धर्म सब, चेतन शुद्ध असंग।
लखहू लक्षणाते सुमति, भागत्याग यह अंग ॥४३॥

हे अंग, हे प्रिय ! तत्पदका वाच्य ईश्वर और त्वम्पद का वाच्य जीव तिन्हके आपसमें विरोधी धर्म त्यागि के शुद्ध असग चेतन लक्षणाते लखहु, यह भाग त्याग लक्षणा है। या स्थानमें यह सिद्धान्तहै, ईश्वर जीव का स्वरूप अनेक प्रकार का अद्वैत ग्रन्थन में कह्या है। १-विवरण ग्रन्थ में अज्ञान प्रतिबिम्ब जीव और बिम्ब ईश्वर कह्या है। २-विद्यारण्य के मत में शुद्ध सत्त्वगुण सहित माया में आभास ईश्वर और मलिन सत्त्वगुण सहित जो अन्तःकरणका उपादान कारण अविद्या का अंश तामें आभास जीव कह्या है ॥ ४३ ॥

जीव ईश्वर के स्वरूप में पञ्चदशीकार तथा विवरणकारादिक का मत (आभासप्रतिबिम्ब व अवच्छेदवाद)

यद्यपि पञ्चदशीग्रन्थ में विद्यारण्यस्वामीने अन्तःकरण में

आभास जीव कह्या है, तथापि अन्तःकरणके आभासकूँ जीव माने तो सुषुप्तिमें अन्तःकरण रहे नहीं, याते जीवका भी अभाव होना चाहिये और प्राज्ञरूप जीव सुषुप्ति में रहे है, याते विद्यारण्य स्वामी का यह अभिप्राय है:- अन्तःकरणरूप परिणाम कू प्राप्त जो होवे अविद्या का अंश तामें आभास जीव है, सो अविद्या का अंश सुषुप्ति में भी रहे है, याते प्राज्ञका अभाव नहीं और केवल आभास ही जीव ईश्वर नहीं है, किंतु १-माया का अधिष्ठान चेतन और माया सहित आभास ईश्वरहै, २-अविद्या अंश का अधिष्ठान चेतन और अविद्या के अंश सहित आभास जीव है। १-ईश्वर की उपाधि में शुद्ध सत्त्वगुण है याते ईश्वर में सर्व शक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म हैं। जीव की उपाधि में मलिन सत्त्वगुण है याते जीव में अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म हैं, याकूँ आभास वाद कहे हैं।

विवरण के मतमें यद्यपि जीव ईश्वर दोनों की उपाधि एक ही अज्ञान है, याते दोनों अल्पज्ञ हुए चाहिये तथापि जा उपाधि में प्रतिबिम्ब होवे ताका यह स्वभाव होवे है, प्रतिबिम्बमें अपने दोष करे है, बिम्बमें नहीं। जैसे दर्पणरूप उपाधि में मुख का प्रतिबिम्ब होवे है ग्रीवा में स्थित मुख बिम्ब है, तहाँ दर्पणरूप उपाधि के श्याम पीत लघुतादिक अनेक दोष प्रतिबिंब में भान होवे हैं और

ग्रीवामें स्थित जो बिम्ब है तामें भान होवे नहीं तैसे दर्पण स्थानी जो अज्ञान, तिसविषे प्रतिबिम्बरूप जीवमें अज्ञान कृत अल्पज्ञतादिक दोष है और बिम्बरूप ईश्वर में नहीं, यातें १-ईश्वरमें सर्वज्ञतादिक हैं। २-जीव में अल्पज्ञतादिक हैं। आभास और प्रतिबिम्ब का इतना भेद है-आभासपक्षमें तो आभास मिथ्या है और प्रतिबिम्बवादमें प्रतिबिम्ब मिथ्या नहीं किंतु सत्य है। काहेते ? प्रतिबिम्ब वादी का यह सिद्धान्तहै, दर्पणमें जो मुखका प्रति बिम्ब है सो मुख की छाया नहीं। काहेते ? १-छाया का यह स्वभाव है-जिस दिशा में छायावान् के मुख और पृष्ठ होवे उस दिशामें छाया के मुख और पृष्ठ होवे हैं और दर्पण के प्रतिबिम्बके मुख,पीठि, बिम्बसे विपरीत होवे हैं। याते दर्पणमें छायारूप प्रतिबिम्ब नहीं, किंतु दर्पण को विषय करनेवास्ते नेत्र द्वारा निकसी जो अन्तःकरण की वृत्ति सो दर्पणकूँ विषय करके तत्कालही दर्पण से निवृत्त होयके ग्रीवामें स्थित मुख कूँ विषय करे है, जैसे भ्रमण के वेगसे अलात (का) चक्रभान होवेहै और चक्र नहीं है तैसे दर्पण और मुखके विषय करनेमें वृत्तिके वेगते मुख दर्पणमें स्थित भान होवे है और मुख ग्रीवाविषे ही स्थितहै दर्पण में नहीं और छाया भी नहीं। वृत्तिके वेग से जो दर्पण से मुखकी प्रतीति सोई प्रतिबिम्ब है, इस रीति से दर्पणरूप उपाधिके संबंध से ग्रीवा में स्थित मुखही बिम्ब रूप और

प्रतिबिंब रूपभान होवे है और विचारसे बिंब प्रतिबिंब भाव
है नहीं। तैसे अज्ञानरूप उपाधिके संबंधसे असंग चेतनमें
बिंबस्थानी ईश्वरभाव और प्रतिबिंबस्थानी जीवभाव प्रतीत
होवे है और विचारदृष्टिसे ईश्वरता जीवताहै नहीं, अज्ञान
ते जो चेतनमें जीवभावकी प्रतीत सोई अज्ञानमें प्रतिबिंब
कहिये है। याते बिंबपना और प्रतिबिंबपना तो मिथ्या है
और स्वरूप से बिंबप्रतिबिंब सत्य हैं। काहेते ? बिंबप्रति-
बिंबका स्वरूप दृष्टान्तविषे तो मुखहै और दार्ष्टान्त विषे
चेतन है, सो मुख और चेतन सत्य हैं। १-इस रीतसे
प्रतिबिंबकूँ स्वरूपसे सत्य होनेतें सत्य कहे हैं। २-आभास
का स्वरूप छाया माने हैं। याते मिथ्या है। यह आभास
वाद और प्रतिबिंबवाद का भेद है और कितने ग्रन्थन
में १-शुद्धसत्त्वगुणसहित मायाविशिष्टचेतन ईश्वर कहिये
है। २-मलिनसत्त्वगुण सहित अन्तःकरण का उपादान
अविद्या के अंशविशिष्टचेतन जीव कहिये है। याकूँ अव-
च्छेदवाद कहे हैं। सर्व ही वेदान्त की प्रक्रिया अद्वैत
आत्माके जनावनेकूँ है, याते जौनसी प्रक्रियातें जिज्ञासुकूं
बोध होवे सोई ताकूं समीचीन है। तथापि वाक्य वृत्ति
और उपदेशसाहस्रीमें भाष्यकारने आभासवादही लिखा
है, याते आभासवाद ही मुख्य है।

चारि महावाक्यन में भाग त्याग का प्रदर्शनः—

१—माया और माया में आभास और मायाका अधि-

ष्ठान जो चेतन सो सर्व शक्ति सर्वज्ञता आदिक धर्म सहित ईश्वरहै,सोई तत्पदका वाच्य है। २-व्यष्टि अविद्या तामें आभास और ताका अधिष्ठान चेतन अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्मसहित जीवहै सो त्वम्पद का वाच्य है। तिन्ह दोनों की "तत्त्वमसि" वाक्य ने एकता बोधन करी और बने नहीं। १-याते आभास सहित माया और मायाकृत सर्वशक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म इतने वाच्यभागकूँ त्यागके चेतनभागविषे तत्पद की भाग त्याग लक्षणा। २-तैसे आभास सहित अविद्या अंश और अविद्याकृत अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म, जो त्वंपद का वाच्य भाग ताकूँ त्याग के चेतनभाग में त्वंपद की भागत्यागलक्षणा। इस रीति से—

भागत्यागलक्षणाते, १-ईश्वर और जीव के स्वरूप में लक्ष्य जो चेतनभाग, तिनकी एकता "तत्त्वमसि" महावाक्य बोधन करे है। २-तैसे "अयं आत्मा ब्रह्म" इस महावाक्य में आत्मापद का जीव वाच्य है और ब्रह्मपद का ईश्वर वाच्य है। ब्रह्मपद का शुद्ध वाच्य नहीं, ईश्वर ही वाच्य है। यह चतुर्थतरङ्ग में प्रतिपादन कर आये हैं पूर्वकी न्याईं दोनों पदनका लक्षणाहै, लक्ष्य अर्थ परोक्ष नहीं। इस अर्थकूँ जनावने कूं अयं पद है, अयं कहिये सबके अपरोक्ष आत्मा ब्रह्म है, यह वाक्य का अर्थ है। ३-"अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्य में अहंपद का जीव

वाच्य और ब्रह्मपद का ईश वाच्य है। दोनों पदन की चेतनभागमें लक्षणा "मैं ब्रह्म हूँ" यह वाक्य का अर्थ है "प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म" इस महावाक्य में, प्रज्ञानपद का जीव वाच्य है, ब्रह्मपदका ईश है, पूर्वकी न्याईं लक्षणा लक्ष्य जो ब्रह्मात्मा सो आनन्द गुण वाला नहीं। किंतु आनन्दरूप है इस अर्थ के जनावने कूं आनन्द पद है। आत्मा से अभिन्न ब्रह्म आनन्दरूप है, यह वाक्य का अर्थ है। जैसे महावाक्यन में भागत्याग लक्षणा है तैसे अन्य वाक्यन में सत्य ज्ञान आनन्दपद भी शुद्ध ब्रह्मकूं भाग त्याग लक्षणा से ही बोधन करे है शक्ति से नहीं। काहेते? शुद्ध ब्रह्म किसी पदका वाच्य नहीं, यह सिद्धान्तहै। याते सारे पद विशिष्ट के वाचक हैं और शुद्ध के लक्षण हैं। १-मायाकी आपेक्षिकसत्यता और चेतन की निरपेक्षिक सत्यता मिली हुई सत्यपद का वाच्य है निरपेक्षिक सत्य लक्ष्य है। २-बुद्धि वृत्तिरूप ज्ञान और स्वयं प्रकाश ज्ञान, दोनों मिले तो ज्ञान पद का वाच्य और स्वय प्रकाश भाग लक्ष्य। ३-विषय सबंध जन्य सुखाकार सात्त्विक अन्तःकरण की वृत्ति और परम प्रेम का आस्पद स्वरूप सुख, दोनों मिले आनन्द पद का वाच्य और वृत्तिभाग कूं त्याग के स्वरूप भाग लक्ष्य। इस रीति से सर्व पदनका शुद्ध में लक्षणा संक्षेप शारीर में प्रतिपादन करी है।

उक्त अर्थ संग्रह—कवित्त।

गङ्गा में ग्राम जहति लक्षणा या ठौर लखि,
सान धावे लक्षणा अजहति जनाइये।
"सोई यह वस्तु" इहाँ लक्षणा है भागत्याग,
दूजा नाम जहति अजहति सुनाइये॥
"तत्वमसि" आदि महावाक्यनमें भागत्याग,
लक्षणा न जहति अजहति बताइये।
ब्रह्म काहु पदको न वाच्य यों बखान वेद,
याते सर्व पदन में यों लखाइये॥ ४४॥
मायामाहिं सत्यता जु और भाँति भाषियत,
ब्रह्ममाहिं सत्यता सु और भाँति भाषिये।
दोऊ मिलि सत्यपद वाच्य मुनि भाषत हैं,
ब्रह्ममाहि सत्यता सु लक्ष्य भाग राखिये॥
बुद्धि वृत्ति संवित द्वै मिले ज्ञानपद वाक्य,
संवितस्वरूप लक्ष्य बुद्धि वृत्ति नाखिये।
आत्मा औ विषैको सुख वाच्यपद आनँदको,
विषैसुख त्याग आतमसुख लक्ष आखिये॥४५॥

महावाक्यन में विरोध दूर करने को 'दोनों पदन में लक्षणा अङ्गीकार करी। तहाँ कोई कहे है—एक पद में लक्षणा अङ्गीकार किये से ही विरोध दूर होवे है, दोय पद में लक्षणा मानने का प्रयोजन नहीं—

❀ दोहा ❀

एकहि पदमें लक्षणा, मानैं नहीं विरोध।
दोय पदन में लक्षणा, निष्फल कहत सुबोध ॥४६॥

सुबोध कहिये सुज्ञ दोय पदनमें लक्षणा मानेते विरोध दूर होय जावे है। याका भाव यह है-यद्यपि सर्वज्ञतादि विशिष्ट की अल्पज्ञतादि विशिष्ट के साथ एकता नहीं बने है, तथापि एक पदका लक्ष्य जो शुद्ध ताकी विशिष्ट के साथ एकता बने है। दृष्टान्त १-जैसे "शूद्र मनुष्य, ब्राह्मण है" इस रीति से शूद्रत्वधर्म विशिष्ट मनुष्य की ब्राह्मणत्वधर्म विशिष्ट के साथ एकता कहना विरुद्ध है। २-"मनुष्य ब्राह्मण है" इस रीति से शूद्रत्वधर्म रहित शुद्ध मनुष्य कूं ब्राह्मणत्व विशिष्टता कहने में विरोध नहीं। १-तैसे अल्पज्ञतादि धर्म विशिष्ट चेतन की और सर्वज्ञतादिक धर्म विशिष्ट की एकता विरुद्ध भी है। २-परन्तु जीववाचक पद और ईश्वर वाचकपदकी चेतन में लक्षणा करके चेतनमात्र की सर्वज्ञता विशिष्ट के साथ, वा अल्पज्ञतादि विशिष्ट के साथ एकता कहने में विरोध नहीं, याते दो पद में लक्षणा मानने में कोई युक्ति नहीं ॥ ४६ ॥

१ समाधान—कवित्त।

लक्षणा जो कहे एक पद माहिं ताकूं यह,
पूछि दोय पदन में कौन से में लक्षणा।

प्रथम वा द्वितीय में कहै ताहि भाषि यह,
वाक्यन को होयगो विरोध मूढ़ लक्षणा ॥
तीन वाक्य मध्य जीव वाचक प्रथम पद,
"तत्त्वमसि" यामैं आदिपद ईश लक्षणा ।
प्रथम वा द्वितीय को नेम नहिं बनै,
भाषत द्वैपदन मैं लक्षणा सुलक्षणा ॥४७॥

जो एक पदमें लक्षणा अङ्गीकार करे ताकूं यह पूछि-दोनों पदनमें कौनसे पदमें लक्षणा है? जो ऐसे कहै १-सर्व महावाक्यनके प्रथमपदमें लक्षणा है, द्वितीयपद में नहीं। २-यद्वा द्वितीयपदमें लक्षणा सर्ववाक्यनमें है, प्रथम पदमें नहीं । ताकूं हे शिष्य ! यह भाषि: हे मूढ़लक्षण ! प्रथम वा द्वितीयपदमें जो नेमते लक्षणा सर्व वाक्यन में मानै तो वाक्यनका परस्पर विरोध होवेगा । काहेते ? १-तीनवाक्यन मध्य कहिये, "अहं ब्रह्मास्मि" "प्रज्ञा-नमानन्दं ब्रह्म" "आयमात्मा ब्रह्म" इन तीन वाक्यन में जीववाचकपद प्रथम कहिये पूर्व है और "तत्त्वमसि" या वाक्यमें आदिपद कहिये प्रथमपद ईशलक्षणा कहिये ईश्वरका बोधक है । जो पूर्व पदमें लक्षणा सारे माने तो तीनवाक्यनका तो यह अर्थ होवेगा:-चेतन सर्वज्ञतादि विशिष्ट अंश सारे ईश्वररूप हैं और "तत्त्वमसि" वाक्य का यह अर्थ होवेगा:—चेतन अल्पज्ञतादि विशिष्ट संसारी जीवरूप है । काहेते ? तीनवाक्यन में पूर्व जीव-

वाचकपद है ताका चेतन भाग में लक्षणा और द्वितीय जो ईश्वरवाचक पद ताके वाच्यका ग्रहण और "तत्त्व-मसि" में आदि ईश वाचक पद, ताकी चेतन भाग में लक्षणा और द्वितीय जीववाचकपद ताके वाच्यका ग्रहण इस रीतिसे लक्षणाका नेम करे तो वाक्यन का परस्पर विरोध होवेगा । तैसे सर्व वाक्यन के द्वितीय पद कहिये आगिले पद में लक्षणा । माने तो तीनि वाक्यनमें पूर्व जो जीवपद ताके वाच्यका ग्रहण और उत्तर ईशपद की चेतना भाग में लक्षणा याते अल्पज्ञतादि धर्म विशिष्ट चेतन है यह तीनि वाक्यन का अर्थ होवेगा और "तत्त्व-मसि" में आदि ईशपद याके वाच्य का ग्रहण और द्वितीय जीव पदकी चेतन भाग में लक्षणा । याते सर्व-ज्ञतादि धर्म विशिष्ट चेतन है, यह "तत्त्वमसि" का अर्थ होनेते, परस्पर विरोध ही होवेगा । इस रीति से प्रथम वा द्वितीय पद में, लक्षणा का नेम बने नहीं । याते सुलक्षणा कहिये सुन्दर हैं लक्षण जिनके ते आचार्य द्वै पदन में लक्षणा भाषते हैं ॥ ४७ ॥

और जो ऐसे कहैं, प्रथमपद वा द्वितीयपद में लक्षणा है । यह नियम नहीं करे है, किन्तु सर्व वाक्य में जो ईश्वर वाचकपद तामें लक्षणा यह नियम करे है सो ईश्वरवाचक पूर्व होवे वा उत्तर होवे याते वाक्यन का परस्पर विरोध नहीं ।

ताका समाधान-दोहा।

ईश पदहि लक्षण कहै, सब अनर्थ की खानि।
ज्ञेय होय श्रुतिवाक्य में, ह्वै पुरुषारथ हानि॥ ४८॥

जो ईश्वरवाचक पदकूँ ही लक्षक कहै तो सर्व अनर्थ अल्पज्ञता पराधीनता जन्म मरणसे आदिलेके जो दुःख साधन तिनकी खानि जो संसारी जीव सो श्रुतिवाक्य ज्ञेय होवे। याते पुरुषार्थ कहिये मोक्ष की हानि होवेगी याका भाव यह है-जो ईश्वरवाचक पद में ही लक्षणा माने तो महावाक्यन का यह अर्थ होवेगा,-तत्पद का लक्ष्य जो अद्वय असङ्ग अमाय, मलरहित चेतन सो काम कर्म अविद्याके अधीन अल्पज्ञ, अल्पशक्ति, परिच्छिन्न, पुण्य, पाप, सुख, दुःख, जन्म, मरण, गमन, आगमन आदिक अनन्त अनर्थका पात्र है, जो महावाक्य का ऐसा अनर्थ होवे तो जिज्ञासुकूँ इसी अर्थ विषे बुद्धिकी स्थिति करनी होवेगी और जामें बुद्धि की स्थिति होवे है, प्राण वियोगसे अनन्तर ताहीकूँ प्राप्त होवे हैं। याते वेदवाक्यन के विचारसे मुमुक्षकूं अनर्थ कीही प्राप्ति होवेगी, आनन्द की प्राप्ति नहीं होवेगी, याते ईश्वरवाचकपद में लक्षणा है, जीववाचक में नहीं यह असङ्गत है॥ ४८॥

जो ऐसे कहैं-सर्वमहावाक्यन में जो जीववाचक पद है तिन्हमें लक्षणा है, ईशवाचक में नहीं। याते पुरुषार्थ की हानि नहीं। काहेते? जीववाचकपद में लक्षणा माने तो

महावाक्यनका यह अर्थ होवेगा। जो त्वम्पद का लक्ष्य चेतनभाग सो सर्वशक्ति, सर्वज्ञ, स्वतंत्र जन्मादिकबन्ध रहित ईश्वररूप है, इस अर्थ में बुद्धिकी स्थिति से जिज्ञासु कूँ अतिउत्तम ईश्वरभाव की ही प्राप्ति होवेगी। याते जीववाचकपद में लक्षणा का नियम करे हैं।

ताका समाधान-दोहा।

साक्षी त्वंपद लक्ष्य कहु, कैसे ईश स्वरूप।
याते दोपद लक्षणा, भाषत यतिवर भूप ॥४६॥

त्वंपदका लक्ष्य जो साक्षी सो ईश स्वरूप कैसे? यह कहु। अर्थ-यह त्वंपदके लक्ष्यकूँ ईश्वररूप कहना बने नहीं, याते यति जो संन्यासी तिनमें वर जो श्रेष्ठ, तिनके भूप स्वामी, दोनों पदमें लक्षणा भाषत हैं, याका भाव यह है जो जीववाचकपद में लक्षणा माने और ईश वाचक में नहीं, ताकूँ यह पूछे हैं-१-त्वम्पद की लक्षणा व्यापक चेतन में है। २-अथवा जितने देशमें जीव की उपाधि है, उतने देश में स्थित जो साक्षीचेतन तामें त्वम्पद की लक्षणा है। १-जो व्यापक चेतनमें त्वम्पदकी लक्षणा कहैं तो बने नहीं। काहेते? वाच्य अर्थ में जाका प्रवेश होवे, तामें भागत्याग लक्षणा होवे है और वाच्य में प्रवेश व्यापकचेतन का नहीं, किन्तु जीवपने की उपाधिदेश में स्थित जो साक्षीचेतन ताका वाच्य में प्रवेश है। याते साक्षीचेतनमें ही त्वम्पदकी लक्षणा है, व्यापक चेतन में

नहीं । ता साक्षीचेतनमें सर्व के हृदयका प्रेरणा और सर्व प्रपञ्चमें व्यापकतादिक ईश्वरके धर्मनका असम्भव है और साक्षी सदा अपरोक्ष है ताके विषे परोक्षता ईश्वर धर्मका अत्यन्त असम्भव है । २–मायारहित कूँ माया विशिष्ट कहना असम्भव है । जैसे दण्डरहितकूँ दण्डी कहना और संस्काररहित द्विजबालकूँ संस्कारविशिष्ट कहना असम्भव है, ताते साक्षी चेतन का ईश्वरसे अभेद कहैं, तो महा वाक्य असम्भव अर्थ के प्रतिपादक होवेंगे ।

दोनों पदनमें लक्षणा और ओतप्रोतभाव ।

दोनों पदों में लक्षणा माने तो दोष नहीं । काहेते ? जो एकता के विरोधी धर्म हैं तिन सबको त्याग के पदोंमें प्रकाशरूप चेतन जो वाच्यभाग, ता सर्व धर्म रहित चेतन में दोनों पद की लक्षणा उपाधि और उपाधिकृतधर्मनते चेतन का भेद है । स्वरूप से नहीं उपाधि और उपाधिकृतधर्मन का त्याग कियेते दोनों पदन के लक्ष्य चेतनकी एकता सम्भवे है । जैसे घटाकाश में घटदृष्टि त्यागके मठविशिष्ट आकाशते एकता बने नहीं और मठदृष्टि त्याग कियेते एकता बने है ॥ ४९ ॥

❋ दोहा ❋

तत्त्वं त्वं तत रीति यह, सब वाक्यन में जानि ।
जाते होय परोक्षता, परिच्छिन्नता हानि ॥५०॥

सर्व वाक्यन में "तत त्वं" "त्वं तत" इस रीति से

ओतप्रोतभावकी रीति जानि जा ओतप्रोत भाव कियेतें वाक्यके अर्थमें परोक्ष और परिच्छिन्नताभ्रान्ती की हानि होवे है। १-"तत् त्वं" या कहनेते तत्पद के अर्थ का त्वंपदके अर्थसे अभेद कह्या, सो त्वंपदका अर्थ साक्षी नित्य अपरोक्ष है, याते परोक्षताभ्रान्ति की हानि और २-"त्वं तत्," या कहनेते त्वंपद के अर्थ का तत्पदके अर्थ से अभेद कह्या, सो तत्पद का अर्थ व्यापक है, याते परिच्छिन्नताभ्रान्तिकी हानि। १-तैसे "अहं ब्रह्म" "प्रज्ञानं ब्रह्म" "आत्मा ब्रह्म" याते परिच्छिन्नता हानि। २-"ब्रह्म अहं" "ब्रह्म प्रज्ञानं" "ब्रह्म आत्मा" याते परोक्षताहानि ॥ ५० ॥

❋ दोहा ❋

जीव ब्रह्म की एकता, कहत वेद स्मृति बैन।
शिष्य तहाँ पहचानिये, भाग त्याग की सैन ॥५१॥

हे शिष्य ! जो वेद बैन और स्मृतिबैन, जीव ब्रह्म की एकता कहैं, तहाँ सारे भागत्यागकी सैन पहचानिये॥५१॥

❋ दोहा ❋

अस शिष गुरु उपदेश सुनि, भो ततकाल निहार।
भले विचारै याहि जो, ताके नशत जँजाल ॥ ५२ ॥

❋ सोरठा ❋

मिथ्या गुरु सुर चानि, कियो ग्रन्थ उपदेश यह।
सुनत करत तमहानि, यह ताकी भाषा करी ॥५३॥

❁ दोहा ❁

अगृध देवकूँ स्वप्न में, यह किय गुरु उपदेश।
नश्यो न तहुँ दुखमूल वह,मिथ्या बनको वेश ॥५४॥
वेश कहिये स्वरूप, अन्य अर्थ स्पष्ट है ॥ ५४ ॥

प्रश्न–अर्थ सहित ग्रन्थ पढ़ा तो भी मन दुःख का मूल भासता है।

अगृध उवाच–चौपाई।

भगवनयहतुम ग्रन्थपढ़ायो। अर्थसहितसो मो हिय आयो॥
बन दुखमूलतऊमुहिभासै। कहु उपाय जातेयह नाशै ॥५५॥
बोलेगुरुसुनि शिषकी बानी। सुनिशिष ह्वै जाते बनहानी॥
अस उपाय कोउ और नहीं है। बनकानाशहेतु यहीहै॥५६॥
महावाक्यको अर्थ विचारहु। ''मैंअगृध''यों टेरि पुकारहु॥
सुनिपुनिवाक्य विचारे चेला। 'अहं अगृध' यहदीनों हेला॥
निद्रा गई नैन परकाशे। बन गुरु ग्रन्थ सबै वह नाशे॥
भयोसुखीबनदुःख बिसरायो। हुतोअगृधनिजरूपसुपायो॥

दो०--अगृधदेव मैं निन्दते, भो बन दुख जिहिं रीति।
आतम में अज्ञानतैं, त्यूँ जग दुःख प्रतीति ॥५६॥
ज्यों मिथ्या गुरु ग्रन्थतें, मिथ्या बन संहार।
त्यों मिथ्या गुरु वेदतें, मिथ्या जग परिहार ॥६०॥
लक्ष अर्थ लखि वाक्यको, ह्वै जिज्ञासु निहाल।
निरावरण सो आप है, दादू दीनदयाल ॥६१॥

इति श्रीगुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनं नाम षष्ठस्तरङ्गः ॥६॥



सप्तमस्तरंगः ७।



अथ जीवन्मुक्तिविदेहमुक्ति वर्णनम्।

ज्ञानी के व्यवहार में नियम नहीं-दोहा।

उत्तम मध्य कनिष्ठ तिहुँ, सुनि अस गुरु उपदेश।
ब्रह्म आतम उत्तम लख्यो, रह्यो न संशय लेश॥ १॥

यद्यपि गुरुने उपदेश तीनोंकूं साथ ही किया, तथापि गुरु उपदेशते साक्षात्कार उत्तम तत्त्वदृष्टिकूँ हुवा॥ १॥

❁ दोहा ❁

भ्रमत करत ज्यों पवनते, सूखो पीपर पात।
शेष कर्म प्रारब्ध ते, क्रिया करत दरशात॥ २॥
कबहुँक चढ़ि रथ बाजि गज, बाग बगीचे देखि।
नग्नपाद पुनि एकले, फिर आवत तिहिं लेखि॥ ३॥
विविधदेश शय्या शयन, उत्तम भोजन भोग।
कबहुँक अनशन गिरिगुहा, रजनि शिला संयोग॥४॥
करि प्रणाम पूजन करत, कहुँ जन लाख हजार।
उभय लोकते भ्रष्ट लखि, कहत कर्मि धिक्कार॥ ५॥
जो ताकी पूजा करत, संचित सुकृत सु लेत।
दोषदृष्टि तिहिं जो लखै, ताहि पाप फल देत॥ ६॥
ऐसे ताके देह को, बिना नियम व्यवहार।
कबहुँ न भ्रम सन्देह है, लह्यो तत्त्व निर्धार॥ ७॥
नहिं ताकूं कर्तव्य कछु, भयो भेद भ्रम नाश।
उपज्यो वेद प्रमाण ते, अद्वय ब्रह्म प्रकाश॥ ८॥

ज्ञानी के व्यवहार में नियम का आक्षेप।

ज्ञानीकूँ समाधि और शरीर निर्वाहते अधिक अप्रवृति के नियम का आक्षेप।

ज्ञानी के व्यवहार में, कोउ कहत है नेम।
त्रिपुटि तजै दुखहेतु लखि, लहै समाधि सप्रेम ॥ ९ ॥
है किञ्चित व्यवहार जो, भिक्षाशन जलपान।
भूलै नाहिं समाधिसुख, है त्रिपुटी तें ग्लान ॥ १० ॥
लहै प्रयत्न समाधि को, पुनि ज्ञानी इह हेत।
जो समाधिसुखतजिभ्रमत, नर कूकर खर प्रेत ॥११॥
गौड़पाद मुनिकारिका, लिख्यो समाधि प्रकार।
ज्ञानी तजि विक्षेप यों, लहै सकल सुख सार ॥ १२ ॥
अष्ट अङ्गबिन होत नहिं, सो समाधि सुखमूल।
अष्ट अङ्गते अब सुनो, जे समाधि अनुकूल ॥ १३ ॥
पाँच पाँच यमनियम लखि, आसन बहुत प्रकार।
प्राणायाम अनेक विधि, प्रत्याहार विचार ॥ १४ ॥
छठी धारणा ध्यान पुनि, अरु सविकल्प समाधि।
अष्ट अङ्ग ये साधिके, निर्विकल्प आराधि॥ १५ ॥
सुनि समाध कर्तव्यता, तत्त्वदृष्टि हँसि देत।
उत्तर कछु भाषत नहीं, लखितिहिं बकत सप्रेत ॥१६॥

जैसे सप्रेत कहिये प्रेतसहित भूत के आवेशवाला बके तैसे अन्यथा कहता सुनि के तत्त्वदृष्टि हँसे है, अन्य

दोहों का अक्षरार्थ स्पष्ट है । भाव यह है:-ज्ञानवान् के शरीर व्यवहारका नियम नहीं । काहेते ? ज्ञानीके व्यवहारमें अज्ञान और ताका कार्य भेदभ्रान्ति तथा भेदभ्रमके कार्य, रागद्वेष तो हैं नहीं, किंतु ज्ञानवान्के भी प्रारब्धकर्म शेष रहे हैं सोई ताके व्यवहारमें निमित्त है सो प्रारब्धकर्म पुरुष भेदसे नाना प्रकार का होवे है । याते ज्ञानीके प्रारब्ध कर्म जन्य व्यवहारका नियम नहीं यह सिद्धान्तपक्ष है ।

कोई ऐसे कहैं हैं:-ज्ञानी के व्यवहार में और किसी कर्म का तो नियम नहीं है, परन्तु ज्ञानवान् की निवृत्तिका नियम है, प्रवृत्ति होवे तो देहस्थितिके हेतु, भिक्षाअशन कौपीन आच्छादन मात्र ग्रहण में प्रवृत्ति होवे है अन्य प्रवृत्ति होवे नहीं । काहेते ? ज्ञान की उत्पत्ति से प्रथम जिज्ञासाकाल में विषयन में दोषदृष्टि से वैराग्य होवे है, सो वैराग्य ज्ञान की उत्पत्ति से अनन्तर भी दोष दृष्टि तथा विषयन में मिथ्या बुद्धि से होवे है । १-अपरोक्ष रूपते मिथ्या जाने पदार्थन में सत्य बुद्धि होवे नहीं । २-दोष दृष्टिते राग होवे नहीं और प्रवृत्ति रागते होवे है । ज्ञानी के राग सम्भवे नहीं, याते प्रवृत्ति होवे नहीं ।

शरीरनिर्वाहक भोजनादिकनमें प्रवृत्ति तो रागते बिना प्रारब्धकर्मते सम्भवे है, कर्म तीनि प्रकारके हैं । १-सञ्चित २-आगामी और ३-प्रारब्ध, तिनमें:-१-भूत शरीरन में किये कर्म फलारम्भ रहित सञ्चित कहियेहैं । २-भविष्यत

कर्म आगामी कहिये हैं। ३-भूतशरीरनमें किया वर्तमान शरीर का हेतु कर्म प्रारब्ध कहिये है। तिनमें १-सञ्चित कर्म को ज्ञानते नाश होवे है। २-ज्ञानवानकूँ आत्मा में कर्तत्वभ्रान्ति नहीं याते ताकूँ आगामी कर्म का सम्भव नहीं और ३-जिस प्रारब्धकर्म ने ज्ञानी के शरीर का आरम्भ किया है सोई प्रारब्धकर्म शरीर स्थिति के हेतु भिक्षादिकनमें प्रवृत्ति करवावे है। प्रारब्धकर्म का भोग बिना नाश होवे नहीं।

और कहूँ ऐसा लिखा है-सञ्चित आगामी कर्म की न्याई ज्ञानीके प्रारब्धकर्म भी रहे नहीं, याते भोजनादिक प्रवृत्ति भी ज्ञानीकूँ सम्भवै नहीं। ताका यह अभिप्राय है, ज्ञानीकी दृष्टिते आत्मा में कर्म और ताके फल का संबंध नहीं। याते आत्मा में सर्व कर्म का निषेध अभिप्रायते प्रारब्ध का निषेध किया है और ज्ञानते पूर्व किये प्रारब्ध का ज्ञानी के शरीर कूँ भोग होवे नहीं, इस अभिप्रायतें प्रारब्धका निषेध नहीं। काहेते ? सूत्रकार ने यह लिखाहै, १-ज्ञानी के संचितकर्म का ज्ञानते नाश होवेहै। २-आगामीका सबंध होवे नहीं। ३-प्रारब्ध का भोगते नाश होवे है। याते प्रारब्ध के बलते शरीर निर्वाहक क्रिया ज्ञानी की होवे है, अधिक नहीं, परन्तु कर्म नाना प्रकार के हैं। जहाँ एक कर्म नाना शरीर का आरम्भक होवे ऐसे कर्मते रचित प्रथम शरीर में जाकूँ ज्ञान होवे तहाँ ज्ञान

वानकूँ अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये। काहेते ? फलका जाने आरम्भ किया है, सो प्रारब्ध कहिये है, ताका भोग विना नाश होवे नहीं। अनेकशरीर का हेतु कर्म एक है, तामें प्रथम शरीर जो उपजाया तामें ज्ञान हुआ तो कर्म के फलज्ञानते अनन्तर और शरीर शेष रहे है, याते ज्ञानवानको भी अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये।

जो ऐसे कहै:-प्रारब्धकर्म का फल जितने शरीर होवै उतने शरीरज्ञानकूं भी होवे हैं, प्रारब्ध के भोगते अधिक होवे नहीं याते ज्ञान भी सफल होवे है, सो बने नहीं। काहेते ? यह वेदका ढँढोरा है:-" ज्ञानवान् के प्राण अन्य लोकमें, वा इस लोकके अन्यशरीर में गमन नहीं करते" किंतु, तिसी स्थानमें अन्तःकरण इन्द्रियसहित लीन होवे हैं और प्राणगमनविना अन्यशरीरकी प्राप्ति सम्भवे नहीं। याते ज्ञानवान्कूँ प्रारब्ध शेषते और शरीर होवे है, यह कहना तो सम्भवे नहीं। किंतु समाधान है:-जहाँ अनेक शरीरका आरम्भक एक कर्म होवै, तहाँ अन्तशरीरमें ही ज्ञान होवे है। पूर्व शरीरमें ज्ञान होवे नहीं। काहेते ? अनेक शरीरका आरम्भ, प्रारब्ध ही ज्ञानका प्रतिबन्धकहै, जैसे १-विषयनमें आसक्ति, २-बुद्धिमन्दता, ३-भेदवादीवचन में विश्वास,ज्ञानके प्रति बन्धक हैं, तैसे विलक्षण प्रारब्ध भी ज्ञानका प्रति बन्धक है और ज्ञान के प्रतिबन्धक होते जहाँ ज्ञानसाधन श्रवणादिक होवे तहाँ प्रतिबन्ध दूर हुयेते

प्रथमजन्म विषे किये जो श्रवणादिक हैं तिनतें ही अन्य शरीर में ज्ञान होवे है। जैसे वामदेवने पूर्व जन्म विषे श्रवणादिक किये, तब प्रारब्ध का फल एक शरीर शेष होते ज्ञान नहीं हुआ। किंतु श्रवणादिक करते वर्तमान, शरीर का पता होयके अन्य शरीर की प्राप्ति हुयेते पूर्व जन्म में किये श्रवणादिकते गर्भ विषे ज्ञान हुआ है, याते ज्ञान से अनन्तर अन्य शरीर का सम्बन्ध होवे नहीं और वर्तमान शरीर की चेष्टा प्रारब्ध से होवे है। तहाँ जितनी चेष्टा शरीर की निर्वाहक हैं सोई होवे, राग-जन्य अधिक चेष्टा होवे नहीं। याते सर्वप्रवृत्ति रहित ज्ञानी होवे है।

इसरीति से निवृत्तिप्रधान ज्ञानी का व्यवहार होवे है। याके विषे ऐसी शङ्का हैः-मनका स्वभाव अतिचञ्चल है, निरालम्ब मनकी स्थिति होवे नहीं, किसी आलम्बते मनकी स्थिति होवे है। याते मनके किसी आलम्ब की प्राप्ति निमित्त भी ज्ञानवान् की प्रवृत्ति होवे है।

ताका यह समाधान हैः—

यद्यपि समाधि हीन पुरुष का मन चञ्चल होवे है, तथापि समाधिते मन का विजय होवे है और ज्ञानवान् समाधिविषे स्थित होवे है, याते ज्ञानवान् की प्रवृत्ति होवे नहीं। सो समाधि इन अष्ट अङ्गन में होवे हैः—

यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्या-

हार ५, धारणा ६, ध्यान ७, सविकल्पसमाधि ८, इन अष्टअङ्गनते समाधि होवे है।

अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५, ये पाँच यम कहे हैं।

शौच १, सन्तोष २, तप ३, स्वाध्याय ४, ईश्वरप्रणिधान ५ ये नियम कहिये हैं और ज्ञान समुद्र ग्रन्थ में दश प्रकार के यम और दशप्रकारके नियम कहे हैं, सो पुराणकी रीतिसे कहे हैं, वेदान्तसम्प्रदायमें यम नियम के पाँच पाँच भेद हैं।

आसनके भेद अनन्त हैं तिनमें स्वस्तिक १, गोमुख २, वीर ३, कूर्म ४, पद्म ५, कुक्कुट ६, उत्तान ७, कूर्मक ८, धनुष ९, मत्स्य १०, पश्चिमतान ११, मयूर १२, शव १३, सिंह १४, भद्र, १५, सिद्ध १६, इत्यादिक चौरासी आसन योग ग्रन्थन में लिखे हैं तिनके लक्षण भी तहाँ लिखे हैं ग्रन्थ के विस्तार भयते तथा वेदान्त में अत्यन्त उपयोगी नहीं, याते लक्षण लिखे नहीं। तिनमें भी सिंह भद्र, पद्म, सिद्ध चार आसन प्रधान हैं तिन चार में भी सिद्ध आसन अत्यन्त प्रधान है। ताका यह लक्षण है:-वामपाद की एड़ी गुदा मेढ़ के ऊपर दाविके धरे, भ्रकुटी के अन्तर दृष्टि राखे, स्थाणु की न्याईं सरल निश्चल शरीरते स्थिति को सिद्धासन कहै हैं।

कोई ऐसे कहैं हैं:-वामपाद की एड़ी सीवन में नहीं लगावै किंतु मेंढ्के ऊपर लगावै ताके ऊपर दक्षिणएड़ी धरे और पूर्वकी न्याईं यह सिद्धासन ही अति प्रधान है काहेते ? कितने आसन तो रोगनाश के हेतु हैं और कोई आसन ऐसे हैं प्राणायामादिक समाधि के अङ्ग जितने होवै हैं और सिद्धासन समाधिकाल में होवै है याते अति प्रधान है । याही कूं वज्रासन, मुक्तासन, गुप्तासन कहैं हैं:—

आसनसिद्धि से अनन्तर प्राणायाम भी करे सो प्राणायाम बहुत प्रकारका है तथापि संक्षेपते यह लक्षण हैं, १-नासाके वामछिद्रद्वारा इडानाम नाड़ीते वायुकूँ पूर्ण करे ताकूँ पूरक कहैं हैं। २-दक्षिणते त्यागे। ताकूं रेचक कहैं हैं। ३-सुषुम्णाते रोके ताकूं कुम्भक कहैं हैं, इसरीति से पूरक रेचक कुम्भककूं प्राणायाम कहैं हैं। सो दो प्रकार का है:-१-अगर्भ है। २-दूसरा सगर्भ है । १-प्रणव के उच्चारण प्राणायाम अगर्भ कहिये है, २-प्रणव के उच्चारण सहित प्राणायाम सगर्भ कहिये है।

१-विषयनते सकलइन्द्रिय के निरोधकूं प्रत्याहार कहैं हैं। २-अन्तःकरण की स्थिति, धारणा कहिये हैं। ३-अन्तर सहित अद्वितीय वस्तु विषे अन्तःकरण का प्रवाह ध्यान कहिये है।

व्युत्थानसंस्कारनका तिरस्कार और निरोध संस्का-

रनकी प्रकटता हुई, अन्तःकरणका एकाग्रतारूपपरिणाम समाधि कहिये है। सो समाधि दो प्रकार की है:-१-एक सविकल्प समाधि है। २-दूसरी निर्विकल्प समाधि है। १-ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप त्रिपुटीज्ञान सहित अद्वितीय ब्रह्म-विषे अन्तःकरण की वृत्ति की स्थिति सविकल्प समाधि कहिये है। सो सविकल्प समाधि दो प्रकार की है:-एक तो शब्दानुबुद्धि है, दूसरी शब्दाननुबुद्धि है। "अहंब्रह्मास्मि" इस शब्द करके अनुबुद्धि कहिये सहित होवे सो शब्दानुबुद्धि कहिये है। शब्दरहितकूं शब्दानु बुद्धि कहे हैं, त्रिपुटीभानरहित अखण्डब्रह्माकार अन्तःकरणवृत्तिकी स्थिति निर्विकल्प समाधि कहिये है इस रीति से सविकल्प और निर्विकल्पसमाधिके दो भेद हैं। तिनमें सविकल्प समाधि साधन है और निर्विकल्प समाधि फल है १-साधनरूप जो सविकल्प समाधि है ताके विषे यद्यपि त्रिपुटीरूप द्वैत प्रतीत होवे, तथापि सो द्वैत इस रीति से ब्रह्मरूप करके प्रतीत होवे है:-जैसे मृत्ति का विकारन कूँ मृत्तिका रूप जानते विवेकी कूँ मृत्तिका रूप विकार घटादिक प्रतीत भी होवे हैं, परन्तु मृत्तिकारूपही प्रतीत होवे हैं। तैसे सविकल्पसमाधि में त्रिपुटीद्वैत ब्रह्मरूप ही प्रतीत होवे है। २-निर्विकल्प समाधि विषे भी सविकल्प समाधि की न्याईं त्रिपुटीरूप द्वैत विद्यमान भी होवे है, तौ भी त्रिपुटी द्वैतकी प्रतीत होवे नहीं। जैसे जल में

लवणकूँ गेरे तहाँ लवण विद्यमान होवे है, परन्तु नेत्र से लवणकी सर्वथा प्रतीत होवे नहीं इस रीति से सविकल्प-निर्विकल्प का यह भेद सिद्ध हुआ:--१--सविकल्पसमाधि में ब्रह्मरूप करके द्वैत की प्रतीति और २--निर्विकल्प समाधि में त्रिपुटीरूप द्वैतकी अप्रतीति।

तैसे--सुषुप्ति से निर्विकल्प का यह भेद है, १--सुषुप्तिमें अन्तःकरणकी ब्रह्माकारवृत्तिका अभाव होवे है। २-निर्विकल्पसमाधिमें ब्रह्माकारवृत्ति तो अन्तःकरण की होवे है, ताका अभाव होवे नहीं। इस रीतिसे १-सुषुप्ति में तो वृत्ति-सहित अन्तःकरणका अभाव होवे है। २--निर्विकल्पसमाधिमें वृत्तिसहित अन्तःकरण तो होवे है ताकी प्रतीत होवे नहीं। निर्विकल्पसमाधिविषे अन्तःकरणकी जो ब्रह्माकार वृत्ति होवे है ताका हेतु सविकल्प समाधि का अभ्यास है। याते साधनरूप अष्टअङ्गन में सविकल्पसमाधि गिनी है, निर्विकल्पसमाधि फल है सो निर्विकल्प समाधि भी दो प्रकार की होवे है:-१--एक अद्वैत भावनारूप। १--दूसरी अद्वैतावस्थानरूप होवे है। १-अद्वैत ब्रह्माकार अन्तःकरणकी वृत्तिज्ञानसहित होवै सो अद्वैत भावनारूप निर्विकल्प समाधि कहिये है। २-या समाधि में अभ्यास अधिक हूयेते ब्रह्माकार वृत्ति भी शान्त होय जावे है। जाते वृत्तिरहित कूँ अद्वैतावस्थान रूप निर्विकल्पसमाधि कहैं हैं। जैसे--तप्त लोहेके ऊपर जल की बुन्द

गेरी तप्तलोह में प्रवेश करे है, तैसे अद्वैत भावना रूप-समाधि के दृढ़अभ्यासते अत्यन्त प्रकाश मान ब्रह्म विषे वृत्तिका लय होवे है। सो अद्वैतावस्थानरूपनिरविकल्प-समाधि ताका साधन है।

अद्वैतावस्थानरूपसमाधि और सुषुप्ति का इतना भेद है:-१-सुषुप्ति में वृत्ति का लय अज्ञान में होवे है, २-अद्वैतावस्थानसमाधि में वृत्तिका लय ब्रह्म प्रकाश में होवे है। सुषुप्ति का आनन्द ज्ञान आवृत है। २-समा-धिमें निरावरण ब्रह्मानन्द का भान होवे है परन्तु निरवि-कल्पसमाधि में चार विघ्न होवे हैं सो निषेध करने को कहिये हैं:-लय १, विक्षेप २, कषाय ३, रसास्वाद ४।

१-आलस्यकरके अथवा निद्राकरके वृत्तिके अभाव को लय कहै हैं। ता लयते सुषुप्ति समान अवस्था होवे है, ब्रह्मानन्दका भान होवे नहीं। याते निद्रा आलस्यादिक निमित्तते जब वृत्तिका अपने उपादान अन्तःकरणमेंलय होता दीखे तब योगी सावधान होय के निद्रादिकन को रोकिके वृत्तिकूँ जगावे। इस रीति से लयरूप विघ्न का विरोधी जो निद्रा आलस्य निरोध सहित वृत्तिका प्रवाह रूपजागरण ताकूँ गौड़पादाचार्य चित्त सम्बोधन कहै हैं।

२-विक्षेप का यह अर्थ है:-जैसे बाज वा बिल्लीते डरिके चटका गृहमें प्रवेश करे, तब भयव्याकुलकूँ गृहके अन्तर तत्काल स्थान दीखे नहीं, याते फेरि बाहिर

आयके, भय अथवा मरणरूप खेदकूँ प्राप्त होवे है, तैसे अनात्मपदार्थको दुःखहेतु जानि के अद्वैतानन्द कूँ विषय करनेवास्ते अन्तर्मुख हुई जो वृत्ति तहाँ वृत्ति का विषय चेतन अतिसूक्ष्म है, याते किञ्चित काल वृत्ति की स्थिति विना तत्काल ही चेतन स्वरूप आनन्द का लाभ नहीं होवे है, ताते वृत्ति बहिर्मुख होवे है। इसरीतिसे बहिर्मुखवृत्ति विक्षेप कहिये है, सो वृत्तिकी स्थिरताबिना स्वरूप आनन्द का अलाभ होवे है। याते अन्तर्मुखवृत्ति हुयेते भी जितने काल वृत्ति ब्रह्माकार होवे नहीं, उतने काल बाह्यपदार्थनमें दोष भावनाते वृत्ति कूँ बहिर्मुखता योगी होने देवे नहीं, किंतु वृत्तिकी अन्तर्मुखताही स्थापनकरे, विक्षेपरूप विघ्न का बिरोधी जो योगी का प्रयत्न, ताकूँ गौड़पादाचार्य ने शम कह्या है।

३-रागादिक दोषकूं कषाय कहैं हैं। यद्यपि रागादिक दो प्रकारके हैं:-एक बाह्य है और दूसरा अन्तरहै, पुत्र, स्त्री, धन आदिक जितने विषय वर्तमान होवे सो बाह्य कहिये हैं, । भूतका वा भावीका चिन्तन रूप जो मनोराज्य, सो अन्तर कहिये है। सो दोनों प्रकारके रागादिक समाधिमें प्रवृत्ति योगीविषे सम्भवे नहीं। काहेते ? चित्तकी पाँच भूमिका हैं-तिनमें एक क्षेप नाम भूमिका है, दूजी मूढ़ता, तीजी विक्षेप, चौथी एकाग्रता, पाँचवीं निरोध भूमिका है। लोकवासना, देह वासना, शास्त्रवासना

ईशते आदिलेके रजोगुणका परिणाम जो दृढ़ अनात्मवासना, ताकूं दोष कहे हैं, निद्रा आलस्यादिक तमोगुण परिणामको मूढ़ता कहे हैं। ध्यानमें प्रवृत्ति चित्तकी कदाचित् बाह्यप्रवृत्तिकूं विक्षेप कहे हैं। अन्तःकरण का अतीतपरिणाम और वर्त्तमान परिणाम समानाकार होवे, ताकूं एकाग्रता कहे हैं। यह एकाग्रता का लक्षण योगसूत्र में पातञ्जलिने कहा है, ताकाभाव यह है:-समाधि काल में योगीके अन्तःकरण में एकाग्रता होवे है सो एकाग्रता वृत्ति का अभाव रूप नहीं, किंतु जितने अन्तःकरण के परिणाम समाधिकालमें होवे हैं, सो सारे ब्रह्मकों ही विषय करे हैं याते अन्तःकरणके अतीतपरिणाम और वर्तमान परिणाम केवल ब्रह्माकार होनेते समान कार होवे हैं, ता एकाग्रताकी वृत्तिकूं निरोध कहे हैं। ये पाँचभूमिका अन्तःकरणकी हैं। भूमिका नाम अवस्थाका है, ये पाँचभूमिका सहित अन्तःकरण के ये क्रमते नाम हैं:-क्षिप्त १, मूढ़ २, विक्षिप्त ३, एकाग्र ४, निरुद्ध ५, तिनमें क्षिप्त और मूढ़ अन्तःकरणका तो समाधिविषे अधिकार नहीं। विक्षिप्त अन्तःकरणकूं अधिकार है। एकाग्र और निरुद्ध अन्तःकरण समाधिकालमें होवे है, यह योगग्रन्थनमें कहा है, रागादिक दोषसहित अन्तःकरणक्षिप्तही है, ता क्षिप्त अन्तःकरणका योगमें अधिकार नहीं। याते रागादिक दोषरूप कषाय समाधके विघ्न हैं, यह कहना सम्भवे नहीं

तथापि यह समाधान है:-बाह्य अथवा अनन्तर जो रागादिक हैं, सो तो चित्त अन्त:करण मेंही होवे हैं, ताका अधिकार भी नहीं। तो भी अनेक जन्मविषे पूर्व अनुभव किये जो बाह्य अनंतर रागद्वेष तिनके सूक्ष्मसंस्कार, विक्षिप्तादिक अन्त:करणमें भी सम्भवे है। याते रागद्वेषका नाम कषाय नहीं, किंतु रागद्वेषादिकन के संस्कार कषाय कहिये है, सो संस्कार अन्त:करण रहैं कितने दूर होवे नहीं, याते समाधिकालमें भी अन्त:करण में रहै हैं, परन्तु रागद्वेषादिकनके उद्भूतसंस्कार समाधिके विरोधी हैं, अनुद्भूत विरोधी नहीं, प्रगटकूं उद्भूत कहें हैं, अप्रगटकूँ अनुद्भूत कहे हैं, समाधि में प्रवृत्ति योगीको रागद्वेष के संस्कारन की प्रगटता होवे तो विषयन में दोष दर्शनते दाबि देवे, विक्षेप कषाय का यह भेद है:-बाह्य विषय कारवृत्तिकूं विक्षेप कहे हैं और योगी के प्रयत्नते जहाँ वृत्ति अन्तर्मुख तो होवे, परन्तु रागादिकन के उद्भूत संस्कारनते अन्तर्मुख हुई वृत्ति भी रुकि जावे, ब्रह्मकूं विषय करे नहीं, ताकूँ कषाय कहे हैं। विषय में दोष दर्शन सहित योगी के प्रयत्नते कषाय विघ्न को निवृत्ति होवे है।

४-रसास्वाद का यह अर्थ है:-योगीको ब्रह्मानन्द का अनुभव होवे है और विक्षेपरूप दु:खकी निवृत्ति का अनुभव होवे है। कहूँ दु:खकी निवृत्तिसे भी आनन्द होवे है, जैसे भारवाही पुरुषका भार उतरे से ताकूँ आनन्द होवे,

तहाँ आनन्द में और तो कोई विषय हेतु नहीं किंतु भार जन्य दुःखकी निवृत्तिसे यह कहै हैं:-" मेरे को आनन्द हुआ है।" याते दुखकी निवृत्ति भी आनन्दका हेतु है। तैसे योगीको समाधिमें विक्षेपजन्यदुःखकी निवृत्ति से जो आनन्द होवे, ताका अनुभव रसास्वाद कहिये। जो दुःख निवृत्तिजन्य आनंदके अनुभवसे ही योगी अलं बुद्धि कर लेवे तो सकल उपाधि रहित ब्रह्मानन्दाकारवृत्तिके अभाव ते ता अनुभव समाधिमें होवे नहीं, याते दुख निवृत्तिजन्य आनन्दका अनुभवरूप रसास्वाद भी समाधि में विघ्न है, वांछितकी प्राप्ति बिना भी विरोधी की निवृत्ति से आनन्द की उत्पत्ति में अन्य दृष्टान्तः-जैसे पृथ्वी में निधि होवे सो निधि अत्यन्त विषधरसर्पते रक्षित होवे, तहाँ निधि प्राप्ति से प्रथम भी निधि प्राप्तिका विरोधी जो सर्प है, ताकी निवृत्तिसे आनन्द होवे है। तहाँ सर्पनिवृत्तिके आनन्द में जो अलं बुद्धि करे तो उद्यम त्यागनेते निधि प्राप्ति का परमानन्द प्राप्त होवे नहीं। तैसे अद्वैतब्रह्मरूप निधि है, देहादिक अनात्मपदार्थन की प्रतीति रूप जो विक्षेप, सो सर्प है। विक्षेपरूप सर्पकी निवृत्ति जन्य जो अवांतर आनन्दरूपी रसका अनुभवरूप आस्वादन है सो निधिरूपी अद्वैतब्रह्म की प्राप्तिजन्य जो आनन्द है ताकी प्राप्ति का प्रतिबन्धक होनेते विघ्न कहिये है।

अथवा-रसास्वाद का यह अर्थ है:-सविकल्प समाधि

से उत्तर निर्विकल्प समाधि होवे है और सविकल्पसमाधि में त्रिपुटी प्रतीत होवे है। याते सविकल्पसमाधिमें आनंद त्रिपुटीरूप उपाधि सहित होनेते सोपाधिक कहिये है और निर्विकल्पसमाधि में त्रिपुटी प्रतीत होवे नहीं, याते निरुपाधिक आनन्द निर्विकल्पसमाधि में होवे है। इस रीति से सविकल्पसमाधि से उत्तर निर्विकल्पसमाधि के आरम्भ में सविकल्पसमाधि के सोपाधिक आनन्द को त्याग सके नहीं किंतु ताकूँ ही अनुभव करे, सो रसास्वाद कहिये है, याते विक्षेप निवृत्तिजन्य आनन्द का अनुभव, अथवा सविकल्प समाधि के आनन्द का अनुभव रसास्वाद कहिये है। सो दोनों प्रकार का रसास्वाद, निरविकल्प समाधि के परमानन्द के अनुभव का विरोधी होनेते विघ्न है, याते ताकूं भी त्यागे, ऐसे निरविकल्प समाधि में चार विघ्न होवे हैं। सो च्यारों विघ्न समाधि के के आरम्भ में होवे हैं। ज्ञानवान् की बाह्य प्रवृत्ति के असम्भव के आक्षेप की समाप्ति।

सावधानतासे च्यारों विघ्नोंकूँ रोकके समाधिमें परमानन्दको विद्वान् अनुभव करे हैं। ताहीकूं जीवन्मुक्त कहे हैं। इस रीतिसे ज्ञानी का चित्त निरालम्ब नहीं होवे है, जब प्रारब्धबलते समाधि से उत्थान होवे, तब भी समाधि में जो परमानन्दका अनुभव किया है ताकी स्मृति होवे है, याते उत्थानकाल में भी ज्ञानी का चित्त निरालम्ब

नहीं और ज्ञानवान् की जो भोजनादिकन में प्रवृत्ति होवे है सो केवल प्रारब्ध से होवे है, परन्तु भोजनादिक व्यवहारमें ज्ञानी खेद मानिके प्रवृत्त होवे है । काहेते ? भोजनादिकनमें प्रवृत्ति भी समाधिसुख की विरोधी है । जाकूँ भोजनादिक शरीरनिर्वाह की प्रवृत्ति ही खेदरूप प्रतीति होवे ताकी अधिक प्रवृत्ति सम्भवै नहीं । इस रीति से बहुत आचार्यों ने यही पक्ष लिखा है और जीवन्मुक्ति का आनन्द भी बाह्यप्रवृत्ति में होवे नहीं, किंतु निवृत्ति में होवे है । याते जीवन्मुक्ति के सुखार्थी ज्ञानवान की बाह्यप्रवृत्ति सम्भवै नहीं ।

गत आक्षेप का समाधान ।

तथापि ज्ञानवान की निवृत्ति का भी नियम कहना सम्भवै नहीं । काहेते ? निवृत्ति में अथवा प्रवृत्तिमें वेद की आज्ञारूप विधि ज्ञानीकूं है नहीं । जाते ज्ञानीके व्यवहारमें नियम होवे । याते ज्ञानी निरंकुश है, ताका व्यवहार प्रारब्धसे होवे है । १-जिस ज्ञानी का प्रारब्ध भिक्षा भोजनमात्र फलका हेतु है, ताकी भिक्षा भोजन मात्र में प्रवृत्ति होवे है । २-जाका प्रारब्ध अधिक भोग का हेतु होवे ताकी अधिक में भी प्रवृत्ति होवे है ।

जो ऐसे कहैं-जाका प्रारब्ध भिक्षा भोजनमात्र का हेतु होवे ताहीकूं ज्ञान होवे है, अधिक व्यवहारका हेतु जाका प्रारब्ध होवे ताकूं ज्ञान होवे नहीं, याते भिक्षा

भोजनादिक व्यवहारतें अधिक व्यवहार ज्ञानी का होवे नहीं। जाको अधिक प्रवृत्ति होवे सो ज्ञानी नहीं।

सो शङ्का बने नहीं। काहेतें ? याज्ञवल्क्य, जनकादिक ज्ञानी कहे हैं। सभाविजयतें धन संग्रह व्यवहार याज्ञवल्क्यका तथा राज्यपालन व्यवहार जनक का कह्या है और वासिष्ठग्रन्थमें अनेक ज्ञानी पुरुष के व्यवहार नाना प्रकारके कहे हैं। यातें ज्ञानीकी प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका नियम नहीं। यद्यपि याज्ञवल्क्य ने सभाविजयतें उत्तर, विद्वत्संन्यासरूप निवृत्ति ही धारी है और प्रवृत्ति में ग्लानिके हेतु नाना दोष कहे हैं, तथापि याज्ञवल्क्यको विद्वत्संन्यासतें पूर्वज्ञान नहीं था। यह कहना तो संभवे नहीं। किंतु ज्ञान तो प्रथम भी था, परन्तु विद्वत्संन्यासतें पूर्व जीवन्मुक्ति का आनन्द प्राप्त हुवा नहीं। यातें जीवन्मुक्तिका आनन्दवास्तें सर्वसंग्रहका त्याग किया है याज्ञवल्क्यकूं प्रारब्ध कुछ काल अधिक भोग का हेतु था और उत्तरकाल न्यूनभोग का हेतु था यातें प्रथम तो याज्ञवल्क्यकूं ग्लानि बिना अधिक भोग और आगे ग्लानितें सर्वभोगनका त्याग हुवा है। १-जनक का प्रारब्ध मरण पर्यन्त राज्य पालनादिक समृद्धि भोग का हेतु हुवा है। यातें सदा त्यागका अभाव ही हुवा है, भोगन में ग्लानि भी हुई नहीं और वामदेवादिकन का प्रारब्ध न्यून भोग का हेतु हुवा है, तिनकूं सदा भोगन में ग्लानितें प्रवृ-

त्तिका अभाव ही कह्या है और ३-वासिष्ठ में ऐसा भी प्रसङ्ग है-शिखरध्वज को ज्ञानते अनन्तर अधिक प्रवृत्ति हुई है-इस रीति से नाना प्रकार के विलक्षण व्यवहार ज्ञानी पुरुषनके कहे हैं। तिन सर्वकूँ ज्ञान समानहै और ताका फल मोक्ष भी समान है और प्रारब्ध भेदसे व्यवहारका भेद है। व्यवहार की न्यूनता से जीवन्मुक्ति के सुख की अधिकता और व्यवहार की अधिकता से जीवन्मुक्ति के सुख की न्यूनता होवे है।

ज्ञानीकूँ विदेह मोक्षत्याग वा परलोक की इच्छा होवे नहीं। कोई यह शङ्का करे है, जो जीवन्मुक्ति के सुख का त्यागके तुच्छ भोगनमें प्रवृत्त होवे सो विदेहमोक्ष कूं भी त्यागके वैकुण्ठादिक लोककी इच्छा धारि के जावेगा।

सो शङ्का बने नहीं। काहेते? १-जीवन्मुक्तिके सुखका त्याग और भोगन में प्रवृत्ति तो ज्ञानी को प्रारब्ध बलते सम्भवे है। २-विदेहमोक्षका त्याग और परलोकको गमन सम्भवै नहीं। काहेते? ज्ञानीके प्राण बाहर गमन करे नहीं याते परलोकको गमन सम्भवै नहीं और विदेह मोक्ष का त्याग भी सम्भवे नहीं। काहेते? ज्ञानते अज्ञानकी निवृत्ति होयके प्रारब्ध भोगते अनन्तर स्थूल सूक्ष्म शरीराकार अज्ञान का चेतनमें लय विदेहमोक्ष कहिये है। सो अवश्य होवे है। जो मूल अज्ञान बाकी रहै अथवा नष्ट अज्ञान की फेरि उत्पत्ति होवे, तो विदेह मोक्ष का अभाव होवे, सो

मूल अज्ञान का विरोधी ज्ञान हुयेते अज्ञान बाकी रहै नहीं और प्रमाणते नाश हुये अज्ञान की फेरि उत्पत्ति होवे नहीं । याते विदेहमोक्ष का अभाव होवे नहीं । ३-विदेह मोक्षके त्याग में तथा परलोक के गमन में ज्ञानी की इच्छा भी सम्भवै नहीं । काहेते ? ज्ञानी को इच्छा केवल प्रारब्ध से होवे है । जितनी सामग्री बिना प्रारब्ध का भोग सम्भवै नहीं उतनी सामग्रीको प्रारब्ध रचै है। इच्छा बिना भोग सम्भव नहीं । यातै ज्ञानीकी इच्छा भी प्रारब्धका फल है और अन्य लोकमें अथवा इस लोक में अन्य शरीर का संबंध ज्ञानीकूं प्रारब्धसे भी होवे नहीं। यह पूर्व इसी तरङ्ग में प्रतिपादन कर आये हैं । याते ज्ञानी कूं प्रारब्ध से विदेहमोक्ष के त्यागकी वा परलोकके गमन की इच्छा होवे नहीं ।

ज्ञानी की मन्द प्रारब्ध से जीवन्मुक्ति सुखकी विरोधि प्रवृत्ति।

जीवन्मुक्तिके सुखके विरोधी वर्तमान शरीर में अधिक भोगन की इच्छा तो भिक्षा भोजनादिकन की न्याई जनकादिकनको सम्भवै है । या स्थान मे यह रहस्य है-ज्ञानीकी बाह्यप्रवृत्ति जीवन्मुक्ति की विरोधी नहीं, किंतु जीवन्मुक्ति के विलक्षण सुख की विरोधी है । काहेते ? आत्मा नित्यमुक्त है, अविद्या से बन्ध प्रतीत होवे है । जिस कालमें ज्ञान होवे है तिसी कालमें अविद्या कृत बन्ध भ्रम

नष्ट होवे है। ज्ञान हुयते फेरि बन्धभ्रान्ति होवे नहीं, शरीर सहित कूँ बन्धभ्रम का अभाव ही जीवन्मुक्ति कहिये है। देहादिकनकी प्रवृत्तिमें तथा निवृत्तिमें ज्ञानीकूं बन्धभ्रांति आत्मा होवे नहीं। याते बाह्यप्रवृत्तिसे भी जीवन्मुक्ति दूर होवे नहीं। तो भी बाह्यप्रवृत्तिमें जीवन्मुक्तकूं विलक्षण सुख होवे नहीं। एकाग्रतारूप अन्तःकरण परिणामते सुख होवे है, सो एकाग्रतापरिणाम बाह्यप्रवृत्ति में होवे नहीं। इस रीतिसे प्रारब्ध भेदते ज्ञानी पुरुषन के व्यवहार नाना प्रकार के हैं, परन्तु जाका प्रारब्ध अधिक प्रवृत्ति एकाग्रता का विरोधी है और एकाग्रता विना निरुपाधिक आनन्द प्रतीत होवे नहीं, यह समाधि निरूपण में कही है।

ज्ञानीके व्यवहारका अनियम।

जो पूर्व कहया-"ज्ञानवान को सर्व अनात्म पदार्थन में मिथ्या बुद्धि होवे है, राग होवे नहीं, याते प्रवृत्ति सम्भवै नहीं।

सो शङ्का भी बने नहीं। काहेते? जैसे देहविषे मिथ्या बुद्धि भी ज्ञानी कूं होवे तौ भी देहके अनुकूल जो भिक्षादिक हैं तिनमें केवल प्रारब्धसे प्रवृत्ति होवे है, तैसे जिसका अधिक भोग का प्रारब्ध होवे, तिस ज्ञानी की अधिक प्रवृत्ति भी होवे है, जैसे बाजीगरके तमासे कों मिथ्या जानि के सर्व लोगन की प्रवृत्ति होवे है, तैसे सर्वपदार्थन में ज्ञानीकूं मिथ्याबुद्धि हुये से भी प्रवृत्ति सम्भवे है।

जो ऐसे कहैं, जाकूं जिस पदार्थ में दोष दृष्टि होवे ताके विषे तिस पुरुष की प्रवृत्ति होवे नहीं ज्ञानी कूं अनात्म पदार्थन में दोष दृष्टि होवे है, राग होवे नहीं। याते प्रवृत्ति सम्भवै नहीं।

सो भी बनै नहीं। काहेते ? जिस अपथ्यसेवनमें रोगीने अन्वयव्यतिरेकते दोष निश्चय किया है तो अपथ्य सेवन में प्रारब्धते जैसे रोगी की प्रवृत्ति होवे है तैसे प्रारब्धसे ज्ञानीकी सर्वव्यवहार में प्रवृत्ति दोष दृष्टि हुए भी सम्भवै है। इस रीति से ज्ञानीके व्यवहार का नियम नहीं, यह पक्ष विद्यारण्यस्वामी ने विस्तार से तृप्तिदीप में प्रतिपादन किया है, याते तत्त्वदृष्टि का व्यवहार नियम रहित है, समाधिरूप नियमकी विधि सुनिके तत्त्वदृष्टि हँसे है॥१६॥

तत्त्वदृष्टि का देशादि अपेक्षा रहित देहपात।

❋ दोहा ❋

भ्रमण करत कछु काल यों, तत्त्वदृष्टि सुज्ञान।
भोगो निज प्रारब्ध तब, लीन भये तिहिं प्रान॥१७॥

१-प्रारब्धभोगते अनन्तर ज्ञानीके प्राण गमनकरे नहीं, याते तत्त्वदृष्टिके प्राण लीन हुए यह कह्या। २-ज्ञानीके शरीरत्यागमें कालविशेष की अपेक्षा नहीं। उत्तरायण में अथवा दक्षिणायन में देहपात होवे। सर्वथा मुक्त है। ३-तैसे देशविशेषकी अपेक्षा नहीं। काशीआदिक पुनीत देशमें अथवा अत्यन्त मलिन देश में ज्ञानी का देहपात

होवे सर्वथा मुक्त है । ४ तैसे आसन विशेष की अपेक्षा नहीं । पृथ्वी में सब आसनते अथवा सिद्ध आसनते देह पात होवे । ५ तैसे सावधान ब्रह्मचिन्तन करने का अथवा रोग व्याकुल हाहाशब्द पुकारते का देहपात होवे सर्वथा मुक्त है । काहेते ? जिस काल में ज्ञानते अज्ञान निवृत्त हुआ तिसी काल में ज्ञानी मुक्त है । याते ज्ञानीकूं विदेह मोक्ष में देशकाल आसनादिकनकी अपेक्षा नहीं । जैसे ज्ञानी को देहपातमें देशकालादिकन की अपेक्षा नहीं, तैसे ज्ञान के निमित्त श्रवण में भी देशकाल आसनादिकनकी अपेक्षा नहीं और उपासककूं देश कालादिकन की अपेक्षा है । यद्यपि भीष्मादिकज्ञानी कहे हैं और भीष्म ने उत्तरायण बिना प्राण त्याग किये नहीं । तथापि भीष्मादिक अधिकारी पुरुष हैं । याते उपासकन के उपदेश वास्ते तिन्होंने कालविशेष की प्रतीक्षा करी है और वसिष्ठ भीष्मादिक अधिकारी हैं । यातेही उनके अनेक जन्म हुये हैं । काहेते ? अधिकारी पुरुषन का एक कल्प पर्यन्त प्रारब्ध होवे है । कल्प के अन्त बिना विदेहमोक्ष होवे नहीं और कल्प के भीतरतिनकूँ इच्छा प्रबलते नाना शरीर होवे हैं । तथापि आत्म स्वरूपविषे तिनकूँ जन्ममरण भ्रांति होवे नहीं । याते जीवन्मुक्त हैं, तिन अधिकारी पुरुषन का व्यवहार सम्पूर्ण अन्य के उपदेशनिमित्त और अन्य ज्ञानी के व्यवहार में कोई नियम नहीं । इस अभिप्रायते तत्त्वदृष्टि के देहपात

का देश काल आसनादिक कुछ कह्या नहीं ॥ १७ ॥

दो०-दूजो शिष्य अदृष्टि तिहिं, गङ्गातट शुभ थान।
देश इकन्त पवित्र अति, कियो ब्रह्मको ध्यान ॥१८॥
शास्त्ररीति तजि देहकूँ, पूरव कह्यों जु राह।
आय मिल्यो सो ब्रह्मते, पायो अधिक उछाह ॥१९॥

जैसे ज्ञानीकूँ देशकालकी अपेक्षा नहीं, तासे विपरीत उपासक कूँ जानर्ना उत्तम देश में उत्तम उत्तरायणादिक काल में उपासक शरीर तजै, तब उपासना का फल होवे और ज्ञानी कूँ मरण समय सावधानता से ज्ञेय की स्मृतिकी अपेक्षा नहीं, उपासककूँ मरण समय ध्येय के स्वरूपकी स्मृति की अपेक्षा है। १-जिस ध्येय का पूर्व ध्यान किया है, ता ध्येयका स्मृति मरण समय होवे, तब उपासना का फल होवे है। जैसे-ध्येय की स्मृति चाहियें, तैसे ध्येयब्रह्मकी प्राप्तिका जो मार्ग पञ्चम तरङ्ग में कहा है, ताकी भी स्मृति चाहिये। काहेते ? मार्गचिन्तन भी उपासना का अङ्ग है और ज्ञाननिमित्त श्रवणमें देशकाल आसनकी अपेक्षा नहीं। ध्यान में उत्तम देश, निरन्तर काल सिद्धादिक आसन की अपेक्षा है, याते अदृष्टि कूँ उत्तमदेश, गङ्गातीरमें स्थित और मरण समय भी योग शास्त्ररीति से देहपात कहया ॥ १८-१९ ॥

(तर्कदृष्टिका निश्चय विद्याके अष्टादश प्रस्थान)

सर्व शास्त्रनकूँ ब्रह्मज्ञान की हेतुता।

❀ दोहा ❀

तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, लहि गुरुमुख उपदेश ।
अष्टादशप्रस्थान जिन, अवगाहनकर वेश ॥२०॥
जेती वाणी वैखरी, ताको अलं पिछान ।
हेतुमुक्तिको ज्ञान लखि, अद्वयनिश्चय ज्ञान ॥२१॥

तर्क दृष्टि नाम तीसरा गुरु द्वारा उपदेश को श्रवण करके सुने अर्थमें अन्यशास्त्रन का विरोध दूर करने कूँ सर्व शास्त्रनका अभिप्राय विचार के यह निश्चय किया:– १–सकलशास्त्रनका परमप्रयोजन मोक्ष है। २–मोक्ष का साधन ज्ञान है, ३–सो ज्ञान अद्वयनिश्चय रूप है। ४–भेद निश्चय यथार्थज्ञान नहीं। ५–सारे शास्त्र साक्षात् अथवा परम्परातें ब्रह्म ज्ञान के हेतु हैं।

१–यद्यपि संस्कृत वैखरीवाणी के अष्टादश प्रस्थान हैं, तिनमें कोई कर्मकूँ प्रतिपादन करे है। २–कोई विषय सुखके उपायोंकूं प्रतिपादन करे है, ३-कोई ब्रह्मा भिन्न देवनकी उपासनाकूं बोधन करे है। ४-तैसे ज्ञाननिमित्त जो न्याय सांख्य आदिक शास्त्र हैं सो भी भेदज्ञानकोही यथार्थज्ञान कहै हैं यातें सर्वकूं अद्वैत ब्रह्म की बोधकता बने नहीं।

तथापि सकलशास्त्रके कर्ता सर्व हुये हैं और कृपालु हुये हैं। यातें तिनके मूलसूत्रन का तो वेद के अनुसार ही अर्थ है। परन्तु तिनके व्याख्यानकर्ता भ्रान्त हुये हैं।

मूलसूत्रकारनके अभिप्रायते विलक्षण अर्थ किया है। सो वेद से विरुद्ध तिन सूत्रन का अर्थ नहीं, किंतु सर्व शास्त्रन का वेदानुसारी अर्थ है। यह तर्कदृष्टि ने उत्तम संस्कारते निश्चय किया।

विद्याके अष्टादश प्रस्थान यह हैं:-चार वेद चार उपवेद, षट् वेदके अङ्ग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, इसरीति से वैखरीवाणी रूप विद्या के अठारह भेद हैं तिन्हकूं प्रस्थान कहै हैं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चार वेद हैं। तिनमें १-कितने वचन ज्ञेय ब्रह्मकूं बोधन करे हैं, २-कितने ध्येयकूं बोधन करे हैं। ३-बाकी कर्मकूं बोधन करे हैं। जो कर्मके बोधक वेदवचन हैं तिनका भी अन्तःकरण शुद्धिद्वारा ज्ञान ही प्रयोजन है और प्रवृत्ति में किसी वेदवचनका अभिप्राय नहीं किंतु निषिद्ध स्वाभाविक प्रवृत्ति से रोकने में अभिप्राय है। याते अभिचारादिक कर्म का प्रतिपादक जो अथर्ववेद है, ताका भी निवृत्ति में तात्पर्य है, जो द्वेषते शत्रुमारनेमें प्रवृत्त होवे तो गरदानसे अथवा अग्निदाहसे शत्रुकूं नहीं मारे, इस वास्ते अभिचार कर्म श्येनयागादिक कहे हैं। शत्रुमारणके निमित्त जो कर्म सो अभिचार कहिये हैं। ऐसा श्येन नाम यज्ञ है। श्येनयाग का बोधक जो वेद वचन है ताका यह अर्थ नहीं:-शत्रुमारण कामना वाला श्येनयागमें प्रवृत्त होवे। किन्तु शत्रु-

मरण की जाकूँ जामना होवे सो श्येनयागते भिन्न जो गरदानादिक शत्रुमारण के उपाय हैं तिनमें प्रवृत्त होवे नहीं । इस रीति से द्वेषते प्राप्त जो गरदानादिक तिनतें निवृत्ति में श्येनयागबोधक वचन का अभिप्रायहै, प्रवृत्ति में नहीं । काहेते ? प्रवृत्ति द्वेषते प्राप्त है, जो अन्यते प्राप्त होवे तामें वाक्य का अभिप्राय होवे नहीं। इस रीतिसे सारे अथर्ववेदका निवृत्ति में तात्पर्य है और तीन वेदनमें कर्म बोधक वाक्यन का अन्तःकरणशुद्धि द्वारा ज्ञान में उपयोग स्पष्ट है ।

चार उपवेदों का भी ब्रह्मज्ञान में तात्पर्य ।

चार उपवेद हैं:-आयुर्वेद १, धनुर्वेद २, गान्धर्ववेद ३, अथर्ववेद ४, तिनमें १--आयुर्वेद के कर्ता ब्रह्मा, प्रजापति अश्विनीकुमार, धन्वन्तरि आदिक हैं-चरक, वाग्भटादिक चिकित्साशास्त्र आयुर्वेद है और वात्स्यायन कृत कामशास्त्र भी आयुर्वेद के अन्तर्भूत है। काहेते ? कामशास्त्रका विषय वाजीकरण स्तम्भनादिक भी चरकादिकों ने कथन किये हैं । तिस आयुर्वेद का वैराग्य में ही अभिप्राय है । काहेते ? आयुर्वेदकी रीति से रोगादिकन की निवृत्ति हुयेते भी फेरि रोगादिक उत्पन्न होवे हैं। याते लौकिक उपाय तुच्छ हैं, इस अर्थमें आयुर्वेद का अभिप्राय है और औषधदानादिकनते पुण्य होयके अन्तःकरणकी शुद्धि द्वारा भी ज्ञान में उपयोग है ।

तैसे २-विश्वामित्रकृत धनुर्वेद में आयुधनिरूपण किये हैं। आयुध चार प्रकारके हैं:-मुक्त १, अमुक्त २, मुक्ता-मुक्त ३, यन्त्रमुक्त ४। चक्रादिक हाथसे फेंकिये सो मुक्त कहिये हैं, खड्गादिक अमुक्त कहिये हैं, बरछी आदिक मुक्तामुक्त कहिये हैं शर गोलं आदिक यन्त्रमुक्त कहिये हैं, इसरीतिसे चारप्रकारके आयुध हैं। तिनमें मुक्त आयुधकूँ अस्त्र कहे हैं। अमुक्तकूँ शस्त्र कहे हैं। इन चारप्रकारके आयुधनके ब्रह्मा, विष्णु, पशुपति, प्रजापति, अग्नि, वरुण आदिक देवता, मन्त्र कहे हैं क्षत्रिय कुमार अधिकारी कहे हैं और तिनके अनुसारी ब्राह्मणादिक भी अधिकारी कहे हैं, तिनके चार भेद कहे हैं:-पदाति १, रथारूढ २, अश्वारूढ ३, गजारूढ ४ और युद्धमें शकुन मङ्गल कहे हैं, इतना अर्थ धनुर्वेद के प्रथम पाद में कहा है और आचार्यका लक्षण तथा आचार्यते शस्त्रोंके ग्रहण की रीति धनुर्वेद के द्वितीयपाद में कही है और गुरु-सम्प्रदायते प्राप्त हुए शस्त्रों का अभ्यास, तथा मन्त्रसिद्धि देवतासिद्धिप्रकार तृतीयपादमें कहा है। सिद्ध हुए मन्त्रनका प्रयोग चतुर्थपादमें कहा है इतना अर्थ धनुर्वेद में है, सो ब्रह्मा प्रजापतिआदिकनते विश्वामित्र को प्राप्त हुवाहै। ताने प्रगट किया है और विश्वामित्रते धनुर्वेद उत्पन्न नहीं हुवा, दुष्टचौरादिकनते प्रजापालन क्षत्रिय का धर्म-बोधक धनुर्वेद है, याते ताका भी अन्तःकरण शुद्ध करके

ज्ञानद्वारा मोक्ष में ही अभिप्राय है । तैसे ३—गांधर्व वेद भरतने प्रगट किया है तामें स्वर, ताल, मूर्छनासहित गीत, नृत्य वाद्यका निरूपण विस्तार से किया है । देवता की आराधना निर्विकल्पसमाधिकी सिद्धि, गान्धर्व वेद का प्रयोजन कह्या है । याते ताका भी अन्तःकरणकी एकाग्रता करके ज्ञानद्वारा मोक्षही प्रयोजनहै । तैसे अथर्व वेद भी नानाप्रकारका हैः—नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपकार शास्त्र से आदि लेके धनप्राप्ति के उपाय बोधक शास्त्र अर्थवेद कहिये है । धनप्राप्तिके सकल उपायन में निपुण पुरुषको भी भाग्यबिना धनकी प्राप्ति होवे नहीं, याते अर्थवेदका भी वैराग्य में ही तात्पर्य है । तैसे चार वेदन के षट् अङ्ग हैंः—शिक्षा १, कल्प २, व्याकरण ३, निरुक्त ४, ज्योतिष ५, पिंगल ६, ये छःवेदके उपयोगी होनेते वेदके अङ्ग कहिये है । तिनमें १-शिक्षाका कर्त्ता पाणिनि है । वेदके शब्दनमें अक्षरों के स्थान का ज्ञान और उदात्त अनुदात्त स्वरितका ज्ञान शिक्षाते होवे है । वेदन के व्याख्यान रूप जो अनेक प्रतिशाख्यादि नाम ग्रन्थ हैं, सो भी शिक्षाके अन्तर्भूत हैं ।

२-वेदबोधितकर्म अनुष्ठानकी रीति कल्पसूत्रनते जानी जावे है । यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण ऋत्विक कहिये हैं तिनके भिन्न भिन्न करने योग्य जो कर्म तिनके प्रकार के बोधक कल्पसूत्र हैं । तिन कल्प सूत्रनके कर्त्ता कात्या

यन आश्वलायनादिक मुनि हैं । याते कल्पसूत्र भी वेद के उपयोगी होनेते वेद के अङ्ग हैं ।

३-व्याकरणते वेदके शब्दनकी शुद्धता का ज्ञान होवे है, सो व्याकरण सूत्ररूप अष्टाध्यायी पाणिनि नाम मुनिने की है । कात्यायन और पतञ्जलि ने तिन सूत्रन के व्याख्यानरूप वार्त्तिक और भाष्य किये हैं और जो व्याकरण हैं, तिनमें वेद के शब्दन का विचार नहीं, याते पुराणादिकनमें उपयोगी तो हैं परन्तु वेदके उपयोगी नहीं और पाणिनिकृत हैं । व्याकरण वेदके शब्दन की सिद्धि करे है, याते वेदका अङ्ग है ।

४-यास्क नाम मुनि ने त्रयोदश अध्यायरूप निरुक्त किया है। तहाँ वेद के मन्त्रन में अप्रसिद्धपदन के अर्थ बोधके निमित्त नाम निरूपण किये हैं । याते वैदिक अप्रसिद्ध पदनके अर्थज्ञान में उपयोगी होनेते निरुक्त भी वेद का अंग है, संज्ञा का बोधक जो पञ्चाध्याय रूप निघण्टुनाम ग्रन्थ यास्कने किया है, सो भी निरुक्त के अन्तर्भूत है और अमरसिंह हेमाद्रिकन ने किये जो संज्ञा के बोधक कोष हैं सो सारे निरुक्त के अन्तर्भूत हैं ।

५-आदित्य गर्गादिकृत ज्योतिष भी वेद का अङ्ग है। काहेते ? वैदिककर्म के आरम्भमें काल का ज्ञान चाहिये सो कालज्ञान ज्योतिषते होवे है, याते वेद का अङ्ग है।

६-पिंगल मुनिने सूत्र अष्टमअध्यायते छन्द निरूपण किये हैं, तिनते वैदिकगायत्री आदि के छन्दन का ज्ञान होवे है याते पिंगलकृत सूत्र भी वेदके अङ्ग हैं। तैसे यह षट् जो वेदके अङ्ग हैं तिनमें वेदमें उपयोगी जो अर्थ नहीं, ताका प्रसङ्गते निरूपण किया है। प्रधानतासे नहीं। याते वेदका जो प्रयोजन है सोई षट्अङ्गन का प्रयोजन है, पृथक् नहीं।

पुराण अष्टादश हैं। व्यास नाम मुनिने किये हैं, तिनके ये नाम हैं-ब्राह्म १, पाद्म २, वैष्णव ३, शैव ४, भागवत ५, नारदीय ६, मार्कंडेय ७, आग्नेय ८, भविष्य९, ब्रह्मवैवर्त १०, लैंग ११, वाराह १२, स्कन्द १३, वामन १४, कौर्म १५, मात्स्य १६, गारुड़ १७, ब्रह्मांड १८ ये अष्टादशपुराण व्यासने किये हैं। तैसे कालिकापुराणादिक और बहुत हैं सो उपपुराण हैं। कोई उपपुराण भी अष्टादश कहे हैं सो नियम नहीं, उपपुराण बहुत हैं। भागवत दो हैं:-एक तो वैष्णव भागवत है और दूसरा भगवती भागवत है, दोनों की समान संख्या अष्टादशसहस्र है और दोनोंके द्वादश स्कंध हैं परन्तु तिनमें एक पुराण है, दूसरा उपपुराण है दोनों व्यास कृत हैं याते दोनों प्रामाणिक हैं, जैसे व्यासने पुराण किये हैं तैसे उपपुराण भी कोई व्यासने किये हैं, कोई उपपुराण पराशर आदिक अन्य सर्वज्ञमुनियोंने किये हैं, याते उपपुराण

भी प्रमाण हैं, जो उपनिषदनका अर्थ है, सोई उपपुराण सहित पुराणों का अर्थ है, यह वार्ता आगे प्रतिपादन करेंगे। तैसे—

न्याय और वैशेषिक सूत्रनका फल।

पञ्चअध्यायरूप न्यायसूत्र गौतम ने किये हैं। तिनमें युक्ति प्रधान है, युक्तिचिन्तनते पुरुषकी तीव्र बुद्धि होवे है, तब मनन करनेविषे समर्थ होवे है, याते युक्तिप्रधान न्याय सूत्रनका भी मननद्वारा वेदान्तजन्य ज्ञान ही फल है और कणाद नाम मुनिने दश अध्यायरूप वैशेषिक सूत्र किये हैं तिनका भी न्याय में अन्तर्भाव है। तैसे—

धर्ममीमांसा और ब्रह्ममीमांसाभेदते दो मीमांसा और सङ्कर्षणकाण्डका फल।

मीमांसाके दो भेद हैं:-१ एक धर्ममीमांसा २ दूसरी ब्रह्ममीमांसा १-धर्ममीमांसाकूँ पूर्वमीमांसा कहै हैं २-ब्रह्ममीमांसाकूँ उत्तरमीमांसा कहै हैं, १-धर्ममीमांसा के द्वादशअध्याय हैं, जैमिनि नाम ताका कर्त्ता है। कर्म अनुष्ठानकी रीति तामें प्रतिपादन करी है। याते विधिसें कर्ममें प्रवृत्ति धर्ममीमांसा का फल है। कर्म में प्रवृत्ति से अन्तःकरणशुद्धि, तासे ज्ञान और ज्ञानते मोक्ष इस रीतिसे धर्ममीमांसाका मोक्ष फल है और धर्ममीमांसा के द्वादशअध्यायन में आपस में अर्थका भेद है सो कठिन है, याते लिखा नहीं और सङ्कर्षणकाण्ड पञ्चमअध्यायरूप

जैमिनि ने किया है, ताके विषे उपासना कही है, ताका भी धर्ममीमांसा में अन्तर्भाव है। तैसे—

२-ब्रह्ममीमांसा के च्यारि अध्याय हैं, ताके कर्त्ता व्यास हैं, एक एक अध्यायके चार चार पाद हैं। तहाँ १-प्रथम अध्याय में यह अर्थ है:-सारे उपनिषद्वाक्य ब्रह्मकूँ प्रतिपादन करे हैं अन्यकूँ नहीं और २-उपनिषद्-वाक्यनका मन्द बुद्धि पुरुषन कूँ आपस में विरोध प्रतीत होवे है, ताका परिहार द्वितीय अध्याय में कह्या है और ३-ज्ञान तथा उपासनाके साधनका विचार तृतीय अध्याय में कह्या है। यह ब्रह्ममीमांसा रूप शारीरक शास्त्र ही सर्व शास्त्रन में प्रधान है। मुमुक्षुकूँ यही उपादेय है ताके व्याख्यानरूप ग्रन्थ यद्यपि नाना हैं, तथापि श्रीशङ्करकृत भाष्यरूप व्याख्यान ही मुमुक्षुकूँ श्रोतव्य है, ताका ज्ञान द्वारा मोक्षफल स्पष्ट ही है। तैसे-

मनु, याज्ञवल्क्य विष्णु, यम, अङ्गिरा, वशिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त, शातातप, पराशर, गौतम, शङ्ख, लिखित, हारीत, आपस्तम्ब, शुक्र, बृहस्पति, व्यास, कात्यायन, देवल, नारद इत्यादिक सर्वज्ञ हुये हैं। तिन्होंने वेद के अनुसार स्मृति नाम ग्रन्थ किये सो धर्म शास्त्र कहिये हैं। तिनमें वर्णआश्रम के कायिक वाचिक मानसिक धर्म कहे हैं। तिनका भी अन्तःकरण शुद्धि द्वारा ज्ञान होयके मोक्ष ही प्रयोजन है। तैसे व्यास ने महाभारत और

वाल्मीकिने रामायण किया है, तिनका भी धर्मशास्त्र में अन्तर्भाव है और देवता आराधन के निमित्त जो मन्त्र शास्त्र है, ताका भी धर्म शास्त्र में अन्तर्भाव है। देवता आराधन का अन्तःकरण शुद्धि प्रयोजन है। तैसे सांख्य शास्त्र, योगशास्त्र, वैष्णवतन्त्र, शैवतन्त्रादिक भी धर्म शास्त्र के अन्तर्भूत हैं, काहेते ? इन में भी मानस धर्म का निरूपण है। तहाँ-

सांख्य शास्त्र का फल।

सांख्यशास्त्र षट् अध्यायरूप कपिल ने किया है ताके प्रथम अध्यायमें विषय निरूपण किये हैं। द्वितीय अध्याय में महतत्त्व अहङ्कारादिक प्रधान के कार्य्य कहे हैं। तृतीय अध्याय में विषयनते वैराग्य कह्या है। चौथे अध्याय में विरक्तोंकी आख्यायिका कही है। पञ्चम अध्याय में परपक्ष का खण्डन कह्या है। छठें अध्यायमें सारे अर्थका संक्षेप ते संग्रह किया है। प्रकृतिपुरुष के विवेकते पुरुषका असङ्ग ज्ञान सांख्यशास्त्र का प्रयोजन है ताका भी त्वम्पद के लक्ष्य अर्थ शोधन द्वारा महावाक्य जन्य ज्ञान में उपयोगी होनेते मोक्ष ही फल है। तैसे-

योगशास्त्र का फल और शारीरिक उक्तिसे अविरोध।

योगशास्त्र चारपादरूप है। पतञ्जलि ताका कर्ता है। सो पतञ्जलि शेषका अवतार है। एक ऋषि सन्ध्याउपासन करते थे उनकी अञ्जलि में प्रगट होय के पृथ्वी में

पड्या है, याते पतञ्जलि नाम कहिये है, ताने १–शरीर का रोगरूपी मल दूर करने वास्ते चिकित्सा ग्रन्थ किया है और २–अशुद्ध शब्द का उच्चारणरूपी जो वाणी का मल है, ताके नाशकूँ पाणिनिव्याकरण का भाष्य किया है। तैसे ३--विक्षेपरूप अन्तःकरणका मल है, ताके नाश को योगसूत्र कियेहैं। तहाँ १ प्रथम पादमें चित्तवृत्तिका निरोधरूप समाधि और ताके साधन, अभ्यास वैराग्यादिक कहे हैं। तैसे २-विक्षिप्तजिनकूँ समाधि के साधन, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ समाधि के अङ्ग द्वितीय पाद में कहे हैं, तृतीयपाद में योग की विभूति कही है, चतुर्थपाद में योग का फल मोक्ष कह्या है। इस रीतिसे योगशास्त्रभी ज्ञानसाधन, निदिध्यासनकूँ संपादनद्वारा मोक्ष का हेतु है और शारीरकसूत्र में जो सांख्ययोगका खण्डन किया है, सो तिनके व्याख्यान जो उपनिषदनसे विरुद्ध किये हैं तिन का खण्डन किया है, सूत्रन का नहीं। तैसे न्याय वैशेषिकका खण्डन भी विरुद्धव्याख्यान का है, तैसे नारदने पञ्चरात्र नाम तन्त्र किया है, तामें वासुदेव में अन्तःकरण स्थापन कह्या है, ताका भी अन्तःकरणकी स्थिरतासे ज्ञान द्वारा मोक्षही फल है। सारे वैष्णवग्रन्थ पञ्चरात्रके अन्तर्भूत हैं। सो पंचरात्र धर्मशास्त्रके अन्तःभूत हैं। तैसे पाशुपततन्त्र में पशुपति आराधन कह्या है,

ताका कर्ता पशुपति है, ताका भी अन्तःकरण की निश्चलताद्वारा मोक्षसाधन ज्ञान फल है।

शैवग्रन्थादिकन का फल और वाममार्ग।

जो शैवग्रन्थ हैं, सो सारे पशुपततन्त्रके अन्तभूत हैं। तैसे गणेश, सूर्य, देवी की उपासना बोधक ग्रन्थन का चित्तकी निश्चलता द्वारा ज्ञान फल है और सर्व का धर्म शास्त्र में अन्तर्भाव है। परन्तु-देवी की उपासना के बोधक ग्रन्थनमें दो सम्प्रदाय हैं-एक दक्षिण सम्प्रदाय, दूसरा उत्तर सम्प्रदाय है। उत्तरसम्प्रदायको वाममार्ग कहैं हैं, तिनमें १-दक्षिण सम्प्रदाय की रीत से जिन ग्रन्थन में देवी की उपासना है सो तो धर्म शास्त्र के अन्तभूत है और २-वाममार्ग जिन ग्रन्थन में है, सो धर्मशास्त्र से विरुद्ध हैं, याते अप्रमाण हैं। यद्यपि वामतन्त्र शिव ने किया है, तथापि सकलशास्त्र और वेद से विरुद्ध है, याते प्रमाण नहीं, जैसे विष्णु के बुद्ध अवतार ने नास्तिक ग्रन्थ किये हैं, सो वेद विरुद्ध हैं। याते प्रमाण नहीं। तैसे शिव कृत वामतन्त्र भी अत्यन्त विरुद्ध हैं। मदिरादिक अत्यन्त अशुद्ध पदार्थन का तामें ग्रहण लिखा है और उत्तमपदार्थनके जो नाम हैं सोई मलिनपदार्थन के नाम लोकवचन के निमित्त कहे हैं। मदिरा का नाम तीर्थ, मांसका नाम शुद्ध, मदिरा पात्रका नाम पद्मा, प्याज का नाम व्यास, लशुनका नाम शुकदेव, मदिरा कारी कला-

लका नाम दीक्षित कहै हैं, तैसे वेश्या सेवी कर्मचारी चाण्डालीसेवी आदिककूँ प्रयागसेवी काशीसेवी कहैं हैं। और भैरवीचक्र में स्थित जो चाण्डालादिक हैं तिनको ब्राह्मण कहै हैं और अत्यन्त व्यभिचारिणी कूँ यं गिनी, और व्यभिचारीकूँ योगी कहै हैं ऐसे अनेक प्रकारसे निषिद्ध तिनका व्यवहार है। पूजन के समय अनेक दोषवती स्त्रीको उत्तमशक्ति कहैं हैं, जाति चाण्डाली अतिव्यभिचारिणी रजस्वला स्त्री को देवी बुद्धि से पूजन करे हैं ताका उच्छिष्ट मदिरापान करे हैं और अधिकमदिरापान से जो वमन कर देवे, ताकूँ पृथ्वी में नहीं गिरने देवे हैं किन्तु आचार्य सहित दूसरे सावधान भक्षण करे हैं वमनको भैरवी कहै हैं और स्त्रीकी योनि में जिह्वा लगाय के मन्त्रनका जप करे हैं, मदिरा १, मांस २, मैथुन ३, मुद्रा ४, मन्त्र ५, इन पाँच मकारका भोग मोक्षनिमित्त सेवन करे हैं, प्रथमा द्वितीयादिक तिन मकारन के अप्रसिद्ध नामनते व्यवहार करे हैं। इसते आदि लेके वामतन्त्र का सकल व्यवहार इस लोकते और परलोकते भ्रष्ट करे है। इसी कारणते कर्णच्छेदी योगी और अवधूत गुसांई, तैसे अनेक सन्यासी और ब्राह्मणादिक वाममार्ग को सेवन करे हैं तो भी लोक वेद निंदित जानके गुप्त राखे हैं, अधिक क्या कहैं वामतन्त्र की रीति सुनके म्लेच्छके भी रोमांच होय जावें ऐसा निन्दित वामतन्त्र है, सर्वंगी जो अभक्षण करे हैं सो सारे नि-

न्दितमार्ग वामतन्त्र कहे हैं। अति नीच व्यवहार लिखने योग्य नहीं। याते विशेष प्रकार लिखा नहीं, सर्वथा वामतन्त्र त्यागने योग्य है।

तैसे-नास्तिकमत भी त्यागने योग्य है। नास्तिकन के षट् भेद हैं-माध्यमिक १, योगाचार २, सौत्रान्तिक ३, वैभाषिक ४, चार्वाक ५, दिगम्बर ६, ये छः वेदकूं प्रमाण नहीं माने हैं। तिनका आपस में विलक्षण सिद्धान्त है, १-माध्यमिक शून्यवादी हैं। २-योगाचार के मत में सारे पदार्थ विज्ञान से भिन्न नहीं। विज्ञान ही तत्त्व है, सो विज्ञान क्षणिक है। ३-सौत्रान्तिक मत में विज्ञान का आकार बाह्य पदार्थ विषय बिना होवे नहीं, याते विज्ञानते बाह्यपदार्थन का अनुमान होवे है, इस भाँति से सौत्रान्तिक मतमें अनुमान प्रमाण के विषय बाह्य-पदार्थ हैं। प्रत्यक्ष नहीं और स्थिर नहीं किंतु सारे पदार्थ क्षणिक हैं और ४-वैभाषिक मतमें बाह्यपदार्थ क्षणिक तो हैं परन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण के विषय हैं, इतना भेद है। ये चार मत सुगत के हैं। ५-चार्वाक मत में पदार्थ क्षणिक नहीं, परन्तु तिसके मत में देह आत्मा है और ६-दिगम्बर मत में देह आत्मा नहीं, देह से आत्मा भिन्न है परन्तु जितना देह का परिमाण होवे इतना आत्मा का परिमाण है। इस रीत से इनका आपस में मत का भेद है और भी इनकी आपस में

मतकी विलक्षणता बहुत है, परन्तु सारे वेद के विरोधी हैं, याते नास्तिक हैं, इसी कारणते तिन के मतका उपपादन और खण्डन विशेष करके लखा नहीं ।

इस रीति से-साहित्य आदिक के तात्पर्य पूर्वक तर्क दृष्टि का सारग्राही निश्चय ।

वाममार्ग और नास्तिकमतके ग्रन्थ यद्यपि संस्कृत वाणीरूप हैं, तथापि वेदबाह्य हैं, याते वेदके अनुसारी विद्या के प्रस्थान अष्टादश ही है और मम्मट आदिकने जो साहित्यग्रन्थ किये हैं तिनका भी कामशास्त्रमें अंतर्भाव है, तैसे सकल काव्यनका भी किसी का कामशास्त्र में किसी का धर्म शास्त्र में अन्तर्भाव है, इसी रीति से अष्टादश विद्या के प्रस्थान सारे ब्रह्मज्ञान द्वारा मोक्ष के हेतु हैं, कोई साक्षात् ज्ञान का हेतु है, कोई परम्पराते ज्ञानका हेतु है, यह तर्कदृष्टिने सकलशास्त्रन का अभिप्राय निश्चय किया, यद्यपि उत्तरमीमांसाबिना सारे शास्त्र जिज्ञासुकूँ हेय हैं, यह शारीरक मे सूत्रकार भाष्यकारने प्रतिपादन किया है, याते अन्य शास्त्र भी मोक्ष के उपयोगी हैं यह कहना सम्भवै नहीं, तथापि सारग्राही दृष्टि से तर्कदृष्टिने यह सार निश्चय किया ॥ २० ॥ २१ ॥

तर्कदृष्टिका एकविद्वानसे मिलाप ।

दोहा—मुनिप्रसिद्ध विद्वान पुनि, मिल्यो आप तिहि जाय ।
निश्चय अपनो ताहि तिहिं, दीनो सकल सुनाय ॥२२॥

गुरुद्वारा सुने अर्थ में बुद्धि की स्थिरता के निमित्त सकलशास्त्रनका अभिप्राय विचारा, तो भी फेरि सन्देह हुवा:-जो शास्त्रन का अभिप्राय मैं निश्चय किया सोई है अथवा अन्य अभिप्राय है। काहेते ? तर्क दृष्टि कनिष्ठ अधिकारी कह्या है, याते बारम्बार कुतर्कते सन्देह होवे है। ताकी निवृत्ति वास्ते अन्य विद्वान के निश्चयते अपने निश्चयकी एकता करनेको गया ॥ २२ ॥

❀ दोहा ❀

तर्कदृष्टि के बैन सुन, सो बोल्यो बुध सन्त।
जो मोसू तें यह कह्यो, सोई मुख्य सिद्धान्त ॥२३॥
संशय सकल नशाय यों, लख्यो ब्रह्म अपरोक्ष।
जग जान्यो जिन सब असत, तैसे बंध रु मोक्ष ॥२४॥

ज्ञानीकू इच्छा का सम्भव और इच्छा के अभाव का अभिप्राय।

दोहा-शेष रह्यो प्रारब्ध यों, इच्छा उपजी येह।
चलितत्कालहि देखिये, जननिजनक युत गेह ॥२५॥

ज्ञानी का सकल व्यवहार अज्ञान की न्याईं प्रारब्ध से होवे है, यह पूर्व कहा है, याते इच्छा सम्भवे है और कहूँ शास्त्र में ऐसा लिखा है:-ज्ञानीकूँ इच्छा होवे नहीं, ताका यह अभिप्राय नहीं, ज्ञानीका अन्तःकरण पदार्थ की इच्छा-रूपपरिणामकूँ प्राप्त होवे नहीं काहेते ? अन्तःकरणके इच्छा दिक सहज धर्म हैं और अन्तःकरण यद्यपि भूतन के

सत्त्वगुण का कार्य कह्या है, तथापि रजोगुण तमोगुण सहित सत्त्वगुण का कार्य है, केवल सत्त्वगुण का नहीं । याते सत्त्वगुण का कार्य होवे, तो चलस्वभाव अन्तःकरण का ही हुवा चाहिये । तैसे कामक्रोधादिक राजसी वृत्ति, और मूढ़तादिक तामसीवृत्ति, किसी अन्तःकरण की नहीं हुई चाहिये, याते केवल सत्त्वगुण का अन्तःकरण कार्य नहीं । किंतु अप्रधान रजोगुण तमोगुण सहित, प्रधान सत्त्वगुण वाले भूतनते अन्तःकरण उपजे है याते अन्तः-करणमे तीनों गुण रहै हैं । सो तीनों गुण भी पुरुषन के जितने अन्तःकरण हैं तिन में सम नहीं, किंतु न्यून अधिक हैं । याते गुणों की न्यूनता अधिकता से सर्व के विलक्षण स्वभाव हैं । इसरीति से तीनों गुणों का कार्य अन्तःकरण है ।

जितने अन्तःकरण रहैं, उतने रजोगुण का परिणाम-रूप इच्छा का अभाव बने नहीं । याते ज्ञानी को इच्छा होवे नहीं, ताका यह अभिप्राय है:-अज्ञानी और ज्ञानी दोनों को इच्छा तो समान होवे है, परन्तु १-अज्ञानी तो इच्छादिक आत्मा के धर्म जाने है और २-ज्ञानीको जिस काल में इच्छादिक होवे हैं, तिसकाल में भी आत्मा के धर्म इच्छादिकनको जाने नहीं किंतु काम, सङ्कल्प संदेह राग, द्वेष, श्रद्धा, भय, लज्जा, इच्छादिक अन्तःकरणके परिणाम हैं याते अन्तःकरणके धर्म जाने हैं । इसरीति

से इच्छादिक होवे भी हैं, आत्माके धर्म इच्छादिक, ज्ञानी को प्रतीत होवे नहीं, याते ज्ञानी में इच्छा का अभाव कह्या है, तैसे मन वाणी तनुसे जो व्यहार ज्ञानी करै सो सारा ज्ञानी को आत्मा में प्रतीत होवे नहीं, किंतु सारी क्रिया मन वाणी तनुमें है और " आत्मा असङ्ग है " यह ज्ञानी का निश्चय है, याते सर्व व्यवहार कर्त्ता भी ज्ञानी अकर्त्ता है इसी कारणतें श्रुति में यह कह्या है:-ज्ञानते उत्तर किये जो वर्त्तमान शरीर में शुभअशुभ कर्म, तिनके फल पुण्य पाप का सम्बन्ध होवे नहीं " प्रारब्ध बलते अज्ञानी की न्याई सर्व व्यवहार और ताकी इच्छा सम्भवे है ॥ २५ ॥

शुभसन्तति राजा का प्रसङ्ग ।

शुभसन्तति नाम राजाकूँ त्याग के तीनों पुत्र निकसे, तहाँ पुत्रनकी कथा कही, अब पिताका प्रसङ्ग कहै हैं:-

पुत्र गये लखि गेहते, पितु चित उपज्यो खेद ।
सूनो राज न तिनि तज्यो, नहिं यथार्थ निर्वेद ॥२६॥

पुत्र गृहते निकसे, तब राजाकूँ तीव्र वैराग्य के अभावते तिनके वियोगका दुःख हुवा, तैसे मन्दवैराग्य हुवा है, याते विषय भोगका सुख होवै नहीं, और बाहिर निकसनकी इच्छा करी, सो पुत्रन के निकसनेते सूना राज्य छांड़ि सकै नहीं, याते भी दुःख हुवा जो तीव्रवैराग्य होता तो सूना राज्य भी त्याग देता सो वैराग्य तीव्र हुवा नहीं

किंतु मन्द हुआ है, याते त्याग सकै नहीं और भोगनमें आसक्ति नहीं, याते उभयथा खेद ही है, यथार्थ निर्वेद कहिये तीव्रवैराग्य नहीं, मन्दवैराग्य का फल उपास्यकी जिज्ञासा कहै हैं:—

❋ चौपाई ❋

शुभसंततिपितुसोबड़भागो। भयो प्रथम तिहिंमन्द विरागा॥
जिज्ञासा उपजी यह ताकूँ। देव ध्येयको ध्याऊँ जाकूँ॥२७॥
पंडित निर्णय करन बुलाये। यथा योग्य आसन बैठाये॥
प्रश्न कियो यह सबके आगे। अस को देव न सोवे जागे॥
पुरुषारथहित जनजिहिंजाचें। भक्त मानके मन में राचें॥
सुनि यह पृथ्वीपतिकी बानी। इकतिन में बोल्यो सुज्ञानी॥

विष्णुउपासक का उत्तर-चौपाई।

सुनु राजा तुहि कहूँ सुदेवा। शिवविरंचि लागे जिहिसेवा॥
शङ्खचक्रधारी हितकारी। पद्म गदाधर परउपकारी॥३०॥
मङ्गलमूर्ती विष्णु कृपालू। निज सेवक लखिकरत निहालू॥
शक्त गणेश सूर शिव जेहैं। सब आज्ञा ताकी में तेहैं॥
भारत सकलग्रन्थ यह भाखै। पद्मपुराण तापिनी आखै॥

तापिनी कहिये नृसिंहतापिनी, रामतापिनी, गोपालतापिनी उपजनिषद्।

❋ चौपाई ❋

विष्णुरूपते उपजतसबही। पुनै भीर आवें तिहि तबही ३२॥
विविध वेषको धरि अवतारा। सब देवन कूँ देत सहारा॥

यातें ताकी कीजे पूजा। विश्नु समान सेव्यनहिं दूजा॥३३॥
विश्नुभक्त शिवउत्तम कहिये। तो भी सेव्यस्वरूप न लहिये॥
रूपअमङ्गलशिवको शवसम। ध्यानकरें नहिताकोयों हम॥
शव कहिये मुर्दा, ताके सम अमंगल ॥३४॥

❁ चौपाई ❁

राखत डमरूगज चर्म कपाला। धरें आप किहिं करें निहाला॥
ताको पूत गणेशहु तैसो। रूप विलक्षण नर पशु जैसो॥
शठहठतें ध्यावत जो देवी। ता समरूप धरत तिहि सेवी॥
तियनिंदितअशुचीनपवित्रा। अरुगुणगिनेनजात विचित्रा॥
कपटकूटको आकर कहिये। पराधीन जिन तन्त्र न लहिये॥
ऐसो रूप जु चाहिये जाकूँ। सो सेवहिं नर खर सम ताकूँ॥
भ्रमतफिरै निशिदिनयहभानू। रहतननिश्चलक्षण इकथानू॥
भ्रमतो फिरै उपासक ताको। तिहिसमान सेवक जो जाको॥
आन देव यातें सब त्यागें। सेवनीय इकहरि नित जागें॥
पूजा ध्यानकरत विधि जो हैं। नारद पञ्चरात्र में सो हैं॥

विश्नु को त्याग के प्रसिद्ध जो च्यारि उपासना हैं, तिन एक एक का निषेध कियेतें भी स्मार्त्तउपासना का भी निषेध किया, काहेतें ? पाँचो देवनको समबुद्धि करके उपासे ताको स्मार्त्त उपासना कहे हैं। शिव आदिक च्यार देवनको विश्नुकी समता निषेधनेतें स्मार्त्त उपासना का निषेध भी अर्थ किया है॥ ३५-३६॥

❀ चौपाई ❀

शिवसेवकमुनिसुनितहिबैना । क्रोधसहित बोल्योचलनैना ॥
सुन राजन वाणी इक मोरी । जामें वचन प्रमाण करारी ॥
शिव समान आनको कहिये । मागेदेन जाहि जो चहिये ॥
सर्वविभूति हरको देमाँगी । धरतविभूति आप नितत्यागी ॥
चर्म कपाल हेतु इहिं धारे । सम नहिं उत्तम अधम विचारे ॥
नग्न रहत उपदेशत येही । नहि विराग सम सुख है केही ॥

वैष्णव चर्म कपालादिक निन्दित वस्तु का धारण आक्षेप किया, ताका यह समाधान है:-महादेवका सर्व-पदार्थन में समबुद्धि है । द्वितीयपादका अन्वय यह है-सम विचारे, उत्तम अधम नहीं विचारे ॥४०-४२ ॥

❀ चौपाई ❀

सदावर्त्त ऐसो दे भारी । काशी पुरी मरे नर नारी ॥
सो सायुज्यमुक्तको जावे । गर्भवास सङ्कट नहिं पावे ॥
शिवसमाननरनारीतेसब । लहत सुदिव्यभोग सगरे तब ॥
करत आप अद्वय उपदेशा । तजत लिंग यों ब्रह्मप्रवेशा ॥
ऊँच नीच रञ्चहु नहि देखै । मुक्ती सबकूँ दै इक लेखै ॥
शिवसमानराजनको दाता । भक्तअभक्त सबनको त्राता ॥
विश्नुसुभाव सुन्यो हम ऐसो । जगमें जन प्राकृत है तैसो ॥
त्राता भक्त अभक्त न त्राता । यह प्रसिद्ध सब जगमें नाता ॥
हर सेवक हर सेव्य बखान्यो । रामचन्द्र रामेश्वर मान्यो ॥
स्कंधपुराण व्यासबहुभाख्यो । हर सेवक हरसेव्यहि राख्यो ॥

कह्यो जु भारत पद्म पुराना। सबदेवनतैं हरि अधिकाना॥
भारततातपर्यनहिं देख्यो। जो अप्पय दाक्षितबुध लेख्यो॥

वैष्णवने यह कह्याः-" भारतादिक ग्रन्थन में, विष्णु सर्व देवनका पूज्य कह्या है, सो बनै नहीं, काहेते? भारतग्रन्थ का तात्पर्य देखते शिव की ईश्वरता प्रतीत होवे है, यह अप्पयदीक्षितनाम विद्वान्नने सकल पुराण इतिहास का तात्पर्य लिख्या है, तहाँ भारतमें यह प्रसंग हैः-अश्वत्थामा ने नारायण अस्त्र और आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया, तब बहुत सेना का तो संहार भी हुवा, परन्तु पंचपांडवोंमें कोई मरचा नहीं, तब रथको त्याग के धनुर्वेद और आचार्य को धिक्कार करता वन को चल्या तहाँ व्यासभगवान् ताको मिले और कह्या-"हे ब्राह्मण! तू आचार्य और वेदको धिक्कार मति कहु, यह अर्जुन कृष्ण दोनों नर नारायणरूप हैं, इन्हों ने शिवका पूजन बहुत किया है, याते इनकी भक्ति के अधीन हुवा त्रिशूली महादेव इनके रथ के आगे रहे हैं, याते इन दोनों के ऊपर प्रयोग किये अनेक शस्त्रअस्त्रनको सामर्थ्य को महादेव नाश कर देवै है" इस भारत प्रसंगते नारायणरूप कृष्णकी विभूति महादेव की कृपाते उपजी है, यह सिद्ध होवे है याते विष्णु चरित्र के प्रति पादक जो ग्रन्थ हैं, सो शिवकी अधिकता को प्रतिपादन करें हैं, काहेते? तिन ग्रन्थन में विश्नु सेव्य कह्या है। विश्नु

भारत प्रसङ्गते शिव का भक्त है। याते जिस शिव की भक्ति ते विष्णु सेव्य होवे है, शिव ही परम सेव्य है इस रीत से अप्पयदीक्षित ने सकल वैष्णव ग्रन्थन का प्रतिपाद्य शिव कह्या है ॥ ४३ ॥

❀ चौपाई ❀

शिवसबकोंप्रतिपाद्यबखान्यों। भक्तन में उत्तम हरि मान्यों ॥
ईशदेव पदसब में कहिये। महत सहित इक शिव में लहिये॥
महादेव,महेश शिवकूँ कहे हैं औरनकूँ देवईशकहेहैं।४६।

❀ चौपाई ❀

शिवतेंभिन्नअशिव जोकहिये।तिहिंतजिशिवकल्याणहिलहिये
जलशायीजिहिंनामबखान्यो। सोजगैयहमिथ्यागान्यो।५०।
कल्याणकूँ शिव कहे हैं। ताते भिन्न अशिव है, ताका यह अर्थ सिद्ध हुवा-शिवते भिन्न और देवता अशिव कहिये अकल्याणरूप हैं, तिन अकल्याणरूप देवतन को त्याग के कल्याण रूप शिवको उपासे ॥ ५० ॥

❀ चौपाई ❀

विशलखजवसबकूँ उपज्योडर।निर्भयकियेसकलगरधरगर ॥
जाको पूत गणेश कहावे। विघ्नजाल तत्काल नशावे ॥५१॥
कारज में कारण गुण होवे। यों शिव विघ्न मूलते खोवे ॥
जन्ममरण दुख विघ्न कहावै। तिहिंसमूलशिवध्याननशावै॥
सेवन योग्य सदा शिव एका। जागे सहित समाधि विवेका॥
तन्त्रपाशुपतरीतजुगावै। त्यों पूजनकर ध्यान लगावै।५३॥

नारद पञ्चरात्र मत झूठो । यह परिमल परसङ्ग अनूठो ॥
याते शिव सेवा चित लावै । पुरुषारथ जो चहै सुपावै ॥५४॥

नारदपञ्चरात्रका मत सूत्रभाष्य में खण्डन किया है । ताके अनुसारी रामानुजआदिक नवीनवैष्णवन का मत कल्पतरुकी टीका परिमलमें खण्डन कियाहै ॥५१-५४॥

❋ चौपाई ❋

शिवको पूत गणेश बतायो । कारणगुण कारज में गायो ॥
सुनगणेशकोपूजकबोल्यो । असत्कियकोपसिंहासनडोल्यो ॥
रामलछन दोनों ये झूठे । वचन सत्य मम कहत अनूठे ॥
शिवको पूत गणेश बतावै । पराधीनता तामें गावै ॥५६॥
कहूँप्रसङ्गसुनहुइकऐसो । लिख्यो व्यास भगवतमुनि जैसो ॥
चढ़ेत्रिपुरमारनको सारे । हरहर सहित देवअधिकारे ॥५७॥
नहीं गणेश को पूजन कीनो । त्रिपुर न रञ्चहुतिन छीनो ॥
पुनिपछितायमनायगणेशा । त्रिपुरविनाश्यो रह्योनलेशा ॥
भये समर्थकिये जिहिपूजा । सेवनयोग सु इक नहिं दूजा ॥
रामपूत दशरथको जैसे । विघ्नहरणशिवकोसुततैसे ॥५८॥
व्यास गणेशपुराण बनायो । सबको हेतु गणेश बतायो ॥
हरहर विधि रविशक्तिसमेता । तुण्डीतेंउपजतसबतेता ॥६०॥
करतध्यान जिहिजनजनमनमें । नाशतविघ्नप्रधानगननमें ॥
विघ्नहरणयोंजागतनिशदिन । भक्त सहित सेवहुतिहिअनुछिन

देवीभक्त का उत्तर ।

हेतु गणेशशक्तिकोसुनके । भगत भागवत उचरयो गुनिके ॥

सुन राजन वाणी मम साँची । तीनों सकल कहत ये काँची ॥
भगत भागवत कहिये भगवती को भगत ॥६२॥

❀ चौपाई ❀

सूने देव शक्ति बिन सारे । मृतक देह सम लखि हत्यारे ॥
शक्तहीन असमर्थ कहावें । सो कैसे कारज उपजावें ॥६३॥
जिनबहु शक्ति पासनधारी । ताते भये सकल अधिकारी ॥
हरहर सूर गणेश प्रधाना । तिनमें शक्त दिखियत नाना ६४
शक्तिलोकमें भाषत जाकूँ । रूप भगवती को लख ताकूँ ॥

भगवती के दो रूप हैं–१–सामान्य और २–विशेष। १–सब पदार्थनमें अपना कार्य करने की जो सामर्थ्यरूप शक्ति, सो भगवती का सामान्यरूप है और २–अष्ट-भुजादिकसहित मूर्ति विशेषरूप है. सामान्य रूपशक्तिके संख्यारहित अनन्त अंशहैं, जामें शक्तिके न्यूनअंश होवे सो अल्पशक्ति होवे है, असमर्थ कहिये है। जामें शक्तिके अधिकअंश होवें, सो समर्थ कहिये है। विष्णु, शिवआ-दिकनमें शक्तिके अंश अधिक हैं, याते अधिक समर्थ कहिये हैं, इसरीतसे भगवतीका सामान्यरूप जो शक्ति, ताके अंशनकी अधिकतासे विष्णु, शिव, गणेश, सूर्यकी महिमा प्रसिद्ध है । और शक्तिरहित होवे तो जैसे प्राण विना शरीर अमङ्गलरूप होवे है, तैसे सारे देव हत्यारे कहिये अमङ्गलरूप होय जावें, याते जिस शक्तिकी अधि-कतासे देवनकी महिमा प्रसिद्ध है, सो महिमा शक्ति की

है, तिन देवनकों नहीं, विष्णुशिव आदिकननें भगवती के सामान्यरूप शक्तीकी अधिक उपासना करी है, याते तिन में शक्ती के अंश अधिक हैं यह पूर्व ग्रन्थन में भगवती भक्तका अभिप्राय है ॥ ६३-६५ ॥

जैसे भगवतीके निराकाररूप शक्ती के अनन्त अंश हैं तैसे साकाररूप के भी अनन्त अंश हैं। तिन साकार अंशनमें कालीरूप प्रधानहै और माहेश्वरी, वैष्णवी, गौरी गणेशी आदिक भी प्रधान अंश हैं, विष्णु कूँ भगवती की उपासनाते, वैष्णवी नाम भगवतीके अंश का लाभ, तैसे अन्यदेवनको भगवती के उपासनाते निज २ माहेश्वरी आदिक अंशन का लाभ हुवा है। तिनमें भी भगवती के विष्णु शिव दोनों प्रधान भक्त हैं। काहेते ? ध्याता को ध्येयरूप की प्राप्ति उपासना की परम अवधि है। विष्णु शिवकूं उपासनासे ध्येयरूप की प्राप्ति हुइ है, याते प्रधान उपासक हैं। यह अढ़ाई चौपाई से प्रतिपादन करे हैं—

❀ चौपाई ❀

लाखकरोरमात्रिकागणपुनि। तंत्रग्रन्थलखअंशमकलगुनि॥
काली ताको अंश प्रधाना। माहेश्वरी आदि लख नाना॥
हरहरब्रह्मसकलतिहिध्यावै। निजर अंश कृपा तिह पावै॥
ध्येय रूप ध्याता है जबहीं। सिद्ध उपासना लखिये तबहीं॥
असउपासना हरिअरुहरकी। नारी मूर्ति धरी तजिनरकी॥

❋ दोहा ❋

अमृत मथन प्रसङ्ग में, हरि मोहिनी स्वरूप ।
अर्ध अङ्ग शिव को लसै, देवी रूप अनूप ॥६८॥

मथन करके अमृत प्रगट किया, तब सुर असुर के विवाद मेटनेमें विष्णु असमर्थ हुये, तब अपने उपास्य रूप भगवती का ऐसा एकाग्रचित्त से ध्यान किया, जाते आप विष्णु उपास्यरूपकूँ प्राप्त हुआ । ता रूप के माहात्म्यसे असुर भी ताके अनुकूल हुये, तैसे शिव ने भी समाधिके ऐसा भगवती का ध्यान किया, जाते अर्ध विग्रह शिवका उपास्यरूप हुआ । कदाचित विक्षेपते समाधि का अभाव होवे है याते सारा विग्रह शिव का उपास्य रूप नहीं । इस रीतसे सारे देव भगवतीके उपासक हैं ॥६८॥

सो उपासना दो रीत से कही है, दक्षिणाम्नायते, और उत्तर आम्नायते पूर्व दक्षिण आम्नाय कह्या, आगे उत्तर आम्नाय कहे हैं—

❋ चौपाई ❋

भक्त भगवती के हर हर हैं । इन सम कौन उपासन कर हैं ॥
तदपि महा माया जो ध्यावै । तुरत सकल पुरुषारथ पावै ॥
नहिं साधन जगमैं अस औरा । उपजै भोग मोक्ष इक ठौरा ॥
भक्त भगवतीको जो जग में । भोगै भोग न आवत भग में ॥
शिवकृत तन्त्ररीत यहगाई । भक्त भगवती अति सुखदाई ॥
पञ्चमकार नताजिये कबहूँ । जिनहिं सनातन सेवत सबहूँ ॥

कृष्णदेव बलदेव सुज्ञानी । प्रथमा पिवत सदा ज्यूँ पानी ॥
और प्रधान पुरातन जेते । सेवत सकल मकारहि तेते ॥
तिन सेवनकी जो विधि सारी । शिवनिजमुखभाषी उपकारी॥
शिवको वदन धरे जो मनमें । लहै सुभाग मोक्ष इक तनु में॥
ग्रन्थ भागवत व्यास बनायो । उप पुराण काली समझायो ॥
भक्त भगवती की इक गाई । पूजा विधि सगरी समुझाई ॥
ध्याता सकल भगवती के हैं । हरहर सूर गणेश जिते हैं ॥
सकल पिये प्रथमा मतवारे । पूजत शक्ति मग्न मन सारे ॥
जगजननी जागे इक देवी । परमानन्द लहै तिहिं सेवी ॥
सुन भक्त भगवतको यश सुनि । क्रोधसहितबोल्योइकमुनिपुनि॥
सुन राजन एक वाणी मोरी । भाषूं झूठ न शपथ करोरी ॥
अतिपापिष्ठ नीचमत याको । श्रवण सनेह सुन्यो तें जाको ७७
अवगुण जिते बखानत जगमें । तेगिनियत गुणगणया मगमें ॥
मद्य मली नहिं तीरथ राखत । शुद्ध नाम आमिष को भाखत ७८
कहत और यों सब विपरीता । शम्भु तन्त्र सेवो मति रीता॥
दक्षिण सम्प्रदाय जो दूजी । यद्यपि श्रेष्ठ अनेकन पूजी ७९
तौ भी बिन भानू सब अन्धे । इन सबके मन जिनमें बन्धे ॥
करत भानु सिगरो उजियारो । ता बिन होत तुरत अँधियारो ८०
और प्रकाशक जगमें जे हैं । अंश सबै सूरज के ते हैं ॥
भानु समान कौन हितकारी । भ्रमत आप परहित मतिधारी ॥
कालअधीनहोतसबकारज । ताहि त्रिविध भाषत आचारज ॥
वर्त्तमान भावी अरु भूता । सूरज क्रिया करत यह सूता ॥

या विधिमंडल भानुतें उपजैं । भस्म होत सब जबवहकुपिजैं ॥
भानुरूप द्वै भाँतिपिछानहु । निराकार साकारहि जानहु ८३
निराकार परकाश जु कहिये । नामरूप में व्यापक लहिये ॥
अधिष्ठानसबकोसोएका । जगविवर्त है जिहिं अविवेका ८४
'अहंभानु' असवृत्ति उदयजब । तामैंप्रगटिविनाशततमसब॥

सूर्य के दो रूप हैं:-निराकार प्रकाश और साकार-प्रकाश । तिन दोनोंमें निराकार प्रकाश सारे नामरूप में व्यापक है । जाकूँ वेदान्ती भाँतिशब्द करके व्यवहार करे हैं । सो निराकारप्रकाशरूप जो सूर्य का सामान्यरूप है । सो सारे जगत्का अधिष्ठानहै । ताके अज्ञानतें जगतरूपी विवर्त उपजे है । सोई निराकार प्रकाश अन्तःकरण की वृत्तिमें प्रतिबिम्ब सहित ज्ञान कहिये है । 'अहं भानु' ऐसी अन्तःकरणकी वृत्ति प्रकाशके प्रतिबिंब सहित होवे, तब अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा जगत्की निवृत्ति होवे है॥८३-८५॥

॥ चौपाई ॥

पुनि साकाररूप यह ताको । होय चाँदना दिन में जाको ॥
ताके अंश और बहुतेरे । चन्द तारका दीप घनेरे ॥८६॥
यातें द्वैविध भानु बतायो । ज्ञेय ध्येयको भेद जनायो ॥
वेदसकलयाहीकूँ भाखत । रूपप्रकाशसत्यनिहि आखत॥८७॥

निराकार साकार भेदतें भानुके दो रूप हैं । तिनमें निराकाररूप ज्ञेय है, साकाररूप ध्येय है । याहीकूँ वेदान्तन में निर्गुण सगुणभेदतें दो प्रकारका ब्रह्म कहे हैं ॥८६-८७॥

❋ चौपाई ❋

जामेंलेशनतमकोकबही । लखितिहिंजगजन जागतसबही ॥
कबहुँ न सोवे सोयों जागै । ध्यान करत नाको तम भागै ॥
औरहि जागत भाषत सगरे । राजनजानि झूठते झगरे ८९

उक्तमत के अनुवाद पूर्वक स्मार्त्त मत ।

ऐसे पाँच उपासक बोले । निजगुण अवगुण परके खोले ॥
पण्डितऔरअनेकजुआये ।भिन्नभिन्ननिज मतसमुझाये ९०

जैसे पाँच उपासक परस्पर विरुद्ध वचन बोले तैसे अनेकपण्डित निज २ बुद्धिके अनुसार विरुद्ध ही बोले, जैसे इन पाँचों का परस्पर विरुद्धमत है, तैसे स्मार्त्त जो पण्डित, पाँचों देवनमें भेदबुद्धि करे नहीं, ताका मत भी इन सबते विरुद्ध है। काहेते ? वैष्णव का यह मत है- विष्णु समान और देव नहीं, सारे विष्णुके भक्त हैं और विष्णुके जो राम कृष्ण नारायण आदिक नाम हैं, तिनके समान जो अन्यदेवनके नामकूँ जाने सो नामापराधी है। ताकूँ रामादिक नाम उच्चारणका यथार्थफल होवे नहीं, तैसे शैवमत में शिवसमान अन्य देव नहीं और शिवके नाम उच्चारण का फल विष्णु नाम उच्चारणते होवे नहीं। इस रीतसे सर्व के मतमें अपने अपने उपास्यदेव के समान अन्यदेव नहीं और स्मार्त्तमत में सारे देव सम हैं याते ताके मत में भी पाँचों बातें विरुद्ध हैं ॥ ९० ॥

षट्शास्त्रों की परस्पर विरुद्धता।

१ सांख्य, २ पातञ्जल, ३ न्याय, ४ वैशेषिक, ५-पूर्वमीमांसा। ६ उत्तरमीमांसा, इन षटशास्त्रनका मतभी परस्पर विरुद्ध है। काहेते? १-सांख्यशास्त्र में ईश्वर का अङ्गीकार नहीं, किंतु निरपेक्ष प्रकृति पुरुषके विवेक ज्ञानते मोक्ष माना है, और २-योग (पातञ्जलशास्त्र) में ईश्वरका अङ्गीकार, समाधिते मोक्ष माना है, यह विरोध है। ३-४-न्यायमतमें चार प्रमाण और वैशेषिकमत में दो प्रमाण यह विरोध है। तैसे न्यायवैशेषिकका और भी आपस में बहुत विरोध है, जिज्ञासा कूँ अपेक्षित नहीं, याते लिखा नहीं। ५-तैसे पूर्वमीमांसा में ईश्वर का अङ्गीकार नहीं। मोक्षरूप नित्यसुखका अङ्गीकार नहीं, किंतु कर्मजन्य विषे सुख ही पुरुषार्थ है और ६-उत्तर मीमांसा में ईश्वर व मोक्षका अङ्गीकार, विषयसुख पुरुषार्थ नहीं और उत्तर-मीमासाका मत या ग्रन्थ में स्पष्ट ही है, सर्वशास्त्रन का मत याते विरुद्ध है औरन में भेदवाद है, यामें भेद का खण्डन और अभेदनका प्रतिपादनहै, इस रीत से सकल शास्त्रनके सिद्धान्त परस्पर विरुद्ध हैं।

तर्कदृष्टिका पिता से विलाप-चौपाई।

वचन विरुद्ध सुने जब राजा। यहसंशयउपज्योतिहिंताजा॥
इनमेंकौनसत्यबुधभाखत। युक्ति प्रमाण सकल सम आखत॥
संशयशोकदुखितयोंजियमें। कोउपास्ययह लख्योनहियमें॥

चिन्ता हृदय हुई यह जाकूं । निजसन्देहसुनाऊँ काकूँ ॥६२॥
शास्त्रनिपुणपण्डित जगजेते। सुने विरुद्ध वकत यह तेते ॥
यों चितवतबहुकालभयोजब । तर्कदृष्टितिहिं आयमिल्योतब ॥

❋ दोहा ❋

मिले परस्पर ते उभै, पुत्र पिता जिहिं रीति ।
कर प्रणाम आशिष दुहुँ, आसन लहे सप्रीति ॥

तर्कदृष्टिका पिता प्रति उपदेश—दोहा ।

निज पितु चिन्तासहित लखि,सुत बोल्यो यह बात ।
का चिन्ता चित रावरे, मुख प्रसन्न नहिं तात ॥६५॥

❋ चौपाई ❋

शुभसंततिधनकीखनिखानी। तिहिंभाषीनिजसवकलदहानी ॥
चितचिन्ताकोहेतुसुनायो । कोउउपास्ययहतत्त्वनपायो॥६६॥
तर्कदृष्टि सुन पितुके बैना। बोल्यो शुभसन्तति सुख दैना ॥
कारणरूपउपास्यपिछानहु। ताकेनामअनन्तहिजानहु॥६७॥
कारजरूपतुच्छकरिवितजिये । यह सिद्धान्त वेदको भजिये ॥
रचे व्यास इतिहास पुराना । तिनमैंयही मतो नहिं नाना६८
मतमें मर्म न लखत जुपंडित। करत परस्पर मततेखण्डित॥
नीलकण्ठपण्डितबुधनीको। कियोग्रन्थ भारतको टीको६६॥
तिनयहप्रथमहिलिख्योप्रसङ्गा। श्रुतिसिद्धान्तकह्योजोचङ्गा ॥

पुराणउक्त स्तुति और निन्दा के
करनेमें व्यास का अभिप्राय ।

यद्यपि सकल पुराण का कर्त्ता एक व्यास है, ताने

स्कन्दपुराण में शिवकूँ स्वतन्त्रतादिक ईश्वर धर्म कहे, और अन्यदेवनकूँ शिव कृपाते सारी विभूति की प्राप्ति कही। याते जीवधर्म कहे। तैसे विष्णुपुराण, पद्मपुराणमें विष्णुकूं ईश्वरता कही, तैसे किसीकूँ पुराण में किसी को उपपुराण में, विष्णुशिवते भिन्न जो गणेशादिक हैं, तिन को ईश्वरता कही। इस रीति से व्यासवाक्यन में विरोध प्रतीत होवे है।

ताका यह समाधान करे हैं:—सारे ही ईश्वर हैं। जो प्रकरण में अन्य देवकी निन्दा है, ताकी निन्दा करके तिसकी उपासनात्यागमें व्यास का अभिप्राय नहीं, किंतु वैष्णव-पुराण में शिवादिकन की निन्दा विष्णु की स्तुति करके विष्णु की उपासनामें प्रवृत्ति की हेतु है। तैसे शिवपुराण में विष्णु आदिकनकी निन्दा भी। तिनकी उपासना के त्यागअर्थ नहीं, किंतु तिनकी निन्दा शिवकी उपासना में प्रवृत्तिके अर्थ है, जो एक प्रकरण में अन्यकी निन्दा त्याग वास्ते होवे, तो सर्व की उपासना का त्याग होवेगा याते अन्यकी निन्दा एककी स्तुतिके अर्थ है, त्याग अर्थ नहीं।

दृष्टान्तः—वेदमें अग्निहोत्रके दो काल कहे हैं। एक तो सूर्यउदय से प्रथम और दूसरा सूर्य उदयते अन्तर काल कह्याहै, तहाँ उदयकालके प्रसङ्गमें अनुदयकालकी निन्दा करी है और अनुदयकालके प्रसङ्गमें उदयकाल की निन्दा करी है। तहां निन्दाका तात्पर्य त्याग में होवे तो, दोनों

कालमें होमका त्याग होवेगा और नित्य कर्म का त्याग सम्भवे नहीं, याते उदयकाल की स्तुति वास्ते अनुदय कालकी निन्दा है और अनुदयकालकी स्तुतिवास्ते उदयकालकी निन्दा है। तैसे एक देवकी उपासनाके प्रसङ्गमें अन्यकी निन्दाका एकही स्तुति में तात्पर्य है, अन्यकी निन्दा में तात्पर्य नहीं।

पाँच देवनके उपासकनको सम ब्रह्मलोक की प्राप्ति।

जैसे शाखाभेदतें कोई उदयकाल में होम करे है, कोई अनुदय काल में करे है, फल दोनोंकूँ समान होवे है, तैसे इच्छा भेदतें पाँचों देवन में जाकी उपासना करे तिन सबतें ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवे है। तहाँ भोग भोगके विदेह मोक्ष होवे है। यद्यपिविष्णु आदिकन की उपासनातें वैकुण्ठलोकादिकन की प्राप्ति पुराणमें कही है ब्रह्मलोक की नहीं, तथापि उत्तम उपासक विदेह मुक्ति के अधिकारी देवयानमार्गतें सारे ब्रह्मलोक कूँ ही जावे हैं। परन्तु एक ही ब्रह्मलोक वैष्णव उपासककूं वैकुण्ठ रूप प्रतीत होवे है और लोकवासी सारे तिसकूं चतुर्भुज पार्षदरूप प्रतीत होवे हैं और आप भी चतुर्भुज मूर्ति होवे है। तैसे शैवउपासककूं ब्रह्मलोक ही, शिवलोक प्रतीत होवे है। तिस लोकवासी सारे त्रिनेत्रमूर्ति अपने सहित प्रतीत होवे हैं। इसरीत से सर्व उपासक कूँ ब्रह्मलोक ही अपने उपास्य का लोक प्रतीत होवे है। काहेते ? यह

नियम है, देवयान मार्गविना अन्य मार्गते जो जावें हैं, तिनका संसारमें आगमन होवे है और देवयानमार्ग एक ब्रह्मलोकका है, याते विदेहमोक्ष के योग्य उपासक सारे ब्रह्मलोककूँ जावें हैं, तिस ब्रह्मलोक में ऐसी अद्भुतमहिमा है:-उपासक की इच्छा के अनुसार सारी सामग्री सहित वह ब्रह्मलोकही तिनकूँ प्रतीत होवे है, इस रीत से पाञ्चों देवन के उपासकन कूँ समफल होवे है। याके विषे एक परमात्मामें नाना नाम रूप सम्भवे हैं।

यह शङ्का होवे है:-पाञ्चों देवन के नाम रूप भिन्न भिन्न कहे हैं और ईश्वर एक है, एक ईश्वरके नामरूप सम्भवै नहीं। ताका यह समाधान है:-परमार्थसे नाम रूप कोई परमात्मामें है नहीं, मन्दबुद्धिकूँ उपासना वास्ते नाम, रूपरहित परमात्मा के मायाकृत-कल्पित नाम रूप कहे हैं। याते एकपरमात्मामें मायाकृत कल्पित नामरूप नाना सम्भवे हैं। इसरीतसे सर्वपुराण वाक्यन का विरोध दूर होवे है। और सारे पुराणनका कारण और कार्य ब्रह्मके उपासनाकी क्रमते उपादेयता और हेयतामें तात्पर्य है।

पुराण वाक्यन में विरोधशङ्का का मुख्य समाधान तो यह है, विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य इतने आदिलेके जितने एक एकके नाम हैं, सो सारे कारणब्रह्म के नाम हैं और कार्यब्रह्मके भी सारे नाम हैं। जैसे मायाविशिष्ट कारणकूँ ब्रह्म कहे हैं और हिरण्यगर्भ कार्य है, ताकूँ भी

ब्रह्म कहे हैं। इस रीत से कारण ब्रह्म कूं विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य पद बोधन करे है। और कार्यब्रह्मकूं भी पाञ्चों पद बोधन करे है। ऐसे पाञ्चों पदन के जो नारायण, नील कण्ठ, विघ्नेश, शक्ति भानु इत्यादिक अनन्त पर्याय हैं। सो सारे कारण ब्रह्म और कार्य ब्रह्म दोनोंकूं बोधन करें हैं। कहूँ कारणब्रह्मको, कहूँ कार्य-ब्रह्मको प्रसङ्गते बोधन करें हैं। जैसे सैन्धव पद—अश्व, लवण दोनोंको करे है। भोजन प्रसङ्गमें सैन्धवपद लवण को बोधन करे है। और गमन प्रसङ्गमें सैन्धवपद अश्वको बोधनकरे है। वैष्णवपुराण में विष्णु नारायणादिक पद, कारण ब्रह्मके बोधक हैं, शिव, गणेश, सूर्यादिकपद कार्य ब्रह्मके बोधक हैं, याते १—वैष्णवग्रन्थनमें विष्णुकी स्तुति और शिवादिकनकी निन्दासे व्यासका यह अभिप्राय है, कारणब्रह्म उपास्य है और कार्य ब्रह्म उपास्य नहीं। २—तैसे स्कन्दपुराणादिक शैवग्रन्थन मे शिव महेशादिकपद कारणब्रह्मके बोधक हैं। और विष्णु गणेश देवी सूर्या-दिक पद कार्यब्रह्म के बोधक हैं, याते तिनमें भी कारण ब्रह्म की स्तुति और कार्यब्रह्म की निन्दा है। ३—तैसे गणेशपुराण में गणेशपद कारणब्रह्म का वाचक और विष्णुशिवादिक पद कार्य ब्रह्मके वाचक हैं, याते कारण की स्तुति, कार्यकी निन्दा है। ४—तैसे कालीपुराण में काली, देवी आदिकपद कारणब्रह्मके बोधक और विष्णु, शिव, गणेश सूर्यादिक पद कार्य ब्रह्म के बोधक, याते

कालीपदबोध्य कारणकी स्तुति और विष्णुशिवादिकपद बोध्य कार्यब्रह्मकी निन्दा हैं। ५-तैसे सौरपुराणमें सूर्य भानुपदबोध्य कारण ब्रह्म है। ताकी स्तुति और अन्य पदबोध्य कार्यकी निन्दा है। इसरीत से सकलपुराणमें कार्यकारणकी संज्ञारूप संकेतका तो भेदहै, उपादेय हेय जो अर्थ ताका भेद नहीं। सकलपुराणमें १-कारणब्रह्म की उपासना उपादेय है और २-कार्य की उपासना हेय है। याते सारे पुराण एककारण ब्रह्मकूं उपास्यता बोधन करें हैं। तिनका आपसमें विरोध नहीं।

मूर्त्तिप्रतिपादन का अभिप्राय।

यद्यपि चतुर्भुज, त्रिनेत्र, सतुण्ड अष्टभुजादिक मूर्ति मायाके परिणाम हैं और चेतन के विवर्त हैं, याते कार्य हैं और तिनकी भी उपासना कही है। तथापि तिन चतुर्भुजादिक मूर्तियोंका जो मायाविशिष्ट कारण है, तासे विचार कियेते भेद नहीं। याते तिन आकारोंका बाधिके कारणरूपते तिनकी उपासना में तात्पर्य है। काहेते ? आकार कार्य है, याते तुच्छ है और कारण सत्य है और जाकी मन्दप्रज्ञा आकारमें ही स्थित होवे, सो शास्त्र उक्त आकार की ही उपासना करे, तासे भी प्रज्ञा निश्चल होयके कारणब्रह्मकी उपासना में स्थिति होवे है।

कारण ब्रह्म की उपासना इस रीत से कही है:-ब्रह्म जगत् का कारण है, सत्यकाम है, सत्य सङ्कल्पहै, सर्वज्ञ है, स्वतन्त्र है, सर्वका प्रेरक है, कृपालु है, ऐसे ईश्वरके

धर्मनकूं चिंतनकरे मूर्तिचिंतनमें शास्त्र का तात्पर्य नहीं। और अनेक मूर्ति जो शास्त्रमें लिखी हैं, सो उपासनाके निमित्त नहीं, किंतु सारी मूर्ति कारणब्रह्मकी उपलक्षण हैं। जो वस्तु जाके एकदेशमें होवे और कदाचित् होवे और व्यावर्तक होवे, सो उपलक्षण कहिये है। जैसे-"काक वाला देवदत्तका गृह है।" या वाक्यमें देवदत्त के गृहका काक उपलक्षण है। काहेते ? गृहके एकदेश में काक होवे है और कदाचित होवे है। सर्वदा नहीं, और अन्य गृहते देवदत्तके गृहका व्यावर्तक है। तैसे जगत् का कारण ब्रह्म है। ताके एकदेशमें मूर्ति होवे है। और कदाचित् होवेहै। और चतुर्भुजादिक मूर्ति कारणब्रह्म विषे ही होवे है। अन्य में नहीं, याते व्यावर्तक होनेते उपलक्षण है, उपलक्षणका यह प्रयोजन होवेः-विशेष्य वस्तुके स्वरूप का ज्ञान होवे। जैसे काकते देवदत्तके गृहका ज्ञान होवे अन्य प्रयोजन काकते नहीं तैसे चतुर्भुजादिक आकारनते निराकार कारणब्रह्मका ज्ञान ही उपासनाके निमित्त मूर्ति प्रतिपादन का प्रयोजन है, अन्य नहीं। और आकारन में आग्रह वाले शैवादिकको खेद की प्राप्ति है।

मन्दप्रज्ञा वाले शास्त्र अभिप्रायको समझे विना, तिन आकारनमें आग्रह करें हैं और श्याल-सारमेयन्यायते परस्पर कलह करें हैं। स्त्री के भाईको श्याल कहें हैं। कुक्कुर को सारमेय कहें हैं, दृष्टान्त कूं न्याय कहें हैं। किसी के सालेका नाम उत्कालक था और साले के शत्रु का नाम

धावक था तिस पुरुषके गृहके कुक्कुर के नाम धावक और दूसरे गृहके कुक्कुरका नाम उत्फालक था। तहाँ तिस पुरुषकी स्त्री गृहविषे प्रथम आई, तब दोनों कुक्कुर आपसमें हमेश लड़ें, तहाँ स्त्रीका पति सुसुर आदिक उत्फालकको गाली देवें और अपने धावक की बड़ाई करे तब तो स्त्रीकूँ यह भ्रान्ति हुई: मेरे भाइ को गाली देवे है, ताके शत्रुकी बड़ाई करे है। तासे दूषित होयके भर्तासे क्लेश करती हुई। जैसे तिनके अभिप्राय जाने बिना, समानसंज्ञाते भ्रमकरके स्त्रीने क्लेश किया तैसे वैष्णवग्रन्थन में शिवादिक नामते कार्यब्रह्मकी निन्दा करीहै, इस अभिप्राय को नहीं जानिके शैवादिक दुःखित होवे है और विष्णुनामते कार्यकी निन्दाकूँ नहीं जानिके वैष्णव दुःखित होवेहैं।

सकल पुराण का यह अभिप्राय है:--१-कारण ब्रह्म उपास्य है, २-कार्यब्रह्म त्याज्य है। १-माया-विशिष्ट-चेतन कारण ब्रह्म कहिये है। २-मायाकृत कार्य विशिष्ट चेतन कार्यब्रह्म कहिये है। यही अर्थ भारत की टीका के आरम्भमें लिखाहै और सारे वेदान्तका यही सिद्धान्त है।

उत्तरमीमांसाकी प्रमाणता औरनकी अप्रमाणता।

❀ चौपाई ❀

शुभसन्ततिसुनिमुनकेबैना। उपज्यो जियमें किञ्चित चैना॥
पुनितिनप्रश्नकियोनिजपूतहि। शास्त्रपरस्परकहत असूतहि॥

पुराणमें विरोधशङ्काके नाशते. चैन कहिये सुख हुवा और षट्शास्त्रों की परस्पर विरोध शङ्का मिटी नहीं।

याते किंचित् चैन हुवा, सर्वथा नहीं। अस्तूत कहिये विरुद्ध कहें हैं।

❋ चौपाई ❋

तिनमें सत्य कौनसो कहिये। जाको अर्थ बुद्धि में लहिये॥
तर्कदृष्टि मुनिनि जपि जानी। बोल्यो वचन सुपरम प्रमानी॥
उत्तर मीमांसा उपदेशा। वेदविरुद्ध न जामें लेशा॥१०३॥
शास्त्रपञ्च ते वेद विरुद्धं। याते जानहु तिनही अशुद्धं॥
किंचित् अंश वेद अनुसारी। लखिबहु ग्रहत मन्द अधिकारी॥

यद्यपि षट्शास्त्रन के कर्ता सर्वज्ञ कहे हैं। १-सांख्य का कर्त्ता कपिल, २-पातञ्जल का कर्त्ता पतञ्जलि शेष का अवतार, ३-न्याय का कर्त्ता गौतम, ४-वैशेषिक शास्त्र का कर्त्ता कणाद, ५-पूर्वमीमांसा का कर्त्ता जैमिनि, ६-उत्तर मीमांसा का कर्त्ता व्यास। इन सबन का माहात्म्य प्रसिद्ध है याते इनके वचनरूप शास्त्र भी सारे समान प्रमाण चाहिये, तथापि सर्व वाक्यन में प्रमाण वेदवाक्य हैं। काहेते? १-वेद का कर्ता सर्वज्ञ ईश्वर है। ताके विषे भ्रम संदेह विप्रलिप्सादोष सम्भव नहीं। २-इन शास्त्रन के कर्त्ता जीव हैं तिनविषे भ्रम आदिक दोषन का सम्भवै है।

१-यद्यपि शास्त्रकार भी सर्वज्ञ कहे हैं। तथापि तिनकूँ सर्वज्ञता योगमाहात्म्यते हुई है। याते युञ्जान योगी हुए हैं और ईश्वरकी सर्वज्ञता स्वभावसिद्ध है। याते युक्तयोगी है, १-जाकूँ चिंतन किये पदार्थन का ज्ञान होय सो युञ्जान योगी कहिये है। २-जाकूँ सर्वदा एकरस सारे पदार्थ

अपरोक्ष प्रतीत होवे सो युक्तयोगी कहिये है। ऐसा ईश्वर है। १-युक्तयोगीकृत वेदवचन प्रबल और २-युञ्जानयोगीकृत शास्त्रवचन दुर्बल हैं।

याते-वेद अनुसारी शास्त्रप्रमाण और वेद विरुद्ध अप्रमाण पांच शास्त्र जैसे वेदविरुद्ध हैं। तैसे शारीरक आदिक ग्रन्थन में स्पष्ट है और उत्तरमीमांसा किसी अंश में वेद विरुद्ध नहीं, याते प्रमाणहै और शास्त्रभी किसी अंशमें वेद के अनुसारी दोखके मन्द बुद्धि तिन में विश्वास करे हैं, परन्तु बहुत अंशमें वेदविरुद्ध है याते त्याज्य हैं। किसी अंशमें वेद अनुसारी होनेते उपादेय होवे तो जैनशास्त्री भी अहिंसा अंशमें वेद अनुसारीहै। उपादेय हुआ चाहिये और त्याज्य है उपादेय नहीं, यद्यपि सुगत ईश्वर का अवतार है। जाकूँ बुद्ध कहे हैं, ताके वचन भी वेद समान प्रमाण चाहिये तथापि बुद्ध विप्रलिप्सा निमित्तते हुआ है, याते ताके वचन सर्वथा अप्रमाणहै, (वचन की इच्छा कूँ विप्रलिप्सा कहे हैं, जाकूँ बहकावने की इच्छा कहे हैं) याते सर्व अंशमें वेद अनुसारी उत्तरमीमांसा ही सर्वथा मुमुक्षुकूं उपादेय है। यद्यपि उत्तरमीमांसा व्यास कृत सूत्ररूप है, ताका व्याख्यान भी अनेक पुरुषों ने नाना रीतसे कियाहै, तथापि पूज्यचरण शङ्करकृत व्याख्यान ही वेदानुसारी है और नहीं, यह पञ्चमतरङ्ग में प्रति पादन करी है। याते और पञ्चशास्त्र अप्रमाण हैं।

न्यायशास्त्रकी त्यज्यता में दृष्टान्त और हेतु।

जो इस तरङ्गमें पूर्व सारे शास्त्र मोक्षउपयोगी कहे सो तर्क दृष्टिके सारग्राही विवेकते कहे। जैसे किसी का शत्रु तरवारी मारे, तैसे रुधिर निकसिके दैवगति से रोगनिवृत्ति होय जावे, तब सारग्राही पुरुष तरवारी मारने का उपकार मानि लेवे, तैसे अन्यशास्त्रनसे भी किसी रीतिसे अन्तःकरणकी शुद्धि वा निश्चलता हुयेते पुरुष निवृत्त होयके वेदअनुसार निश्चल करे तो मोक्ष होवे है, सर्वथा तिनहीमें आग्रह करे तो अन्धगोलांगूलन्यायते अनर्थकूँ प्राप्त होवे है, याते सकलशास्त्र त्यागके अद्वैत व्याख्यान रीत से उत्तरमीमांसा उपादेय है।

अन्धगोलांगूलन्याय यह है:-किसी धनीके भूषणयुक्त पुत्रको चोर लेगये, बन. में भूषण ले ताके नेत्र फाड़िके छोड़ गये तब तो रुदन करते बालक को कोई निर्दय वञ्चक बलउन्मत्तबलीवर्द की लांगूल पकड़ाय देवे और यह कहे, तू इसका लांगूलमत छांड़ियो, तेरे ग्राममें यह पहुँचाय देवेगा सो दुःखी बालक ताके वचन में विश्वास करके दुःख अनुभव करके नष्ट होवे है। तैसे विषयरूप चोर विवेकरूपनेत्रकों फोड़के संसारबनमें गेरे हैं तहाँ भेदवादी निर्दयवंचक अन्य शास्त्रन के सिद्धान्त में आग्रह करवावे हैं और यह कहे हैं-हमारा उपदेश ही तेरे को परमसुख प्राप्तिका हेतु होवेगा, ताकूँ छांड़ियो मत, तिनके वाक्यन में विश्वास करके पुरुषार्थ सुख रहित होवे है,

और जन्ममरण रूप महादुःखकूँ अनुभव करे है। याते अन्यशास्त्र त्याज्य हैं।

दोहा–तर्कदृष्टिके वचन सुनि, शुभसन्तति तिहिं तात।
संशय शोक नश्यो, सकल, लह्यो हिये कुशलात॥
कारण ब्रह्म उपासना, करी बहुत चित लाय।
तर्कदृष्टि निजलखि गुरु, राजसमाज चढ़ाय॥१०६॥

यद्यपि तर्कदृष्टि पुत्र था, तथापि उपदेश उत्तम करया याते गुरुपदवीकूँ प्राप्त हुवा। यह ब्रह्मविद्याका माहात्म्य है।

दो०–कछु व्यतीत्यो काल तब, तजि राजा निजप्रान।
ब्रह्मलोकमें सो गया, मुनि जहँ जात सध्यान॥१०७॥

राजाके मरनका देशकाल कहा नहीं ताका यह अभिप्राय है उपासकके मरणमें देशकालकी अपेक्षा नहीं, दिनमें मरे अथवा रात्रिमें, दक्षिणायनमें, अथवा उत्तरायणमें पवित्र भूमिमें अथवा अपवित्र में, सर्वथा उपासनाके बलते देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति होवे है और अदृष्ट के प्रसङ्गमें जो पूर्व देशकालकी अपेक्षा कही सो योगसहित उपासककी कही है केवल ईश्वर शरण उपासककूँ देशकालकी अपेक्षा नहीं, यह अर्थ सूत्रकार भाष्यकारने प्रतिपादन किया है॥ १०७॥

दोहा–राजकाज सब तब कियो, तर्कदृष्टि हुशियार।
लग्यो न रञ्चक रङ्ग तिहि, लह्यो ब्रह्मनिरधार॥१०८॥
अन्त भयो प्रारब्ध को, पायो निश्चल गेह।

आतम परमातम मिल्यां, देह खेह में छेह ॥१०६॥

देहका खेह कहिये, राखमें, छेह कहिये अन्त, आत्मा कहिये,कूटस्थसाक्षी, ताका परमात्मासे अभेद ॥ ११० ॥

यद्यपि कूटस्थका परमात्मा से सदा अभेद है, तथापि उपाधिकृत भेद है। उपाधि के लयते उपाधि कृत भेद का अभाव होवे है। परमात्मा से अभेद कह्या ताका यह अभिप्राय है:-विदेहमुक्तिमें ईश्वर ते अभेद होवे है, शुद्ध चेतनब्रह्मसे नहीं, यह वार्त्ता शारीरकभाष्यके चतुर्थ अध्याय में प्रतिपादन करी है। तहाँ यह प्रसङ्ग है:-१-विदेहमुक्ति में सत्य सङ्कल्पादिक रूप की प्राप्ति जैमिनि के मतमें कही है। २-औडुलोमिके मतमें सत्यसङ्कल्पादिकन का अभाव कहा है और ३-सिद्धान्त मतमें सत्य सङ्कल्पादिकन के भाव अभाव दोनों कहे हैं, ताका यह अभिप्राय है:-ईश्वरते अभेद होवे है, ईश्वर के सत्यसङ्कल्पादिक मुक्तिमें, अन्य जीवों करि व्यवहार करिये है सो ईश्वर परमार्थ-दृष्टिते शुद्ध है, ताके विषे कोई गुण है नहीं, किंतु निर्गुण है याते सत्यसङ्कल्पादिकन का अभाव है। यद्यपि संसार दशाविषे भी जीव परमार्थसे निर्गुण है, शुद्ध है, तथापि जीवको संसारदशा में, अविद्या से कर्तापना भोक्तापना प्रतीत होवे है ईश्वर को कभी भी आत्मा अथवा अन्य संसार प्रतीत होवे नहीं, याते सदा असङ्ग निर्गुण शुद्ध है याते ईश्वरते जो अभेद है, सोई शुद्ध मे अभेदहै और

ईश्वरते अभेदको शुद्धब्रह्म से अभेद नहीं माने तो ईश्वरकूँ शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति कभी भी होवे नहीं। काहेते ? जीव की न्याई ईश्वर कूँ उपदेशजन्य ज्ञान और विदेह मोक्ष तो कभी होवे नहीं, सदा प्राप्त जो ताका रूप सो शुद्ध नहीं। याते जीवते भी न्यून ईश्वर सदाबद्ध है, यह सिद्ध होवेगा। याते यह मानना योग्य है:-ईश्वरका आवरण नहीं। याते उपदेश जन्य ज्ञान की अपेक्षा नहीं, आवरणके अभावते भ्रान्ति नहीं, याते नित्यसर्वज्ञ है। नित्य मुक्ति है। ३--माया और ताका कार्य आत्मा में प्रतीत होवे नहीं, याते सदा असङ्ग है। याहीते शुद्ध है। इस रीति से ईश्वरते अभेदही शुद्ध चेतन से अभेद है, और दृष्टान्तसे भी ईश्वर ते ही अभेद सिद्ध होवे है। जैसे घट का अभाव होवे तो मठाकाशमें घटाकाशकालय होवेहै। महाकाशमें नहीं, तैसे विद्वानका शरीर ईश्वरकृत ब्रह्मांड में नष्ट होवे है और ब्रह्माण्ड सारा ईश्वर शरीर माया के अन्तर्भूत है, विद्वान् का आत्मा विदेह मोक्षमें ब्रह्माण्डके बाहरि गमन करे नहीं, याते ईश्वरते अभेद होवे है, परंतु जैसे मठाकाश से घटाकाशका अभेद हुवा, सो मठाकाश महाकाश रूपही है, तैसे ईश्वरते अभेद होवे है, सोई ईश्वर शुद्धब्रह्म रूपही है, याते शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति होवे है।

इस भाषाग्रन्थ के रचनेका प्रयोजन-दोहा।

यह विश्वासार कियो, जामें रत्न अनेक।

गोप्य वेद सिद्धान्तते, प्रगट लहत सविवेक ॥
सांख्यन्यायमें श्रम कियो, पढ़ि व्याकरण अशेष।
पढ़े ग्रन्थ अद्वैत के, रह्यो न एकहु शेष ॥
कठिन जु और निबन्ध हैं, जिनमें मतके भेद।
श्रमते अवगाहन किये, "निश्चलदास" सवेद ॥
तिन यह भाषा ग्रन्थ किये, रञ्च न उपजी लाज।
तामैं यह इक हेतु है, दया धर्म शिरताज ॥
बिन व्याकरण न पढ़ि सकै, ग्रन्थ संसकृत मन्द।
पढ़ै याहि अनयासही, लहै सु परमानन्द ॥
दिल्लीते पश्चिम दिशा, कोस अठारह गाम।
तामैं यह पूरो भयो, किहडौली तिहिं नाम ॥
ज्ञानी मुक्ति विदेह में, जासों होय अभेद।
दादू आदूरूप सो, जाहिं बखानत वेद ॥
नामरूप व्यभिचार में, अनुगत एक अनूप।
दादूपद को लक्ष्य है, अस्ति भाति प्रियरूप ॥

इति श्रीविचारसागरे जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्ति वर्णनं नाम सप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥

❋ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ❋



पुस्तक मिलने का पता—
लाला श्यामलाल, हीरालाल,
मालिक—श्यामकाशी प्रेस, मथुरा।

